जीवन-प्रभात

गाधी-परिवार तथा दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी के
अभूतपूर्व प्रयोगो एव सघर्ष की ज्ञानवर्द्धक,
शिक्षाप्रद और रोचक कहानी

लेखक
प्रभुदास गांधी
भूमिका
काका कालेलकर

१९५४
सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार १९५४
मूल्य
पाच रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

गाधीजी के जीवन तथा कार्य पर जितनी पुस्तक लिखी गई है, उतनी ससार के शायद ही किसी महापुरुष के विषय मे लिखी गई हो। फिर भी प्रस्तुत पुस्तक गाधी-साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखती है। इसके लेखक गाधीजी के कुटुम्बी-जन ही नही है, अपितु बचपन मे ही गाधीजी की छत्र-छाया मे उनका पालन-पोषण हुआ है। गाधीजी के पूर्वज कैसे थे, कौन थे, उनसे गाधीजी को विरासत मे क्या-क्या गुण मिले, गाधीजी के अद्-भुत जीवन-प्रयोगो तथा सत्याग्रह का लोगो पर क्या प्रभाव पडता था, उनके परिवार तथा आसपास के लोग उनसे किस प्रकार प्रभावित होते थे, उनके प्रत्येक कार्य मे व्यवस्था, त्याग, चारित्र्य आदि का कितना आग्रह रहता था, किस प्रकार वे बराबर नये-नये परीक्षण करते रहते थे, उनके दैनिक जीवन का कार्यक्रम क्या था, आदि-आदि बातो पर लेखक ने बडे ही विशद, प्रामाणिक तथा रोचक ढग से प्रकाश डाला है।

दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी ने जितने प्रयोग किये थे, छोटी अवस्था होते हुए भी लेखक ने उन्हे अपनी आखो देखा था और उनमें भाग लिया था। यही कारण है कि वह इतने अधिक और इतने सूक्ष्म विवरण दे सके है।

गाधी-परिवार तथा गाधीजी के प्रयोगो के विषय मे हिन्दी मे इतनी विपुल और महत्वपूर्ण सामग्री पहली बार पुस्तकाकार प्रकाशित हो रही है। अनेक घटनाए तो प्रथम बार प्रकाश मे आ रही है। काका साहब के शब्दो मे "गाधी-युग के इतिहासकारो मे और गाधीजी के चरित्र-लेखको मे" निस्सदेह "लेखक ने इस पुस्तक द्वारा चिरस्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है," कारण कि इसमे मौलिक, आध्यात्मिक तथा प्रामाणिक सामग्री कट-कूट कर भरी है।

हम लेखक के आभारी है कि उन्होने हिन्दी के पाठको को इतनी मूल्य-वान सामग्री प्रदान की है। हमे विश्वास है कि हिन्दी के पाठक इस पुस्तक को मनोयोगपूर्वक पढेगे और इससे लाभ उठावेगे।

—मत्री

आत्म-निवेदन

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नर ।
सोऽपि मुक्त शुभाल्लोकान्प्राप्नुयात् पुण्यकर्मणाम् ।
तच्च सस्मृत्य सस्मृत्य रूपमत्यद्भुत हरे ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुन पुन ।
(—गीता अ० १८।७१,७७)

"जो कोई यह बात ध्यान देकर सुनेगा और इसके प्रति चिढ न रखकर सरलता के साथ इसे अपने हृदय की गहराई में उतारेगा वह पुण्यकर्मी होगा और स्वतत्रता को प्राप्त करके कल्याणकारी समाज में जा पहुचेगा। फिर, सच बात तो यह है कि हरि के उस अद्भुत स्वरूप की ज्यो-ज्यो मुझ याद आती जाती है त्यो-त्यो मेरा अचरज वढता जाता है और हृदय गद्गद् हो उठता है।"

भगवद्गीता के अत मे कही गई यह वात पूज्य गाधीजी की जीवन-चर्या के वारे मे भी अक्षरश सत्य है। कहा जा सकता है कि जवमे मैने इस दुनिया मे आकर अपनी आखे खोली, प्राय तभी मे गाधीजी का विराट् स्वरूप मेरी आखो को चकित करता रहा। ज्यो-ज्यो मेरी उम्र वढती गई, मुझे उनके और उनके जमाने की पुरानी स्मृतियो के वारे में वार-वार वाते करने मे आनन्द आने लगा। पूज्य गाधीजी ने 'रौलेट एक्ट' के समय मे जव सत्याग्रह-आन्दोलन छेडा और सन् '२२ में जव उनको यरवडा के 'कृष्ण-मन्दिर' मे पहुचाया गया तव सावरमती आश्रम मे एक गभीर वातावरण छा गया। गाधीजी ने, अपने घर से ही श्रीगणेश करने के आग्रह के अनुसार, सत्याग्रहाश्रम के विद्यार्थियो को ही अपनी पढाई स्थगित करने के लिए समझाया और उन्हे स्वराज्य की लडाई मे झोक दिया। हम लोगो मे अधिकतर समय खादी की उपासना और अछूतो के साथ मिलने-जुलने मे वीतता था। आश्रम की राष्ट्रीयशाला के आचार्य काकासाहव कालेलकर की प्रेरणा से, अपने स्वाध्याय को ताजा रखने के लिए, 'मधपूडो' (मधुमक्खी का छत्ता) नाम से विद्यार्थियो का एक द्विमासिक हस्तलिखित पत्र चलाया जा रहा था। उसके सपादन का भार मुझपर डाला गया था।

मुझमे यह साहस नही था कि मै सदुपदेश से भरे हुए लेख लिखता। फिर इतिहास, विज्ञान, साहित्य या अन्य किसी प्रकार के शास्त्र के साथ मेरा सक्रिय सबध भी न था। सोचते-सोचते मुझे फीनिक्स की बाते लिखने का विचार सूझा।

यह अनुभव मुझे पहले ही हो चुका था कि बापूजी की छोटी-मोटी बाते सुनने मे सभी को आनन्द आता है। हमारे आश्रम का प्रारम्भ कैसा था, बापूजी के इर्दगिर्द कैसे-कैसे व्यक्ति रहते थे, बापूजी क्या करते थे, किस प्रकार पढते थे, हमको जेलयात्री बनने के लिए किस प्रकार तैयार कर रहे थे—ये सारी बाते लोग मुझसे मानो कहानी के आह्लाद से सुना करते थे। बार-बार के इस अनुभव के कारण मैने फीनिक्स की बातो को लिखना शुरू कर दिया।

उस समय तक गाधीजी का 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' प्रकाशित नही हुआ था। उनकी आत्म-कथा भी नही लिखी गई थी। इसलिए मै जो कुछ अव्यवस्थित और अधूरी बाते लिखता था वह भी लोगो को पसन्द आती थी और 'मधपूडो' पाठको के हाथ से लौटकर मेरे हाथ मे आता ही नही था। फिर तो मैने नि सकोच होकर, एक इतिहासकार की शान से लिखना प्रारम्भ कर दिया और देखते-देखते छोटा-सा 'फीनिक्स-पुराण' तैयार हो गया। जिस समय की बाते इसमे मैने दी है उस समय मेरी उम्र बारह वर्ष से भी कम की थी।

इस पुस्तक मे मेरा उद्देश्य अपनी आत्मकथा लिखने का नही है। आत्म-कथा लिखू ऐसी कोई योग्यता भी मुझमे नही है। फिर भी सारी कथा मैने अपने को ही केन्द्र मे रखकर लिखी है। अन्य प्रकार से लिखना सभव भी नही हो सकता था। मनुष्य की चार से लेकर बारह वर्ष तक की उम्र ही ऐसी होती है कि वह सारी दुनिया को अपने बालगज से ही नापता है, पहचानता है और उसका अनुभव करता है। मेरे पास उस समय इतिहास की दृष्टि नही थी। मुझे होश भी न था कि जिस वातावरण मे मेरा लालन-पालन हो रहा है, वह ससार का कोई अनोखा वातावरण है। यह कल्पना ही मुझे कैसे हो सकती थी कि जिनके कधे पर सवार होने का अवसर मुझे मिल रहा है वे हमारे घर के मोहनदासकाका ससार के एक अद्वितीय व्यक्ति माने जायगे। इसलिए चाहने पर भी अपनी स्मृतियो को सवार-सवार कर लिखे हुए इन लेखो को मै पूज्य बापूजी के या अपने मगनकाका के जीवन-चरित के रूप मे पेश नही कर सकता। आश्रम के इतिहास के रूप मे या दक्षिण अफ्रीका

के सत्याग्रह के रूप मे मै यह सब लिख ही नही सकता था । हा, बापूजी के शिक्षण-प्रयोगो के इतिहास के रूप मे मै इसे लिखने का प्रयास कर सकता था । पर मुझे उचित यही लगा कि मै इसे अपने बालजीवन के सस्मरणो के रूप मे लिख डालू । ऐसा करने मे ही कम-से-कम अभिमान और अधिक-से-अधिक सच्ची बात इसमे आ सकती थी ।

असल मे ये प्रकरण आश्रमवासी पाठको के लिए लिखे गये थे, इसलिए इनमे घरेलू बातो का समावेश बहुत हुआ है । अपने आश्रम को अपना घर समझकर बेखटके चाहे जैसी घरेलू बातो को बताने मे सकोच नही होता । यदि इसमें कुछ बाते अशोभन जान पडे या विनय और शिष्टता मे कुछ अधूरापन मालूम दे तो पाठको मे मै प्रार्थना करता हू कि वे मुझे क्षमा करे । गाधी-परिवार ससार का अनोखा और अपूर्व परिवार है, सत्याग्रह-आश्रम या फीनिक्स-आश्रम, जहा सत्याग्रहाश्रम की प्रथम नीव डाली गई, पूर्णतया आदर्श सस्था थी, ऐसा मैने कभी नही माना । फिर उसका आधार लेकर आत्म-प्रशसा करने की मनोवृत्ति को अवकाश ही कहा रह जाता है ?

इस पुस्तक मे हिन्दी के पाठको को बहुत-सी ऐसी सामग्री मिलेगी जो गाधीजी के आगे के जीवन की आधारशिला थी । अपनी बाल-स्मृति के आधार पर जिन प्रसगो को मैने चित्रित किया है उनकी प्रामाणिकता के लिए गाधीजी के पत्रो का सहारा लिया है और अपने पिता की डायरी आदि सामग्री की पूरी सहायता ली है । गाधी-परिवार का इतिहास भी इस पुस्तक के प्रारम्भ मे आ गया है ।

हिन्दी मे यह सामग्री प्रथम बार पुस्तकाकार प्रकाशित हो रही है । पाठको को इससे लाभ हुआ तो मै अपने परिश्रम को सफल समझूगा ।

हिन्दी मे इस सामग्री को पहले 'हिन्दुस्तान' मे निकालते समय भाई श्री सीताचरण दीक्षित तथा बाद मे पुस्तकाकार करते समय भाई श्री यशपाल जैन ने जो परिश्रम किया उसके लिए मै उनका अत्यत आभारी हूँ ।

—प्रभुदास गाधी

प्रस्तावना

जिस समय यूरोप मे पहला विश्वयुद्ध फैला, उन्ही दिनो पूज्य गाधीजी ने दक्षिण अफ्रीका मे उज्ज्वल विजय के साथ अपना कार्य पूरा किया। बाद मे वे अपने साथियो को भारत भेज कर स्वय श्री गोखले से मिलने के लिए इग्लैड चले गये। गाधीजी की वह 'फीनिक्स-मडली' दीनबधु एन्ड्रयूज की इच्छा के अनुसार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के शातिनिकेतन मे रहने चली गई। मै भी उसी समय बगाल मे चलते हुए राष्ट्रीय शिक्षा के उस महत्वपूर्ण प्रयोग को निकटता से एव सतह के भीतर से देखने-जाचने के लिए शातिनिकेतन पहुच गया।

शान्तिनिकेतन का अर्थ था भारतीय सस्कृति के आचार्य श्री रवीन्द्रनाथ द्वारा सचालित ब्रह्मचर्याश्रम। दूसरी ओर 'फीनिक्स-मडली' का अर्थ था कर्मवीर गाधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका मे स्थापित किये हुए एक अभिनव ब्रह्मचर्याश्रम का भारत मे लाया हुआ पौधा। इस प्रकार जब एक आश्रम दूसरे आश्रम के घर अतिथि के रूप मे रहने गया था तभी मै भी वहा जा पहुचा। 'फीनिक्स-मडली' के लोग दुपहर का भोजन शातिनिकेतन के भोजनालय मे करते थे और शाम के समय सोडा या खमीर के बिना बनाई हुई ईंट-जैसी डबल रोटी कुछ फल-मेवे के साथ खा लेते थे। दोनो ओर के व्यवस्थापको की सम्मति प्राप्त करके मै दोनो मे शामिल हो गया। 'फीनिक्स-मडली' के साथ मेरा सबध अधिक घनिष्ट हो गया। उसके साथ उसकी शाम की प्रार्थना मे शामिल होता और प्रात काल की प्रार्थना का आरभ तो मैने ही किया। शाम की प्रार्थना के बाद उन लोगो को मै थोडी-थोडी करके अपने हिमालय के प्रवास की बाते सुनाने लगा। उसके बाद तपोधन उग्रशासन, निष्ठावीर मगनलालभाई गाधी के मुख से दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की लडाई के और फीनिक्स-आश्रम के विविध रसो से भरे हुए जीवन के बारे मे खत्म न होने वाली बाते ब्यौरे से सुनता रहा। उस समय वे सारी घटनाए बिलकुल ताजी ही थी और उस अपूर्व लडाई में तथा उस आश्रम मे सहयोग देने वाले, अर्थात् उस प्रकार से नवभारत के नये इतिहास का निर्माण करने वाले लोगो के बीच रह कर, उन्ही के मुह से, वह सारी कथा मैने सुनी।

मेहमान-आश्रम चलाने का भार श्री मगनलालभाई पर था। उनकी सहायता के लिए मगनभाई पटेल मास्टर भी थे। मणिलाल, रामदास, देवदास तीनो भाई वहा थे। प्रभुदास, कृष्णदास और केशू भी थे। कुछ दिन के लिए श्री जमनादास गाधी भी आये थे। शिवपूजन, छोटम, भैयम, श्री थबी नायडू के पुत्र आदि अनेक बालवीर उस मडली मे थे। प्रतिदिन सवेरे

हम लोग खोदने का काम करने जाया करते थे। मेरे शामिल होने के कुछ दिन बाद इस मडली ने एक छोटी-सी टेकडी की मिट्टी खोद कर पास की एक तलैया को पूरा देने का काम उठाया। हमारे हाथ से वह काम पूरा होगा या नही और होगा तो कब होगा, इस बात की हमे कोई चिता न थी। अनासक्त-वृत्ति से नित्य सवेरे खुदाई का काम पूरा करने के बाद ही हम लोग नाश्ता करते थे।

इस प्रकार के वातावरण मे श्री मगनलालभाई और अन्य फीनिक्स-वासियो के साथ मेरा परिचय हुआ। मेरी बातो मे सबको रस आता था। उनके श्रमजीवन मे मै बिलकुल घुलमिल गया था। उनमे भी छोटा प्रभुदास मेरी ओर अधिक आकर्षित हुआ, ऐसा कहा जा सकता है।

पूज्य गाधीजी जब इग्लैड से लौटकर स्वदेश पधारे और उन्होने शाति-निकेतन तथा ब्रह्मदेश की यात्रा भी कर ली, तब अपने फीनिक्स-आश्रम को वे शातिनिकेतन से ले गये, पहले हरिद्वार के कुभ मेले मे और वहा से अह-मदाबाद। मै भी शान्तिनिकेतन छोड कर महाराष्ट्र लौट गया और बाद मे बडौदा जा कर ग्रामसेवा का काम करने लगा।

किन्तु जो सबध शातिनिकेतन मे स्थापित हो गया था वह टूटने वाला नही था। वह मुझे गाधीजी के सत्याग्रह-आश्रम मे ले गया। पहले हम कोचरब मे रहे, इसके बाद साबरमती के तट पर वाडज के पास स्थायी रूप से सत्या-ग्रहाश्रम की स्थापना हो गई। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि 'जीवन-प्रभात' मे जहा पर प्रभुदास के और फीनिक्स-आश्रम के जीवन की कथा समाप्त होती है प्राय वहा से उनका और मेरा सबध शुरू होता है।

सत्याग्रह-आश्रम मे गाधीजी ने बालको की शिक्षा पर अधिक महत्व देकर आश्रम के अन्तर्गत ही एक स्वतन्त्र पाठशाला स्थापित की थी। उस पाठ-शाला मे थोडे दिन तक श्री छगनलालभाई गाधी ने भी काम किया। राष्ट्रीयशाला मे विद्यार्थियो का हस्तलिखित मासिक पत्र तो होना ही चाहिए—हम लोगो ने उसका नाम 'मधपूडो'—मधुमक्खी का छत्ता—रखा। उपनिषद की कथा पढने वाले हम लोग 'मधपूडो' के सपादको को 'मधुकर राजा' कहने लगे। प्रभुदास वैसा ही एक राजा बना। उसको लेख लिख देना जैसे हम शिक्षक लोगो का काम था, वैसे ही विषय सुझा देने का काम भी हमारा ही था। मैने प्रभुदास से कहा, "दक्षिण अफ्रीका के आश्रम-जीवन का वर्णन क्रमश क्यो नही लिखते ?" आत्मविश्वास कम होने के कारण प्रभुदास ने इसके लिखने मे शका प्रदर्शित की, "क्या मुझसे यह सब लिखा जा सकेगा ?" मैने उससे कहा, "इसमे क्या बात है ? वह सब—सस्मृत्य-सस्मृत्य, याद कर-करके लिख डालो।" उसने वह विचार अपना लिया और

'तच्च सस्मृत्य सस्मृत्य' के शीर्षक से एक लेख-माला मे अपने वाल-जीवन के सस्मरण लिखना आरभ कर दिया। वहुत-कुछ लिख जाने पर उसने उन सब लेखो को अपने वालसखा देवदास को दिखाया। आश्रम के शिक्षक और विद्यार्थीगण तो यह सब वडे चाव से पढते ही थे, परन्तु गाधी-कुटुम्ब के वहुत से लोग भी उसे ध्यान से पढने लगे। कुटुम्ब की मानमर्यादा के आग्रही कुछ पुराने विचार के स्वजनो को यह अखरा। "प्रभुदास यह क्या कर रहा है ? अपने कुटुम्ब की घरेलू—गोपनीय—वाते इस तरह प्रकाशित की जाती है क्या ?" परन्तु अन्तर-वाह्य का भेद न मानने वाले गाधीजी के हाथोमे पले और शिक्षा पाये प्रभुदास ने साहस के साथ वहुत-काफी लिख ही डाला।

इस पूरी-की-पूरी लेखमाला मे तबूरे के सुर की भाति एक बात सतत सुनाई देती है। विलकुल वचपन में ही प्रभुदास से कहा गया था कि वह निरा वुद्धू है। होशियारी उसमे कुछ भी नही है। देवदास-जैसी कुशलता प्रभुदास मे भले न हो, छोटे कचा (कृष्णदास के) वरावर चातुर्य भी उसके पास न हो, लेकिन मैने तो उसको वुद्धि-विहीन न पाया है और न माना है। किन्तु घर के वडो ने यद्यपि अत्यत सद्वुद्धि से प्रेरित होकर उसके ऊपर जो 'आत्मनि अप्रत्यय' ठोक-ठोक कर जमा दिया वह उसके स्वभाव का एक अग ही वन गया और विद्या-निष्ठा, कर्म-निष्ठा, ध्येय-निष्ठा आदि समर्थ सद्गुणो का अस्तित्व उसके पास होते हुए भी केवल आत्मविश्वास के अभाव के कारण उसके जीवन का सारा भविष्य मानो मुरझा गया।

इस पुस्तक मे छोटी-मोटी वातो की जो भरपूर वारीकिया दिखाई देती है उनमे से वहुत-कुछ श्री मगनलालभाई के मुह से मैने सुन रखी है। गाधी-परिवार के कई व्यक्तियो ने भी इन वातो को पढा है। इसलिए इनकी यथार्थता के वारे मे सदेह के लिए कोई स्थान नही रह जाता। जो दिमाग इतनी सारी वातो को व वारीकियो को सग्रहीत और समर्थता से प्रतिपादित कर सकता है उसे वुद्धू वताना अनर्थ ही कहलायेगा।

चि प्रभुदास खादी-विद्या और कला के एक समर्थ आचार्य है। खादी का तत्त्वज्ञान, उसका अर्थशास्त्र, उसकी जड मे निहित समाजशास्त्र आदि सबके वे ज्ञाता है ही, इसके अतिरिक्त खादी के यन्त्रशास्त्र मे भी उन्होने नई-नई खोजे की है। पैरो से गति देकर दोनो हाथो से सूत कातने वाले चर्खे की खोज प्रभुदास की ही है। उन्होने खादी-विद्या के आद्याचार्य श्री मगनलालभाई के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करने के लिए उस चर्खे को 'मगन-चर्खे' का नाम दिया है।

गाधी-परिवार के लोग जिस प्रकार दक्षिण अफ्रीका मे जाकर वस गये और वहा पर जैसे उन्होने लोक-सेवा की, उसी प्रकार प्रभुदास ने भी हिमा-

लय मे अलमोडे की ओर जाकर वहा पर खादी का काम किया और उत्तर-प्रदेश मे अपना विवाह हो जाने के बाद उसी प्रांत की सेवा करने के हेतु से वही बस गये। उस प्रदेश में प्राय चौथाई शताब्दी तक उन्होने खादी व ग्राम-सेवा का काम किया। देश की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद जब उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रयाग मे खादी विद्यापीठ की स्थापना की तब प्रभुदास को वहा के मुख्य आचार्य के रूप मे नियुक्त किया और दो वर्ष मे वहा मे कई खादी-विद्यार्थी शिक्षा पाकर उत्तीर्ण हुए। इसके बाद नवसंगठित सौराष्ट्र मे ग्रामोद्योग और खादी-विद्या के प्रशिक्षण के लिए उनको आमन्त्रित किया गया और पोरबदर मे गाधीजी के जन्मस्थान पर बनाये गये उस कीर्ति मन्दिर का केन्द्र सुगठित और सचालित करने का उत्तरदायित्व उन्हे सौपा गया, जिसका उद्देश्य बापू के जीवन-कार्य व सर्वोदय समाज की प्रवृत्तियो का भली-भाति प्रदर्शन करना है। अब वह पुन उत्तर प्रदेश मे मुरादाबाद जिले के गावो मे खादी और ग्रामोद्योग की नीव पर अहिंसक और शोषण-विहीन समाज के विकास का कार्य 'अखिल भारत खादी ग्रामोद्योग मडल' की ओर से कर रहे है।

बहुत लोगो को इस बात का पता न होगा कि जब चम्पारन में गाधीजी पहली बार गिरफ्तार किये गए तब उन्होने वहा के देहातो मे जाकर किसानो के पास अपना सदेश पहुचाने का जिम्मेदारी भरा काम बालक प्रभुदास को ही सौपने का निश्चय किया था।

फिर भी इस सपूर्ण पुस्तक मे प्रभुदास का यह ध्रुवपद हमें लगातार सुनाई देता है कि "मैं बुद्धू हू, मै जड हू, दूसरो के जैसा होशियार नही हू।" और उनकी लेखनी इतनी समर्थ है कि क्षणभर के लिए हमे भी प्रतीत होता है कि "उनकी यह बात सही होगी", परन्तु उनकी वर्णनशक्ति की सामर्थ्य देखने पर विश्वास हो जाता है कि वह कोई मामूली साहित्यकार नही है।

सारी पुस्तक में प्रभुदास के मन की बापूभक्ति अखड रूप मे दीप्तिमान है। साथ-ही-साथ स्वर्गस्थ मगनलालभाई के प्रति उनका आदरभाव भी उतना ही स्पष्ट दीख पडता है। दोनो सिरे के मील-पत्थरो को देखकर जैसे हम बीच का अन्तर नाप लेते है, वैसे ही इसे पढ कर खयाल हो जाता है कि श्री मगनलालभाई ने अपने स्वभाव पर विजय पाने के लिए अपने अतर में कितना भयानक युद्ध चालू रखा होगा और उन्होने उसमे कैसी अद्भुत सफलता पाई। श्री मगनलालभाई के बारे मे लिखते हुए श्री चद्रशकर शुक्ल ने उनको 'उग्रगामन' बताया है। यह विशेषण सभी बातो मे उनके अनुरूप ही है। अखड जागरूक, अखड दक्ष और एकाग्र निष्ठावान मगनलालभाई के तप के कारण ही सत्याग्रह-आश्रम विकसित हो पाया। मगनलाल-

भाई का जब देहान्त हो गया तब बापूजी ने उनके घर में ही बैठ कर लिखा था, "उसकी विधवा घर के अन्दर सिसक-सिसक कर रो रही है। उसे क्या पता कि सचमुच तो मैं ही विधुर बन गया हू।"

श्री मगनलालभाई का एक छोटा-सा जीवन-चरित्र प्रकाशित हुआ है, किन्तु यथार्थ रूप मे उनके जीवन का सही-सही चित्रण तो प्रभुदास की इस पुस्तक मे ही हमको मिलता है। नि सदेह मगनलालभाई बापूजी के हनुमान थे। जो कुछ बापूजी ने करना चाहा वह सब मगनलालभाई ने कर दिखाया।

गाधीजी ने 'सत्याग्रह-आश्रम का इतिहास' मे राष्ट्रीय शिक्षा के लिए जिन सिद्धान्तो को निष्कर्ष के रूप मे बताया है, उसी का वातावरण जान मे या अनजान मे प्रभुदास ने अपने इस 'जीवन-प्रभात' के अन्दर तादृश रूप से चित्रित किया है।

गाधीजी ने स्वय 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' लिखा है। वहा की जेल के अनुभव लिखे है। उनकी आत्मकथा में भी उस समय का इतिहास मिल जाता है। फीनिक्स-आश्रम का बोझ कुछ अश मे उठाने वाले श्री रावजीभाई पटेल ने भी 'गाधीजी की साधना' और 'जीवनना झरणा' नामक दो पुस्तको मे पर्याप्त सामग्री दी है और वह सब बहुत प्रभावोत्पादक है। फिर भी कहना पडेगा कि उन सब पुस्तको मे कुछ बातें छूट गई थी, जो प्रभुदास ने अपने 'जीवन-प्रभात' मे दी है। हमे यह महसूस हुए बिना नही रहता कि कुछ बाते प्रभुदास ही हमे दे सकते थे। प्रभुदास ने इस पुस्तक को लिखकर गाधी-युग के इतिहासकारो व गाधी-जीवन के चरित्र-लेखको मे सदा के लिए स्थान पाया है, क्योकि इसमे मौलिक, प्रामाणिक और आध्यात्मिक सामग्री कूट-कूट कर भरी हुई है।

गाधीजी के पुरुषार्थ का इतिहास इस पुस्तक मे होने के कारण इसका महत्त्व है ही, किन्तु केवल साहित्य के रूप मे भी इस पुस्तक ने उत्तम आदर्श पेश किया है।

गाधी-परिवार का आवश्यक इतिहास इसमे सुन्दर तरीके से दिया गया है और इस प्रकार गाधीजी की आत्मकथा मे जो न्यूनता रह गई थी वह इसमें पूरी की गई है।

भूगोल की बाते और प्रकृति के साथ घासपात, फल-फूल, पक्षियो और बादलो के साथ—तदाकार होने के आनन्द का जब प्रभुदास वर्णन करने बैठते है तब तो उनकी लेखनी की सामर्थ्य सोलहो कला मे प्रकट होती है। अपने समवयस्क बालको से और अपने घर के बडो से जो पोषण बाल प्रभुदास को नही मिलता था वह उन्होने प्रकृति के पास से पाया। इसी कारण यह वर्णनशक्ति इस हद तक उनमे सजीव हो उठी है। प्रकृति-वर्णन करने मे

प्रभुदास को जो सफलता प्राप्त है वही सफलता मनोविश्लेपण करने मे भी उनको प्राप्त है। अपने बुजुर्गों के लिए अदब रखने के लिहाज से दबे रहने के कारण अपनी विश्लेपण-शक्ति को उन्होने स्वय अपने ऊपर ही आजमाया है। लेकिन भविष्य मे जब वह कोई उपन्यास या इतिहास लिखने बैठेगे तब उनके द्वारा हमे मानवचित्त की सविशेष गहनता का पर्याप्त परिचय मिलेगा। इस पुस्तक मे भी स्वभाव-चित्रण कम नही है, और जो है काफी प्रभावपूर्ण है।

आज के युग के पाठक इस पुस्तक को गाधीजी के जीवन के एक पहलू के चित्रण के रूप मे ही पढेगे। किन्तु वास्तव मे 'जीवन-प्रभात' प्रभुदास के बचपन की आत्मकथा या अपने वय के चौथे वर्ष से लेकर बारहवे वर्ष तक की स्मरण-यात्रा है। इसमे बालमानस के विकास का और उसमे पैदा होने वाली विकृति का पारदर्शक चित्र है। शिक्षा का कार्य करने वाली और बहुत से माता-पिताओ की दृष्टि खोल देने वाली सामग्री इसमे है। अपने दोपो पर प्रभुदास ने कही भी पर्दा नही डाला है, बल्कि ठीक वैसे ही अपने प्रत्येक दोप का ब्यौरा दिया है, जैसे कि चित्रगुप्त के सामने उपस्थित हो। कही भी उन्होने अपने ऊपर रहम नही किया है। इसी वजह से उन्होने दूसरो के बारे मे लिखने का अधिकार पा लिया है। इसमे भी, जो लोग अदरूनी इतिहास के पूरे जानकार है वे अवश्य कहेगे कि प्रभुदास ने इसके लिखने मे कलामय सयम ही साधा है।

गाधीजी द्वारा लिखे गए 'सत्याग्रह-आश्रम का इतिहास' को पढने के बाद ही फीनिक्स-आश्रम के इस इतिहास को पढने पर जो विचार मन मे उठा है उसे यहा मै प्रस्तुत कर देता हू।

आश्रम के इतिहास की प्रस्तावना मे जिस फीनिक्स अथवा 'अग्नि-सभव' आश्रम का इतिहास मैने मागा था वही यहा पर बालसुलभ ढग से प्राप्त हो जाता है। फीनिक्स-आश्रम का यह इतिहास पढने से सत्याग्रह-आश्रम सबधी बापूजी की जीवन-दृष्टि और कार्य-पद्धति अधिक स्पष्ट हो जाती है।

सत्याग्रही वीर जेल मे जाकर हार न माने, इस हेतु से फीनिक्स मे गाधीजी ने श्रम-सहिष्णुता, स्वादजय और कठोर जीवन की शिक्षा अपनाई। इस दृष्टि से फीनिक्स-आश्रम को जेल-आश्रम कहना चाहिए। यह विचार मन मे आने के साथ-साथ यूरोप के इतिहास मे पढी हुई एक बात याद आती है कि यूरोप के जेल-जीवन का कार्यक्रम ईसाई तपस्वियो के मठ-जीवन की बेहूदा नकल थी। जेल मे मजबूरी से पुण्य कराया जाता था, जबरदस्ती सयम रखवाया जाता था और बलपूर्वक प्रायश्चित्त कराया जाता था।

जेल-जीवन की आवश्यकता समझ कर गाधीजी ने अस्वाद-व्रत का महत्व

बढा दिया होगा , जैनो की तप के लिए आग्रह-भरी चुस्ती को देखकर भी बापूजी अस्वाद-व्रत की ओर झुके होगे , ब्रह्मचर्य के पालन मे स्वादजय को अपरिहार्य समझकर उन्होने उन प्रयोगो को बढावा दिया होगा—'जित सर्व जिते रसे'—किन्तु ये सारे प्रयोग उन्होने अपनी निजी कल्पना के अनुसार ही किये थे और इन प्रयोगो से अनेकविध अनुभव प्राप्त करने के बाद उन्होने अपने विचारो मे आवश्यक परिवर्तन भी किया था। एक बार बापूजी ने बताया था, "केवल स्वादजय पर्याप्त नही है। जिन्होने नमक का, मीठी-मीठी चीजो का और तरह-तरह के नमकीन पदार्थो का सदा के लिए सतोष के साथ त्याग कर दिया है, ऐसे लोगो को भी मैने भूख से अधिक आहार करने के लिए व्याकुल देखा है। केवल नियमो के पालन से अस्वाद-व्रत या आहार-सयम सधता नही है।"

एक इन्द्रिय यदि ढीली पड जाती है तो दूसरी सब इन्द्रिया भी हलके-हलके ढीली हो ही जाती है, यह सच बात है, किन्तु एक इन्द्रिय को वश मे कर लेने से दूसरी सब इन्द्रिया भी वश मे आ ही जाती है, ऐसा अनुभव नही है। सबसे पहले और सबसे अन्त मे जिसको वश मे लाना चाहिए वह है अपना चित्त। ऐसा न करके एक या अनेक इन्द्रियो का दमन करने पर चित्त का वेग अन्यत्र फूट पडता है।

आश्रम-जीवन का प्रधान तत्व है मृत्यु के साथ मैत्री। मनुष्य-जाति मृत्यु की कल्पना से इतनी अधिक भयभीत रहती है कि उसने निर्भय होकर मृत्यु का मुख देखा ही नही। मनुष्य के विकास के लिए मृत्यु आवश्यक है। मृत्यु हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। मृत्यु परम मित्र है, नये-नये प्रयोगो के लिए जीवन को ताजगी देने वाला वह एक आरामगाह है। मृत्यु, थके हुए जीवन की केचुली उतार देने की एक क्रिया-मात्र है—यह बात जो समझ लेता है वही जीवन का रहस्य समझ पाता है व जीवन की कमजोरियो पर विजय पा सकता है। वही अपने कर्तव्य-पालन में दृढ रह सकता है और सत्य का दर्शन कर सकता है। दु ख, रोग और मृत्यु तीनो पर विजय पाने के बाद ही हम मनुष्य-जाति की सेवा कर सकते है और अपने निज के जीवन को कृतार्थ बना सकते है। इस निश्चय से गाधीजी ने जीवन की जिस साधना का आरम्भ किया उसका इतिहास भविष्य मे अनेक ढग से लिखा जायगा और उनकी वह परम्परा मनुष्य-जाति को आगे चलकर अनेक प्रकार से विकसित करेगी।

इस पुस्तक मे हमे केवल साहित्य-रस या जीवन-रस ही नही चखना है, इससे प्रयोग-रस भी चूसना है।

—काका कालेलकर

मैरित्सबर्ग-जेल से रिहाई के बाद स्टेशन पर गांधीजी का स्वागत

जीवन-प्रभात

: १ :

सौराष्ट्र का भौगोलिक चित्र

यदि सौराष्ट्र की आकृति पर दृष्टिपात किया जाय तो सौराष्ट्र का स्वरूप कुछ-कुछ ऐसा मनोरम दीख पड़ेगा, जैसा कि समुद्र के क्षितिज पर सुशोभित अपूर्ण चन्द्र का दृश्य दीखता है। एक सिरे पर सौराष्ट्र भारतमाता से लगा हुआ है और दूसरे सिरे पर वह पश्चिम सागर की गोदी में जा बैठा है। यदि कल्पना की दृष्टि से देखा जाय तो समग्र सौराष्ट्र की आकृति शुक्ला एकादशी या कृष्णा चतुर्थी-पचमी के अधूरे चन्द्र के समान दिखाई देती है। यदि भारत देश को हम माता की मूर्त्ति मानते है, कच्छ को बड़ा-सा तुवा बताते है, तो सौराष्ट्र को एकादशी का चन्द्र कह सकते है। सौराष्ट्र के प्रायद्वीप ने पूर्व मे खभात के पास मातारूपी भूमि को पकड रखा है और पश्चिम मे द्वारका के पास वह सागर रूपी पिता के वक्षस्थल पर खेल रहा है उधर, दक्षिण की ओर सौराष्ट्र की भूमि ने अपना सारा किनारा, जो कि प्राय एक हजार मील है, समुद्र को समर्पित कर दिया है और सौराष्ट्र का उत्तरी हिस्सा कच्छ के रण द्वारा भूमि के साथ आख-मिचौनी कर रहा है। सौराष्ट्र का पश्चिम, दक्षिण और पूर्व दिशा मे समुद्र का सुडौल घुमाव है। इस प्रकार तीन ओर से नील सिन्धु का जल सौराष्ट्र की भूमि का पाद-प्रक्षालन करता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म-स्थल टकारा ग्राम जहा पर है, वह मोरवी का राज्य उत्तर-भारत मे काफी प्रसिद्ध है। सौराष्ट्र के विलय के पहले अग्रेजो की व्यवस्था के अनुसार मोरवी राज्य प्रथम श्रेणी का राज्य माना जाता था और वहा के राजाओ ने अपने मोरवी नगर के पास नवलखी-बन्दर का यथाशक्ति विकास किया था। उत्तरी भारत के साथ स्थल मार्ग से व्यापार करने के लिए यह नवलखी बन्दर दूसरे बदरो

मे अधिक पास पडता है और ऊटो के कारवा पर राजपूताना मे वहा मे सामान का यातायात सुगम होता है। इस नवलखी-बन्दरगाह की भौगोलिक महत्ता का पता इस बात मे चलता है कि इसी के ठीक सामने, आठ-दस मील चौडी कच्छ की खाडी के उस पार, कच्छ मे राज्य की सीमा मे, भारत सरकार ने अब करोडो रुपये खर्च करके विशाल पैमाने पर कादला बन्दर का निर्माण किया है और उसका नाम गाधीनगर रखा है। आशा है कि निकट भविष्य मे ही वह स्थल स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली के लिए निकटतम समुद्र-द्वार साबित होगा और भारत की सबसे अधिक बल-शाली तथा व्यापारिक बन्दरगाह के रूप मे विश्वविख्यात हो जायगा।

यदि एक जहाज मे बैठकर हम नवलखी बन्दर मे सौराष्ट्र के समुद्री किनारे की परिक्रमा आरम्भ करे तो वहा मे पूर्व मे कुछ दूर जाने पर जामनगर राज्य का बेडी बन्दर आ जाता है।

नवलखी बन्दर और बेडी बन्दर, दोनो ही कुछ बन्द समुद्र मे है। इनके बाद कच्छ की खाडी से बाहर निकलने पर खुले महासागर में सर्वप्रथम बन्दर द्वारका के पास का ओखा-बन्दर है। भारत की पश्चिमी सीमा की विदेशियो मे रक्षा करने के लिए दीर्घदर्शी और कूटनीतिज्ञ श्री-कृष्ण भगवान ने प्राय इसी स्थल को प्रहरी के रूप में चुना था। सौराष्ट्र की परिक्रमा करने के लिए जो जहाज पूर्व से पश्चिम की ओर जाता है उसे अब एकदम दक्षिण मे मुडना होता है, तब जाकर वह परम-तीर्थ द्वारका पहुचता है। द्वारका मे आगे, कुछ आग्नेय दिशा में मुडता हुआ प्राय पच्चीस-तीस मील पर जहाज मियाणी बन्दर पहुचता है, जहा से पुराने पोरबन्दर राज्य की सीमा शुरू होती है। मियाणी से फिर करीब पच्चीस मील आगे चलने पर पोरबन्दर आता है, जो प्राचीन काल मे सुदामापुरी के नाम से सुविख्यात रहा है और अब सुदीर्घ भविष्य तक इसी प्रकार गाधी-तीर्थ माना जायगा, जिस प्रकार टकारा महर्षि दयानन्द-तीर्थ माना जाता है। इसके बाद, सौराष्ट्र की परिक्रमा के लिए, जहाज आग्नेय दिशा में ही बढता जाता है और नवीबदर, माधवपुर, मागरोल, वेरावल, सोमनाथ, पाटण और ड्यू में पहुचता।

ड्यू से सौराष्ट्र का किनारा छोडकर यदि जहाज को सीधा पूर्व मे चलाया जाय तो वह सामने के किनारे पर गुजरात के प्रसिद्ध नगर सूरत में पहुचेगा और आग्नेय दिशा में कुछ मजिल तय करने पर, सोपारा बन्दर या बबई बन्दर पहुच जायगा। लेकिन सौराष्ट्र की परिक्रमा पूरी करने के लिए ड्यू से ईशान दिशा में मुडना होता है। उस दिशा में

जाफरावाद और महुआ वडे वन्दर है। फिर सीधा उत्तर मे चलने पर घोघा वन्दर और वाद मे सौराष्ट्र का वर्तमान प्रख्यात व्यापारी शहर भावनगर आता है। अन्त मे जहा गुजरात और सौराष्ट्र के बीच की खाडी पूरी होती, है वहा भावनगर से विलकुल उत्तर मे जहाज खभात शहर पहुच जाता है। यहा पर सौराष्ट्र का समुद्र-तट समाप्त हो जाता है और सौराष्ट्र भारत के भूखड के साथ एकाकार हो जाता है।

सौराष्ट्र के अनेकानेक वन्दरगाहो मे वेरावल, पोरवन्दर और द्वारका भारत मे अधिक प्रसिद्ध है। द्वारका भारत के चार धामो मे से एक है और वेरावल वन्दर पर सोमनाथ महादेव का तीर्थ हमारे देश के नये-पुराने युगो के उतार-चढाव की साक्षी दे रहा है। एक के वाद एक कई वार इस ज्योतिर्लिंग की प्राण-प्रतिष्ठा की गई और १९५१ मे हमारे राष्ट्रपति राजेंद्रवावू के हाथो फिर से वही अनुष्ठान दुहराया गया। जिस प्रकार दिल्ली वार-वार वनी, वार-वार विगडी और आज फिर समूचे भारत का केंद्र वनी हुई है, उसी प्रकार सोमनाथ का ज्योतिर्धाम सौराष्ट्र या गुजरात के लिए ही नही, पूरे भारतवर्ष के लिए महान धार्मिक केंद्र वन गया है। दिल्ली के आसपास के टीलो पर जिस प्रकार गतयुग की दिल्ली के भग्नावशेष पुरानी स्मृतियो को जागृत करते है, उसी प्रकार वेरावल के समुद्रतट पर टूटे हुए विशाल मन्दिरो के भग्नावशेष पुरानी कला, पुरानी समृद्धि, पुराने सगठन आदि का परिचय दे रहे हैं।

सोमनाथ का नया मन्दिर छोटा है, परन्तु उसके निकट समुद्र की तरगे न जाने कितने युगो से अपना धार्मिक रहस्य और सनातन सदेश सुनाती आ रही है।

व्यापारिक दृष्टि से यह सौराष्ट्र का सौभाग्य है कि उसे एक-से-एक टक्कर लेनेवाले सुन्दर वन्दरगाह मिले है। आधुनिक युग मे उनसे कुछ वन्दरगाहो मे सामुद्रिक व्यापार की अच्छी उन्नति हुई है और वहा पर छोटे-छोटे जहाजो का आवागमन रहता है, परन्तु पोरवन्दर सौराष्ट्र का ऐसा वन्दरगाह है, जहा वडे-वडे महासागरो को पार करने वाले विशाल स्टीमर भी लगरडाल सकते है। महासागर मे चलने वाले देहाती जहाजो के लिए पोरवन्दर मे ऐसी सुविधा है कि वहा की चौडी सुन्दर खाडी मे एक हजार तक देशी ढग की वडी-वडी नावे आश्रय पा सकती है और समुद्र के प्रलयकारी तूफान के समय निश्चिन्त भाव से आत्मरक्षा कर सकती है।

जब अफ्रीका, ईरान, अरबस्तान, पाकिस्तान, मलाबार और चीन व जापान तक के जहाज पोरबन्दर के समुद्र मे लगर डालते है, तब पोरबन्दर की शान्त सुशोभित खाडी मे छोटी-छोटी अनेक किश्तिया दौड-धूप मचाती है। उस समय बीसियो नावो मे इधर-उधर तेजी के साथ बढते हुए हट्टे-कट्टे जवानो को देखकर हृदय आनदित हो उठता है। जिस प्रकार किसानो को हम धरती-माता के पुत्र कहते है, उसी प्रकार इन शूर और साहसी नाविको को समुद्र-सतान कह सकते है। पोरबन्दर के समुद्र-किनारे पर इन समुद्र-सतानो मे बडी स्फूर्ति नजर आती है। ये बहुत उद्योगी, बलवान, विनोदी और चतुर प्रतीत होते है। जब उन समुद्र-सतानो के कुमार और कुमारिकाए, युवक और युवतिया, हिलमिल कर काम पर जुटते है, तब सारा वातावरण प्रसन्नता से भर जाता है। समुद्र जब शान्त तथा सौम्य होता है तब ये लोग उसका भरपूर आनन्द लूटते है और जब समुद्र क्रुद्ध होकर अपने रौद्र स्वरूप को प्रकट करता है तब भी वे अपने काम को पूरी निर्भीकता और स्थिरचित्त मे करते रहते है।

बन्दरगाह की इस चहल-पहल से निकलकर पूर्व की ओर कुछ दूर पर मुक्त समुद्र का सुन्दर पट आता है।

बापूजी के जन्म से कई शताब्दी पहले से पोरबन्दर ने सातो समुद्रो के जहाजो को देखा है। फिरगी लोग जब इस ओर आये उससे भी पहले यहा का व्यापार ईरान, अरबस्तान और अफ्रीका के साथ चलता रहा है। हिन्द महासागर को चीर कर यहा की नौकाए पूर्वी अफ्रीका मे जजीबार और मोम्बासा तक दौड लगाती रही है। अनुभवी लोगो ने बहुत सोच-समझकर इस स्थल पर यह नगर बसाया है। नगर से सटकर कुछ मूल-कोण के आकार मे समुद्र जमीन मे घुस गया है और एक छोटा-सा उपसागर बन गया है। समुद्र-किनारे की इस आकृति का यश उस खाडी को है, जो जमीन के अन्दर धनुषाकार होती हुई डेढ-दो मील तक चली गई है। चौमासे मे जब पानी अधिक भर जाता है तब यह खाडी इतनी अधिक फैलती है कि सौराष्ट्र की भादर नदी तक पहुच जाती है और काफी भीतरी प्रदेश तक किश्तिया जा सकती है।

पोरबन्दर की खाडी मे नावो पर सामान लादने-उतारने के लिए जो अड्डा बनाया गया है, वह लबा-चौडा है। इस चबूतरे पर इन दिनो अनाज की बोरिया, रुई की गाठे, घास की गठरिया, पिड-खजूर के गट्ठे, बारडा डुगर के सफेद पत्थर की बडी-बडी शिलाए, भैस के घी के

कनस्तर, नारियल, नारियल की रस्सी-रस्से के गट्ठर, और किराने आदि सामान के ढेर लगे रहते हैं तथा नाविक लोग उस माल को नाव में चढाने-उतारने मे व्यस्त रहते है।

खाडी के मुहाने के पास, खुले महासागर के सामने, ऊचा और सुन्दर दीपस्तम्भ है, जो अंधेरी रात्रि मे बीच समुद्र मे जानेवाले जहाजो का मार्ग-दर्शन करता है। किनारे से बीस मील की दूरी पर बीच समुद्र मे चलनेवाली नावो को भी इस दीपस्तम्भ का सहारा मिलता है।

इधर समुद्र के इस लघु उपसागर के सहारे पोरबन्दर नगर बसा हुआ है। सफेद पोरबन्दरी पत्थर के पक्के दो-तीन मंजिल ऊचे मकान, ढाई सौ वर्ष से भी अधिक समय मे ज्यो-के-त्यो यहा पर खडे है। पहले यह नगर परकोटे के अन्दर समाया हुआ था अब परकोटा नही है, लेकिन पुराने शहर की टेढी-मेढी और सकीर्ण गलिया बनी हुई है। मूल शहर के बाहर तिगुने विस्तार मे आधुनिक ढग का शहर फैला हुआ है। यहा के व्यापारी बम्बई और सुदूर अफ्रीका तक भी पैसा कमाने के लिए जाते है। उनमे से कुछ लोगो ने यहा बडे-बडे बगले और कोठिया बनाई है। आधुनिक ढग के मकानो की कतारो के बीच प्रशस्त सडके बनी हुई है और उनमे से एक सडक का नाम युगान्डा रोड रखा गया है। इसके अतिरिक्त इस नगर मे सीमेट की बडी मिल, दियासलाई बनाने का कारखाना, तेल की मिल, नकली रेशम बुनने की मिल, आदि अनेक कारखाने है। चूने के पत्थरो का भी दूर-दूर तक व्यापार होता है। नगर के मध्य मे जो अच्छे-अच्छे मन्दिर है, उनमे सुदामाजी का नामी मन्दिर है। वह कलापूर्ण और सुन्दर बना हुआ है। छोटी-मोटी फुलवाडिया भी जगह-जगह लगी हुई है जिनमे नारियल, बादाम, चीकू, सुपारी जैसे फल-वृक्ष है। कुल मिलाकर यह नगर प्राचीन और अर्वाचीन ढग का अच्छा मिश्रण है। एक ओर यहा मन्दिरो की भरमार है तो दूसरी ओर आर्यकन्या गुरुकुल, सस्कृत पाठशाला और अनेक स्कूल, हाई स्कूल व विद्यालय चल रहे है। चित्रकला मे पोरबन्दर की ख्याति विशेष है। भारत के अच्छे-अच्छे चित्रकार यहा पैदा हुए है।

इस प्रकार के विकसित प्रदेश मे महात्मा गाधी ने जन्म लिया।

: २ :

संस्कार-भूमि

मनुष्य के सारे सामाजिक और व्यक्तिगत संस्कार उस जलवायु और भौगोलिक परिस्थिति के अनुरूप बनते है, जिसमें उसका जीवन व्यतीत होता है। जाने या अनजाने हरएक व्यक्ति अपने चारो ओर के वातावरण से प्रभावित हुए बिना नही रहता। जिसमे जितना हृदय-बल, मनोबल और इच्छाशक्ति होती है, उसी मात्रा मे उसका व्यक्तित्व कम या अधिक विकसित होता है, पर उसके विकास की सामग्री उसके चारो ओर सदैव बनी रहती है।

गाधीजी का जो अद्वितीय और अपूर्व व्यक्तित्व चमक उठा, उसकी नीव मे किस प्रकार की सामाजिक भूमिका थी, इसका सही पता लगाना सहज कार्य नही है। लेकिन जिस जगह पर गाधीजी ने जन्म धारण किया, उस स्थल का भौगोलिक वातावरण अपनी कहानी चिरकाल तक कहता रहेगा।

यद्यपि हमारे परिवार के प्रथम महापुरुष श्रीउत्तमचन्द गाधी का मकान पोरबदर मे है, तथापि पता चलता है कि हमारे पूर्वजो का निवास कुतियाणा नामक कस्बे मे था।

सौराष्ट्र की सबसे बडी नदी भादर कुतियाणा की सीमा पर बहती है। उसका पाट चौडा है और पानी थोडा होते हुए भी स्वच्छ इतना है कि उसके तले बिछे हुए छोटे-छोटे गोल पत्थरो का रग साफ दिखाई देता है।

कुतियाणा से दो मजिल दक्षिण में, सौराष्ट्र की अन्तिम सीमा पर, अपने गभीर घोष से आकाश को भर देनेवाला नील सिधु का जल सतप्त मातृभूमि को अहर्निश शीतल करता रहता है। पश्चिम मे ओखा और द्वारका मे लेकर पूर्व मे घोघाबन्दर और भावनगर तक फैले हुए इस महासागर का दक्षिण दिशा मे सामने की ओर हजारो मील तक कही किनारा नही दिखाई पडता। यह महासागर सीधा दक्षिण ध्रुव के प्रदेश तक चला गया है।

सागर के किनारे पूर्व से पश्चिम तक बालू-ही-बालू का जो विशाल पट बिछा हुआ है वह मानव-चित्त पर अपना अनोखा ही प्रभाव

डालता है। उस पट मे विचरने पर न तो समुद्र ही दीखता है और न हरी भूमि के दर्शन होते है। जब सूर्य थोडा-सा ऊचा चढता है तभी से वहा पर मृगजल के विशाल सरोवर लहराते हुए दीख पडते है। इतना ही नही, उन सरोवरो मे ऊची-ऊची वृक्षराशि की परछाही भी स्पष्ट प्रतीत होती है।

भादर के दोनो किनारो पर लहराते हुए शस्य-श्यामल खेत चित्त को सतोष से भर देते है। दिन मे सूर्य के प्रखर ताप से तपते रहने वाले कठोर व्रती छोटे-छोटे गिरिशृग मन को तपस्या की ओर आकर्षित है। बरडा पहाडी की सुहावनी घाटियो मे अपनी दुधारु गाय-भैसो को चराते हुए अहीर, चारण आदि के आलाप वेद-कालीन ऋचाओ का स्मरण दिलाते है, महासागर का गहन-गभीर स्वरूप हृदय को बल प्रदान करता है और उसकी तरग-माला का अखड नृत्य चित्त को ऊर्मिमय बना देता है। सामुद्रिक व्यापार देश-विदेश के साहसिको को आपस के सपर्क मे लाता है और एक-दूसरे की विद्या, कला और सूझ-बूझ का आदान-प्रदान होता रहता है। रेगिस्तान जैसी मृग-मरीचिका का अनुभव जीवन के प्रति सावधान रहने की सूचना करता है।

लेकिन पोरबन्दर के आसपास का छोटा-सा प्रदेश अपने मे चाहे कितना ही भरा-पूरा प्रतीत क्यो न हो, फिर भी यह भूलना न होगा कि हमारे विशाल भारत देश का यह एक अश-मात्र है। भारत के चार प्रसिद्ध धामो मे से पश्चिमी धाम द्वारका का यह प्रदेश है। उस समय द्वारका के लिए राजकोट-जामनगर के रास्ते रेल नही बनी थी, अधिकतर यात्री पोरबन्दर के रास्ते द्वारका जाते थे। पैदल और नाव से यह यात्रा की जाती थी। पैदल मार्ग अधिक चलता था।

पोरबन्दर की भाषा शुद्ध गुजराती है। लेकिन व्यापारियो मे हिन्दू और मुसलमान ऐसे भी है, जो अपने घर मे कच्छी बोली बोलते है। हिन्दी-भाषी प्रदेश की तरह, गुजराती भाषा के प्रदेशो मे भी जिले-जिले की बोली अलग है। यह अन्तर गद्य और पद्य दोनो मे ही प्रकट होता रहा है। गुजरात की तरह सौराष्ट्र की बोली मे भी इतना अन्तर है कि एक जिले वाले दूसरे जिलेवालो को बोली से पहचान सकते है। कुछ क्षत्रिय और समुद्र के किनारे बसने वाली नाविक जातियो की अपनी अलग बोली है, जिसमे देशज शब्दो का बाहुल्य है। पढे-लिखे नगरवासी की समझ मे यह बोली आसानी से नही आती। गाधीयुग से पहले साहित्य-कार और कवियो के बीच गुजराती तथा सौराष्ट्री की परिधिया अलग-

अलग थी और वे अपने-अपने ढग मे अलग-अलग मुहावरो, क्रियापदो और वाक्छटा का विकास करने का आग्रह रखते थे। जब सौराष्ट्र और गुजरात दोनो के मध्य में पडने वाले अहमदाबाद नगर मे गाधीजी ने अपने प्रसिद्ध साप्ताहिक 'नवजीवन' का आरम्भ किया और गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की, तब गुजराती और सौराष्ट्री साहित्यकारो ने कधे-से-कधा मिलाकर गुजराती भाषा का विकास करने के लिए कठिन परिश्रम किया। सौराष्ट्र-गुजराती का भेद-भाव लुप्तप्राय हो गया और दोनो ही के सम्मिश्रण से आजकल की गुजराती का ओज बढ गया। एक-दूसरे का सहयोग साधकर अखड भारत को शक्तिशाली बनाने के लिए भारत भर के भिन्न-भिन्न प्रातो पर गाधीजी ने अपना जो प्रभाव डाला उसी प्रभाव ने गुजरात और सौराष्ट्र को भी विशेष रूप से ओत-प्रोत व सूत्रबद्ध कर दिया। साहित्यिक दृष्टि से कहना होगा कि सस्कृत मे प्राकृत और प्राकृत से अपभ्रश होकर व्रज तथा राजस्थानी की तरह गुर्जरी गिरा का जो विकास हुआ वह गुजरात और सौराष्ट्र मे प्रारम्भ से एक-सा ही रहा। तीन-चार-सौ वर्ष पहले की प्राचीन गुजराती और आजकल की गुजराती मे प्राय ऐसा ही भेद है जैसा व्रज भाषा और अर्वाचीन हिन्दी मे।

पुराने जमाने मे गुजराती कवि भी अपनी रचना व्रजभाषा मे ही करने में गौरव मानते थे। प्राय डेढ-सौ वर्ष पहले समर्थ साहित्यकार भट प्रेमानन्द ने गुजराती मे पद्य-साहित्य की रचना करने का बीडा उठाया, तब से लेकर अबतक गुजरात-सौराष्ट्र मे अर्वाचीन गुजराती साहित्य का सतत विकास होता रहा। अग्रेजो ने जब अपने ढग मे स्कूलो और कालिजो का जाल बिछा दिया तब विद्वानो ने गुजराती को अत्यधिक सस्कृतमय बनाने का प्रयास किया। कुछ विद्वानो ने फारसी शब्दो और मुहावरो की गुजराती मे काफी भरमार की। लेकिन गाधीजी ने गुजराती को 'विद्वद्भोग्य' न बनाकर 'लोकभोग्य' बनाने का आग्रह रखा और सस्कृत की अति पर अकुश लगा दिया। साथ-ही-साथ अरबी-फारसी की अति का मोह भी मिट गया।

कृष्ण-बलराम मथुरा से अपना दलबल लेकर द्वारका पधारे, तबसे यह प्रदेश भारत के हृदयस्वरूप मध्यदेश के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड गया। महाभारत-युग के बाद भी सौराष्ट्र का सबध उत्तर मे आनर्त, लाट, राजस्थान, मालवा, कन्नौज, मगध और दक्षिण मे महाराष्ट्र तथा कर्नाटक के साथ घनिष्ठ रूप से बना रहा। इधर समुद्र-मार्ग से कच्छ और सिध का भी इतना घनिष्ठ सबध रहा कि सौराष्ट्र की बोली और

उच्चारण पर भी वहा का काफी प्रभाव पडा । वरडा-प्रदेश का सबध आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्र मे सदैव सपूर्ण भरतखड मे जुडा हुआ रहा तथा भारत-भर के महापुरुषो, सतो और शूरो ने अपना-अपना प्रभाव यहा पर डाला ।

महाभारत की कथाओ से ज्ञात होता है कि द्वारका से लेकर प्रभास-पाटण (सोमनाथ) और रैवत्तक पर्वत (गिरनार) तक, अर्थात् पोर-बन्दर के केंद्र से मीलो की दूरी तक, यादव-समाज वसा हुआ था। जिस भूमि को यादवो ने इतना अधिक समृद्धशाली बनाया, उसी को उन्होने अति विलास और आपसी कलह के कारण ध्वस्त भी कर डाला । कदाचित् इसी अभिशाप के कारण अभी पिछले दिनो तक सौराष्ट्र का यह छोटा-सा प्रायद्वीप प्राय ढाई सौ रियासतो में छिन्न-विच्छिन्न रहा ।

यादवो ने जिस प्रकार सूने प्रदेश को आबाद किया उसी प्रकार सुदामा सरीखे विद्वान, त्यागी और तपस्वी ऋषियो ने और सतो ने यहा पर ऊचे चारित्र्य और सतोषमय जीवन की नीव जमाई । अति प्राचीन काल की बात छोडकर निकट के भूतकाल को देखने पर भी ज्ञात होता है कि सतो का आशीर्वाद यहा के समाज को बराबर मिलता रहा है । जूनागढ के निवासी परमभक्त नरसिंह मेहता ने हरिजनो के आगनो मे भी भजन गाकर जनता को 'वैष्णव जन' की महिमा समझाई । उनके पद सैकडो वर्षो से अनपढ लोग भी सौराष्ट्र के गाव-गाव और झोपडी-झोपडी मे नित्य ब्राह्म मुहूर्त्त मे गाते रहे हैं । नरसिंह मेहता ने गुजरात के आदि-कवि का विरुद पाया है । उधर द्वारका मे मीराबाई के प्रेम-भक्ति के गीतो की ध्वनि सारे वातावरण मे गूज उठी, जो अभी तक लोकहृदय को भावना से विभोर करती रहती है ।

सोमनाथ के ज्योतिर्लिंग के उपासक ब्राह्मणो की सस्कारिता ने यहा की जनता को प्रभावित किया । अशोक के प्रतिनिधि और राष्ट्रकूटो के वश का राज्य जब सौराष्ट्र मे स्थापित हुआ तब बौद्ध भिक्षुओ ने करुणा-मय और सयममय जीवन बिताने का सदेश यहा पहुचाया । बाद मे जैन दर्शन के उपासक अर्हतो, श्रमणो और श्रावको ने पगपग पर अहिंसा और जीव-दया का पाठ यहा के लोगो की नस-नस में भर देने का सतत और सगठित प्रयत्न चालू रखा । साथ ही उनकी प्रेरणा से धनीमानी श्रेष्ठियो (सेठो) ने आबू, गिरनार और शेत्रुजा के पर्वत-शिखरो पर भव्य और कलामय मन्दिरो का निर्माण किया । साधारण नागरिको के हृदय मे जैनधर्म के प्रसारको ने दान और त्याग और जितना

बन पडे उतना कठोर जीवन बिताने की महिमा बढाई। दूसरी ओर, केरल प्रात से आकर श्रीवल्लभाचार्य ने, वैष्णव सम्प्रदाय के मन्दिरो की ओर से आकर स्वामी सहजानन्द ने, स्वामीनारायण सम्प्रदाय के मन्दिरो की गाव-गाव मे स्थापना की। इन दोनो वैष्णवाचार्यो ने श्रमजीवी तथा वेदाध्ययन के लिए अनधिकारी माने जानेवाले शूद्रो, वैश्यो और स्त्रियो को भी राम-कृष्ण की भक्ति, सत्सग और सदाचार की ओर प्रवृत्त करने के लिए कठोर परिश्रम किया। इन सतो ने तपोमय जीवन की सुगध फैलाने के साथ-साथ लौकिक भाषा और लौकिक छदो मे, सुन्दर, सुमधुर और ज्ञान-वैराग्यपूर्ण गीतो का ऐसा प्रवाह बहाया कि अनपढ स्त्री-पुरुषो के कठ में भी उन पदो ने स्थान पा लिया और ऊचे तत्त्वज्ञान एव साधनामय जीवन का आदर्श लोगो के मस्तिष्क मे घर कर गया।

अन्य अनेक कवियो, साहित्यकारो, विद्वानो और ऋषि दयानन्द जैसे विचार-प्रवर्तको ने इस प्रदेश के समाज की बुद्धि को जगाने और सामाजिक जीवन को सुसस्कारी और उन्नतिशील बनाने की परम्परा चालू रखी।

इसके अतिरिक्त मुसलमानो ने अपने पैगम्बर, खलीफा और सूफियो के धार्मिक विचार और सद्व्यवहार का सदेश यहा के लोगो तक पहुचाया। पारसियो की सुजनता का भी यहा के समाज पर अच्छा प्रभाव पडा और फिरगी (पुर्तगाली) तथा अग्रेज जातियो के ससर्ग से भी यहा के समाज मे चेतना आई।

फिर यहा सैकडो वर्षो तक छोटे-छोटे राज्यो और रजवाडो का एक अनोखा सग्रहालय-सा बना रहा, इसलिए गहरी कूटनीतिज्ञता और उत्तम शूर-वीरता की परम्परा भी यहा के समाज मे पनपती रही।

: ३ :

जहां गांधीजी ने जन्म लिया

पृथ्वी के नक्शे मे सुदामापुरी, अर्थात् पोरबन्दर की स्थिति भूमध्यरेखा के उत्तर मे २१ ४५ अक्षाश पर और ग्रीनविच से पूर्व मे ६९ ३२ रेखाश पर है। पश्चिम सागर की दिन-रात गरजती हुई उत्तुग तरगें जहा भूमि

को अन्तिम बार प्रणाम करके लौट जाती है, वहा से कुछ उत्तर मे समुद्र-तट का सौ-सवा-सौ गज का पट छोडकर, एक नीचा बाध बधा हुआ है। उस बाध के ऊपर एक चौडी पक्की सडक है। इस सडक के दूसरी ओर शहर के पक्के मकान है। इन्ही मकानो के बीच, समुद्र के किनारे से प्राय पाव मील की दूरी पर महात्मा गाधी के प्रपितामह श्रीहरजीवन गाधी द्वारा खरीदा हुआ मकान बरसो से खडा है।

उस मकान की खरीद का दस्तावेज आज भी उपलब्ध है। यद्यपि उसमे कही-कही जन्तुओ ने सूराख कर दिए है, तथापि हाथ के बने कागज पर लिखा गया वह दस्तावेज अब भी सुपाठ्य है और उसकी स्याही तनिक भी फीकी नही पडी है। लेख गुजराती भाषा मे है, परन्तु वह गुजराती आजकल की गुजराती मे कुछ भिन्न है। उसकी वाक्यरचना, क्रियापद आदि आधुनिक गुजराती से मिलते-जुलते है, परन्तु कुछ शब्द पुराने जमाने के है। लिपि देवनागरी है। उस गुजराती दस्तावेज का हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है

गांधी हरजीवन रहीदास

ज्येष्ठ सुद पचम, सवत् १८३३ (अर्थात् ईस्वी सन् १८७७)

उक्त तिथि पर पोरबन्दर मे महाराणा श्रीसरतानजी पचचक्र के प्रवर्तमान होने के समय यह विक्रय-पत्र लिखा गया है। घर १, जिसमे कमरा १ और ओसारा १ जिसमें १ 'मेडा' (सामान रखने के लिए बनाई गई आधी छत) है तथा जिसकी खपरैल काठीवाण पत्थर और टोले पत्थर की बनी है, वह घर मेहता गागजी की श्री बाई मानबाई ने पूर्ण रूप से बेचा है और उस घर को गाधी हरजीवन रहीदास ने पूर्णरूप से खरीदकर मोल लिया है। उस घर को कराबकोरी[1] ५०० अक्षर मे पाच सौ देकर पूरी तरह खरीद कर मोल लिया गया है। इस घर की दिशाओ की तफसील लिखी जाती है कि पूर्व दिशा मे पिछवाडा है, उसके पीछे, एक अहाता है, अहाते मे दरवाजा है। वह अहाता इस मकान का है, उसके पीछे गढ है। दक्षिण दिशा मे जो दीवार है, वहा श्रीजी का घर है और वह दीवार मजमू (साझे की) है। पश्चिम मे दरवाजा है और दरवाजे के आगे एक फाटक है, जिसका सामना दक्षिण मे पडता है। उस फाटक के अन्दर एक पीपल का पेड है। उसके उत्तर मे एक दूसरी

---

१ सौराष्ट्र में पुराने जमाने में रुपये के स्थान पर कोरी चलती थी, जो चादी की होती थी और रुपये की चार मानी जाती थी।

दीवार है, जिससे मिला हुआ गाधी करसनदास रहीदास का मकान है। ऐसा मकान मोढ ब्राह्मण गागजी कला की घर वाली श्रीवाई मानवाई ने पूरा-पूरा वेचा है और गाधी हरजीवन रहीदास ने खरीदकर मोल लिया है, उसे पुत्र-पौत्रादिक भोगते रहे।"

इसके नीचे बिक्री करने वाली मानवाई के दस्तखत वडे स्पष्ट अक्षरो मे है, परन्तु राणा साहव ने केवल स्वस्तिक चिह्न वना दिया है, क्योकि वह लिखना-पढना नही जानते थे। स्वस्तिक के अलावा उनके नाम की मोहर लगी हुई है। दस्तावेज पर गवाह के रूप मे दूसरे सात व्यक्तियो के दस्तखत है, जिनके नामो मे पता चलता है कि भिन्न-भिन्न पूर्ण वर्ण के नागरिको से उन दिनो गवाही ली जाती थी। गवाहो के नाम ये है— १ अध्वर्यु रामजी भीमजी, २ परीख काशीदासजी, ३ ठक्कर त्रिकमजी नानजी, ४ शेगकरण हीरजी, ५ कडवा धरमदास, ६ ओधवजी नानजी, ७ गागजी भीमजी।

गाधीजी के इस पुश्तैनी मकान के चारो ओर पोरवन्दर के पुराने शहर की घनी वस्ती फैली है। पुराने वाजार भी इसी जगह पर केन्द्रित है। नगर के चारो ओर आजकल कही परकोटा नजर नही आता, पर पुराने समय मे था। खुला समुद्र जहा खाडी मे प्रवेश करता है, वहा पर एक घाट वना है, जिसे अस्मावती घाट कहते है। घाट से आगे चलने पर माल को चढाने-उतारने के लिए जो पुश्ता वना है उसे माडवी कहते है। माडवी से लेकर प्राय चौथाई मील तक एक सकरी गली मे पुराना वाजार लगा हुआ है, जहा पर अधेरी दुकानो मे काफी व्यापार चलता रहता है। जहा पर माडवी का यह वाजार पूरा होता है, वहा एक छोटा-सा खुला चौक है, जिसे माणिक चौक कहते है। इस चौक की चारो दिशाओ मे सुन्दर दरवाजो से आगे फिर नए-पुराने ढग के वाजार लगे हुए है। माडवी वाजार से जो रास्ता माणिक चौक में आता है, उसके वाई ओर के दरवाजे मे प्रवेश करने पर वाए हाथ पर पहला मकान श्रीनाथजी की हवेली है और उस हवेली के पीछे हमारा उपर्युक्त पुराना मकान है, जिसका मुहाना अव आगे वढाकर 'कीर्त्ति-मन्दिर' वनाया गया है और जिसका प्रवेश-द्वार श्रीनाथजी की हवेली की सीध मे मिला दिया गया है।

सन् १९४७ मे पूज्य वापूजी की उपस्थिति में ही उनकी स्वीकृति पाकर पोरवन्दर के वडे व्यापारी श्री नानजी सेठ और महाराणा ने मिल कर इस पुराने मकान के वाहर और अन्दर वहुत रद्दोवदल कर दी।

विश्वयात्री जब ये स्थल देखने आते थे तब उन्हे बहुत छोटे-से खाचे में से गुजरकर एक दालान मे जाना पडता था, जहा हवा-प्रकाश की इतनी कमी थी कि भरी दोपहरी मे भी बापूजी के जन्मस्थल वाले कमरे को टार्च की रोशनी के सहारे देखना पडता था। दर्शकों के आवागमन की सुविधा के लिए तथा महात्माजी के स्मृति-चिह्न कीर्त्ति-मन्दिर की स्थापना के लिए पुराने मकान का भी कुछ हिस्सा गिरा देना पडा और श्रीनाथजी के मन्दिर तथा अन्य निजी मकानो का भी कुछ हिस्सा लेकर आवश्यक स्थान बनाना पडा। कीर्त्ति-मन्दिर के बनने मे पहले उक्त मकान एक सदूक जैसा बना हुआ था। मुश्किल से दस-बारह हाथ के चौकोर दालान के तीन ओर उस मकान को तिमजिला उठाया गया था और प्रवेश-द्वार की दीवार भी ऊचे तक चिन दी गई थी।

तीनो मजिलो को अब रगवा-पुतवाकर और प्रकाश के लिए कही-कही नई खिडकिया लगवाकर नया-सा बना दिया गया है, किन्तु उसका पुराना ढाचा ज्यो-का-त्यो रखा गया है। उसके अन्दर कमरे का क्षेत्रफल कम है, परन्तु प्रत्येक कमरा बहुत पक्का बना है। श्रीउत्तमचन्द गाधी के सात पुत्र और अनेक पौत्रो के परिवार इसमे अलग-अलग रहते थे और अपनी-अपनी रसोई बना लेते थे। साथ ही सम्मिलित परिवार का आनन्द भी पा लेते थे। एक कमरे से दूसरे कमरे मे जाने के लिए बने हुए दरवाजे भी इतने मजबूत है कि उन्हे बन्द करने पर कमरे सुरक्षित सदूकनुमा बन जाते थे। खिडकी-दरवाजे बन्द करने पर भी रोशनदान से उनमे धीमा प्रकाश और आवश्यक हवा आ सके, इसकी सुविधा रखी गई थी। इस युग मे यह मकान बिलकुल साधारण और छोटा-सा माना जायगा, पर श्रीउत्तमचन्द गाधी के जमाने मे वह बडी सुविधा का माना जाता था। ज्यो-ज्यो परिवार बढता गया त्यो-त्यो मकान मे वृद्धि होती गई और खपरैल हटाकर एक के ऊपर दूसरी मजिले तैयार की गई।

सन् '४७ मे जब बापूजी नई दिल्ली मे वाल्मीकि मन्दिर मे ठहरे हुए थे और अग्रेजी राज्य को विदा करने के काम मे व्यस्त थे, तब पोरबन्दर-निवासी गाधी-परिवार के दो युवक उन्हे प्रणाम करने दिल्ली पहुचे थे। उस समय हमारे पुरखो के मकान मे रहने वाले एक परिवार से कीर्त्ति-मन्दिर के निर्माण के लिए मकान खाली कराने की बात चल रही थी। उस चर्चा के समय बापूजी ने अपनी स्मृति को ताजा करते हुए कहा था, "वह मकान भूला नही जा सकता। तिमजिले पर जाकर बैठे तो समुद्र की शीतल वायु बराबर चलती रहती है। परन्तु जब बिल्कुल नीचे

के तलेवाले कमरे मे जाते है, तो पाच मिनट के लिए भी बैठना कठिन हो जाता है। इतना अधिक वह गरम और बन्द-सा है।"

बापूजी ने नीचे की जिस मंजिल को इतना गरम और बन्द बताया, उसी के एक प्रकाशहीन और बन्द-से कमरे में उनका जन्म हुआ था और माता पुतलीबाई ने उसी कमरे मे अपना जीवन बिताया था। उस कमरे की लम्बाई २० फुट, चौडाई १३ फुट और ऊचाई ११ फुट है। कमरे के दरवाजे मे जाने पर दाए कोने में एक दूसरे कमरे का दरवाजा पडता है। यह अन्दरवाला कमरा बापूजी के पिताजी श्री करमचन्द गाधी की माता-तुलसीमा के रहने का १२×१२॥ फुट के नाप का है और पहले काफी अधेरा था। इस अन्दरूनी कमरे के दरवाजे और बाहर वाले दरवाजे के मध्य मे जो तेरह फुट की जगह है, उसके बीच मे गुजराती ढग का झूला टगा रहता था, जो प्रसूति की खाट बिछाने के लिए हटा दिया जाता था। प्रवेशद्वार के बाई ओर उसी छोटे कमरे मे पानी रखने की गुजराती ढग की ऊची 'पल्हेंडी' बनी हुई थी। उससे सटकर अनाज रखने की मिट्टी की सुडौल कोठिया और बडे-बडे मटको की खूबसूरत कतार लगी रहती थी। कोठी और मटके की उस कतार के ऊपर पीतल और तावे के बर्तन सजाकर रखे जाते। परहेंडी के बाई ओर ६॥×५॥ फुट का एक छोटा रसोईघर है, जिसमे दो व्यक्ति भी एक साथ कठिनाई से बैठ सकते है।

बापू के जन्मवाले कमरे के बाहर जो बरामदा बना हुआ है, वह असाधारण है। उसके नीचे पानी का एक विशाल हौज है, जिस पर तीन-चार मेहराब बाधकर वह ओसरी बनाई गई है और उसी पर फिर तिमंजिला मकान खडा किया गया है। हौज की गहराई १५ फुट और लम्बाई-चौडाई २०×१० फुट है, जिसमे प्राय बीस हजार गैलन पानी समाता है। चूकि पोरबन्दर समुद्र के बिल्कुल किनारे पर बसा हुआ है, अत पीने के लिए मीठा पानी मिलना भी कठिन हो जाता है। कुआ खोदने पर अवश्य अच्छा बेनमकीन जल मिल जाता है। परन्तु वह स्वादहीन और फीका होता है। पोरबन्दर के बुद्धिमान नागरिको ने यत्रयुग से पहले ही हौज बनाकर वर्षा-जल का सग्रह करने की सुन्दर व्यवस्था नगर के अनेक मकानो मे की है। चौमासे के आरम्भ मे सबसे ऊपरवाली पक्के पत्थर की छत के फर्श को धो दिया जाता है और जिस नाली मे पानी हौज मे जाता है, उस के मुह के पास चूने की ढेरी लगा दी जाती है। इतनी-सी सार-सम्हाल से यह हौज करीब दो सौ वर्ष से काम दे रहा है। इसमे इकट्ठा होने वाला

जल पूरे वर्ष तक पीने के लिए पर्याप्त होता है। घरवाले ही नही, अन्य नागरिक भी वडे घर की टकी का जल एक-एक घडा नित्य ले जाते है, क्योकि ऐसे पानी के बिना पोरबन्दर मे अरहर की दाल नही पक सकती और अरहर की दाल और भात के बिना शाम की व्यालू से पोरबन्दर वालो को सतोष नही होता।

इस ऊची ओसरी के नीचे जो दालान है, उसीमें गाधीजी का लग्न-मडप रचा गया था और यही से चलकर बरात घूमती-फिरती इस मकान के पीछे सात-आठ मकान छोडकर कस्तूरबा के पिता के घर पहुची थी। इस छोटे से दालान के पूर्व की ओर, अर्थात् बापूजी के जन्म के कमरे के ठीक सामने मेरे दादाजी का हिस्सा उस मकान मे था। इससे पता चलता है कि मेरे पितामह श्रीखुशालचन्द गाधी की उनके साथ वडी घनिष्ठता थी। आगे चलकर श्रीखुशालचन्द गाधी के पुत्र और मेरे काका मगनलाल गाधी हमारे परिवार भर में बापू के मार्ग का अधिक-से-अधिक अनुसरण करनेवाले सिद्ध हुए।

इस मकान मे दो-तीन ऐसे दर्शनीय स्थान थे जो अब नया कीर्त्ति-मन्दिर बनने पर लुप्त हो गए है। बापूजी के प्रपितामह श्रीउत्तमचन्द गाधी—ओताबापा—ने जब राजमाता की हुकूमत के समय राजमाता के सामने सत्याग्रह किया था, तब मकान पर राजमाता की आज्ञा से तोप चलवाई गई थी, जिससे दीवार मे छेद पड गए थे। यद्यपि बाद मे उन छेदो को बन्द कर दिया गया था तथापि गोले के निशान रह गए। गोले की मार से दीवार का ऊपरी हिस्सा गिर गया था। दीवार बडी मोटी होने की वजह से ज्यादा नुकसान तो नही हुआ, फिर भी वहा पर दीवार मे कमजोरी आ गई थी। अब सारी-की-सारी नई चिनकर अधिक मजबूत बना दी गई है।

दूसरा दर्शनीय स्थान ऊपर की मजिल की एक छोटी-सी कोठरी थी, जिसमे पर्याप्त हवा और उजाला था। उस कोठरी मे पुराने ढग के कुछ भित्ति-चित्र थे। इतने बरसो के बाद देखने पर भी मुझे उसके फूल और पक्षियो के चित्रो का रग चमकता हुआ दिखाई दिया। इन सुन्दर दीवारो मे जहा पुराना पलस्तर टूट जाने के कारण आजकल के कारीगरो ने मरम्मत की है और चूना पोता है, वह बिलकुल अलग दिखाई पडता है। बापा की पूजा के लिए यह अलग से बनाई गई होगी।

तीसरा लुप्त स्थल, गाधीजी का कमरा कहा जाता था। जन्म-स्थान वाले कमरे से सटकर एक ओर दुमजिला मकान था, जो कीर्त्ति-मन्दिर की रचना के समय गिरा दिया गया। इस दुमजिले पर बापूजी गृहस्थाश्रम-

प्रवेश के वाद कुछ ही समय रह पाये थे, परन्तु वह कहा जाता था वापूजी का हिस्सा।

इस मकान की वनावट इतनी पक्की और मजवूत है कि अव भी सैकडो वर्षो तक वह ज्यो-का-त्यो टिक सकता है। प्रत्येक मजिल की छते नीची है और उसकी कडिया वहुत मोटी और पक्की लकडी के लट्ठो की वनी है। लकडियो मे अभी तक कही भी कच्चापन नही आया है। इसमे एक जगह पत्थर की सुन्दर नक्काशी वाली दो-एक जालिया थी और कई जगह लकडी की नक्काशीवाली सुन्दर खिडकिया थी। लेकिन अव उस पुराने मकान का दृश्य नए कीर्त्ति-मन्दिर[1] के सामने दव गया है।

: ४ :

गांधीजी के पूर्वज

कुतियाणा मे गाधी-परिवार की कुलदेवी का छोटा-सा, प्राय घुटनो के वरावर ऊचा मन्दिर है। इस मन्दिर का अहाता वहुत छोटा है। हमारे परिवार में यह रिवाज था कि नव-विवाहित वर-वधू को हमारी कुल-देवी 'सती-मा के पास आशीर्वाद लेने के लिए कुतियाणा जाना पडता था। इस परिपाटी से एक वडा लाभ यह होता था कि देश-विदेशो मे विखरे हुए परिवार के सदस्यो को अपने मूल-स्थान के वारे मे वहुत-सी भौगोलिक और सामाजिक जानकारी मिल जाया करती थी।

गुजराती मे पसारी को गाधी कहते है। गुजरात-सौराष्ट्र में जिस

---

१ वापू की स्मृति में कीर्त्ति मन्दिर की स्थापना की गई है। इस कीर्ति-मदिर के वीच में सगमरमर का एक चौडा सुन्दर चौक है। उसके चारो ओर २६ खम्भो पर वापूजी के सदुपदेश के सुवाक्य खुदे हुए है, कलापूर्ण शिखर वाले गर्भागार में पूज्य वापू और वा के आदमकद फोटो लगे है और दोनो ओर के कमरो में वापू के रचनात्मक कार्य का कुछ-न-कुछ काम प्रदर्शित किया गया है। कीर्ति-मन्दिर के सचालको का प्रयत्न है कि यहा पर आनेवाले यात्री वापू के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित समाज-व्यवस्था की कुछ-न-कुछ जानकारी लेकर ही लौटें।

किसी के यहा जडी-बूटिया, नमक-मसाले, हल्दी-फिटकरी, आदि वस्तुए बिकती है, वह गाधी कहलाता है, चाहे वह हिंदू हो, जैन हो, पारसी हो, मुसलमान हो, या कोई और। हमारे किसी पूर्वज ने बीसियो पुश्त पहले कही पसारी की बढिया दूकान चलाई होगी। इस कारण वह और उनके सब वशज 'गाधी' के नाम मे विख्यात हो गए होगे। हमारे पूर्वजो मे सबसे पहले श्रीलालजी गाधी का नाम उपलब्ध होता है। श्री लालजी गाधी की पाचवी पीढी मे श्रीउत्तमचन्द गाधी का जन्म हुआ और सातवी पीढी में पैदा हुए हमारे बापूजी राष्ट्रपिता महात्मागाधी।

वैसे गाधी-परिवार वैश्यो की उस उपजाति मे है, जो मोढवणिक की जाति कहलाती है। उत्तर गुजरात मे अणहिलपुर-पाटण और सिद्धपुर पाटण के बीच मे मोढेरा नाम का एक गाव पडता है। वहा पर मोढेरा देवी का एक सुन्दर कलापूर्ण मन्दिर है। उसी केन्द्र से मोढ लोगो ने अपनी अलग परिधि कायम की होगी। मोढेरा से चलकर ये मोढ वनिए कर्णावती (अहमदाबाद), स्तम्भ-तीर्थ (खभात) और वहा से सौराष्ट्र के घोघाबदर मे जा बसे होगे।

गुजरात के इतिहास मे सुप्रसिद्ध जैन-धर्माचार्य श्रीहेमचन्द्र सूरि का जन्म एक मोढ बनिए के घर हुआ था। किसी जैन यति ने बालक हेमचन्द्र की विलक्षण बुद्धि को पहचाना और उसके माता-पिता को समझा-बुझा कर उस बालक को प्राप्त कर लिया। फिर उसे दीक्षा देकर परम विद्वान बनाया। भारत-भर के प्रथम श्रेणी के प्राचीन विद्वानो मे और ऊचे चरित्र वाले समस्त सतो मे श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य की गणना की जाती है। उनकी जीवनी को जब हम पढते है और उनके अलौकिक व्यक्तित्व का अध्ययन करते है तब चित्त को विशिष्ट प्रकार की सात्विक प्रसन्नता मिलती है और मन मे सत्सकल्पो की वृद्धि होती है। ऐसे महापुरुष के एक हजार वर्ष बाद, उनसे भी बढकर प्रभावशाली और सत-हृदय महात्मा गाधी-जैसे नररत्न का वैश्यो की इसी मोढ-वणिक उपजाति मे सौराष्ट्र के ही एक दूसरे बन्दरगाह मे जन्म हुआ। यदि इस घटना को केवल आकस्मिक न मान लिया जाय तो इसमे सास्कारिक परम्परा की झलक मिल सकती है।

इन दोनो महात्माओ के जीवन और स्वभाव मे कई लक्षण मिलते-जुलते है। जनता के उत्थान के लिए दिन-रात सजग रहना और अथक परिश्रम करना, अपने अनुयायियो का जीवन सादा और सयमी बनाने का आग्रह रखना, मोटे और कम-से-कम वस्त्रो से गुजर करने का व्रत पालना, राजनीति पर अधर्म का रग चढने से रोकना, इत्यादि कई बाते

दोनो मे एक-सी है। जैसे आधुनिक गुजराती साहित्य के निर्माण मे गाधीजी का बहुत बडा हाथ है वैसे ही प्राचीन गुजराती साहित्य के निर्माण में श्री हेमचन्द्र सूरि का हाथ माना जाता है। गुजराती का सर्वप्रथम व्याकरण हेमचन्द्राचार्य का ही लिखा हुआ है।

गुजरात-सौराष्ट्र के बनियो मे से कुछ लोगो ने व्यापार-वाणिज्य का काम किया तो कुछ ने राजसेवा का। राज-सेवको को राजाज्ञा के अनुसार राज्य के भिन्न-भिन्न कस्बो और परगनो मे अपनी नौकरी के कारण जाना पडता होगा। श्रीलालजी गाधी को अथवा उनके किसी वशज को जूनागढ के अधीन कुतियाणा ग्राम में नौकरी मिली होगी। बाद मे वह भादर नदी का हरा-भरा किनारा और शात एव सुन्दर स्थान कुतियाणा देखकर वही बस गए होगे।

परिवार का इतिहास देखने पर पता चलता है कि सौराष्ट्र की रियासतो मे चलने वाले राजकीय सघर्षो मे हमारे पूर्वज भी उलझे हुए रहते थे। एक ही रियासत मे शायद ही किसी की नौकरी लगातार बनी रहती हो। यदि पिता के बाद पुत्र को वह नौकरी मिलती थी तो वह पुत्र के अपने ही बूते मे मिलती थी। केवल पिता की विरासत होने की वजह से पुत्र ने किसी रियासत मे अमात्य की जैसी ऊची नौकरी पाई हो, ऐसा उदाहरण कम है। न्याय-निष्ठा, उदारता और प्रेमभरे बर्ताव के कारण जो लोकप्रिय बन सकता हो, ऐसे ही व्यक्तियो को चुनकर राजा लोग अपने अमात्य-पद—दीवानगिरी—पर नियुक्त करते थे। वह अमात्य फिर अपने ही भाई-भतीजो और विश्वासपात्र मित्रो को राज्य की नौकरी मे रखवाने का प्रयत्न करता था। जब राजा के पास किसी दूसरी जाति या खान्दान का वसीला बढता था तब पहले वाला प्राय सारा-का-सारा परिवार राज्य की नौकरी से अलग हो जाता था और उस परिवार के प्राय सभी लोग व्यर्थ की खीचा-तानी या सघर्ष छोड कर शातिपूर्वक, यथाशक्ति व्यापार-रोजगार करके अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

इसी प्रकार से हमारे पूर्वज श्रीलालजी गाधी से लेकर, या उनसे भी पहले से, गाधी-परिवार के लोगो को समय-समय पर सौराष्ट्र की रियासतो में बराबर नौकरिया मिलती रही और छूटती भी रही। राज्य की नौकरी के लिए मारे-मारे फिरने की उनमे आदत नही थी। मालिक की नाराजी या उसके विश्वास में कुछ कमी देखकर वे लोग बिना हिचकिचाहट के अपनी नौकरी से त्याग-पत्र दे देते थे और जब नौकरी के लिए राज्य की ओर से बुलावा आता था तभी वे प्रामाणिकता और निष्ठा से राजसेवा

करने के लिए तत्पर हो जाते थे। कुतियाणा जूनागढ रियासत मे होते हुए भी पोरबन्दर के बिलकुल पास बसा है। इसलिए गाधी-वश के अधिकतर युवको को ही नौकरिया मिलती रही और राज्य का विलीनी-करण होने तक श्रीलालजी गाधी के वशज पोरबन्दर में राज्य की नौकरी मे रहे।

श्रीलालजी गाधी के पुत्र श्रीरामजी गाधी पोरबन्दर राज्य में "दफ्तरी' (दफ्तर के अधिकारी) थे। आजकल मन्त्रिमडल मे गृहमन्त्री का जो उत्तरदायित्व होता है, प्राय वही उत्तरदायित्व उन दिनो दफ्तरी का होता था।

जूनागढ के नवाब की ओर से कुतियाणा ग्राम मे उनको थोडी-सी इनामी जमीन मिली थी। सच पूछे तो गाधी-परिवार की पुश्तैनी जायदाद केवल जमीन का यह दो एकड से भी छोटा टुकडा है। हमारे पूर्वज कभी जमीन-जायदाद या बाग-बगीचे वाले रहे हो, ऐसा उल्लेख नही मिलता। वे सदा निम्न मध्यम श्रेणी के ही थे।

श्रीरहीदास गाधी के दो पुत्र थे—श्रीहरजीवन गाधी और श्रीदमन गाधी। श्रीहरजीवन गाधी के पुत्र हुए श्रीउत्तमचन्द गाधी। श्रीहरजीवन गाधी भी पोरबन्दर मे 'दफ्तरी' थे और बाद मे उनके छोटे भाई दमन गाधी भी उसी पद पर रहे।

गाधीजी के प्रपितामह श्री हरजीवन गाधी की निर्भीकता की एक दतकथा सुनी गई है। उससे पता चलता है कि हरजीवन बापा डर कर दब जाने वाले व्यक्ति नही थे।

जब उनके छोटे भाई दमन गाधी पोरबन्दर राज्य के दफ्तरी नियुक्त हुए तब वह छुट-पुट व्यापार किया करते थे। कहा जाता है कि एक बार जब हरजीवन बापा देहाती नाव मे कच्छ से पोरबन्दर लौट रहे थे, अरब वालो के दो-एक जहाजो ने उसे घेर लिया। यह एक नियमित समुद्री डकैती थी या कुछ और, इसका ठीक पता नही चलता। उन अरब जहाज वालो ने हरजीवन बापा के जहाज को अपने साथ ले चलने की चेष्टा की। उस जमाने मे इक्के-दुक्के चलने वाले जहाज को पकड कर उनका माल लूट लिया जाता था और उनके यात्रियो को गुलाम बना कर दूर देशो मे ले जा कर बेच दिया जाता था। हरजीवन बापा की नाव को घेर कर उन पर सख्ती की गई तो उन्होने लुटेरो के साथ जाने से साफ इकार कर दिया। कायर बनकर उनके साथ जाने के बजाय वह उसी जगह मरने के लिए तैयार हो गए। खाना-पीना छोड दिया और जमकर अपनी जगह पर बैठ

गए। स्वेच्छा से उठकर चलना उन्होंने बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। शायद विरोधी दल के पास इतने साधन नहीं थे कि हरजीवन बापा की नाव को बलपूर्वक बाध कर ले जाते। डरा-धमका कर वे उस नाव को ले जाने की कोशिश में लगे रहे। उनका ख्याल था कि ये बनिए लोग डरकर उनके वश में हो जायगे। कहा जाता है कि किसी दूसरी नाव के नाविकों ने उस घटना का समाचार पोरबन्दर के बन्दरगाह में पहुचाया। पोरबन्दर के राणा साहब को इस बात का पता चला तो उन्होंने राज्य के बलिष्ठ नाविकों को भेजकर हरजीवन बापा को उस विपत्ति से छुड़ाया।

श्रीहरजीवन गाधी और श्रीदमन गाधी दोनों भाइयों के बीच एक ही पुत्र श्रीउत्तमचन्द गाधी थे। दोनों भाइयों का पोरबन्दर में स्थायी निवास था और वही उन्होंने पत्थर का वह पक्का मकान खरीदा, जिसका उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

श्रीउत्तमचन्द गाधी की प्रगति और विकास में उनके चाचा श्री-दमन गाधी बहुत सहायक रहे। जब श्रीदमन गाधी पोरबन्दर राज्य के 'दफ्तरी' का उत्तरदायी पद सम्हाल रहे थे तब उनके साथ काम करके युवक उत्तमचन्द प्रगति के पथ पर बहुत आगे बढ गए।

: ५ :

पराक्रमी पितामह

श्रीउत्तमचन्द गाधी (उर्फ ओता गाधी) ने विद्याभ्यास कितना किया, कहा किया इसकी कोई जानकारी नहीं मिलती। परन्तु अपनी प्रारम्भिक पढाई पूरी करने के बाद जब श्रीउत्तमचन्द गाधी ने कुमारावस्था में पदार्पण किया और किसी रोजगार में लग जाने की समस्या उनके सामने आई, तब उन्होंने अपने पिता और चाचा के मार्ग से भिन्न एक नये मार्ग का अनुकरण किया। पिताजी व्यापार का काम करते थे। उसमें शायद श्रीउत्तमचन्द गाधी को दिलचस्पी नहीं थी। उधर, उनके चाचाजी, जो राज्य की नौकरी करते थे और दफ्तरी का उत्तरदायी पद सभाले हुए थे, राणा साहब से कहकर अपने भतीजे को राज्य में सीधी नौकरी नहीं दिला सके। शायद ऐसी माग करना उनके चाचा (श्रीदमन

गाधी) को अनुचित प्रतीत हुआ होगा। इसलिए उन्होने युवक उत्तमचन्द को एक स्वतन्त्र काम दिलवाया। वह काम था पोरबन्दर के बन्दरगाह पर समुद्र के द्वारा होने वाले व्यापार पर चुगी वसूल करने के ठेके का। जहा पर सामुद्रिक जकात वसूल करने का यह काम होता था उस स्थल का नाम 'मीठी माडवी' था।

उत्तमचन्द गाधी ने जब मीठी माडवी का उत्तरदायित्व सम्हाला तब उनकी उम्र छोटी ही थी—मसे भीगी ही थी। फिर भी बडी दक्षता से उन्होने सामुद्रिक चुगी का यह काम किया और नाम कमाया।

चुगी की ठेकेदारी के काम मे जो कुछ समय बचाया जा सकता था उसमे वे नित्य-प्रति श्रीदमन गाधी की कचहरी मे जाने लगे और वहा विधिवत् दफ्तरी का काम सीखने लगे। थोडे ही समय मे श्रीदमन गाधी के काम का बोझ बहुत हल्का हो गया। वह अब कुछ विश्राम लेने लगे और उनके कई काम युवक उत्तमचन्द गाधी अपनी ही सूझ से फुर्ती के साथ निपटाने लगे।

श्रीउत्तमचन्द जिस प्रकार बुद्धि, व्यवहार और काम मे तेजस्वी और दक्ष थे उसी प्रकार देखने मे भी बहुत प्रभावशाली थे। वे आजानुबाहु थे। जब तनकर बिल्कुल सीधे खडे होते थे तब उनकी हथेलिया उनके घुटनो से नीचे तक लगती थी। यह वीर-पराक्रमी पुरुष का लक्षण माना जाता है। उनका भाल-प्रदेश उन्नत और दमकता हुआ था। उनकी दृष्टि ऐसी पैनी व तेज थी कि जो आदमी उनके पास जाता था, झेप जाता था और अपने मन की बात कहते हुए हकलाने लगता था। फिर भी, लोगो के लिए वे दूर के या गैर-व्यक्ति नही थे। सब लोग उन्हे 'उत्तमचन्द गाधी' के शिष्टाचार-भरे नाम के बदले 'ओता-गाधी' के प्यार के नाम से पुकारते थे।

घर मे, गाव में और राजदरबार मे जो बुजुर्ग लोग थे, उनके लिए वह 'ओता' या 'ओता-गाधी' थे और छोटो के लिए 'ओता बापा'।

ओता बापा के पहले उनके पूर्वजो में से किसी ने भी राज्य की नौकरी में अधिक ऊचा पद पाया, इसका सकेत गाधी-परिवार के इतिहास मे नही मिलता। ओता बापा ने ही पहले-पहल दीवान का पद पाया। इस स्थान पर वह किसी के साथ स्पर्धा करके, अर्जिया देकर या उलटी-सीधी कोशिश करके नही, बल्कि अपने सामने आए हुए काम को शक्ति भर अच्छी तरह पूरा करके पहुचे थे।

एक दिन पोरबन्दर के राणा खेमाजी ने किसी महत्वपूर्ण समस्या

को निवटाने के लिए श्रीदमन गाधी को बुलावा भेजा। जब राणा साहब का आदमी बुलाने आया तब दमन गाधी कचहरी मे उपस्थित नही थे, कही बाहर गये थे। ओता बापा की जगह पर कोई और युवक होता तो राणा का बुलावा सुनकर घबराहट मे पड जाता और कचहरी के बडे अधिकारी श्रीदमन गाधी को बुलाने के लिए दौड उठता, परन्तु श्रीओता गाधी साहसी युवक थे। बिना हिचकिचाहट के वह सीधे चल दिए और राणा साहब के पास खुद हाजिर हुए। उस समय राज-दरबार की विधि के अनुसार राणा साहब का अभिवादन करके नम्रता के साथ ओता बापा ने कहा, "मेरे चाचाजी कचहरी के बाहर गये हुए है। इस कारण मैं आपके पास हाजिर हुआ हू। जो सेवा हो, आज्ञा कीजिए। जो कुछ मुझसे बन पडेगा, करूगा। मै भी आपका सेवक ही तो हू।"

लडके की चतुराई, उसकी वाक्पटुता और उसका साहस देखकर राणासाहब प्रभावित हुए और एक अनुभवी कर्मचारी के करने का काम उसे सौपा। ओता बापा ने वह कार्य बडी सावधानी और दक्षता के साथ पूरा कर दिया। यह देखकर राणासाहब के दिल मे ओता बापा के लिए भरोसा जम गया।

दूसरे ही दिन राणासाहब ने ओता बापा को दुबारा अपने दरबार में बुलवाया और पूछा, "ओता, एक पेचीदा कार्य करना है। है साहस ?"

ओताबापा ने नम्रता से कहा, "ऐसा कौन-सा काम है जो आपके लिए इतना कठिन है ?"

राणासाहब बोले, "माधवपुर का इजारदार बडा ढीठ होता जा रहा है। हमें कमजोर समझकर वह हमारी अवहेलना कर रहा है। कई किश्तो की अदायगी खाली जा रही है। उसको सीधा करना पडेगा।"

ओताबापा ने कहा, "यह कौन-सा बडा काम है ? मै जाता हू माधवपुर।"

राणासाहब बोले, "पर वहा जाकर करोगे क्या, यह तो बताओ।"

ओताबापा ने कहा, "इसका पता तो तब चलेगा जब वहा जाऊ और देखू। आपके आशीर्वाद से काम अवश्य बन जायगा। आप अपना पक्का भरोसा मुझ पर रखिए और आशीर्वाद दीजिए कि बेडा पार हो। अपने बूते पर वह काम मुझे थोडे ही करना है, आप ही के नाम पर तो करना है।"

तैयारी करके बापा माधवपुर के लिए चल पडे।

यह उस समय की बात है, जब सौराष्ट्र के प्रदेश मे अग्रेजो के आधि-

पत्य का प्रारम्भ हो ही रहा था । सौराष्ट्र की कुल रियासते एक ही सम्राट् की अधीनता मे पूरी तरह से सगठित नही की गई थी। जूनागढ और जामनगर जैसे प्रबल राज्य पोरबन्दर सरीखे निर्बल पडोसी राज्यो की सीमा को बलात् दबाते चले जा रहे थे । पोरबन्दर राज्य मे इतनी शक्ति नही थी कि वह अपने यहा हस्तक्षेप करने वाले राज्यो से मुठभेड करता । पोरबन्दर राज्य उस समय काफी दब चुका था । उसका शासन गिने-चुने गावो तक ही सीमित रह गया था । जूनागढ राज्य ने जगह-जगह कई गाव हडप लिये थे और उनमे से कुछ मे पोरबन्दर की जैसी छोटी-मोटी पट्टिया बच गई थी, जहा से केवल भूमिकर वसूल कर पोरबदर राज्य को सतोष मानना पडता था । उसकी और कोई सत्ता वहा नही चलती थी ।

माधवपुर का बन्दरगाह पोरबन्दर राज्य का ही था । वहा के यातायात और व्यापार पर सामुद्रिक कर वसूल करने का अधिकार पोरबदर राज्य के पास था, परतु अब बात यहा तक बढ गई थी कि माधवपुर का इजारदार जूनागढ के बल के भरोसे पोरबन्दर के राज्य-कर की सारी रकमे स्वय निगलने पर तुल गया था । पोरबन्दर के नाम से सामुद्रिक कर वसूल करके वह उसकी एक भी किश्त राज्य-कोष मे जमा नही करा रहा था ।

राणासाहब खीमाजी ने कच्ची उम्रवाले ओता गाधी को इस कठिन समस्या का हल करने व हाथ से जानेवाली वसूली को बचा लेने के लिए माधवपुर भेजा । ओताबापा ने वहा जाकर बडी धीरता और गम्भीरता से काम लिया । पोरबन्दर के राणा की अवज्ञा करने के कारण इजारदार को डाट-डपट न करने तथा उसके पास दबे हुए राज्य-शुल्क को निकलवा लेने के लिए कुछ भी कडवी बात न करने की सतर्कता बापा ने रखी । उन्होने सोचा कि जब हमारे पास लडने-झगडने के लिए आवश्यक बल है ही नही तब व्यर्थ बल-प्रदर्शन मे हमारी मानहानि ही होगी, धन तो मिलेगा नही और प्रतिष्ठा घट जायगी । इसलिए अच्छा यही होगा कि इजारदार से मोर्चा न लेकर जहा से उसको सहारा मिल रहा है, उस जड को ही दूर कर दिया जाय ।

इस बात को ध्यान मे रख कर उन्होने सूक्ष्मता से अध्ययन किया कि जूनागढ राज्य का दखल पोरबन्दर राज्य की सीमा मे कहा-कहा पर और किस प्रकार है । फिर उन्होने जूनागढ के राज्याधिकारियो से कूटनीतिक स्तर पर बाते शुरू कर दी । अपनी नम्रता और कुशाग्र बुद्धि के सहारे इस अकेले युवक ने अत्यन्त चतुर और ताकत मे बढे-चढे राजपुरुषो को समझौते करने के लिए बाध्य कर दिया । उन्होने ऐसी जोरदार भूमिका बाधी कि

पोरबन्दर का जो राज्य नित्यप्रति जर्जर और शिथिल होता चला जा रहा था, उसमे नया जीवन और ठोसपन आ गया।

ओताबापा ने जूनागढ राज्य से जो समझौता किया उसमे उन्होने जूनागढ राज्य के अन्दर जगह-जगह, विभिन्न गावो मे, पोरबन्दर की जो छुटपुट पट्टिया थी, उनका महसूल वसूल करने का दीवानी हक छोड दिया। राणा साहब के राज्य की निश्चित वार्षिक आय पर से बिल्कुल ही हाथ उठा लेना कम साहस का काम न था। परन्तु पूरे आत्म-विश्वास के साथ ओताबापा ने यह कदम उठाया। जूनागढ के राज-कर्मचारी सतुष्ट हो गए और उन्होने ओता गाधी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। ओताबापा ने जूनागढ राज्य मे लिखवा लिया कि माधवपुर से लेकर पोरबन्दर तक के सारे समुद्र-किनारे के गावो मे जूनागढ राज्य का कोई दखल नही रहेगा और वे सब-के-सब गाव पूर्णतया पोरबन्दर राज्य की ही अधीनता मे रहेगे। अर्थात् उन पर दीवानी-फौजदारी के पूरे अधिकार पोरबन्दर रियासत के रहेगे। ओताबापा ने जिस समय यह समझौता किया उस समय समुद्र के किनारे का वह सारा प्रदेश बहुत ही रेतीला था और प्राय सारी जमीन ऊसर थी। लेकिन उस इलाके का उज्ज्वल भविष्य ओताबापा ने अपनी दीर्घ दृष्टि से देख लिया था। जूनागढ से किये गए समझौते का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने लिखा था, "यदि भादर नदी पर बाध बनाया जाय तो यह सारी रेतीली जमीन बहुत उपजाऊ हो जायगी और मनो सोना उगलेगी।" पोरबन्दर राज्य के पुराने कागजो मे ओताबापा के हाथ की लिखी हुई ये पक्तिया आज भी देखने को मिल जायगी।

कई वर्ष पहले लिखी हुई ओताबापा की यह बात आगे चलकर वस्तुत सही निकली। अब वहा के एक-एक गाव मे आसानी से प्रतिवर्ष पौन लाख रुपये से भी अधिक की पैदावार होती है। कुछ हजार रुपये की वार्षिक आयवाला पोरबन्दर राज्य अब कई लाख की वार्षिक आय वाला हो गया।

राणासाहब ओताबापा की इस सफलता से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने उसी समय ओताबापा को दीवान की पोशाक भेट की तथा उन्हे अपने राज्य का दीवान नियुक्त कर दिया। इस प्रकार यौवन की दहलीज मे प्रवेश करने वाले श्रीउत्तमचन्द गाधी ने राज्य के अमात्य का भारी उत्तरदायित्व प्राप्त किया और तब से लेकर आखिर तक—अर्थात् वृद्धावस्था तक—वह सफल और यशस्वी दीवान बने रहे।

जिस प्रकार ओताबापा के दीवान होने से पहले पोरबदर राज्य के हाथ मे अनेक गाव जूनागढ और जामनगर के राज्यो मे समा गये थे, उसी

प्रकार आर्थिक क्षेत्र मे भी पोरवदर राज्य अपनी स्वतन्त्रता खो वैठा था। कच्छ के, जो समुद्र के रास्ते पोरवदर से वहुत निकट है, एक वडे व्यापारी का ऋण पोरवदर पर वहुत वढ गया था। उस व्यापारी की पेढी 'सुन्दरजी की फर्म' के नाम से प्रसिद्ध थी और उसका व्यापार अफीका तक चलता था। पोरवदर के राजाओ ने उससे कर्ज लिया था। वह कर्ज इतना वढ गया कि पूरा पोरवदर राज्य सुन्दरजी की पेढी के हाथ गिरवी चला गया। वरसो तक राज्य की कुल वार्षिक आय 'सुन्दरजी वाले' ले लेते थे। वे राज्य का अत्यावश्यक चालू खर्च चुकाकर वाकी रकम अपने कर्ज की वसूली मे दर्ज कर लेते थे।

ओतावापा ने दीवानपद पर आकर 'सुन्दरजी वालो' के साथ की गई लिखा-पढी के कागज मगाये और उसका गहरा अध्ययन करके, अपनी पैनी वुद्धि के प्रयोग से, उसमे एक ऐसा वाक्याश खोज निकाला जिसकी वदौलत सुदरजी की पेढी की आर्थिक अधीनता से राज्य को मुक्त कराने मे सफलता मिली। उस सारी लिखा-पढी के वाद उस रेहननामे के अन्त मे कहा गया था कि "पडयु पान राज्यनु।" अर्थात् "जो कुछ पत्ता गिर पडा हो, उस पर अधिकार राज्य का होगा।" इसका भावार्थ यह होता है कि महसूली-चुगी रूपी फल का अधिकारी तो साहूकार रहेगा, परतु जो गौण आय होगी उस पर कर्जदार का ही हक रहेगा। वापा ने इस पर से फैसला किया कि सिर्फ जमीन-महसूल और सामुद्रिक व्यापार से प्राप्त चुगी पर ही सुदरजीवालो का अधिकार है, राज्य की अतिरिक्त आय पर उनका कोई हक नही। इस फैसले के आधार पर ओतावापा ने राज्य की दूसरी सव प्रकार की आमदनी राज्य के कोष मे जमा करने का इतजाम किया, और 'सुदरजी वालो' को उसका हिस्सा देने से इन्कार कर दिया। उन्होने अदालती मुकदमो, मकानो तथा जमीन के वैनामो और ऐसे ही अन्य कई साधनो द्वारा राज्य के खाली कोष को परिपूर्ण किया और सुन्दरजी की पेढीवालो के पुराने कर्ज को उतार दिया।

ओता वापा की कुशलता का उल्लेख राजकोट के एक अग्रेज न्यायाधीश ने भी किया है।

: ६ :

सत्याग्रही ओताबापा

न जातु कामान्न भयान्न लोभात् धर्म त्यजेज्जीवितस्यापि हेतो ।
धर्मो नित्य सुखदु खे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्य ॥

"धर्म को किसी भी हालत मे मत छोडो—अपनी किसी मनोकामना की पूर्ति के लिए नही, वडे-से-वडे पद के कारण नही, किसी प्रकार के लोभ के वश होकर नही और अपनी जीवन की रक्षा के लिए भी नही। अपने मन मे यह वात पक्की कर लो कि धर्म सदा ही कायम रहने वाला, हर समय साथ देने वाला अक्षय वल है। जिसका उपभोग करने के लिए या जिसके वोझ से वचने के लिए आदमी दिन-रात दौडधूप मचाता है, वह सुख और दु ख केवल क्षणिक है। सुख और दु ख दोनो ही आयगे और जायगे, परन्तु उनका अनुभव पाने वाला जीव ज्यो-का-त्यो वना रहेगा। यह समझ लो कि जीव को पकडे रहने वाला यह शरीर स्थायी नही है। यह तो जल्दी या देर से छूटने वाला ही है। जो असली जीव है उसका क्षय या विनाश कदापि होने वाला नही है।"

विद्याशास्त्र-सपन्न न होते हुए भी ओता वापा ने इस धर्मनिष्ठा को आचरण मे उतारने का दृढ आग्रह रखा। उन्होने जिस प्रकार अपनी युवावस्था मे कार्य-दक्षता तथा पुरुपार्थ का परिचय दिया उसी प्रकार ढलती आयु मे श्रेष्ठ धर्मपरायणता और दृढ शौर्य का उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

राणा साहव खीमाजी दीर्घजीवी नही हो पाए। अपने पुत्र की नावालिग अवस्था मे ही वह चल वसे। अत कुवर के वालिग होने तक सारी राजसत्ता पूर्णतया रानी के हाथ मे रही। लेकिन राज्य का कुल प्रवन्ध ओतावापा ही करते थे। वापा नित्य ही राजहित और लोकहित को सवसे ऊपर रखने वाले थे। इसलिए कई वार रानी के साथ उनकी पटती नही थी। वह जीहुजूरी मे अलग रहकर, जो सही लगता था, जो धर्म की वात प्रतीत होती और जिसमे प्रजा का कल्याण देखते थे उसी मार्ग को अपनाते थे। यदि मतभेद होता था तो ओतावापा कभी रानी को समझा-बुझा कर, या कभी दवाव डाल कर अपने मन की उसी वात पर अमल करते थे, जिसे वह अपना अनिवार्य कर्त्तव्य समझते थे।

ऐसे ही एक मौके पर ओतावापा ने साक्षात् मृत्यु को आमन्त्रित कर लिया था। कहानी यह थी कि राज्य-कोप का खजाची और राज्य के वस्तु-

भण्डार का अविकारी खीमा कोठारी नामक व्यक्ति वडा कर्त्तव्यनिष्ठ और कडाई मे काम लेने वाला था। एक सुई तक वह किसी को विना आज्ञा के नही देता था। खीमा कोठारी की इस आदत मे रानी की दासिया तग आ गई थी। उनको मनमानी चीजे नही मिल पाती थी। इस कारण कोठारी के विरुद्ध भला-बुरा कह सुनकर दासिया रानी के कान भरती रहती थी। एक वार दासियो ने मिलकर कोठारी के मत्थे कुछ ऐसा विकट अपराध मढ दिया कि रानी आपे से वाहर हो गई। उसने हुक्म दिया कि कोठारी को फौरन वाधकर मेरे सामने ले आओ। कोठारी को रानी की इस कठोर आज्ञा का पहले मे ही पता चल गया था। वह भागकर ओतावापा की शरण मे जा पहुचा और उसने उनसे न्याय की माग की। ओतावापा ने उसे अभय वचन दे दिया। जव रानी को पता चला तव उसने वापा को अपने समक्ष वुलाकर आज्ञा दी कि खीमा कोठारी को मेरे हवाले कर दो। वापा ने इस आज्ञा को अस्वीकार करते हुए रानी से कहा कि मै उसे इस तरह आपके हाथ मे नही सौप सकता। आपको चाहिए कि न्याय किस पक्ष मे है, इस वात की सही जाच करे। उस पर वाकायदा मुकदमा चलाया जाय।

रानी पूरे तैश मे थी। उसने कहा, "न्याय वही है जो मै समझू। उसको दण्ड देना मेरा काम है। उसे आप फौरन मुझे सौंप दे।"

वापा ने रानी को समझाने की पूरी कोशिश की, पर वह अपनी ज़िद पर अडी रही, यहा तक कि उसने वापा को धमकी भी दे डाली कि यदि वह नही मानेगे तो उनपर जवरदस्ती की जायगी और किसी भी तरह कोठारी को उनसे ले लिया जायगा। वापा इस धमकी के वश मे नही आए और अपनी वात पर अटल रहे। लगातार चार-पाच दिन तक रानी अपने सदेशे और चुनौती भेजती रही, पर वापा अपनी वात से न हटे। अन्त मे झुझलाकर रानी ने मकान पर फौजी दस्ता भेज दिया और उसे आज्ञा दी कि उनके मकान से वलपूर्वक कोठारी को ले आया जाय।

ओतावापा का मकान पोरवन्दर के विशिष्ट पत्थरो मे वना हुआ था और उसका दरवाजा किले का-सा मजवूत था। रानी की भेजी हुई टुकडी उस मकान मे जव किसी तरह भी न घुस सकी तव रानी उस मकान की दीवार तुडवाने पर तुल गई और उसने तोप भी भेज दी।

इधर वापा की नौकरी मे जो दो-तीन अरव द्वारपाल थे, उन्होने वापा से कह दिया कि जवतक हममे से एक की भी गरदन सलामत रहेगी तवतक आपको कोई छू तक नही सकेगा। हम मरते दम तक आपकी रक्षा करेगे। हमने आपका नमक खाया है। वापा ने अपने सेवको की वात पर पूरा भरोसा

कर लिया और उन लोगो ने सचमुच बापा की रक्षा मे अपनी जान न्योछावर कर दी।

उन दिनो राजा लोग स्वच्छद होते थे। उनकी नौकरी करना अपनी जान पर खेलने जैसा था। इस हालत में जो कोई राजा के दीवान की-सी बडी नौकरी स्वीकार करता था वह किसी मजबूत व्यक्ति को अपना जामिन बना लेता था, अर्थात् राज-प्रकोप से रक्षा करने का काम उस जामिन के जिम्मे रहता था। इस प्रकार उन द्वारपालो का नायक श्रीगुलाम मोहम्मद मकरानी ओताबापा का जामिन बना था। राज्य की सेवा करते-करते यदि ओताबापा पर अनुचित आक्रमण हो तो उसका काम था कि वह उनकी रक्षा करे और उसने अपनी जान देकर ओताबापा की रक्षा की। आज भी उसके नाम का स्मारक ओताबापा के घर से लगे हुए वैष्णव मन्दिर मे मौजूद है।

ओताबापा ने बाहर की रक्षा का भार जब उन अरबो को सौंप दिया तब स्वय अन्दर की तैयारी करने लगे। यह तैयारी आक्रमणकारी का मुकाबला करने अथवा किसी प्रकार का युद्ध या सघर्ष करने के लिए नही थी, बल्कि सत्य के लिए शाति और सन्तोष के साथ बलिवेदी पर चढ जाने की थी। वह उस विशाल भवन के मध्यखण्ड मे जाकर बैठ गए। उस समय उनके पास जो पाच पुत्र उपस्थित थे, उन सबको उन्होने अपनी बगल मे बैठाया, फिर बच्चो की माता को बैठाया और आठवे कोठारी को अपने पास बैठा लिया। इस प्रकार सबको शातिपूर्वक बैठाकर ओताबापा ने सबको धीरज बधाया और कहा, "जब भगवान ने हमे सत्य के लिए बलिवेदी पर चढने का सुअवसर प्रदान किया है तब हमे चाहिए कि हम अपने चित्त मे उद्वेग, शोक तथा भय आदि को दूर हटा दे और प्रसन्न चित्त से बलि हो जाय।"

बाहर रानी की तोप मे एक के बाद दूसरा गोला धडाधड उस मजबूत दीवार पर आघात कर रहा था और अन्दर ईश-स्मरण के साथ सत्य पर अटल रहने की अभ्यर्थना हो रही थी। तोप की मार के आगे पोरबन्दरी पत्थरो की डेढ हाथ चौडी दीवार देर तक टिक न सकी और उसमे दो बडे-बडे छेद हो गए। द्वारपालो मे से गुलाम मोहम्मद मकरानी मारा गया, परन्तु ओताबापा और उसके समस्त वश का बलिदान ले लेना ईश्वर ने उचित न समझा। अनिष्ट घटना होने के पहले ही इस बावली के समाचार राजकोट जा पहुचे और वहा के अग्रेज सत्ताधीश—पोलिटिकल एजेट—ने रानी के इस अत्याचार को रुकवा दिया।

इस घटना के बाद ओताबापा ने पोरबन्दर छोड दिया और वह अपने मूल गाव कुतियाणा लौट गए। कुतियाणा कस्बा जूनागढ की रियासत के

अन्तर्गत था, इसीलिए जूनागढ के नवाव ने अपने प्रदेश मे वसने वाले ऐसे चतुर ओर प्रख्यात व्यक्ति को दरवार मे आमन्त्रित किया। वापा जूनागढ गए, परन्तु उन्होने नवाव को वाए हाथ से सलामी दी। इस वेअदवी से नवाव का अमला विगड पडा। नवाव खुद भी हैरान हो गया कि ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति यह क्या कर रहा है। उसने वापा से इसका भेद पूछा। वापा ने कहा, "दाहिना हाथ तो मै पोरवन्दर राज्य को समर्पित कर चुका हू। पोरवन्दर के सेवक का मेरा नाता टूट नही सकता, उस राज्य से मै वेवफा नही हो सकता। यदि आप चाहे तो यह वाया हाथ आपकी सेवा मे हाजिर है। लेकिन मै अव नौकरी नही चाहता, शासन-कार्य से निवृत्त होकर शातिमय जीवन विताना चाहता हू।"

नवाव के जीहुजूर तो चाहते थे कि वापा को कुछ पाठ सिखाया जाय और ऐसे घोर अपमान का वदला लिया जाय, परन्तु नवाव पाकदिल और शरीफ था। उसने वापा की महत्ता को समझा और भरे दरवार मे उनकी वफादारी व निष्ठा की प्रशसा की। फिर भी अपने दरवार तथा राजसिंहासन की शान और आन वनाए रहने के लिए उसने मामूली सजा सुना दी और साथ-ही-साथ उन्हे अच्छा-खासा इनाम भी दिया। सजा यह सुनाई गई कि वाए हाथ से नवाव को सलामी देने के जुर्म मे ओता गाधी को नगे पैर पाच-दस मिनट धूप मे खडा रखा जाय। इनाम मे नवाव की ओर से रुक्का लिख दिया गया कि 'कुतियाणा गाव मे दूकानदारी करने पर ओता गाधी और उनके वशजो को पुश्त-दर-पुश्त चुगी की माफी दी जाय।' ओतवापा कुछ मिनट धूप मे खडे रहे और कुतियाणा लोट आए।

कुतियाणा आकर बापा किसी विशेष प्रवृत्ति मे नही उलझे। उन्हे घुडसवारी का शौक शुरु से ही था। उन्होने वढिया काठियावाडी घोडी खरीद रखी थी। नित्यप्रति कुछ देर उस पर सवार होकर वह आसपास सैर कर आते थे। वाकी समय भजन-कीर्त्तन और कथा-वार्त्ता मे विताते थे। मेरे प्रपितामह श्रीजीवनवापा ने अपने पिता ओतावापा की घोडी के सईस का काम सम्हाला था और आखिर तक वडी लगन और परिश्रम से उन्होने उस घोडी की सेवा की थी।

श्रीजीवन गाधी ओतावापा के चौथे पुत्र थे। विना चुगी के दूकान चलाने का जो रुक्का नवाव से मिला था उसका लाभ जीवनवापा ने उठाया। ओतावापा की सेवा करने के साथ-साथ कुतियाणा मे एक छोटी-सी दुकान वह चलाते थे।

हमारा खानदान वैष्णव-पथी पुष्टिमार्गी वल्लभ सप्रदाय का था।

इसलिए हमारे यहा विशेषत कृष्ण की उपासना होनी चाहिए थी, परन्तु ओतावापा को पोरवन्दर के एक खाकी साधु[1] पर अधिक श्रद्धा थी। उन्होने उस साधु के लिए पोरवन्दर मे एक चौक भी वनवा दिया था जो आज भी 'खाक चौक' के नाम से प्रसिद्ध है। वह खाकीवावा राम का अनन्य उपासक था। उसके सत्सग मे रहकर ओतावापा भी परम राम-उपासक वन गए थे। अपने जीवन के उत्तरकाल मे दिन का अधिकतम समय ओतावापा गोस्वामी तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' का श्रवण और अनुशीलन करने मे विताते थे।

पोरवन्दर मे दीवान पद पर रहते समय उन्हे पूरे दो हजार कोरी वार्षिक वेतन मिलता था। इसके अतिरिक्त अनाज और शाक आदि दरवारगढ के भडार से मिला करता था। यह वेतन कोई वडा वेतन नही था। फिर भी जव वापा ने अपने सवसे वडे दो पुत्र वल्लभजी और पीताम्वरजी का विवाह किया तव, उस जमाने के रिवाज के अनुसार, उन्होने एक वहुत वडी दावत दे डाली। उन्होने समस्त पोरवन्दर की 'चौर्यासी' की, अर्थात् सव नगर-निवासियो को भोजन कराया। नगर के कोट के दरवाजे पर चावल चिपकाकर सारे गाव को न्योता दे दिया गया और जो गरीव या भूखे आये उन सवको भोजन कराया गया। इसके अतिरिक्त सारे नगर मे सात दिन तक वरावर फुलवाडी चढाई जाती रही। इसमे स्वय राणा साहव सवसे आगे चलते थे। ऐसी भारी दावत और ऐसी भव्य फुलवाडी उसके वाद कभी भी देखी-सुनी नही गई।

राज्य के लोकप्रिय दीवान होने के कारण इस विवाह मे ओतावापा के पास प्रजा की ओर से नजराने मे भी वहुत रकम जमा हो गई। वापा ने जो खर्च किया था उसके मुकावले में वह रकम कम नही थी। यदि कोई दूसरा होता तो उस नजराने पर फूला न समाता। वह उस धन को अपनी तिजोरी में प्रसन्नता से रख लेता, परन्तु वापा ने वरात का काम समाप्त होते ही धन की वह सारी राशि राणा साहव के चरणो मे रख दी और उनसे कहा, "यह धन आपकी ही प्रजा का है। आपके आशीर्वाद के कारण ही मै 'चौर्यासी' कर पाया हू। आप इस धन को स्वीकार कर ले।" राणा ने गद्गद् होकर उत्तर दिया, "अच्छा, इस धनराशि को सरकारी खजाने में जमा कर दो और 'चौर्यासी' का सारा खर्च राज्य के खाते मे डालकर हिसाव वरावर कर दो। तुम्हारे पुत्र मेरे ही पुत्र है।"

ओतावापा के पोरवन्दर से चले जाने के वाद जव रानी का कुचक्र

१ रामानद पथ के विशेष साधु।

समाप्त हुआ और नए राणा विक्रमाजीत गद्दी पर बैठे तब राज्य के हितैषियों ने ओतावापा को फिर से अमात्य-पद पर बैठाने का प्रयत्न किया। किंतु बापा ने अपना निवृत्तिमय जीवन छोडकर पुन प्रवृत्तिमय जीवन अपनाना पसन्द नही किया। फिर भी उन लोगो के प्रयत्नो का और राणा खीमाजी के उन वचनो का, जो ओतावापा ने राज्य के कागजो मे पक्के करा लिये थे, इतना परिणाम हुआ कि बापा के सब पुत्रो को राज्य मे कोई-न-कोई सेवा-कार्य दे दिया गया।

जब राणा खीमाजी के अन्तिन दिन प्रतीत हो रहे थे तब ओतावापा ने अपनी नौकरी के बारे मे उनसे लिखित प्रमाणपत्र मागने की सावधानी बरती, क्योकि बापा ने देख लिया था कि रानी के कान कच्चे होने के कारण, राणा के बाद उनके अपने भविष्य के सकट मे पड जाने का खतरा है। राणा ने बापा के लिए जो उदारतापूर्ण प्रमाणपत्र लिखा, उसका सार यह था—"ओता गाधी ने इस राज्य की बडी मूल्यवान सेवा की है और मेरा तथा रियासत का काम सदैव पूरी वफादारी के साथ किया है। इसलिए मेरे उत्तराधिकरी इस बात की सावधानी रखे कि ओता गाधी को किसी प्रकार के कष्ट का भागी न बनना पडे, बल्कि मेरे उत्तराधिकारी गाधी के उत्तराधिकारियो को इस राज्य मे सदैव उदारता के साथ नौकरी देते रहे।"

बापा के कुल मिलाकर छ पुत्र थे। उनमें द्वितीय पुत्र श्रीपीताम्बर गाधी रानी के साथ झझट शुरू होने से पहले ही व्यापार के निमित्त कच्छ के राज्य मे जा पहुचे थे। उनके एक पुत्र था और उसने भी अपना जीवन कच्छ मे ही व्यापार करके व्यतीत किया था। उसके बाद श्रीपीताम्बर की सतति आगे नही बढी और वह शाखा वही रुक गई।

श्रीपीताम्बर गाधी के अतिरिक्त जो पाच भाई थे उनमे सबसे बडे श्री वल्लभजी गाधी राज्य के इमारती काम के महकमे मे इजीनियर नियुक्त हुए। क्रम मे तीसरे श्रीरतनजी गाधी राज्य के दफ्तरी हुए, चौथे श्रीजीवनजी गाधी पोरबन्दर के समीप छाया नामक परगना मे परगना-हाकिम नियुक्त किये गए। पाचवे श्रीकरमचन्द गाधी और छठे श्रीतुलसीदास गाधी क्रमश एक के बाद एक पोरबन्दर के दीवान के पद पर रहे। श्रीतुलसीदास गाधी के वशज अबतक, अर्थात् राज्यो के सविलय के समय तक, पोरबन्दर राज्य की नौकरी मे उच्च स्थानो पर बने रहे।

छ भाइयो मे ओतावापा की सबसे अधिक विरासत श्रीकरमचन्द गाधी ने ही पाई—केवल दीवानगिरी की ही विरासत नही, किंतु बापा की प्रतिभा, तीक्ष्ण बुद्धि, सत्य-प्रीति और बहादुरी की भी। वास्तव मे दीवानगिरी

तो उन्होंने भी अपने पिता की भांति अपने ही पुरुषार्थ से पाई थी। शुरू में उन्हें मामूली सेवा-कार्य मिला था, पर बाद में अपनी कुशलता के कारण वे दीवान के पद पर पहुंचे थे।

: ७ :

बापू के माता-पिता

मोहनदास करमचन्द गांधी का नाम संसार में इतना फैल चुका है कि उनके पिता श्रीकरमचंद गांधी का नाम दशरथ और वसुदेव की तरह युग-युग तक चिरजीवी बना रहेगा। करमचंद का नाम बचपन से ही 'कबा' पड़ गया था। परिवार में वह कबाभाई, कबाबापा, कबाकाका आदि सम्बोधनों से पुकारे जाते थे और राजकोट में उनके मकानवाली गली को आज भी 'कबा गांधी की शेरी' (गली) कहा जाता है।

कबाकाका का जन्म ईस्वी सन् १८२२ के आस-पास हुआ था। कबाकाका की पढ़ाई अधिक नहीं थी, फिर भी आवश्यक प्रारंभिक शिक्षा अर्थात् चौथी-पांचवीं कक्षा तक की शिक्षा उन्होंने भलीभांति पाई थी। पढ़ाई पूरी करने के बाद कबाकाका ने पोरबन्दर के राणासाहब के निजी हिसाबनवीस और पत्र-लेखक का काम किया था। राणासाहब को कबाकाका के काम से सन्तोष मिला और उनकी कार्यदक्षता व चतुराई पर उन्हें पूरा विश्वास बैठ गया। इस कारण उपयुक्त अवसर आने पर राणासाहब ने कबाकाका को पोरबन्दर की दीवानगिरी के पद पर नियुक्त कर दिया।

राज्य के उच्च पदाधिकारी की नियुक्ति का तरीका उस समय यह था कि नियुक्त किये जाने वाले व्यक्ति को राजा की ओर से सुन्दर कलमदान में तीन-चार कलमें, एक दवात और स्याही सुखाने के लिए बारीक रेती का पात्र भेज दिया जाता था। यदि कलमदान पीतल का भेजा जाता तो इससे तहसीलदार के पद पर नियुक्ति मानी जाती और यदि चांदी का भेजा जाता तो दीवान के पद पर नियुक्ति समझी जाती थी। जब पोरबंदर से ओताबापा पर बार-बार ये मंत्रिपद स्वीकार करने के लिए दबाव डाला गया, तब वह स्वयं तो कुतियाणा से पोरबंदर नहीं गये, परन्तु अपने पुत्रों

में से उन्होंने करमचन्द गाधी को उस पद के लिए भेजना स्वीकार कर लिया।

वस्तुस्थिति कुछ भी रही हो, कवाकाका पहले चाहे राणासाहब के निजी मत्री रहे हो और बाद मे राज्य-मत्री बने हो या सीधे ही कुतियाणा से पोरबदर राज्य के मत्रिपद पर नियुक्त किये गए हो—यह बात निश्चित-सी है कि वह बहुत छोटी आयु मे ही दीवान बनाए गये थे। जब कबाकाका ने दीवान-पद सम्भाला तब उनकी आयु मुश्किल से २५ वर्ष की थी। अनुमान है कि ईस्वी सन् १८४७ मे उनको मत्रिपद दिया गया था। अपनी आयु के पच्चीसवे वर्ष से लेकर बावनवें वर्ष तक कबाकाका ने पोरबदर में दीवान का काम किया। इसके बाद उनके जीवन के अतिम दस वर्ष, १८७५ से १८८५ तक, राजकोट के राजकाज मे बीते। यह अतिम समय उनके जीवन मे राजकीय, पारिवारिक और स्वास्थ्य की दृष्टि से बडे सघर्ष का था।

पोरबन्दर मे कबाकाका एक सच्चे और न्यायनिष्ठ दीवान के रूप मे विख्यात थे। उनके द्वारा दिये गए फैसले पर राणासाहब अपील नहीं सुना करते थे। यदि कोई प्रार्थी अपील लेकर राणासाहब के पास जाता तो राणासाहब उसे लौटा देते और कहते, "जाओ, फिर से गाधी के पास ही जाओ। उनका समाधान होगा तो वही तुम्हारा उचित न्याय करेंगे।" कबाकाका के समय मे न्याय-पद्धति पुराने ढग की और सीधी-सादी थी। प्रजा के गरीब वर्गो को न्याय पाने मे मुद्दत तक परेशानी नही उठानी पडती थी। मुसीबत मे पडा हुआ व्यक्ति सीधा ही हाकिम के पास पहुच जाता था और राजा तथा दीवान जैसे सर्वोच्च अधिकारी के समक्ष अपने कष्ट का बयान नि सकोच कर सकता था।

न्यायाधीश के रूप मे कबाकाका की लोकप्रियता का एक कारण और भी था। वह आगन्तुक की बात बडे धीरज और सहानुभूति से सुना करते थे। निजी रहन-सहन मे भी वह अत्यधिक सादे थे। उनकी वेश-भूषा और बातचीत का तरीका इतना सीधा-सादा था कि मामूली राहगीर और दीवान के बीच कोई खास भेद नजर नही आता था। अपने इस स्वभाव के कारण दीन और दुखी के सहृदय मित्र बनने मे और उनके दिल की बात का पता लगाने मे कबाकाका को देर नही लगती थी।

स्कूली शिक्षा अधिक न होने पर भी कबाकाका के ज्ञान की गहराई विलक्षण थी। उनका पठन-पाठन कम था, परन्तु नित्य नियम से साधु-सन्तो से ज्ञान-श्रवण करते थे।

वैसे तो शुरू से ही हमारे परिवार मे कथा-श्रवण करने की परम्परा

चली आ रही थी, पर कबाकाका की श्रवण-भक्ति असाधारण और प्रगाढ थी। कथा-ग्रथो मे वह प्राय श्रीमदभागवत और गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस का श्रवण करते थे। इसके अतिरिक्त श्रीमदभगवद्गीता का प्रवचन सुनने मे भी उनको रस आता था। बुढापे मे भी वह गीता के श्लोको को कण्ठस्थ करने का प्रयास करते थे। दिन भर तो वह राज्य-व्यवस्था के काम-काज मे लगे रहते, फिर भी सुबह-शाम दोनो समय घटे-डेढ-घटे कथा-श्रवण अवश्य करते थे। विद्वान न होते हुए भी कबाकाका ने असाधारण बौद्धिक विकास प्राप्त किया।

पोरबन्दर मे कबाकाका की दीवानगिरी का समय गाधी-कुटुब की सुख-समृद्धि का मध्याह्न-काल कहा जा सकता है। जब वह भोजन करने लगते तब उनके साथ नित्य ही कम-से-कम २० थालिया और लगाई जाती थीं तथा उत्सव-पर्व आदि के अवसरो पर तो भोजन करने वालो की सख्या १००-१५० तक पहुच जाया करती थी। कबाकाका के उस बृहद् परिवार मे भाई-भतीजो के अतिरिक्त मुनीम और नौकर आदि का भी समावेश रहता था।

पाच भाइयो के परिवार के अतिरिक्त निकट के रिश्ते के भी कई युवक कबाकाका के पास नौकरी की खोज मे आये थे। उनमे से १५-२० युवको को उन्होने योग्यतानुसार राज्य के विविध महकमो में नियुक्त करा दिया था। वह स्वय निगरानी रखकर उनकी कार्य-शक्ति का विकास करते थे। इतने विशाल परिवार मे प्रत्येक के घर की, तीज-त्योहार की, बहू-बेटियो की छोटी-मोटी आवश्यकताओ की और सामाजिक व्यवहार की देख-भाल कबाकाका स्वय करते थे। व्यक्ति छोटा हो या बडा, उसके लिए जब सगाई, विवाह, शिक्षा, बीमारी और रस्म-रिवाज की समस्या सामने आती थी तब कबाकाका के मार्ग-दर्शन मे वह सारा कार्य सपन्न हो जाता था।

पुतलीमा ने भी पूरे परिवार की माता का स्थान ले रखा था। जितनी भी बहू-बेटिया कुटुब मे थी उन सबको खाना खिलाने के बाद और यह जाच कर लेने के बाद कि एक बच्चा भी भूखा नही रह गया है, पुतलीकाकी भोजन के लिए बैठती थी। वह कभी चिडचिडेपन से या ऊची आवाज से नहीं बोलती थी, न किसी को डाटती-डपटती या अपमानित ही करती थी। अनेकानेक बहू-बेटिया उनकी सेवा मे रहती थी, नौकर भी कई थे, परन्तु वह किसी से अपना काम नही कराती थी। आलस्य तो उनमे नाम को भी नही था। सवेरे अबेरे ही उठ कर वह आधी रात तक

घर या रसोई का कुछ-न-कुछ काम किया करती थी। उनका भोजन बहुत सादा था। सबके भोजन के बाद जो थोडा-सा मिल जाता था उससे संतोष कर लेती थी, पर दूसरो की आवश्यकता की पूर्ति का सदैव ध्यान रखती थी।

केवल पुतलीमा ही घर के काम मे जुटी रहती हो और कबाकाका आदेश-मात्र दिया करते हो, ऐसी बात नही थी। परिवार के सरताज और राज्य के दीवान होते हुए भी कबाकाका ने रसोई का भार हल्का करने के लिए साग-सब्जी काट कर तैयार करने का दैनिक कार्य अपने ऊपर ले रखा था। सवेरे रघुनाथजी के मदिर में, जो मकान से करीब ही था, कबाकाका की बैठक रहती थी। वही पर मुलाकातियो का ताता लगा रहता था। कबाकाका राजकाज की बातचीत करने के साथ-साथ तरकारी काटने का काम करते जाते थे।

कबाकाका का प्रथम विवाह उनकी १४ वर्ष की आयु मे हुआ था। दूसरा विवाह पच्चीस वर्ष की आयु में उनके विधुर होते ही हो गया। प्रथम विवाह से कबाकाका के दो पुत्रिया हुईं। सबसे बडी मूलीबहन और दूसरी पानकुवरबहन। मूलीबहन की पुत्री आनन्दबहन बापूजी के सम-वयस्क थी और आनन्दबहन के सुपुत्र मथुरादास भाई त्रिकमजी बम्बई के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता थे।[1]

पानकुवरबहन के पति दामजी महेता को कबाकाका ने पोरबन्दर में राज्य की अच्छी नौकरी दिलाई थी।

कबाकाका का दूसरा विवाह उसी वर्ष हुआ, जब पोरबन्दर के दीवान-पद पर उनकी नियुक्ति हुई। इसके बाद तीसरा विवाह कब हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन चौथा विवाह जो पुतलीबाई से हुआ वह तीसरी पत्नी के जीवन-काल मे ही हुआ था। बापूजी की बडी

---

१ मथुरादास भाई बम्बई कारपोरेशन के बरसो तक मेयर रहे। गाधीजी का साहित्य एकत्र करने का काम मथुरादासभाई ने महादेवभाई से भी पहले शुरू किया था। साबरमती आश्रम के आरम्भ के दिनो में मेरे पिताजी बापूजी के लेखो और भाषणो का संग्रह तैयार कर रहे थे। उसको सुन्दर ढग से सम्पादित करने और 'गाधीजीने विचार-दृष्टि' नाम से प्रकाशित करने का श्रेय मथुरादासभाई को है। बापूजी की गुजराती आत्मकथा का सक्षिप्त सस्करण मथुरादासभाई ने तैयार किया है और 'बापूकी प्रसादी' नामक पुस्तिका भी उन्होंने लिखी है।

बहन ने, जिन्हे हम गोकी फइबा कहते है, बताया, "मेरे पिता की चार स्त्रिया थी। मेरी मा पुतलीबा दात्राणा गाव की थीं। जब मेरी मा से पिताजी ने शादी की तब उनसे पहले की स्त्री जीवित थी। मेरी मा ने मुझे बताया था कि उनकी तीसरी पत्नी अपाहिज थी। उनके पैर वात-रोग से जकड गए थे। अपने आप उठ-बैठ नही पाती थी। इसलिए पिताजी उनसे कहा करते थे कि तू कह दे तो मै घर चलाने के लिए नई ले आऊ। वह कह देती थी कि जीवित पर कोई देना हो तो भले ले आओ। होते-होते एक दिन पिताजी ने उनसे कहा, 'तुम ठीक-ठीक बताओ। अगर तुम कहोगी तो आज ही आ जायगी।' स्वीकृति मिलते ही सचमुच हाथ-के-हाथ मेरी मा से पिताजी की शादी हो गई। विवाह के समय पुतली मा की आयु प्राय तेरह वर्ष की होगी।"

कबाकाका से पुतलीमा का विवाह सन् १८५७ मे हुआ था। इस हिसाब से तब कबाकाका की आयु ३५-३६ वर्ष की सिद्ध होती है। बापूजी ने जो लिखा है कि उनका अतिम विवाह ४० वर्ष की आयु के बाद हुआ, यह ठीक नही बैठता। पुतलीमा के चार सन्तान क्रमश १८६०, '६२, '६६ और '६९ मे हुई।

प्रथम सतान लक्ष्मीदास गाधी का दूसरा नाम कालिदास गाधी था। वह आजीवन पोरबन्दर राज्य के विश्वस्त सेवक रहे और खजान्ची का काम करते रहे। बापूजी को पढने के लिए विलायत भेजने मे मुख्य समर्थन इन्ही का था और लदन का खर्च बहुत-कुछ पूरा करने का भार इन्होने उठाया था। लक्ष्मीदास गाधी के बडे पुत्र शामलदास गाधी थे।[1]

पुतलीबा की दूसरी सन्तान रळियातबहन, जो बापूजी से ७ वर्ष बडी है, आज भी राजकोट मे कबाकाका के ही मकान मे रह रही है। अपनी ९० वर्ष की आयु तक वह चक्की भी चलाती रही और चौका-बर्तन भी अपने हाथ से ही करती रही। कट्टर वैष्णव-आचार के कारण बापूजी के साथ वह आश्रम मे हरिजनो के बीच न रह सकी। वैसे उनकी मुखाकृति, बातचीत की ध्वनि, ठेठ गुजराती भाषा तथा सरल छोटे वाक्यो के प्रयोग मे वह बापूजी से बहुत मिलती-जुलती है। पुतलीमा की तीसरी सन्तान करसन-

१ शामलदास गाधी बम्बई के प्रसिद्ध गुजराती पत्र 'वन्देमातरम्' के सम्पादक थे। पाकिस्तान की समस्या ने जब जूनागढ में उग्र रूप धारण किया तब नवयुवको की सशस्त्र टोली के सेनानी बनकर आगे बढने का गौरव इन्हीं को प्राप्त हुआ था। इनका देहान्त हो गया।

दास गांधी का प्रभाव बापूजी पर हाई स्कूल मे प्रवेश होने तक विशेष रूप से रहा। अपनी 'आत्मकथा' मे बापूजी ने 'चोरी और प्रायश्चित्त' वाले प्रकरण मे इस मझोले भाई का उल्लेख किया है। इनका और बापूजी का विवाह एक ही समय हुआ था। करसनदास गांधी ने पोरबन्दर के पुलिस-विभाग मे नौकरी की थी और कई बरस तक वह मुख्य थानेदार रहे थे।

पुतलीबा ने २ अक्तूबर १८६९ के दिन मोहनदास को जन्म दिया। बापूजी के जन्म के समय कबाकाका की आयु ४७ वर्ष और पुतलीमा की २५ वर्ष से कम थी। जब उन्होने अपने सुपुत्र को विलायत भेजते समय उससे तीन महान प्रतिज्ञाए कराई तब वह प्राय ४२ वर्ष की थी। ४६ वर्ष की अवस्था मे उनका देहात हो गया। उस समय बापूजी विलायत मे बैरिस्टरी का अध्ययन कर रहे थे।

: ८ :

न्यायनिष्ठ कबा गांधी

पोरबन्दर के छोटे-से रजवाडे मे कबाकाका ने चौथाई शताब्दी से अधिक समय तक जनसाधारण और ग्रामीणो को निष्पक्ष न्याय दिलवाया। इसके फलस्वरूप लोग आज भी कबाकाका को याद करते है।

सन् १८७५ तक कबाकाका ने पोरबन्दर के मन्त्रिपद का कार्य सम्हाला। विशाल सयुक्त परिवार की धुरी वहन करते हुए वह सुख-शांति के साथ धर्मग्रन्थो का श्रवण-मनन करते रहे। युवावस्था ढलने पर ५३ वर्ष की आयु मे कबाकाका ने राजकोट के दीवान-पद का नया उत्तरदायित्व सम्हाला।

अग्रेजी राज्य की स्थिति इस बीच सर्वथा बदल चुकी थी। कम्पनी सरकार का मनमाना ताडव समाप्त होकर ब्रिटिश पार्लमेट का सुयोजित फौलादी पजा पूरे भारतवर्ष पर छा गया था। झासी की रानी की तलवार ने जो सबक सिखाया था उसके फलस्वरूप अब बडे ही नही, छोटे-छोटे, चार-छ गावो के बिन्दु सदृश राज्यो को भी अग्रेजो की ओर से जीवनदान मिल गया था। उन सबकी चतुर्सीमा की रक्षा का भार ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था और बदले मे उन राज्यो से साम्राज्य-सेवा और भरपूर वफादारी प्राप्त होती रहती थी। भारत मे

ही नही, कदाचित् सारी पृथ्वी पर बीसवी शताब्दी के लिए काठियावाड असख्य छोटे-बडे राज्यो का एक बेमिसाल सग्रहालय बन गया था।

जिस प्रकार अग्रेजो ने आम जनता को नि शस्त्र करना आवश्यक समझा उसी प्रकार उन्होंने अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए इन छोटे-मोटे राज्यो की सीमा निर्धारित करना भी अनिवार्य समझा। सौराष्ट्र मे जहा २४० से अधिक राजा थे, सीमा-निर्धारण का कार्य सरल नही था। अखड भारत को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभाजित करते समय अग्रेज राजनीतिज्ञो ने जिस प्रकार दोनो के पक्ष मे न्याय करने की तीव्र चिंता दिखाई वैसे ही सौराष्ट्र मे भी अपनी न्यायनिष्ठा साबित करने के लिए उन्हे गहरी छानबीन मे उतरना पडा। अग्रेज अकेले यह काम पूरा नही कर सकते थे। स्थानीय अनुभवी व्यक्तियो की सहायता प्राप्त करना उनके लिए अनिवार्य था। चतुर वाटसन साहब ने इस काम के लिए स्थानीय लोगो की एक सीमा-समिति नियुक्त कर दी और उसका मुख्य उत्तरदायित्व सच्चरित्र, न्यायनिष्ठ और तीक्ष्णबुद्धि कबाकाका को सौपा। ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा रानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित करने का जो प्रस्ताव सन् १८७६ मे स्वीकृत किया गया उसके एक वर्ष पूर्व श्रीकरमचन्द गाधी को सीमा-समिति के काम पर राजकोट बुलाया गया। इससे कल्पना की जा सकती है कि तबतक इस देश मे अग्रेजी राज्य की जड कितनी दृढ हो चुकी थी। सीमा-समिति का कार्य प्राय तीन-चार वर्ष तक चलता रहा। इस कार्य से कबाकाका की ख्याति सारे सौराष्ट्र में फैल गई। किसी के पक्ष या विपक्ष मे वह झुके नही। जो उन्होने न्याययुक्त समझा वही किया। इस सम्बन्ध मे एक प्रसग मैने ऐसा सुना जिससे कबाकाका की न्यायनिष्ठा, स्वार्थत्याग की वृत्ति और निर्णय की दृढता झलकती है।

जब सीमा-समिति का काम चल रहा था, समिति के सदस्य स्वय सीमावर्त्ती गावो मे जाकर किसानो से सारी बात का पता लगा लेने के बाद अपना निर्णय देते थे। कई बार एक ही गाव के खेतो को इस राज्य में या उस राज्य मे शामिल करने का नाजुक प्रश्न सामने आता था और उसका निपटारा कबाकाका स्वय मौके पर जाकर करते थे। एक बार जब जूनागढ और पोरबन्दर राज्य के बीच की सीमा का निर्णय किया जा रहा था, ठोयाणा ग्राम के पास भीणसार नामक छोटी नदी के किनारे पैमाइश करनेवाले सरकारी कर्मचारियो ने सीमा-रेखा बनाने के लिए ऐसे स्थल पर खूटे गाड दिये कि पूरा ठोयाणा गाव पोरबन्दर की

चौहद्दी मे पड जाता था। कवाकाका पोरबन्दर के दीवान रह चुके थे, इसलिए उनका हित इसी व्यवस्था मे निहित था। परन्तु गाव के किसानो ने जब उन्हे बताया कि ठोयाणा गाव वास्तव मे जूनागढ के क्षेत्र का है, तब कवाकाका ने वे खूटे उखडवा डाले और ठोयाणा गाव जूनागढ के प्रतिनिधियो को दिलवा दिया। आज भी ठोयाणा गाव के मुसलमान जागीरदार, जो 'खोखर परिवार' कहलाते है और जो जूनागढ के नवाब के 'छोटे सामन्त' (गरासदार) थे, कवाकाका के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है।

जब सीमा-समिति का काम समाप्त हुआ तब वाटसन साहब ने कवाकाका के प्रामाणिक और निष्पक्ष कार्य पर बहुत सतोष प्रकट किया। उन दिनो राजकोट राज्य के दो हिस्से किये गए थे। राजकोट राज्य मे पचास एकड जमीन अग्रेजो ने ९९ वर्ष के पट्टे पर ले रखी थी और वहा ब्रिटिश सरकार की सीधी हुकूमत और कायदे-कानून लागू थे। इस टुकडे के अतिरिक्त शेष राजकोट पर वहा के ठाकुर की हुकूमत थी। राजकोट की गद्दी पर उस समय ठाकुर बावाजी राज आसीन थे। उनके राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। ठाकुरसाहब के कर्मचारी राजकाज मे शिथिल थे। इसलिए वाटसन साहब ने कवाकाका को अपना दीवान बना लेने के लिए ठा बावाजीराज को परामर्श दिया और उन्होने इसे स्वीकार कर लिया।

राजकोट राज्य के दीवान के नाते कवाकाका को राजकोट एजेसी के अग्रेज-अधिकारियो से कई बार मुकाबला करना पडता था, परन्तु वह राजकोट रियासत के स्वाभिमान और हित को हानि पहुँचाने के लिए कभी तैयार नही हुए। अपनी नौकरी से हाथ धो बैठने की नौबत आने पर भी अग्रेज साहबो के क्रोध की उन्होने परवाह नही की।

राजकोट के ठाकुर बावाजीराज प्रजाहितैषी और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनका रौब-दौब काफी था और छोटे-बडे राजकर्मचारी उनसे भयभीत रहते थे। परन्तु कवाकाका के पुनीत और तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने ठाकुरसाहब भी दबते थे। ठाकुरसाहब को शराब का शौक था। परन्तु वह बडी सावधानी रखते थे कि कही कवाकाका उन्हे मद्यपान करते देख न ले। राजमहल मे मदिरासेवन की तैयारी के समय यदि द्वारपाल कवा गाधी के आने की सूचना दे देता तो ठाकुरसाहब तत्काल अपना मदिरा-पात्र लौटा देते थे और अपनी बैठक का कमरा मदिरा से शून्य करने के बाद ही कवा काका को मुलाकात देते थे। यदि कवाकाका के आने से पूर्व वह मदिरापान कर चुके होते तो उस हालत मे वह कभी उनके सामने

नही आते थे। राजा के हृदय मे अपने तेजस्वी दीवान का इतना अधिक आदर था।

रिश्वत, खुशामद आदि से कबाकाका को बडी घृणा थी। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे भी वह निश्चित वेतन के अतिरिक्त अपने पल्ले मे कुछ भी नही बाधते थे। अपने द्वारा चलाए जानेवाले राजतन्त्र में भ्रष्टाचार को दूर रखने मे कबाकाका बहुत सजग रहते थे। एक बार ठाकुर बावाजीराज ने उनसे आग्रह किया कि वह अपने लिए जितनी इच्छा हो उतनी जमीन ले ले। इस आग्रह के पीछे कबाकाका को अनुचित पुरस्कार का आभास हुआ और इस कारण उन्होंने इन्कार कर दिया। उन्होंने राजा से कहा, "मुझे मेहनताने मे जो निश्चित वेतन मिल रहा है उससे अधिक कुछ भी दान लेना मेरे लिए अशोभनीय है।" इस पर ठाकुर साहब ने उनको समझाने की कोशिश की कि आपको अपने उत्तराधिकारियो के लिए भी तो कुछ इन्तजाम कर जाना चाहिए। किन्तु कबाकाका अटल रहे। बाद मे जब परिवार के लोगो ने भी थोडी-बहुत जमीन स्वीकार करने का आग्रह किया तब बापा ने रहने के मकान के लिए जमीन का एक छोटा-सा टुकडा ले लिया।

राजकोट से उत्तर मे प्राय पच्चीस मील पर वाकानेर जकशन पडता है, जहा से रेलवे की एक शाखा मोरवी शहर को मुडती है। दो-तीन सौ फुट की ऊचाई वाली एक समतल-सी पहाडी पर वाकानेर शहर के कुछ सुन्दर मकान बने है और इसी पहाडी की तराई मे वह छोटा-सा शहर बसा है।

वाकानेर राज्य भी राजकोट की तरह सौराष्ट्र का एक द्वितीय श्रेणी का राज्य था। वह विस्तार तथा आय मे राजकोट से कुछ अधिक और आबादी मे उससे कुछ कम था। वहा का शासन-प्रबन्ध बिगड गया था। कर्मचारियो के भ्रष्टाचार के कारण वहा का राजा तग आ गया था। अनुशासनहीनता और कार्यदक्षता का अभाव दिन-दिन बढता जाता था। ऐसी दशा मे किसी सज्जन ने राजा साहब को परामर्श दिया कि यदि राजकोट से कबागाधी को बुलाकर उनके हाथ मे वाकानेर राज्य की बागडोर दी जाय तो रियासत बर्बादी से बच जायगी। कर्मचारी शीघ्र ही ठिकाने पर आ जायगे। राजासाहब को यह सलाह पसन्द आगई और उन्होंने कबाकाका के साथ बातचीत शुरु कर दी। राजकोट के दीवानपद को छोडकर वाकानेर का दीवानपद लेने के लिए कबाकाका कुछ शर्तो पर राजी हो गए। राजकोट की नौकरी से त्याग-पत्र देकर वह वाकानेर गये और वहा के

राज्य-प्रवन्ध का काम अपने हाथ मे ले लिया।

सवसे पहले उन्होने वाकानेर राज्य के चालू काम-काज का गहरा अध्ययन किया। कुछ समय वाद रियासत के आतरिक प्रवन्ध में आवश्यक परिवर्तन करना शुरू कर दिया। उनके कुछ परिवर्तन राजा साहव को पसन्द नही आए। वह अप्रसन्न हो गए और वचनवद्ध होने पर भी अपने को रोक नही पाए। उन्होने कवाकाका के प्रवन्ध मे हस्तक्षेप कर ही दिया। एक पत्र भेजकर राजासाहव ने कवाकाका को सूचित किया कि अमुक परिवर्तन ठीक नही है, उसे पूर्ववत कर दिया जाय। कवाकाका को यह पत्र वुरा लगा, परन्तु उस समय उन्होने धैर्य से काम लिया। इस घटना को पूरे दो महीने भी न वीते होगे कि राजासाहव के पास से उन्हे दूसरा पत्र मिला, जिसमे कर्मचारियो के छोटे-मोटे परिवर्तन के वारे मे उलहना दिया गया था। इस पत्र के उत्तर मे कवाकाका ने धैर्य व शाति के साथ राजासाहव को सक्षिप्त उत्तर भेजा, "मैने जो किया है, सोच-समझकर किया है और राज्य के हित के लिए ही किया है।"

थोडे समय वाद उन्होने कवाकाका के एक वडे निर्णय को उलटने के लिए ऐसा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप किया, जो कवाकाका के लिए सर्वथा असह्य था।

जमीन महसूल के रूप मे राज्य के पास जो गल्ला इकट्ठा हो जाता था उसे नीलाम करके व्यापारियो को वेच दिया जाता था और वह धन राजकोष में जमा कर दिया जाता था। नीलाम का तरीका यह था कि पडोस के राज्यो मे अनाज का भाव पूछ लिया जाता था और उसके आधार पर राज्य की ओर से गल्ला नीलाम कर दिया जाता था। कवाकाका न इस प्रथा के अनुसार अन्य राज्यो के नीलाम के भाव मगवा लिये और व्यापारियो को एकत्र करके राज्य के गल्ले की वोली शुरू करवाई। जव कवाकाका की समझ से उचित मूल्य तक वोली पहुच गई तव उन्होने अपनी जिम्मेदारी पर राजासाहव से सम्मति लिये विना ही नीलाम समाप्त कर दिया।

इस पर कुछ असन्तुष्ट कर्मचारियो ने राजासाहव से कवाकाका की शिकायत की।

शिकायत सुनकर राजासाहव सतप्त हो उठे और उन्होने कवाकाका के इस कार्य मे हस्तक्षेप करना चाहा, परन्तु उनकी चली नही।

कवाकाका के लिए अव वाकानेर मे ठहरना कठिन हो गया। राजकोट से जव उनको आमन्त्रित किया गया था तव राजासाहव के साथ वातचीत मे मध्यस्थ नवलशकरभाई थे। उनके पास कवाकाका

ने पत्र द्वारा सदेश भेज दिया कि शर्तों का प्रत्यक्ष भग किया गया है। अब मै इस राज्य मे अधिक समय रुकना नही चाहता। मुझे तुरन्त राजकोट लौट जाना है। आप मेरे लिए सवारी का प्रवन्ध करा दे। जबतक सवारी का प्रबन्ध नही होता, मै भूखा-प्यासा रहूगा। इस राज्य की सीमा से बाहर न निकल जाऊगा तबतक पानी की एक घूट भी लेना मेरे लिए अनुचित है।

वाकानेर के महाजनो ने और राजासाहब के प्रतिनिधियो ने कबा-काका को शान्त करने और मना लेने की बडी कोशिश की, परन्तु कबाकाका नही माने।

वाकानेर से कबाकाका के लौट आने के बाद प्राय दो सप्ताह बीत जाने पर राजासाहब का एक पत्र कबाकाका के पास आया। उसमे क्षमा मागी गई थी और बाकानेर का मन्त्रित्व पुन स्वीकार करने के लिए उनसे अनुरोध किया गया था। कबाकाका ने उस पत्र को ध्यान से पढा और उसमे उनको पश्चात्ताप की झलक दीख पडी। अत वे राजासाहब का अनुरोध स्वीकार करके दुबारा वाकानेर गये, परन्तु वहा मुलाकात मे जो थोडी-सी बातचीत हुई उससे उन्हे सन्तोष नही हुआ। उन्होने परख लिया कि नित्य के काम मे भी राजासाहब अपना हस्तक्षेप छोडना नही चाहते और पूरा उत्तरदायित्व सौपने के लिए दिल से तैयार नही है। इसलिए पुन वाकानेर के दीवानपद का बोझा उठाना कबाकाका ने उचित नही समझा।

उन दिनो सभी रियासतो में राज्य-कर्मचारियो का वेतन प्रतिमास नही चुकाया जाता था। पाच-सात महीने या वर्ष-डेढ वर्ष बाद राजा लोग अपनी सुविधा के अनुसार इकट्ठा वेतन चुकाया करते थे। राजकर्म-चारियो को बनियो के यहा खाता खोलने की सुविधा कर दी जाती थी, ताकि घर-खर्च चलता रहे।

इस प्रणाली के अनुसार कबाकाका को भी अपनी वाकानेर की नौकरी का वेतन तबतक कुछ नही मिला था। जब राजा ने देखा कि कबा-काका मानने वाला नही है, तब उन्होने उनसे लिखित त्यागपत्र की माग की। कबाकाका ने तत्काल अपना त्यागपत्र लिख दिया और उसमे स्पष्ट कर दिया कि "चूकि आपने दो बार मुझे धोखा दिया है और मेरे प्रवन्ध मे आपको जहा कुछ भी हस्तक्षेप नही करना चाहिए था वहा वार-बार हस्तक्षेप किया है और इस प्रकार हमारी शर्त का भग किया है, इसलिए मै मन्त्री-पद से त्यागपत्र देता हू व शर्त के अनुसार अपना पूरा वेतन

चाहता हू।"

राजासाहब को त्यागपत्र की भाषा चुभी और उन्होने त्यागपत्र लौटा दिया। फिर कबाकाका पर राजासाहब ने जोर डाला कि धोखा देने की बात का और शर्त भग का उल्लेख छोडकर केवल सीधा-सादा त्यागपत्र लिख दे, परन्तु कबाकाका ने ऐसा करने मे इन्कार करते हुए साफ-साफ सुना दिया कि जो वास्तविक बात नही है, वह क्यो लिखू ? मेरे लिए यहा से जाने का दूसरा कारण ही क्या है ?

राजासाहब ने कबाकाका से त्यागपत्र के बदलवाने का बहुतेरा प्रयास किया और न बदलने पर सारा-का-सारा वेतन न देने की धमकी दी, किन्तु कबाकाका अविचलित रहे । सत्य को छिपाकर खुशामद करने की बात पर उन्होने तीव्र विरोध व्यक्त किया ।

अन्त मे राजासाहब ने अधिक बहस करना छोडकर कहा, "आप त्यागपत्र लिखिए ही मत । आपने आजतक राज्य की जो सेवा की है उसको ध्यान मे रखकर मै आपको दस हजार रुपये देता हू। उन्हे ले लीजिए और झगडा समाप्त कीजिए ।"

कबाकाका इसके लिए भी राजी नही हुए और उसको अस्वीकार करते हुए बोले, "अगर आपको देना है तो बाकायदा मेरा त्यागपत्र स्वीकार करके शर्त के अनुसार पूरा वेतन दीजिए, अन्यथा मुझे एक कौडी भी नही चाहिए।"

राजा ने कहा, "सोच-समझ लीजिए। बिना लिखा-पढी के कोई इतनी बडी रकम सहज मे नही दे देता। सुना है, आप अपने पुत्र (यह सकेत विद्यार्थी मोहनदास गाधी के लिए था।) को पढने के लिए विलायत भेजने का विचार कर रहे है । उस समय यह रकम काम आ जायगी। अपने लिए नही तो अपने बच्चो के लिए ही सही, आप इसे ले लीजिए।"

कबाकाका ने राजासाहब की बात का दो टूक उत्तर दिया, "आप के समान कृपालु राजा-महाराजा अनेक मिल जायगे, जो अजलि भर-भरकर देने वाले होगे, परन्तु मेरे समान राजसेवक विरले ही मिलेगे, जो सचाई पर पर्दा डालने से इकार करे और इतनी बडी रकम को लात मार दे।"

राजासाहब और कबाकाका के बीच जब यह बातचीत चल रही थी तब उन दोनो की जान-पहचान के और मध्यस्थता करने वाले एक और सज्जन वहा उपस्थित थे। उन्होने कबाकाका को समझाने की कोशिश की और कहा, "राजा के रूठने पर क्या होता है, यह आप तो जानते ही है। फिर जब राजा अपनी इच्छा से आपको दस हजार रुपये दे रहे है तो

उसको स्वीकार कर लीजिए। यह रकम थोडी नही है।"

यह कहकर उन्होने कबाकाका को उत्तर देने का मौका दिये बिना ही रुपयो की थैलिया उठाकर कबाकाका की सिकरम मे रख दी। कबाकाका तुरन्त उठ खडे हुए और स्वय अपने हाथो से उन थैलियो को उन्होने सिकरम से उतार कर ड्योढी के चबूतरे पर रख दिया। इसके बाद सिकरम पर सवार होकर राजकोट के लिए चल दिए।

वाकानेर से लौट आने पर पालीताना, मागरोल आदि रियासतो से कबाकाका को निमन्त्रित किया गया। लेकिन अब इतनी दूर नई जगह जाकर नए सिरे से घर बसाने का उत्साह उन्हे नही रहा था। जब कबाकाका वाकानेर गये थे तब भी घर राजकोट मे ही था तथा बापू वहा के हाई स्कूल मे पढते थे। नौकरी का कोई सिलसिला बैठ नही रहा था, इसी बीच कबाकाका की दमे की बीमारी बढ गई और बारबार दमे के दौरे उन्हे परेशान करने लगे। इस बीमारी के समाचार सुनकर राजकोट के ठाकुरसाहब बावाजीराज कबाकाका से मिलने आये। ठाकुरसाहब को पता तो चल ही गया था कि वह नौकरी की खोज मे है। मिलने आने पर उन्होने कबाकाका से कहा, "गाधी, आपको और कही जाने का विचार नही करना चाहिए। राजकोट मे आपका अपना विशिष्ट स्थान बना ही हुआ है। बीमारी से उठने पर अपना दीवानपद सम्हाल ले।"

असल मे बात यह थी कि कबाकाका के वाकानेर चले जाने के बाद राजकोट रियासत का राज्यप्रबन्ध शिथिल-सा पड गया था और राजकोष खाली हो गया था। मेरे दादाजी ने, जो उस समय राज्य की नौकरी मे थे, बताया था कि पुलिस के महकमेवाले का वेतन पहले प्रतिमास दिया जाता था, पर कबाकाका के वाकानेर जाने पर छ-छ महीने तक उसे चुकाने की व्यवस्था नही हो पाती थी।

जब बीमारी का दौरा समाप्त हुआ और कबाकाका अच्छे हो गए तो वह राजकोट के ठाकुर के बुलावे की प्रतीक्षा करते रहे। पर शायद ठाकुरसाहब अपनी बात भूल गए थे। कई दिन बीत जाने पर भी जब बुलावा नही आया तब कबाकाका ने कही निकट ही नौकरी की तलाश शुरू की। जूनागढ जाने का निश्चय हो गया। किन्तु जाने ही वाले थे कि फिर उन्हे दमा का दौरा उठ आया। बीमारी की बात सुनकर श्रीबावाजीराज दुबारा कबाकाका से मिलने आये और स्वास्थ्य की चर्चा करते हुए उन्होने कहा, "आपके पास काम न होने के कारण बार-बार बीमारी का हमला होता है। इस बार बीमारी का दौरा कम होते ही आप मुझे खबर दे। मै आपको

मन्त्रीपद सौप दूगा।" यह कहकर ठाकुरसाहव घर लौटे और उन्होने दूसरे ही दिन वाकायदा आज्ञापत्र निकालकर कवाकाका को राजकोट के दीवानपद पर नियुक्त कर दिया।

इसके कुछ समय वाद, अपने पुत्रो के विवाह-सस्कार मे सम्मिलित होने के लिए कवाकाका को पोरवन्दर जाना पडा, परन्तु सिकरम की दुर्घटना हो गई। उसमे उन्हे वहुत चोट आई और वह वडी कठिनाई से राजकोट लौट पाए। विस्तर छोडना उनके लिए सम्भव नही रहा। इस बीमारी का ख्याल करके ठाकुर वावाजीराज ने राज्य के दीवानपद का भार स्वय सम्हाला और कवाकाका को पूरा वेतन देना जारी रखा। छ महीने तक लगातार इस प्रकार उपकृत होना कवाकाका को उचित नही लगा और उन्होने ठाकुरसाहव से त्यागपत्र स्वीकार करने को कहा। किन्तु राजासाहव ने उनकी वात नही मानी। इस प्रकार दूसरी छिमाही भी वीत गई, किन्तु चोट वहुत भारी थी और नाजुक जगह पर लगी थी, इसलिए उसमे नासूर हो गया और वह ऐसा विकट था कि कवाकाका अपने काम पर उपस्थित न हो सके।

इसी वीच वावाजी राज और उनके कुटुम्बियो के वीच जमीदारी के वारे मे कुछ मनमुटाव हो गया। इस सघर्ष मे कवाकाका ने न्याय जमीदारो के पक्ष मे देखा, इसलिए उन्होने ठाकुरसाहव से जमीदारो की वात मान लेने का आग्रह किया। ठाकुरसाहव वुरा मान गए। पर उन्होने कवाकाका से इतना ही कहा, "आपके साथ हमारा इतना घनिष्ट सम्वन्व होते हुए भी आप विरोधी पक्ष का समर्थन क्यो करते है ?"

अपना मत दवा देना कवाकाका के स्वभाव मे नही था। ठाकुर साहव से इस प्रकार वातचीत होने के तुरन्त वाद कवाकाका ने उन्हे सूचित कर दिया, "अव आप कृपया दूसरे किसी दीवान को खोज लीजिए। अव मै अधिक सेवा नही कर सकूगा। मेरा स्वास्थ्य भी सुधरने के वजाय दिन-दिन गिरता जा रहा है।" इस प्रकार कवाकाका को विस्तर पर रहने पर भी लगभग एक वर्ष तक पूरा वेतन मिलता रहा। त्यागपत्र स्वीकृत हो जाने के वाद भी तीन वर्ष तक, अर्थात् जीवन के अन्त तक, उन्हे राजकोट के ठाकुर की ओर से पेशन के रूप मे पचास रुपये माहवार मिलते रहे।

वरसो तक रोग-शैया मे रहने पर भी कवाकाका के स्वभाव मे चिड-चिडापन या वेचैनी नही आई। उनकी भक्ति-परायणता कायम थी और उनका चित्त शान्त और स्वस्थ रहता था। हमारे वापू अपने पिता की सेवा मे वडी एकाग्रता से लगे रहते थे। कवाकाका मोहनदास को 'मनु' कह कर

पुकारते थे। यदि कबाकाका को कोई आवश्यकता होती तो पहली आवाज वह मनु को ही देते थे और 'मनु' तत्काल उनके पास उपस्थित हो जाता था। प्रातःकाल उठते ही मनु अपने पिता को दतौन देता, उनके शौच हो आने का इन्तजाम करता, उनके पैर धो देता, उनको नहलाना और उनके लिए दवा पीस कर उसका नियमपूर्वक सेवन कराता। इसके बाद वह अपने स्वाध्याय में लीन हो जाता था। पुतली काकी भी कबाकाका की बहुत सेवा करती थी।

मनु और करमचन्द बापा का एक-दूसरे के प्रति बेहद प्रेम और विश्वास था। कबाकाका के अन्तिम दिनों में किसी ने उनसे पूछा, "काका, आपके बाद आपका स्थान कौन लेगा ?"

उन्होंने बहुत गम्भीर होकर धीरे से कहा, "मेरी नाक मनु रखेगा। वह कुल को उजागर करेगा।"

अपने पिताजी की सेवा करने में बापूजी स्वयं कितने कृतार्थ थे, इस पर चर्चा करते हुए बापूजी ने मुझसे एक बार बहुत ही गम्भीरता के साथ कहा था, "आजकल शिक्षा का जो प्रवाह चल पड़ा है उसकी निरर्थकता लोगों की समझ में जाने कब आयगी ? सच्चा शिक्षण सेवा में ही निहित है, हमें अपने आश्रम के विद्यार्थियों को बड़ों की सेवा करना सिखाना चाहिए। अपने शिक्षक की और मातापिता की सेवा करना कोई हजार सफों के पढ़ लेने से भी अधिक है। मैं जो उन्नति कर पाया हूं उसका श्रेय मेरी पितृसेवा को ही है। मैंने तो इतना भी नहीं पढ़ा होगा, जितना तुम लोगों को आश्रम में पढ़ने को मिल रहा है। मेरी बुद्धि का और मेरे हृदय का विकास, मेरे चारित्र्य का गठन और मेरी लगातार होती रहनेवाली प्रगति, सभी कुछ बचपन की मेरी पितृसेवा की आभारी हैं। उसी की बुनियाद पर मेरा ज्ञान पनपा है। जिसे इस बात का अनुभव लेना हो वह सेवा करके देखे। निश्चय ही सेवा में उसे अपना सर्वांगीण विकास दिखाई देगा।"

: ९ :

मेरे पितामह

मेरे दादाजी ने सन् १८५३ से लेकर १९३७ तक, अर्थात् ८४ वर्ष की सुदीर्घ आयु पाई और अपना जीवन पवित्रता से गुजारा।

उनका नाम श्रीखुशालचन्द गाधी था। श्रीउत्तमचन्द गाधी उनके दादा थे। ओतावापा के दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी को कडवीमा और दूसरी को लक्ष्मीमा कहा जाता था। कडवीमा के चार पुत्रो में सबसे छोटे पुत्र मेरे परदादा श्रीजीवन गाधी और लक्ष्मीमा के दो पुत्रो मे बडे श्री करमचन्द गाधी थे। इस प्रकार मेरे परदादा और कवागाधी सौतेले भाई थे। परन्तु मेरे दादा पर कवाकाका का वात्सल्य अपने सगे बेटे के समान ही था।

हमारे परिवार में हाई स्कूल की पढाई पूरी करने वालो मे शायद मेरे दादाजी ही सबसे पहले युवक थे। गणित के पर्चे मे पर्याप्त नम्बर न आने के कारण उनकी गिनती 'नान मैट्रिक' में की गई। लेकिन तब 'नान मैट्रिक' होना भी बडी बात थी। दादाजी के बाद उनके भाइयो मे केवल बापूजी ही मैट्रिक तक पढे व बैरिस्टर हुए।

'बापू' और 'बापूजी'—इन दोनो सम्बोधनो का अर्थ अब प्राय एक ही हो गया है। लेकिन जब मैं बच्चा था तब हमारे घर मे इनका अर्थ भिन्न था। उस समय बच्चे अपने पिता को 'बापू' और पितामह को 'बापूजी' कहते थे। इस प्रथा के अनुसार मैं अपने दादा को 'बापूजी' कहता था। दादाजी के सभी चचेरे भाइयो के लिए उनके नाम के साथ 'बापूजी' का प्रयोग करना मेरे जैसे पौत्र के लिए आवश्यक था। जब मोहनदास बापूजी के साथ हमारे घर का सम्बन्ध अति निकट का हो गया, तब उनका नाम लेना अशिष्ट माना जाने लगा। अत माता-पिता की शिक्षा मे मैं उन्हे बापूजी और अपने दादा को 'बडे बापूजी' कहने लगा। देवदासजी तथा रामदासजी अपने पिता को बचपन मे 'बापू' कहकर पुकारते थे, किन्तु मैं उनका पौत्र था, इसलिए मुझे उनको 'बापू' कहने का अधिकार नही था।

जब बापूजी देश भर के 'बापूजी' बन गए और राष्ट्र-पिता कहलाने लगे तब सारे देशवासी बापू और 'बापूजी' दोनो शब्दो का एक-सा प्रयोग करने लगे।

बडे बापूजी (मेरे दादाजी) 'बापूजी' से अठारह वर्ष बडे थे। जब बडे बापूजी चार वर्ष के हुए तब उन्होने अपनी माता की गोद खोई और चौदह बरस के होने पर उनके पिता का सहारा टूट गया। जब करमचन्द बापा पोरबन्दर के दीवान के पद पर थे उस समय जीवन बापा छाया परगने के परगना हाकिम थे। एक दिन सवेरे वे दतौन करते-करते मकान के ऊचे चबूतरे पर से अकस्मात गिर पडे और उनके सिर मे गहरा घाव हो गया। पता चलने पर कबाकाका घोडे पर दौडे हुए तुरन्त पोरबन्दर से छाया

पहुचे और अपने बडे भाई को अपने साथ पोरबन्दर लिवा ले गए। वहा पर उन्होंने बहुत चिकित्सा व सेवा-सुश्रूषा की, परन्तु जीवन बापा के लिए यह घाव विघातक साबित हुआ। उनके चल बसने पर मेरे दादाजी के माता-पिता का स्थान पुतलीकाकी और कबाकाका ने लिया और उन्होंने इतने वात्सल्य और सजगता के साथ उनको पाला-पोसा कि मेरे दादाजी को अपने निजी माता-पिता का अभाव बिल्कुल महसूस नही हुआ।

उम्र के हिसाब से मेरे दादाजी करमचन्द बापा के तीनो पुत्रो मे बहुत बडे थे, इसलिए वे घर मे सबसे बडे भाई के समान ही माने जाते थे। तीनो भाई पूरी तरह मेरे दादाजी का आदर करते थे। उनमे भी अपने से बडो के प्रति पूज्यभाव रखने वाले बापूजी ने बचपन मे ही बडे बापूजी का प्रेम और विश्वास सम्पादित कर लिया था। जब बापूजी ने अग्रेजी पढना शुरू किया उस समय घर मे मेरे दादाजी ही अकेले ऐसे थे, जिनसे थोडी-बहुत अग्रेजी पूछी जा सकती थी। इसलिए जब किसी विषय के समझने मे कठिनाई होती तो बापूजी बडे बापूजी के पास पहुच जाया करते थे।

पढ चुकने के बाद बडे बापूजी ने किसी रोजगार की तलाश शुरू की। वह विवाहित हो चुके थे। कबाकाका पर अपना जीवन-भार अधिक समय तक लादे रखना उन्हे अच्छा न लगता था। सबसे पहले उनको राजकोट रियासत के किसी भायात के लडको को पढाने का काम मिला। परन्तु वह काम सदा चलनेवाला नही था। इसी बीच राजकोट मे कोतवाल की जगह खाली हुई और दादाजी की नियुक्ति हो गई। बाद में वह रियासत भर के पुलिस सुपरिटेंडेंट हो गए। इसके बाद राजकोट मे ही म्युनिसिपल आफिसर और अन्त में राज्य के आडिटर की नौकरी उनको दी गई। शुरू से अन्त तक उन्होंने अपनी नौकरी मे अपना हाथ स्वच्छ रखा। करमचन्द बापा से उन्हे रिश्वतखोरी से अछूता रहने की जो विरासत मिली थी उसे घरेलू कठिनाइयो के बावजूद उन्होंने पूरी तरह निभाया।

दादाजी कोसो तक घोडे को भगाते हुए ले जाया करते थे, तमचे से अचूक निशाना लगाते थे और ऊट की तेज सवारी पर कई मजिल तय कर लेते थे। इसके अतिरिक्त घोडे व ऊट पर बैठकर ऊची और चौडी बाडो को कूद जाने का शौक भी उन्हें था।

जब बडे बापूजी पुलिस सुपरिटेंडेंट थे तब की एक कहानी है। उनके पास खबर आई कि राजकोट की आजी नदी के उस पार कुछ डकैत गायो को हाके लिये जा रहे है। जो-कुछ सामान और दो-चार सिपाही उस समय

उपलब्ध हुए उन्हे लेकर दादाजी तुरन्त डकैतो के पीछे चल पडे। पुलिस को देखकर डकैतो ने गोफन घुमा-घुमाकर जोरो से पत्थर बरसाने शुरू किये। फिर उन्होने खेतो की मेडो पर आग लगा दी और धुए के बादलो की ओट मे भागना शुरू किया। इस पर भी बडे बापूजी आगे ही बढते गए और अन्त मे बरसती लाठियो और पत्थरो के बीच उन्होने तीन-चार डकैतो को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद सौराष्ट्र की 'मीयाना' नाम की उस उद्दाम जाति के चोर-डकैतो का आतक राजकोट को नही भोगना पडा।

इसी प्रकार राजकोट मे होने वाली जुआखोरी को खत्म करने के लिए भी बडे बापूजी ने बहुत प्रयत्न किया।

म्युनिसिपैलिटी का काम जब दादाजी करते थे तब कभी-कभी मै उनके साथ जाया करता था। कडाके की धूप मे घटो वह राजकोट शहर की गली-गली मे घूमते थे, कूडे-कर्कट और नाली की आवश्यक सफाई स्वय खडे रहकर करवाते थे।

राजकोट के ठाकुर बावाजी राज के न रहने और नई राजसत्ता के आने पर रियासत के राजकाज मे गाधी परिवार का प्रभाव समाप्त हो गया। नए आनेवालो के बीच खुशालचन्द गाधी जैसे व्यक्ति के लिए स्थान कम रह गया था। इसलिए पेंशन की उम्र पूरी होने से पहले ही उनको नौकरी से अलग कर दिया गया। राज्य ने पेंशन कुछ भी न दी, केवल मुक्त करते समय छ महीने का वेतन अधिक दे दिया। इसके खिलाफ शिकायत करना व्यर्थ समझकर बडे बापूजी ने मन को शात रखा और पचास वर्ष से भी कम आयु मे प्रवृत्तिमय जीवन छोडकर निवृत्तिमय जीवन अगीकार कर लिया। यद्यपि उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा था व काम करने का उत्साह भी था, फिर भी कमाई के लिए नए रोजगार की खोज मे वे नही पडे और उन्होने धन-सग्रह का मोह त्याग दिया। उस समय उनके तीन पुत्र बडे होकर काम मे लग चुके थे। इसलिए घर के आवश्यक खर्च का बोझ उन्होने उठा लिया।

लगातार तीस वर्ष से भी अधिक समय तक बडे बापूजी का स्वाध्याय और पूजा-पाठ नित्य आठ-दस घटे तक चलता रहा। अस्सी वर्ष की आयु के बाद जब आख की रोशनी कम हो गई और अपने-आप पढना कठिन हो गया तब नियमपूर्वक दूसरो से पुस्तको का श्रवण करने लगे। सस्कृत और गुजराती धर्म-ग्रथो का अध्ययन बहुत गहराई के साथ उन्होने किया था। मैने देखा था कि पचहत्तर वर्ष की आयु के बाद भी उनमे नई-नई

पुस्तकें पढने और तत्वज्ञान की बारीकियो का नई दृष्टि मे अनुशीलन करने का उत्साह था। अधिक बुढापे के कारण वह दिन भर पढने और पढी हुई पुस्तको के उद्धरण लिखने के परिश्रम मे थक जाया करते थे। यह देखकर मैंने एक बार बडी नम्रता के साथ कहा, "बापूजी, अब तो आपको आराम लेना चाहिए।" मेरा प्रस्ताव उन्होंने तुरन्त अस्वीकृत कर दिया और मुझको समझाने लगे, "बुढापे मे ज्ञान-सग्रह के अतिरिक्त और काम ही क्या है, जिसमे मैं समय बिताऊ ? आज पाया हुआ ज्ञान अगले जन्म मे काम देगा। नये जन्म मे बचपन मे ही बुद्धि तेजस्वी बनेगी।"

अस्सी वर्ष की आयु के बाद जब उनकी देह जरा-जीर्ण हो गई और अग शिथिल पड गए तब भी वह ब्राह्म मुहूर्त्त मे बिस्तर छोडकर हाथ मे माला व गोमुखी ले लेते थे और स्थिरासन होकर सूर्योदय तक जप तथा चित्त को ध्यानावस्थित करने का अभ्यास किया करते थे। इसके बाद स्नानादि मे निवृत्त होने पर दुबारा पूजा मे बैठ जाते थे और मध्याह्न तक श्रीमद्भगवत गीता का पाठ व मनन किया करते थे। बीमारी का अवसर छोडकर उन्होंने चालीस वर्ष तक नित्य गीता के छ अध्यायो के पाठ का नियम रखा।

केवल धार्मिक स्वाध्याय करके ही उन्होंने सन्तोष नही माना। बापूजी के क्रातिकारी जीवन का अनुशीलन करने मे भी उन्होंने जीवन भर अपनी बुद्धि-शक्ति का प्रयोग किया। बापूजी की जिस किसी बात को वह समझ पाए व जिसमे उनको सत्य प्रतीत हुआ, उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और अपनी परिपक्व आयु मे भी अपने रहन-सहन व जीवन मे जो परिवर्तन कर सकते थे, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक किया।

बापूजी के बैरिस्टरी की शिक्षा के लिए इग्लैंड जाने के दिन बडे बापूजीने उनके साथ जो सहयोग आरम्भ किया उसे अन्त तक निभाया। एक बडा भाई, अपने से आयु मे अठारह वर्ष छोटे भाई की बात को शिरोधार्य करे और छोटे भाई के मार्गदर्शन के अनुकूल अपने पूरे जीवन मे परिवर्तन करे, ऐसा प्रसग दुर्लभ ही कहा जायगा। रियासत की नौकरियो मे अपने बालको को प्रविष्ट कराना ठीक नही है, यह बापूजी की बात बडे बापूजी ने मान ली। अफ्रीका जैसे दूर देश मे अपने पुत्रो को भेजने की बापूजी की माग को तुरन्त सम्मति दे दी और एक-एक करके चारो पुत्रो को बडे बापूजी ने बापूजी के हाथ सौंप दिया। यदि बडे बापूजी चाहते तो अपने पुत्रो को ऐसे रोजगारो मे लगे रहने का आग्रह कर सकते थे, जिसके

सहारे पर्याप्त रुपये मिल जाते और घर में लक्ष्मीजी की कृपा हो जाती, किन्तु ऐसी स्थूल अभिलाषा को उन्होने नही अपनाया और अपने बालक मोहनदास भाई की सूचना के अनुसार सत्कार्य एव सत्पथ पर बने रहे, यही मनोकामना उन्होने अहर्निश रखी।

बडे बापूजी प्रति तीन-चार वर्ष के बाद साबरमती आश्रम मे बापूजी के पास आया करते थे। उनकी भेट का भव्य दृश्य देखते ही बनता था।

दादाजी की तरह दादीजी भी बहुत भक्तिपरायण और कर्मठ थी। हमारे घर मे नौकर-चाकर कभी-कभी ही होते थे और जो आये वे भी तब जब दादीजी वृद्ध हुई और कुए से पानी लाना उनके वश का नही रहा। रसोई-पानी, चौका-बर्तन अपने हाथ से करने के उपरान्त गायो का सारा काम भी वह स्वय किया करती थी। इतना सब करने पर भी नित्य नियम से दर्शन के लिए मन्दिर आने-जाने मे सुबह-शाम मील भर से ज्यादा चला करती थी। दोपहर मे जहा भागवत की कथा हो, वहा जाती थी और रात को हमे कृष्ण-चरित की व दूसरी कथाए सुनाया करती थी। अपनी दादीजी से सुनी हुई पौराणिक कथाओ का मुझपर गहरा असर पडा है।

जब बापूजी का स्वराज्य-आदोलन तेजी पर था व सत्याग्रह के सिल-सिले मे लाठी-मार और जेल-यात्राए बढ गई थी, तब दादीजी का उत्साह दर्शनीय था। जेल जाने वाले या लाठी का प्रहार सहनेवाले युवक जब उनके पास आते तब वह उनके शौर्य को बढावा देती और उन्हे आशी-र्वाद देती। वह बिल्कुल निरक्षर थी, परन्तु अखबार मे आने वाली बातो से परिचित रहती थी और उनका लोकस्वभाव का ज्ञान गहरा था। अपने बुढापे मे उन्होने महीन कपडा त्याग दिया था और हाथ के सूत की मोटी व भारी साडी पहनना शुरू किया था।

दादीजी व दादाजी दोनो की एक महत्वाकाक्षा थी कि अपने मोहनदास भाई की अलौकिक जीवन-साधना का सफल परिणाम अपने जीवन-काल मे ही देखलें और मृत्यु से पहले ही स्वराज्य का अनुमान हो जाय। अशत. उनकी यह मनोकामना पूर्ण भी हुई। सन् १९३५-३६ मे भारत के आठ प्रान्तो मे काग्रेस का मन्त्रिमडल कायम हो गया। उनको बापूजी की इस सफलता पर बहुत सन्तोष हुआ। इसके वर्षभर बाद, कुछ ही महीने के अन्तर मे, पहले दादीजी और बाद मे दादाजी स्वर्गवासी हुए।

बडे बापूजी का अन्तकाल बडा सुखद था। मृत्यु के समय उनकी आयु ८४ वर्ष की थी। एक दिन मध्याह्न के समय गीता पर प्रवचन सुनकर

लौटने के बाद वे बैठे-ही-बैठे मूर्तिवत हो गए। कुछ देर बाद आखे खुलने पर उन्होंने बताया कि अब मुझे ससार मे किसी प्रकार की आकाक्षा नही है, केवल गीता-पाठ सुनाया जाय।

मेरे काका श्री नारायणदासजी गाधी और उनके पुत्र भाई पुरुषोत्तम गाधी उनके अन्तकाल मे उनके पास पहुच गये थे। दोनो ने मिलकर गीता-पाठ का आरम्भ किया और उसे सुनते-सुनते बडे बापूजी बाह्य जगत से निवृत्त हो गए। सास और हृदय चलता रहा और ध्यानावस्थित की भाति वह परम-शान्ति मे तीन-चार पहर लेटे रहे। इसके बाद देह से जीवन-ज्योति उड गई और मुखमडल पर एक प्रकार का शात तेज छा गया।

: १० :

बालक मोहन

विदेश से आने वाले कुछ लेखको ने बापूजी के बारे मे अपना अभिप्राय बताते हुए लिखा है, "देखने मे गाधी का शरीर रूपवान नही लगता था, किन्तु उनकी असुन्दर मुखाकृति पर भी एक प्रकार की ऐसी आभा दमकती थी कि उनके दर्शन के लिए गया हुआ व्यक्ति बहुत प्रभावित हो जाता था।" परन्तु बापू के मुख और शरीर की सुन्दरता के बारे मे मेरी दादीजी कहा करती थी कि मोहनदासभाई बचपन मे इतने रूपवान थे कि उन्हे बार-बार गोद मे लेने को जी ललचाता था। बडा सौम्य मुखडा था उनका। उनके बाल कुछ घुघराले थे और शरीर अपने पिता का-सा गोरा था। नुकीली नाक, सुन्दर आखे और भाल चौडा व चमकता हुआ था।

दादीजी ने यह भी बताया था कि वैसे तो मै मोहनदासभाई की भाभी थी, परन्तु जब मै ससुराल आई तब वह बिल्कुल छोटे थे। पुतलीकाकी का मन उनपर लगा ही रहता था और सबसे छोटे होने के कारण वह उन्हे बहुत प्यार करती थी। फिर भी बहुत बडे परिवार की गृहस्थी के काम से पुतलीकाकी को फुरसत कम मिलती थी और वह छोटे मोहनदासभाई को बहलाने-घुमाने का काम हम बहू-बेटियो के जिम्मे कर देती थी।

मोहनदासभाई साधारण बच्चो की अपेक्षा रोते कम थे, इसलिए उनको गोद मे लेकर घूमने तथा खेलने मे हमे आनन्द आता था। बाद मे पुतलीकाकी ने मोहनदास भाई की रखवाली का कार्य रम्भाबाई को सौंप दिया था। रम्भाबाई का वात्सल्य मोहनभाई पर बहुत था और मोहन-

भाई भी रम्भा से बहुत हिल गए थे।

बापूजी का जन्म होने तक उनकी दादीजी लक्ष्मीमा जीवित थी। अपने दो पुत्र करमचन्द गाधी और तुलसीदास गाधी मे से उन्होने छोटे पुत्र के साथ अपना उत्तर-जीवन विताना पसन्द किया। तुलसीदास गाधी का घरेलू नाम चकन गाधी था। कबाकाका को राजकाज का बोझ ज्यादा उठाना पडता था और बार-बार पोरबन्दर छोडकर बाहर जाना पडता था, इसलिए घर का कार्यभार हलका करने मे चकनकाका उनको भरसक सहायता देते थे। यो तो सभी भाई एक ही मकान मे रहते थे और त्यौ-हार-पर्व आदि में एक साथ भोजन करते थे, परन्तु साधारण जीवन मे सबके चौके-चूल्हे अलग-अलग थे। कबाकाका के कमरे से लगकर जो कमरा था उसीमे लक्ष्मीमा रहती थी, पर उनके खान-पान व सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध चकन काका करते थे।

कबा गाधी और पुतलीमा के बच्चो मे से प्रथम तीन तो सामान्य ढग से पल गए, परन्तु बालक मोहन ने आकर अपने माता-पिता की चिन्ता को बहुत बढा दिया। वैसे मोहन शरारत करनेवाले, दूसरो को सताने वाले या बडो को तग करने वाले नही थे, उनका स्वभाव सीधा था, परन्तु बचपन से ही उनमे फर्श पर रखे हुए पारे के जैसी चचलता थी। वह कही चैन से बैठते ही नही थे। जब देखो, भागते-फिरते थे और आखो से ओझल हो जाते थे। पुतलीमा भारी गृहस्थी के बोझ मे इतनी दबी हुई थी कि वह अपने मोहन के लिए पूरा समय नही दे पाती थी। स्वय कबाकाका भी उन पर निगरानी नही रख पाते थे। पर उनको चपल और स्फूर्ति से भरे हुए इस बालक के लिए बडी आशका रहती थी। अपनी इस चिन्ता को हलका करने के लिए उन्होने एक दिन अपने छोटे भाई चकनकाका से रम्भाबाई को प्राप्त कर लिया था।

बापूजी के बडे भाई और बहनो के नाम पिछले प्रकरण मे बता दिये गए है। उन सबके घरेलू नाम इस प्रकार थे लक्ष्मीदास गाधी—'काला', करसनदास गाधी—'करसनिया', मोहनदास गाधी—'मोनिया', और रलियात बहन—'गोकी'। बापू की इन बडी बहन को हम लोग गोकी फइबा (बुआ) कहते है।

सन् १९५२ मे जब मै बुआ से मिला तो उन्होने अपने भैया के बारे मे बहुत-सी बाते सुनाई

मै 'मोनिया' से सात वर्ष बडी हू। कालाभाई के बाद और करसनिया तथा मोनिया के पहले मेरा नम्बर था। मोनिया बहुत खिलखिलाकर हँसता

था। मै कई वार उसे गोद मे लेकर चलने की कोशिश करती थी, पर माँ मुझे डाटती थी। वह कहती थी, "तू उसे गिरा देगी",मोनिया फाटक के वाहर जाता तो मा मुझे उसके साथ नही जाने देती थी। मा खुद भी मोनिया के पीछे नहीं जाती थी। केवल रम्भावाई ही उसके पीछे-पीछे जाती थी। घर से वाहर निकलने पर गाय, घोडे, वैलगाडियो, ऊट आदि से कुचल जाने का तो खतरा था ही, उसके खो जाने का भी डर था। एक वार वह गीत गाती हुई लडकियो की टोली के पीछे-पीछे चल दिया। घर मे किसी को पता न चला। लडकिया झुड वना कर वस्ती के वाहर एक सुनसान जगह पर पूजा करने के लिए जाया करती थी। इधर पिताजी (कवाकाका) ने गावभर मे मोनिया की खोज करवा डाली। रम्भावाई ने गली-गली छान डाली और मा ने घर का कोना-कोना देख डाला, पर मोनिया न मिला। वडी देर के वाद एक जान-पहचानवाली लडकी मोनिया को ले आई। तव कही सवको शाति हुई। इसके वाद पिताजी ने रम्भावाई से कह दिया कि वह मोनिया को अकेला छोडे ही नही।

घर मे वैठना मोनिया को अच्छा नही लगता था। भूख लगने पर घर मे आता और खा-पीकर तुरन्त खेलने चला जाता। जव घर मे रहता तव पिताजी के सामने तो थोडा शात रहता, पर जैसे ही पिताजी वाहर चले जाते, घर की चीजो की उलट-पुलट करने लग जाता। कभी-कभी पिताजी की पूजा करने की जगह पहुच कर वह पूजा के वर्तनो को उलट देता। ठाकुरजी की मूर्त्ति को चौकी से नीचे रखकर वह स्वय चौकी पर वैठ जाता।

कुछ वडे हो जाने के वाद घर की जमीन पर जगह-जगह गोल-गोल लकीरें वनाने मे उसको आनन्द आता था। वडो को लिखते देखकर वह भी लिखने का प्रयत्न करता था। मा कहती, "मोनिया, ऐसा मत कर। जमीन खराव हो जायगी।" वह जवाव देता, "नही विगडती, मा।" और फिर अपने काम में मगन हो जाता था।

मन्दिर मे खेलने जाने का उसे वहुत शौक था। वहा कुआ भी था और पेड भी। वहा कही गिर न जाय, इसलिए रम्भावाई चुपके-चुपके उसके पीछे हो लेती। पर मोहनभाई उसे देखता तो पुकार उठता, "मुझे रभा नही चाहिए। मुझे रम्भा नही चाहिए।" पिताजी उसे समझाते, "रम्भा तुझे कहा पकडती है? तुझे जहा जाना है, जा। कही खो जायगा तो हम तुझे कहा ढूढते फिरेगे?" मोनिया उत्तर देता, "मै नही खो जाऊगा। मुझे रम्भा नही चाहिए, अकेला जाऊगा।" परन्तु उसको स्वतत्र घूमने मे वाधा न हो, इस प्रकार रम्भावाई उसके पीछे-पीछे जाती थी।

बदन से मोहनभाई सदैव छरहरा ही रहा। बड़े भैया और करसनभाई की तरह उसका बदन दोहरा नहीं हुआ।

खेलने में मोहनभैया अकेले रहना अधिक पसन्द करते थे। दूसरे बच्चों में खेलते तो कभी किसी बच्चे की ऐसी शिकायत न आती कि मोनिया ने मुझे मारा है या तंग किया है। कभी-कभी मोहनभैया खुद मार खाकर रोता-रोता आता, पर पिताजी या माताजी जरा पुचकार देते तो वह तुरन्त चुप हो जाता।

खेल-कूद में उसको पेड़ों पर चढ़ना अच्छा लगता था। मंदिर में लगे हुए पपीते और अमरूद के पेड़ों से वह बहुधा पके फल तोड़ लाता था। गिर पड़ने के डर से पिताजी उसे पेड़ पर चढ़ने से बार-बार मना करते, परन्तु वह मानता नहीं था। कभी-कभी बड़े भाई उसको पेड़ पर चढ़ा हुआ देखकर टांग पकड़कर नीचे उतार देते थे। तब वह रोता हुआ मां के पास चला आता और कहता, "मां, भाई ने मुझे मारा।"

मां कहती, "तू भी उसे मार ले।"

मोनिया उत्तर देता, "ऐसा सिखाती हो! क्या मैं मारूं? बड़े भाई को मारूं? मैं किसी को क्यों मारूं?"

मां कहती, "बच्चे आपस में लड़ाई-झगड़ा करते ही हैं। भाई-बहन भी आपस में मार लिया करते हैं। अगर भाई ने तुझे मारा तो तू भी मार ले!"

मोनिया उत्तर देता, "बड़े भाई भले मार लें। वह बड़े हैं। मैं नहीं मारूंगा। जो मारते हैं, उन्हें मारने से तू रोकती नहीं? मारनेवाले से न मारने को कहना चाहिए या मार खानेवाले को मारना सिखाना चाहिए?"

तब मां मोनिया से कहती, "तुझे कहां से ऐसा जवाब सूझता है? कौन ऐसी बातें तुझे सिखाता है? जाने विधाता ने तेरे लिए क्या लिखा है!"

मोनिया को जब पाठशाला में बैठाया गया तब उसका मन पढ़ने में लग गया। दूसरे बच्चे पाठशाला जाने से बचने के लिए तरह-तरह के ढोंग करते और तरकीब लड़ाते, परन्तु मोहनभैया समय होते ही खुशी-खुशी पाठशाला जाता।

बुआजी ने बताया : मेरे पिताजी मेरी मां के लिए बहुत चिन्तित रहते थे। चौथी बार की वह शादी थी। अपना वंश चलानेवाला कोई हो, इसलिए उन्होंने यह शादी की थी। पहली तीन पत्नियों से एक भी बेटा नहीं हुआ था। अब जब बेटे हुए तो पिताजी को यह आशा न थी कि बेटों की कमाई खाने के लिए वह स्वयं जीवित रहेंगे। परन्तु मां को बेटे सुखी रखें, यह उनकी

अभिलाषा थी। बार-बार पिताजी मा से कहा करते थे कि तेरी कोख का यह मानिक जरूर उजागर करेगा। यह सस्कारी है और इसका भाग्य ऊचा है। यह पढकर होशियार होगा।

पाठशाला जाने मे जिस प्रकार बचपन से ही मोहन भैया नियमित था, उसी प्रकार खान के बारे मे भी चुस्त और सादा था।

बापूजी ने पोरबन्दर की जिस प्रारम्भिक पाठशाला मे शिक्षा पाई वह हमारे परिवार के मकान से दो मिनट के रास्ते पर थी। आजकल उसमे किसी व्यापारी का कोयले का गोदाम है। पर उन दिनो पोरबन्दर मे वह महता की पाठशाला थी। वहा पर पुराने जमाने के पडित फर्श पर धूल बिछा कर उसपर अगुली से अक्षर बनाना सिखाते थे। इसलिए वह धूलि-शाला कहलाती थी।

बालक मोहन स्वभाव से ही सच्चाई का पक्षपाती था। भूल कर भी वह सत्य से विचलित नही होता था। उसके इस स्वभाव के कारण उसके साथ खेलने वाले बालको ने उसे ऊचा स्थान दे दिया था।

एक बार बालक मोहन के साथी बच्चो ने मन्दिर के खेल मे ठाकुरजी को झूला झुलाने का निश्चय किया। साधारणत ऐसे खेल के लिए गारे की मूर्ति बनाकर ठाकुरजी के स्थान पर बिठाई जाती थी, किन्तु इस बार एक-दो बालको को सूझा कि लक्ष्मीनारायण के मन्दिर मे अनेक प्रकार के ठाकुरजी सिहासन पर बैठे है, उनमे से दो-एक को उठा लाया जाय। सबको यह प्रस्ताव पसन्द आया और पाच-छ बालको की टोली लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की ओर चल पडी। उनमे दो-तीन बालक 'मोनिया' से कुछ बडे थे। दो-एक छोटे भी थे। ठाकुरजी को उठा लाने का काम सबसे छोटे साथी पर डाला गया। यहा हम उसे चन्दू कहेगे।

वह समय पुजारी के आराम का था। अत उसकी अनुपस्थिति का लाभ लेकर चन्दू ने चुपचाप एक के बाद एक देवमूर्त्ति को अपने कुर्ते के पल्ले मे रखना शुरू किया। इस पराक्रम मे मूर्तिया आपस मे टकराकर बज उठी और पुजारिन को बच्चो की कारिस्तानी की आहट मिल गई। उसने पुजारी को आवाज दी। [illegible] चन्दू वहा से नौ-दो-ग्यारह हो गया। बाकी बच्चे भी भागे और पुजारी उन्हे पकडने के लिए पीछे दौडा। एक बडे बालक ने चन्दू से इन मूर्तियो को फेक देने के लिए कहा। पुजारी की नजर बचा कर चन्दू ने इन मूर्तियो को आनन्द ब[illegible] के आगन मे फेक दिया। पुजारी के हाथ [illegible] बच्चा न [illegible]-सब हवा हो गए।

बापूजी जहा जन्मे

वाल मोहन

विद्यार्थी मोहन
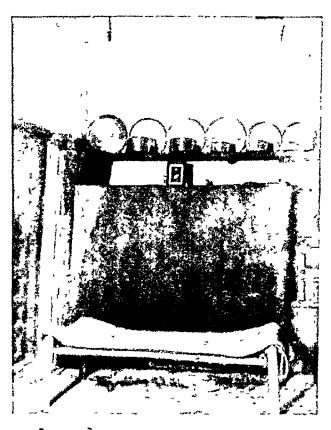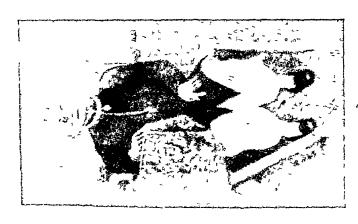
उनमे अधिकाश बच्चे गाधी-परिवार के थे और सब भाग कर अपने-अपने घर मे—ओता गाधी के मकान मे—जा घुसे। मन्दिर की नित्य पूजा की मूर्त्तियों के बिना पुजारी कैसे लौट सकता था ? अत उसने चन्दू के पिता से, जो बापूजी के चचेरे भाई थे, शिकायत की। चन्दू के पिता तेज स्वभाव के थे। शिक्षा देने के लिए बच्चो को पीटने मे उन्हे कोई सकोच नही होता था। फिर वह पक्के वैष्णव थे। लक्ष्मीनारायण के मन्दिर की मूर्त्तियो को चुराना उनकी दृष्टि मे गभीर अपराध था।

उन्होने चन्दू, उसके बडे भाई और अन्य सब बच्चो को बुलाकर पूछा, "बताओ, मूर्त्तिया किसने उठाई ? कहा रखी है ?" परन्तु किसी ने सत्य नही बताया। चन्दू के बडे भाई ने कहा, "हम मन्दिर मे खेलने गए थे। पुजारी बेकार ही हमारे पीछे पड गया है।" अन्त मे बालक मोहन को बुला कर पूछा गया तो उसने निर्भय होकर सारी बात बता दी। उसने कहा, "चन्दू ने मूर्त्तिया आनन्दबाबा के मन्दिर मे डाल दी है। कहा पर डाली है, यह वही जानता है। मन्दिर में खेल के लिए हम लोग मूर्तिया लेने गए थे।"

इस घटना से मोहन के बाल-मित्रो ने समझ लिया कि मोनिया तो ऐसा ही है। बात बना नही सकता। जैसा-का-तैसा कह देता है। इसके बाद से उन्होने बराबरी का बर्ताव करना बन्द कर दिया। इस प्रकार बाल मोहन को एक विशेष प्रतिष्ठा मिल गई। आख-मिचौनी, गिल्ली-डडा आदि खेलो मे वह बहुत तेज था।

पोरबन्दर मे जहा गाधी-परिवार का मकान है वह मुहल्ला बनियो और ब्राह्मणो का है। उसमे चार-पाच सौ कदम उत्तर की ओर 'शीतला चौक' नाम का खुला हुआ चौक है, जिसमे शीतला देवी का मन्दिर है।

उस समय उस चौक की दूसरी ओर अधिकतर मकान मुसलमानो के थे। बापूजी के एक बालबधु ने मुझे बताया कि इस शीतला चौक मे हिन्दू-मुसलमानो के लडके इकट्ठे होकर खेला करते थे। चादनी रात मे व्यालू से निपटकर इधर से हम हिन्दू बच्चे जाते और उधर से मुसलमान बच्चे आते थे। ये सब प्राय आठ-दस वर्ष की उम्र के होते थे। घटे-डेढ घटे तक सभी बालक मर्दाने खेल खेलते थे। कभी-कभी खेल मे थोडी-बहुत कहा-सुनी हो जाती थी। ऐसे समय मध्यस्थता का काम मोहन को सौपा जाता था। इस बात का कोई ख्याल नही किया जाता था कि औरो के मुकाबले उम्र मे वह छोटा और शरीर मे दुर्बल है।

स्वय मोहन को आपस मे भिडना और गुत्थमगुत्थी के खेल खेलना पसन्द नही था। वह हिन्दू या मुसलमान किसी के पक्ष मे नही खेलता था।

किन्तु जो बच्चे आपस मे जोर दिखाते थे उनका निरीक्षण वह पूरी सजगता मे करता था। किसने पटकी खाई, कौन चित हुआ, इसका फैसला वह बडी स्पष्टता से देता था। उसका निर्णय मिलने पर उसके विरुद्ध कोई बालक आपत्ति नही करता था।

यदि कभी कोई दुराग्रही बालक अड जाता और जबरन अपनी हार को जीत बताने का प्रयत्न करता तो मोहन कहता था, "बेअदबी मत करो। अलग बैठ जाओ, तुम चित हो चुके हो।"

पोरबन्दर मे गाधी-परिवार के मकान मे इतना स्थान नही था कि उसके सामने या पीछे कोई बाग-बागीचा बनाया जा सके। अत तिमजिले की खुली छत की मुडेर पर बहुत से गमले रख दिये गए थे। उनमे तुलसी के तथा तरह-तरह के फूलो के पौधे थे। उनकी हिफाजत का काम परिवार के बच्चो ने अपने बीच बाट लिया था। मोहन अपने गमलो के पौधो को सबसे अच्छा रखने के लिए बहुत परिश्रम करता था। घडे भर-भरकर तीन मजिल ऊपर पानी लेजानेमे उसे कभी थकावट नही होती थी।

बापूजी की बडी बहन गोकी फइबा बताती है कि जब हम लोग पोरबन्दर से राजकोट आए तब घर के आगन मे मोहन ने बडी सुन्दर छोटी-सी फुलवारी तैयार की थी। जब वह हाईस्कूल मे पढता था तब सवेरे टहलने जाने का और शाम को फुलवाडी मे खोदने आदि का काम नित्य नियम से करता था। राजकोट की इस फुलवाडी मे उसने अमरूद, पपीता, रीठा, आदि के वृक्ष, चौलाई, मेथी, धनिया, तुरई आदि की सब्जिया और जूही आदि फूलो की बेल व पौधे लगा रखे थे। शाम को कभी-कभी वह गेंद खेलने जाता था, परन्तु फुलवारी मे वह कसकर काम करता था। दिन भर मे वह जरा भी समय व्यर्थ नही खोता था। या तो वह अपनी पुस्तको मे डूबा रहता था या फुलवाडी मे काम करता रहता था। इसके अलावा वह निश्चित समय पर पिताजी की सेवा के लिए उपस्थित हो जाता था।

मोहन के बालजीवन को अपनी आखो से देखनेवाले उनके बालसाथी बताते है कि उसकी दिनचर्या उस समय भी व्यवस्थित थी। पूर्वाकाश मे उजाला होते ही वह उठ बैठता था। फिर प्रात विधि मे निवृत्त होने और नहाने के लिए गाव के परकोटे के बाहर पिंजरापोल के पासवाले बागीचे मे पहुच जाता था। वहा कुए पर मोट चला करती थी, इसलिए स्नान की अच्छी सुविधा थी। मोहन के अन्य बालसाथी भी वहा स्नान के लिए जाते थे और वे सब स्वय अपने कपडे धोते थे। मोहन और उसके बालसाथी गाव के ऊचे घराने के बच्चे थे। ऊचे घरानेवालो मे गाव के मोटे और हाथ से

बने-बुने कपड़े की प्रतिष्ठा घट गई थी और मिल के बने कपड़े को बढ़ावा मिल रहा था। कबा गांधी के समय में अहमदाबाद की मिल के बने 'बन्दूक छाप' धोती-जोड़े की प्रतिष्ठा थी। छोटा मोहन और उसके साथी भी इसी प्रकार की धोतियां पहनते थे। बड़े घर के ये बालक आपस में होड़ लगाते थे कि कौन अच्छी धुलाई करता है।

मोहन जैसे लड़के को भी अपने बालसाथियों की देखादेखी बीड़ी पीने का शौक हुआ। किन्तु उसकी यह विशेषता थी कि लुक-छिपकर बीड़ी पीने के बदले उसने मर जाना अधिक अच्छा समझा। जब अपनी आत्महत्या करना ठीक नहीं लगा तब अपने सत्य पर बट्टा न आने देने के लिए उसने उसे छोड़ देने की प्रतिज्ञा की।

विद्याध्ययन के समय में सुपारी न खाने का नियम मोहन ने ले रखा था। उस जमाने में पोरबन्दरवासियों में सुपारी का प्रयोग बहुत प्रचलित था। इसलिए यह छोटा-सा त्याग भी मोहन की विशेषता का प्रतीक था।

: ११ :

तरुण मोहन

पोरबंदर के एक लकड़ी के व्यापारी ने मुझे बचपन की एक घटना सुनाते हुए बताया कि एक बार मैंने मोहनभाई के अपने पिता के साथ राजकोट चले जाने के पूर्व गुस्से में भरकर जोर की चपत लगा दी। यद्यपि वे मुझसे लगभग तीन वर्ष बड़े थे, उन्होंने उलट कर हाथ नहीं चलाया। केवल मुझे अपने पिता के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया और कबागांधी ने मुझे आंख दिखाकर छोड़ दिया। इसके बाद मोहनभाई ने बदले का कोई भाव नहीं रखा। जब हमारा तरीका या खेल मोहनभाई को अच्छा न लगता था तब वे अलग से खड़े हो जाते थे और कहते थे, "ए मारु काम नहि", अर्थात् ऐसे हुड़दंग में तुम लोगों का साथ देना मेरा काम नहीं है। जब हममें से कोई ज्यादा शरारत करता था तो मोहनभाई डपटकर कहते थे, "तु उद्धत न थी", अर्थात तू उद्दंड मत बन, असभ्यता मत कर।

जब कभी विद्यार्थियों के दो दल बन जाते और उनके मुख्य लड़के आपस में द्वेष करने लगते, तब मोहनभाई उन्हें समझा-बुझाकर

उनमे मेल-मिलाप कराने का प्रयत्न करते। जब ताकतवर लडके कमजोरो को सताते तब मोहनभाई निर्बलो का साथ देते। एक ओर तो वह मित्रो की टोलियो से अलग रहते थे और जरा भी समय बेकार नही गुजारते थे, दूसरी ओर जिससे मित्रता करते थे उसके साथ उसे निभाने मे दूसरो का विरोध भी सहन कर लेते थे।

राजकोट के हाईस्कूल मे पढते के समय मे एक व्यक्ति के साथ उनकी घनिष्टता बढ गई थी। बाद मे वह उनके साथ दक्षिण अफ्रीका भी गया था। उसके नाम का निर्देश किए बिना ही 'आत्मकथा' मे बापूजीने बताया है कि जबतक उन्होने उसका अनिष्ट आचरण प्रत्यक्ष नही देखा तबतक उसके बारे मे आने वाली शिकायतो को वह अनसुनी ही करते रहे थे।

वह मित्र एक मुसलमान लडका था। मुसलमान होने के कारण नही, उसके लक्षण अच्छे न होने के कारण घरवालो ने प्रारम्भ मे ही मोहन-भाई को सचेत किया था कि वह उसकी मित्रता छोड दे। परन्तु अपने बडे भाई और अन्य हितैषियो की इस सूचना को उन्होने नही माना था और उत्तर दिया था, "मैं उसके ऐबो को सुधारूंगा, आप चिन्ता न करें।"

मोहनभाई ने जब मास खाने का निश्चय किया तब इसी लडके ने मास प्राप्त करने मे उनकी सहायता की थी, किन्तु जब उन्होने यह निषिद्ध आहार न करने का सकल्प किया तब इस मित्र के विरोध का उनपर कोई असर नही हुआ।

मोहनभाई बैरिस्टरी पढने के लिए विलायत गये तो वहा पाई-पाई का हिसाब उन्होने रखा और अपने आहार-विहार मे भरसक कमखर्ची की, परन्तु इस मुसलमान भाई की मित्रता उन्होने वहा से भी निभाई। अपना खर्च काटकर भी उसको पैसो की कुछ सहायता भेजी।

इस मित्रता के पीछे मोहनभाई की कृतज्ञता की भावना काम कर रही थी। मोहनभाई जिस पाठशाला में पढते थे उसमे छोटे-बडे लडको के बीच सघर्ष बढ जाने पर यह मुसलमान मित्र छोटो का पक्ष लेता था और अपनी शारीरिक शक्ति पर्याप्त होने के कारण बडे लडको की टेढी बातो को चलने नही देता था। ऐसे सेवाभावी बहादुर की आदते और भी सुधर जाय, यह तरुण मोहन की मनोकामना थी। परन्तु जब उन्होने अनुभव किया कि उनके अच्छे प्रयत्न व्यर्थ जा रहे है तब साप की केचुली की भाति इस मित्र से सारी घनिष्टता उन्होने तत्काल दूर कर दी।

बापूजी ने 'आत्मकथा' के 'चोरी और प्रायश्चित्त' शीर्षक प्रकरण मे विस्तार से बताया है कि किस प्रकार उन्होने माता-पिता से चुरा

कर अपने हाथ के कडे का थोडा-सा हिस्सा वेच डाला था। उसमें उन्होंने अपने पिता की क्षमावृत्ति और उदारता का परिचय कराया है।

परन्तु उनके उस समय के कठिन मनोमथन का जो आखो देखा वर्णन उनकी वडी वहन ने मुझे सुनाया, उससे उनके हृदय की दृढता का परिचय मिलता है।

गोकी फइवा ने कहा, "मुझे उस शाम की वात साफ-साफ याद है। मोनिया जब वाहर से आया तो उसके हाथ के कडे मे फूल नही था। वा-वापू (पुतलीमा-कवाकाका) दोनो को इस वात का पता चला तो उन्होंने पूछा 'मोनिया, कडा तो है, फूल क्या हुआ ? कैसे खो गया ?" इसका मोहनभाई ने इतना ही जवाव दिया, "मैं क्या जानू ?" फिर किसी ने कुछ नही कहा। "खोगया होगा" कहकर वा-वापू दोनो शान्त होगए। मोनिया को वे कभी टोकते नही थे।

फइवा ने आगे की वात वताते हुए कहा, "इसके बाद मोहनभाई अपने पढने के काम मे लग गया। परन्तु डेढ-दो घटे के वाद वह फिर वा के पास आया और उसने उनसे सही वात वता दी। वाद मे पूछा, "वा, मेरी इस भूल पर वापू मुझे मारेगे ?"

वा ने कहा, "जा, अपने वापू से भी सही वात वता दे। वे मारेगे नही। तुझे क्यो कोई मारेगा ? चाह तो तू मत कह, मै ही वता दूगी और कहूगी कि तुझे न मारे।"

मोनिया वोला, "मेरी भूल है तो मै ही वापू को वताऊगा। मुझे ही वताना चाहिए।"

ऐसा कहकर मोहनभैया वा के पास से गया और थोडी देर मे उसने एक चिट्ठी लिखकर वापू के हाथ मे दी। उसे पढकर वापू ने कहा, "कडे का फूल क्या, समूचा कडा भी यदि तू ले जाय या खो दे तो भी मेरे लिए तुझसे वढकर कडा नही है। मै तुझे नही मारूगा। मैने कभी तुझे हाथ से छुआ भी है ?"

मोनिया वोला, "लेकिन वापू, जो चोरी करे उसे मारना नही चाहिए ? मै चोर नही कहलाऊगा ?

फइवा ने कहा, "मोनिया की इस वात को सुनकर वापू रो पडे। उनकी आखो मे आसू टपकने लगे। मोनिया के लिए उनके हृदय मे वहुत प्रेम था। उसके ऊपर घर मे कोई गुस्सा नही करता था।"

राजकोट मे कवाकाका वीमार थे। पुतली वा का समय उनकी

शुश्रूषा मे अधिक बीतता था और मोहनभाई की बडी भाभी रसोई का काम सभालती थी। स्कूल जाने का समय होने पर मोहनभाई आवाज लगाते—भाभी, रसोई तैयार है ?

भाभी कहती, "दाल-भात तैयार है। शाक छौककर तवा चढा रही हू।"

मोहन कहते, "बस, जो तैयार है वही परोस दो। जो बाकी है उसकी राह देखूगा तो स्कूल आखिरी नम्बर पर पहुचूगा।" यह कहकर वह रसोई मे जा बैठते और रात की बासी रोटी खाकर स्कूल चले जाते।

कबाकाका को अपने अन्तिम दिनो मे मोहनभाई की यह आदत ठीक नही लगती थी। वे कहते थे, "मोनिया, जरा रुककर गर्म खाना खा-कर जाना। काला और करसन ताजा भोजन करते है। तू बासी मत खा। अभी रसोई हुई जाती है। देर हो जाय तो घोडागाडी मे चला जाना।"

इसपर मोहन अपने घुटनो को दिखाकर कहते, "बापू, सच्चे गाडी-घोडे तो यही है। मुझे पैदल ही जाने दीजिए। भोजन के लिए मै ठहरूगा तो मेरा नम्बर अन्तिम आयगा।"

ग्रहण के दिन हमारे घरो में खाना-पीना बन्द रहा करता था। पूरे घर की सफाई होती थी और छूत निकाली जाती थी। मा कहती, "मोहन, आज खाना नही है।" मोहन उत्तर देते, "यह नही होगा। मोनिया को खाना तो चाहिए ही। चाहे रूखी रोटी ही दे दो।" हार मानकर पुतली-मा दूध मे भाखरी[1] बनाकर रख लेती और ग्रहण का विचार न करके मोहनभाई वह खा लेते। इसी प्रकार जन्माष्टमी के दिन मोहनभाई कहते कि हमारे जन्मके दिन जब लड्डू बनते है तो भगवान के जन्म के दिन हम क्यो भूखे रहे ?

बापू के विवाह के सबध मे फइबा ने बताया कि पहले दो बार बापू की सगाई हो चुकी थी। परन्तु दोनो कन्याए छोटी आयु म ही मर गइ। उन दिनो कन्या के मरने पर श्मशान मे ही नई कन्या का तिलक किया जाता था। कस्तूरबा के साथ तिलक हुआ। तीसरी बार जब विवाह-सस्कार की बात चली तब बापूजी ने अपनी अनिच्छा प्रदर्शित की और माता-पिता से कहा, "इतनी छोटी उम्र मे शादी क्या करना है।" पिताजी ने उत्तर दिया था, "तुम अपने बच्चो की शादी बडी उम्र मे करना। मै तो तुम्हारी शादी अभी करूगा। मेरे लिए तुम अनमोल निधि हो। मुझे तो अपने जीते-

१ गेहू के आटे की मोन डालकर बनाई हुई मोटी कुरकुरी रोटी।

जी सब आनन्द मनाते है।"

उसके बाद पिता का मन रखने के लिए मोहन भाई ने शादी का विरोध नही किया। पर गोकी फइवा बताती है कि शादी के अवसर पर भी मोहन-भाई ने सादगी ही रखी। करसनभाई और दूसरे चचेरे भाई ने तो साज-शृगार किया, परन्तु मोहनभाई ने सादे कपडे पहने । उन्होने सोने का हार पहनने से इन्कार किया और कहा, "मिट्टी के इस शरीर पर पीली मिट्टी लादने से क्या लाभ !"

उन दिनो लगातार चार-पाच दिन तक सज-धज के साथ दूल्हे की सवारी निकाली जाती थी, पर मोहनभाई केवल सस्कार के लिए जाते समय पिताजी का मन रखने भर के लिए घोडे पर बैठे थे। वह विवाह सम्पन्न होने के बाद अपने विद्यार्थी-जीवन मे फिर से मग्न हो गए थे।

असमय ही कबाकाका का स्वर्गवास हो जाने के कारण मोहनभाई के विलायत जाने के मार्ग मे अनेक विघ्न आ खडे हुए। पाठक जानते है कि किस प्रकार मा ने तीन प्रतिज्ञाए लेकर मोहनभाई को विलायत जाने दिया।

परन्तु पुतलीमा अपने मोनिया की चिन्ता मे बीमार होगई और दिन-दिन उनका शरीर क्षीण होता गया। जिस दिन बापू को बैरिस्टरी की उपाधि मिलने की खबर आई उस दिन पुतलीमा अपनी रुग्ण-शैया पर बैठ गईं और पुत्र की इस सफलता पर उनके हर्ष के आसू बह चले। बडे भाई को बुलाकर उन्होने कई बार पूछा, "'मोनिया कब आयगा? अब कितने दिन है? उसका मुह देखकर मरू तो मुझे शान्ति मिलेगी।"

लोगो ने उनको धैर्य बधाने का प्रयत्न किया, पर उन्हे अपने जीवन का भरोसा नही रहा था। उन्होने कहा, "अगर मै मोनिया का मुख न ेख पाऊ तो एक बात अवश्य करना —विलायत से आने पर नासिक ले जा कर उसकी शुद्धि करवाना और उसके हाथ से राजकोट की पूरी जाति को भोज दिलाना।"

बापूजी के विलायत से लौटने पर जब उनको माताजी के देहाव-सान का समाचार सुनाया गया तो उनको बहुत धक्का लगा। वे 'आत्म-कथा' में लिखते है

"पिताजी की मौत मे जो चोट मुझे पहुची उससे अधिक इस मृत्यु-समाचार से पहुची। मेरे बहुत से मनोरथ मिट्टी मे मिल गए। "

: १२ :

पिता और काका

हमारे परिवार मे ऐसी परम्परा चली आ रही थी कि भतीजो के जीवन पर काकाओ का अधिक प्रभाव रहा। इसके अनुसार, मेरे काका श्री मगनलाल गाधी ने भी अपने मोहनदासकाका से सस्कारिता और दक्षता पाई तथा आगे चलकर बापू ने खुद मगनकाका का अपना चुना हुआ प्रथम वारिस बनाया। मुझे भी शिक्षा-दीक्षा देने मे मगनलालकाका का मुख्य हाथ था। मेरे जीवन मे तो मगनलालकाका इतने समा गए है कि जब मै पिता शब्द का उच्चारण करता हू तब पिता और काका दोनो की मूर्त्ति मेरे समक्ष उपस्थित हो जाती है।

पिता और काका दोनो भाइयो का साहचर्य, सहजीवन, सहपठन प्राय अविच्छेद्य हो गया था। दोनो की आयु मे भी अधिक अन्तर नही था। काका पिताजी से कोई दो वर्ष छोटे थे। दोनो मे अधिक प्राणवान छोटे भाई थे,इसलिए घर मे उनका ही प्रभाव अधिक रहता था। दोनोके स्वभाव मे भी बहुत अन्तर था।

पिताजी का स्वभाव छुटपन से ही शान्त और सीधा था। मगन-काका तीखे, अक्खड और उत्पाती थे। वह सुबह से शाम तक ऊधम मचाते रहते और किसी के भी वश मे नही आते थे। दोनो हाई स्कूल मे पढने लगे। पाठशाला से लौटने पर पिताजी घटो मेरे दादाजी के काम मे हाथ बटाते थे। बाजार से सौदा लाने और घर के दैनिक व्यय का हिसाब लिखने का काम उन्ही के जिम्मे था। सध्या के समय वह दूर तक टहलने जाया करते थे और देवदर्शन करके घर लौटते थे। उनको खेलकूद मे दिलचस्पी नही थी और शरीर से भी वह कुछ दुर्बल रहा करते थे। उधर मगनकाका अखाडे-बाज थे। उस समय राजकोट के नवजवानो मे दड-बैठक, मुदगल, और दूसरे मर्दानगी तथा साहस के खेलो का, अच्छा उत्साह था। अपनी मडली मे मगनकाका प्राय प्रथम रहा करते थे। अन्धेरा होने पर खेल और व्यायाम के बाद घर आने से पहले ग्वालो के घर जाकर वह गाय का पाव भर ताजा दूध अवश्य पी लेते थे। तब राजकोट आज की तरह बडा शहर नही था। वहा ग्रामजीवन ही अधिक था। वह मेरे दादाजी के घोडो और तमचो का भी लाभ उठाने मे नही चूकते थे। फलत उनका शरीर असली काठियावाडी योद्धा का-सा पुष्ट था। कक्षा मे शिक्षक जो कुछ सिखाते

पिता
श्री छगनलाल गाधी

लेखक के

काका
श्री मगनलाल गाधी

बैरिस्टर गाधी

फिनिक्स में

सत्याग्रही गाधी
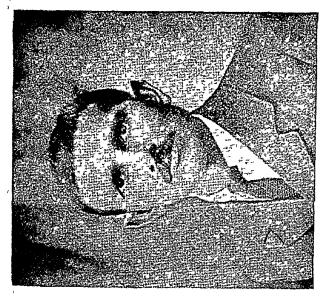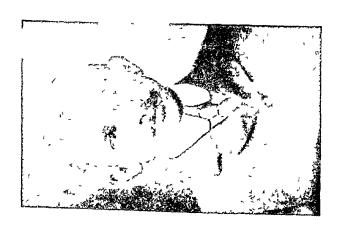
उसे वे बडी एकाग्रता से सुनकर ध्यान मे रख लेते थे और पाठशाला से लौटने के बाद पुस्तको मे हाथ नही लगाते थे।

पिताजी ने प्रथम बार सन् १९०० मे बम्बई जाकर मेट्रिक्युलेशन की परीक्षा दी, परन्तु उत्तीर्ण न हो सके। दूसरे वर्ष अहमदाबाद भी परीक्षा-केन्द्र बन गया और पिताजी के साथ मगनकाका भी मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा देने के लिए वहा गये। पिताजी उत्तीर्ण हो गए, परन्तु मगनकाका रह गए। उनको भी हाई स्कूल मे दूसरा वर्ष खर्च करना पडा। कालेज की पढाई का खर्च पूरा करना दादाजी के बूते के बाहर था। घर का आर्थिक बोझ हलका करने की भी बहुत आवश्यकता थी, इसलिए ग्रेजुएट होने का स्वप्न त्याग कर पिताजी को लाचार कुछ काम खोजने मे लग जाना पडा। उन्हे राजकोट-स्थित ब्रिटिश पोलिटिकल एजेंट के कार्यालय मे उम्मीदवार के तौर पर तीन महीने के लिए क्लर्क की नौकरी मिल गई।

जब पिताजी इस सरकारी नौकरी की तलाश मे थे, उन्ही दिनो बापूजी दक्षिण अफ्रीका से राजकोट लौटे और उन्होने वहा अपनी बैरिस्टरी जमाने का श्रीगणेश किया। उसी समय उन्होने पिताजी को अपने साथ काम मे ले लिया।

पिताजी ने मुझे बताया कि बापूजी के बारे मे उनकी सबसे पहली स्मृति तबकी है जब बापूजी इग्लैड से बैरिस्टर बन कर लौटे थे। उस समय राजकोट में एक बडा जाति-भोज हुआ था। उसमे नये बैरिस्टर बापू ने परोसने का काम किया था और पिताजी भोजन करने वाले बच्चो की पक्ति मे थे। भोज बापूजी की शुद्धि के सिलसिले मे उनके बडे भाई की ओर से दिया गया था। इग्लैड जाने मे बापू ने जो समुद्रयात्रा की उसके कारण उनको भ्रष्ट घोषित किया गया था और राजकोट की मोढवणिक जाति से वह और उनके साथ उनके भाई बहिष्कृत कर दिये गए थे। लौटने पर बडे भाई ने उन्हे नासिक ले जाकर उनकी शुद्धि करवाई थी और प्रायश्चित्त के रूप मे यह भोज देना पडा था। इस भोज मे परोसने का सत्कृत्य करने पर जाति के बडे-बूढो ने बापू को और उनके भाइयो को धर्मभ्रष्टता के पातक से मुक्त करके धर्मशीलता की मुहर प्रदान करदी। उस समय पिताजी की आयु दस वर्ष की और मगनकाका की आठ वर्ष की थी। बापूजी से वे क्रमश चोदह और बारह वर्ष छोटे थे।

बापूजी के दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना होने मे दो दिन पहले ही मगनकाका राजकोट से बम्बई पहुचे। १९०२ के नवम्बर मे उन्होने अहमदाबाद केन्द्र से मैट्रिक की दुबारा परीक्षा दी और बम्बई घूमने और

भविष्य के काम-काज के लिए बापूजी से सलाह लेने के इरादे से वह बम्बई गये थे। उनके पास पूरे कपडे भी नही थे। बापूजी से मुलाकात होते ही बापूजी ने मगनकाका से पूछा, "मेरे साथ दक्षिण अफ्रीका चलोगे ? यहा नौकरी के चक्कर मे पडने मे फायदा क्या ? वहा नया पुरुषार्थ करके स्वावलम्बी बनोगे।"

"अभी तो मेरा मैट्रिक का नतीजा ही कहा आया है।" मगनकाका ने कहा।

"पास-नापास होने की चिन्ता क्यो करते हो ? इसके पीछे दिन बरबाद करने से क्या फायदा ? पास हो जाओगे तब भी रोजगार की तलाश तो करनी ही पडेगी। यहा दर-दर ठोकरे खाने के बाद मुश्किल से नौकरी मिलेगी। नौजवानो को तो परदेश जाने का साहस करना चाहिए," बापूजी ने कहा।

"मुझे आपके साथ चलना बहुत अच्छा लगेगा, पर परीक्षा-फल की चिन्ता मन मे रहेगी। फिर भी आप कहते है तो मै चलूगा। लेकिन दो दिन के लिए मुझे पिताजी के पास राजकोट हो आने की छूट दे दें," मगनकाका ने कहा।

"अब इतना समय नही रह गया है। मै तार करके खुशालभाई से स्वीकृति प्राप्त कर लेता हू," बापू बोले।

"अच्छा, जैसा आप उचित समझे।" और इसके बाद बापूजी ने बडे बापूजी के पास तुरन्त नीचे लिखा तार भेजा, "यदि आप और देवभाभी स्वीकृति दे तो मैं मगनलाल को अपने साथ दक्षिण अफ्रीका ले जाना जाना चाहता हू।"

उत्तर मे बडे बापूजी का तुरन्त तार आया, "अगर आपको उचित प्रतीत होता हो और मगनलाल जाने को तैयार हो तो अवश्य ले जाइये।" इस प्रकार अपने माता-पिता से मिले बिना ही एकाएक मगनकाका विदेश-यात्रा को चल पडे। उनके लिए उचित कपडो आदि का प्रबन्ध पिताजी ने कुछ अपने पास से और कुछ खरीद कर किया।

इसके बाद बापूजी के साथ का दूसरा प्रसग, जिसका पिताजी को पक्का स्मरण रह गया है, हरे कवर वाली पत्रिका का था। उस पत्रिका की हजारो प्रतियो पर पते लिखने और उन्हे रवाना करने मे पिताजी से बापूजी ने कई दिन परिश्रम कराया था। यह वही पत्रिका थी जिसके कारण डरबन के बन्दरगाह पर कदम रखते ही अग्रेजो की भीड ने बापूजी पर हमला किया था।

बापूजी के सपर्क मे आने का पिताजी का तीसरा अवसर चिर-स्थायी वन गया। वह सम्पर्क कैसे बढता चला गया, इसका पता पिताजी की उस समय की डायरी के पन्नो से चलेगा, जो सयोगवश मेरे हाथ लग गई है। पिताजी ने लिखा है .

"ता १४-१२-०१—मोहनदासकाका (सारा परिवार) नेटाल से पोरवन्दर उतरे और राजकोट आये।

"ता १७-१२-०१—मोहनदासकाका कलकत्ते गये।

"ता १९-१२-०१—मेरे मैट्रिक पास होने का तार आया।

"ता १६-१-०२—डी ए पी ए द्वारा एजेसी मे दाखिल होने के लिए अर्जी देदी।

"ता २५-१-०२—अर्जी मजूर हो गई और आफिस जाना शुरू किया।

"ता २६-२-०२—कलकत्ते से मोहनदासकाका लौटे।

"ता ४-३-०२—मोहनदासकाका के टाइपराइटर पर टाइपिंग सीखना प्रारम्भ किया।

"ता १४-३-०२—शार्टहैंड शुरू किया। एजेसी मे जाना वन्द किया।

"ता १८-३-०२—मोहनदासकाका के साथ मुकदमे के सिलसिले में जामनगर गया।

"ता ३-४-०२—मोहनदासकाका के साथ वेरावल आया। प्रभास-पाटण देखा।

"ता ६-४-०२ वेरावल से लौट आये।

"ता ३०-६-०२—मोहनदासकाका का वम्बई जाना निश्चित हुआ।

"ता ५-७-०२—मोहनदासकाका ने प्लेग कमेटी की अन्तिम रिपोर्ट देदी।

"ता ७-७-०२—पोरवन्दर वाले सेठ दाऊजी और दादा अब्दुल्ला मोहनदासकाका से मिलने आये, उनको लेने स्टेशन गया।

"ता ८-७-०२—मोहनदासकाका शहर सुधार-समिति के काम मे घिरे रहे।

"ता ९-७-०२—दाऊजी सेठ और अब्दुल्ला सेठ पोरवन्दर लौटे।

"ता. १०-७-०२—वम्बई जाने के लिए मोहनदासकाका के साथ

रवाना। पढने के लिए गोकुलदास (बापूजी की बडी बहन के पुत्र) बनारस और हरिलाल गोंडल गये।

"ता ११-७-०२—बम्बई पहुचे। रेवाशकर भाई के यहा माटुगा के बगले मे ठहरे।"

इस सक्षिप्त-सी डायरी से स्पष्ट हो जाता है कि बापूजी के सपर्क मे आते ही मेरे पिताजी किस वेग से उनके प्रवाह मे बहने लगे। यद्यपि उस समय भी बापूजी अपने जीवन मे स्वार्थ-त्याग, सयम, परोपकार-भावना आदि पर जोर दे रहे थे तथापि उनकी साधुता इस हद तक नही पहुची थी कि कोई उनकी सेवा मे आत्म-कल्याण या नि श्रेयस की प्राप्ति के लिए उपस्थित हो, परन्तु बापूजी का जीवन-प्रवाह इतना ओज-पूर्ण था कि पिताजी जैसे कम स्वतत्र व्यक्तित्व वाले गगा में झरने की भाति लुप्त हो जाते थे। बापूजी के सपर्क मे आते ही पिताजी के पास मानो अपना कुछ रह ही नही गया।

बापूजी ने बम्बई मे जुलाई से लेकर नवम्बर तक के पाच महीने भी मुश्किल से बैरिस्टरी नही की कि अनपेक्षित आमत्रण के कारण उन्हे तत्काल फिर नेटाल जाना पडा। जबतक बैरिस्टरी का काम चला, पिताजी को भी अर्जिया लिखने और छोटे-मोटे मुकदमो मे क्लर्क का काम करने का उचित अश बापूजी से मिलता रहा। नेटाल से दो-तीन मास मे ही लौटनेकी बात थी, इसलिए वहा से लौट आने तक के लिए बम्बई मे बापूजी ने अपना दफ्तर चालू रखा। पूज्य कस्तूरबा के पास भी किसी के रहने की आवश्यकता थी और मणिलालकाका की पढाई का भी प्रश्न था। इसलिए बापूजी ने पिताजी को वह उत्तरदायित्व सौपा और कुछ मासिक वेतन निश्चित कर दिया। मणिलालकाका के अतिरिक्त और पुत्रो की पढाई का सवाल उस समय बापूजी के सामने नही था, क्योकि बडे पुत्र हरिलालकाका के लिए गोंडलके छात्रावास मे रहकर पढने की व्यवस्था हो गई थी और शेष दो पुत्र रामदासकाका और देवदासकाका अभी बहुत छोटे थे।

इस बार नेटाल पहुचने पर बापूजी तो कुछ ही दिन बाद ट्रासवाल चले गए और मगनकाका को उन्होने डरबनसे प्राय तीस मील की दूरी पर टोंगाट नामक कस्बे मे भेज दिया। नेटाल के आदिवासी जूलू लोगो के बीच गोरे व्यापारियो की दूकानदारी इतनी नही चल पाती थी जितनी कि भारतीयो की और उनमे भी गुजराती व्यापारियो की चलती थी। टोंगाट और स्टेंगर नामक दो कस्बे उत्तरी नेटाल के जगल मे छुटपुट झोपडो मे दूर-दूर तक फैली हुई जूलू आबादी के लिए सौदा-पत्ती करने के

मुख्य केन्द्र थे। मगनकाका के टोगाट पहुचने के चार-पाच वर्ष पहले से ही गाधी-परिवार के कुछ लोगो ने मिलकर वहा पर एक दूकान चालू कर रखी थी। उनमे करमचन्द वापा के छोटे भाई श्रीतुलसीदास गाधी के सबसे बडे पुत्र श्रीअभेचन्द गाधी मुख्य थे, जिनकी दुकान आज पचास वर्ष बाद भी वहा चल रही है।

मगनकाका टोगाट की दुकान मे एक नये साझी के रूप मे सम्मिलित हुए। मगनकाका ने पूरा परिश्रम करके थोडे ही समय मे व्यापारिक रीति-नीति सीख ली। बादमे उन्हे उस दूकान मे भेज दिया गया जो टोगाट की दूकान की शाखा के रूप मे स्टेगरके घने जगल मे चल रही थी। जगल के बीच मे वह एकाकी दूकान थी और मगनकाका के साथ उन्ही की आयु के केवल दो नौसिखिए युवक और थे। वहा पहुचने तक मगनकाका को जूलू बोली नही आती थी। यद्यपि मगनकाका का शरीर व्यायाम करते रहने के कारण कसा हुआ, गठीला और पहलवान का-सा था, फिर भी वह महाकाय जूलुओ के सामने बच्चे जैसे थे। वे काले-काले, अधनगे और लाठीधारी लोग जब दूकान मे आ बैठते थे तब भय का वातावरण छा जाता था, परन्तु मगनकाका और दूसरे दोनो साथी अपना साहस बनाए रहते थे, दिन और रात वहा जमे रहते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे वहा वह दूकान जम गई और खासी आमदनी होने लगी।

दक्षिण अफ्रीका मे दो महीने के बदले बापूजी को चार महीने बीत गए तो उन्होने पिताजी को बम्बई सूचित किया कि अब देर तक उनका भारत लौटना सभव नही होगा। बापूजी के पत्र के अनुसार पिताजी ने उनका बम्बई का कार्यालय समेट लिया और बा का आवश्यक काम कर देते तथा मणिलालकाका की पढाई का काम भी चलता रहा। लगभग एक वर्ष तक अर्थात् १९०३ के दिसम्बर मास तक यह सिलसिला चलता रहा। बाद मे पिताजी ने सोचा कि बिना काम के इस प्रकार समय बिताने और मोहनदास-काका का वेतन लेते रहना ठीक नही है। इसलिए उन्होने किसी सालिसिटर के कार्यालय में अपने लिए नौकरी पक्की कर ली। उस नौकरी में एक महीना बीतने पर दक्षिण अफ्रीका में घर बसाने के बारे मे जोहान्सबर्ग मे बा के पास बापूजी के पत्र आने लगे। बापूजी जोहान्सबर्ग में प्लेग निवारण आदि के कार्य मे इतने अधिक व्यस्त थे कि उनको पत्र लिखने का समय ही नही मिलता था। इसलिए वह अपने स्टेनोटाइपिस्ट को बोलकर पत्र लिखाते थे और वह उन्हे अग्रेजी मे टाइप करके भेज देता था। बा को ये पत्र सुनाने का काम पिताजी के ही जिम्मे था। ऐसे एक पत्र मे बापूजी ने पिताजी के

लिए भी लिखा था, "यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी वा के साथ दक्षिण अफ्रीका आ जाना।"

वा को प्रस्थान करने मे अभी विलव था, इस बीच टोगाट के एक माझी का साथ मिल जाने पर पिताजी उसके साथ डरवन जा पहुचे। वापूजी के पास ट्रासवाल पहुचना तो कठिन था, क्योकि वहा के लिए अनुमति-पत्र प्राप्त करना आसान न था। इसलिए टोगाट जाकर मगनकाका से मिल जाने के वाद पिताजी ने डरवन नगर मे अपने लिए कुछ काम खोजने का प्रयत्न किया। डरवन के गुजरातियो के साथ मिलने-जुलने पर पिताजी का परिचय श्रीमदनजी से हुआ, जो 'इडियन ओपीनियन' साप्ताहिक के सपादक थे। उन्ही दिनो वापूजी ने 'इडियन ओपीनियन' को अपने प्रचार का प्रधान साधन वनाया था और उसमे गुजराती व अग्रेजी दोनो भापाओ के लेख देते रहते थे। श्रीमदनजी उसे हिन्दी, तमिल, आदि चार भापाओ में छापकर प्रकाशित करते थे। उन्होने पिताजी को भारत से आनेवाले पत्रो से गुजराती और अग्रेजी मे समाचारो का सार तैयार करने का काम दे दिया। पिताजी का काम उन्हे पसन्द आया और धीरे-धीरे वह छापेखाने का सारा काम उन्हे सौपकर वाहर आने-जाने लगे। इस प्रकार पिताजी 'इडियन ओपीनियन' के गुजराती विभाग के सपादक वन गए और प्रतिमास आठ पौंड वेतन पाने लगे। यद्यपि पिताजी के मन मे ट्रासवाल पहुचने की और वहा की सुवर्णनगरी जोहान्सवर्ग मे कमाई करके काफी पैसा पाने की मनोकामना वनी हुई थी, तथापि कुछ ही समय मे उनके जीवन का प्रवाह वदल गया।

तीन महीने के वाद वापूजी जोहन्सवर्ग से डरवन आये। रात को एक गुजराती मित्र के घर पर व्यालू करते समय नेटाल-सवधी कई प्रश्नो पर चर्चा होती रही। इस वीच वापूजी ने उनसे कहा, "छगनलाल, तुम्हारे लिए ट्रासवाल-प्रवेश के अनुमति-पत्र की व्यवस्था मैने कर ली है। आठ दिन के अन्दर-अन्दर वह तुम्हे मिल जायगा।"

यह सुन कर मदनजी वोले, "छगनलाल को अव ट्रासवाल जा कर क्या करना है? वह तो 'इडियन ओपनियन' मे काम कर रहे है। मै अव स्वदेश लौटना चाहता हू।"

"फिर इस छापेखाने का क्या होगा?" वापू ने पूछा।

"अखवार का काम तो आजकल वेस्ट और छगनलाल कर ही रहे है। अवतक आपसे मैने जो ऋण ले रखा है, उसके वदले मे यह सारा छापाखाना मै आपको सौप देता हू," मदनजी ने उत्तर दिया।

बापूजी आये थे टोंगाट के किसी काम के लिए, पर अब यह नई चिंता उनके सिर पर आगई। मदनजी का इन्टर नेशनल प्रेस काफी घाटे मे चल रहा था और बापूजी बैरिस्टरी की अपनी कमाई मे से देशभाइयो के हित के विचार से घाटा पूरा करने के लिए काफी रकम देते रहते थे।

डरबन पहुच कर दूसरे दिन उन्होने नया सकल्प और उसे कार्यान्वित करने की योजना मेरे पिताजी को सुनाई और उसमे सहयोग करने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया। इस अनोखे प्रस्ताव मे पिताजी जितने अचम्भे मे पडे, उतने ही चिन्ता मे भी घिर गए। बापू के प्रस्ताव को स्वीकार करना कठिन जान पडता था और उनकी भली बात को अस्वीकार करना सरासर अनुचित प्रतीत होता था। पिताजी बताते थे कि उस प्रस्ताव को स्वीकार करने से पहले मुझे भारी मनोमथन मे गुजरना पडा। ट्रान्सवाल जाने की तीव्र इच्छा मेरे मनमें थी। जितना अधिक धन कमाया जा सके कमाकर बडे बापूजी के पास भेजना चाहता था। किन्तु दूसरी ओर बापूजी की प्रभावशाली बात मन को पिघला रही थी। रस्किन का बताया हुआ जीवन का उन्नत आदर्श सही प्रतीत होता था। फल-बाग लगाना, परिश्रमी और सादा जीवन बिताना, भाइयो के साथ प्रेम-पूर्वक रहना और सबसे बढकर बापूजी का नित्य सान्निध्य प्राप्त होना, मुझे बहुत अच्छा लगा। यह सारी कल्पना मुझे विशेष कल्याणप्रद प्रतीत हुई और मैने बापूजी की बात को स्वीकार कर लिया।

प्रेस को चलाने और घाटा दूर करने की चिन्ता के इस बोझ को लिये बापूजी टोंगाट गये। वहा उन्होने श्रीअभेचन्द गाधी की दूकान के पीछे लगा हुआ छोटा-सा बागीचा देखा। उससे उनके विचारो को मौलिक प्रेरणा मिली। वह सोचने लगे कि परिवार के ये सब लोग दूकानदारी मे खप रहे है, इसके बदले यदि वे पर्याप्त भूमि लेकर फलो के बाग का काम करने लगें तो वह अधिक श्रेयस्कर होगा। ऐसा करने से जीवन का यह कृत्रिम ढाचा भी मिट जायगा और आर्थिक समस्या का हल भी निकल आयगा। इस प्रकार दोनो बातें उनके मन मे एक साथ मडराने लगी। एक यह कि प्रेस का घाटा किस प्रकार दूर किया जाय और दूसरी यह कि टोंगाट की दूकानदारी के चक्कर में उलझे हुए नौजवानो को खेतीबाडी के काम की ओर कैसे मोडा जाय।

टोंगाट से लौटने पर बापूजी इस प्रश्न पर गम्भीर चितन करते हुए डरबन से जोहान्सबर्ग के लिए रवाना हो गए। जाते हुए यह बताते गए कि प्रेस की व्यवस्था के लिए वह एक सप्ताह बाद फिर से डरबन आ जायगे।

सप्ताह के बीत जाने पर जब बापूजी जोहान्सबर्ग से डरबन के लिए चले तब श्री पोलक उनको विदा करने के लिए स्टेशन तक साथ-साथ गये और ट्रेन के छूटते समय उन्होने जॉन रस्किन की छोटी-सी पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' बापूजी के हाथ मे रखदी और उनसे कहा कि इस यात्रा मे आप इसे अवश्य पढ लीजिएगा।

श्रीपोलक बापूजी के उन गोरे मित्रो मे से थे जो निरामिष भोजन के आग्रही थे और अपने जीवन को सादा और सच्चा बनाने के लिए सुबह-शाम बापूजी के साथ गहराई से मनन-चितन किया करते थे। उनकी दी हुई पुस्तक ने बापूजी के लिए गुरुमत्र का काम किया। कुछ अरसे से जो विचार बापूजी के अन्तर मे मडरा रहे थे वे अब मूर्त्त रूप मे उनके सामने आ गए। पुस्तक पढ चुकने के बाद सारी रात वह नही सो पाए। बहुत ही उग्र मनो-मथन चलता रहा। अन्त मे उन्होने नागरिक जीवन का परित्याग करके किसान के ग्राम-जीवन को अपनाने का निश्चय किया।

श्री वेस्ट ने भी बापूजी के प्रस्ताव को स्वीकार किया। चार-छ दिन के अन्दर ही फीनिक्सवाली जमीन खरीद ली गई और प्रेस को वहा ले जाने की जोरदार तैयारिया शुरु कर दी गईं।

इन्टरनेशनल प्रेस जब डरबन मे था तब श्रीवेस्ट को सोलह पौड वेतन मिलता था। एक होशियार अग्रेज कपोजीटर को अठारह पौड और दूसरो को भी काफी अच्छा वेतन दिया जाता था। फीनिक्स जाते समय इन सबमे से केवल दो व्यक्तियो को पूरे वेतन पर ले जाने का अपवाद करना पडा। बाकी सबका वेतन बहुत कम कर दिया गया। कई लोग तो फीनिक्स गये ही नही। जो गये उनमे दो अपवाद छोडकर शेष सबको प्रतिमास तीन-तीन पौड वेतन देने का नियम बनाया गया।

कुछ ही दिन बाद फीनिक्स मे प्रेस के लिए आवश्यक छप्पर खडा कर दिया गया। तब बापूजी फिर जोहान्सबर्ग से आये और आठ-दस दिन के अन्दर सारा प्रेस डरबन से फीनिक्स ले गये। प्रेस का सामान फीनिक्स पहुचने के दूसरे ही दिन टोगाट से मगनकाका और आनन्द-लालकाका भी वहा आ पहुचे। इन सबके रहने के लिए घर नही था। प्रेस की मशीने, सामान और कागजात रखने योग्य केवल एक छप्पर ही तैयार हुआ था। उस जमीन के पुराने मालिक ने नौकरो के लिए जो छोटी-छोटी कोठरिया बनवाई थी वे भी खडहर बन चुकी थी। सक्षेप मे, फीनिक्स का प्रारम्भिक निवास सर्वथा जगल का ही निवास था। रसोई आकाश की छनछाया मे करनी पडती थी और केवल खिचडी पका लेने के लिए भी कम पुरुषार्थ नही करना पडता था।

: १३ :

जंगल में मंगल

अफ्रीका एक विराट और अद्भुत भूखड है। उसके दक्षिणी भाग मे पूर्वीय तट पर नेटाल नाम का प्रान्त है। वह ब्रिटिश दक्षिण अफ्रीका मे सम्मिलित है। वहा पर समुद्र तट से लगभग ६ मील अन्दर की ओर फीनिक्स का वह स्थान है, जो इतिहास मे गाधीजी के धर्मक्षेत्र, साधनाक्षेत्र और कर्मक्षेत्र के रूप मे अमर रहेगा।

नेटाल प्रात के प्रसिद्ध वन्दरगाह और भव्यनगर डरवन से उत्तर दिशा मे जाने वाली 'नार्थकोस्ट रेलवे' पर सातवे स्टेशन का नाम फीनिक्स है। उस समय उसके आसपास कोई वस्ती नही थी। वहा गन्ने की खेती बहुत होती थी और स्टेशन से मुख्यत गन्ने का निर्यात हुआ करता था।

वापूजी ने जो भूमि ली थी वह फीनिक्स स्टेशन से केवल ढाई मील पर थी। इसीलिए उसका नाम फीनिक्स सेटिलमेंट (फीनिक्स वस्ती) रखा गया था। वहा वापूजी साधारण व्यवहार मे तो अपनी भाषा का ही उपयोग करते थे, किन्तु उस देश में अग्रेजो और अग्रेजी का प्रभुत्व था और अग्रेजो के साथ नित्य ही व्यवहार करना पडता था, इसलिए इस वस्ती का नाम अग्रेजी मे रखा गया। वहा के कार्य-कर्त्ताओ और वेतनभोगी कर्म-चारियो के लिए 'सेटिल्मेंटवासी' शब्द का प्रयोग होने लगा।

अनायास प्राप्त हुए इस 'फीनिक्स' नाम से वापूजी बहुत प्रसन्न थे, क्योकि उस समय उनके अन्तर मे जो भावना उमड रही थी वह इस शब्द से बहुत सुन्दर रूप मे व्यक्त होती थी। यूनान के प्राचीन कथाकारो ने 'फीनिक्स' पक्षी की पवित्रता, वलिदान-निष्ठा और अमरता के वारे मे वडा ही लोमहर्षक वर्णन किया है। उन कथाओ के अनुसार 'फीनिक्स' पक्षी ससार मे एक ही होता है, उसका जोडा नही होता। जव समय आता है तव वह अपनी देह को अपनी आन्तरिक ज्वाला मे उसी प्रकार भस्म कर देता है, जिस प्रकार दक्षयज्ञ मे शिवजी का स्मरण करते हुए सती ने किया था। पूरी तरह भस्म हो जाने के वाद राख की उसी राशि से पुन फीनिक्स पक्षी उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार वह सदैव अमर रहता है। वापूजी ने जिस श्रद्धा से सर्वोदय के सिद्धात अपनाये थे और उनपर अपना जीवन न्योछावर करने का सकल्प किया था, उसको मूर्त्तरूप देने के लिए फीनिक्स

की इस भव्य कल्पनावाले नाम से अधिक अच्छा नाम कौन-सा मिल सकता था ?

फीनिक्सवाली जमीन जब खरीदी गई तब उसका अधिकतर भाग घास से ढका हुआ था। दो-तीन एकड के टुकडो को छोडकर वहा कभी हल या कुदाल का स्पर्श नही हुआ था। जमीन समतल भी नही थी। प्राय सभी जगह सौ-दो-सौ फुट के ऊचे टीले थे। कुछ टीले पथरीले और ककरीले थे, किन्तु बहुत-सा हिस्सा काली मिट्टी वाला था। भूमि कभी जोती नही गई थी, इसलिए उसकी उर्वरा-शक्ति भरपूर थी। परिश्रमी किसान के लिए वह साक्षात् स्वर्ण से भी अधिक मूल्यवान थी। काली मिट्टी इतनी भुरभुरी थी कि अच्छी वर्षा हो जाने पर जोते हुए खेत मे प्राय घुटनो तक पैर धस जाते थे। चौमासे में वहा अनेक बार मूसलाधार वर्षा हुआ करती थी और छ महीने ऐसे होते थे जबकि पूरा-का-पूरा सप्ताह शायद ही सूखा बीतता हो। सूखे महीने लगातार तीन भी नही बीतते थे। जमीन के एक कोने पर छोटा-सा बगीचा था, जिसमे सतरे, आम, अमरूद, शहतूत आदि के बहुत पुराने जर्जरित पेड थे। दूसरी ओर दूर के कोने पर नाटे बबूलो का घना जगल था। उसमें हिरन, लोमडी और सेही आदि जानवर रहते थे। शेष चारो ओर घास थी। मुख्य भूमि की पश्चिमी दिशा मे एक बडा झरना था, जिसके सामने की ओर भी सस्था की जमीन थी। पूर्वी किनारेवाला नन्हा सूखा-सा झरना सस्था की पूर्व सीमा बनाता था। बडे झरने के, जो बारहो मास बहता था, दोनो किनारो पर सघन वृक्ष थे और कुछ शाखाएँ झरने पर छत्र की तरह छाई हुई थी। इन पेडो पर अनेक बार हरे रग के पतले लम्बे साप झूलते हुए नजर आते थे।

और भी कई प्रकार के साप घासपात मे, रास्तो पर व आगन मे विचरा करते थे। एक ही दिन मे पाच-पाच, छ-छ सापो से भेट हो जाना असाधारण बात न थी। ये साप कई प्रकार के थे—कोई छिगुनी के-से पतले तो कोई हाथ की कलाई से मोटे, कोई त्रिकोणाकृतिवाले, तो कोई दूर से ही मनुष्य की आखो मे विष की पिचकारी छोडनेवाले, कोई निर्दोष तो कोई जमीन से उछलकर मनुष्य के मुख पर दात मारनेवाले और उसे तत्काल खत्म कर देनेवाले। बाघ-भेडियो आदि का वहा नाम-निशान नही था। पक्षी बहुत प्रकार के थे, परन्तु उनमे मोर, कोयल, तोते, गुरगल, गौरैया और कौआ आदि का कही दर्शन भी नही होता था। ब्राह्ममुहूर्त्त से भी पहले मे गाने वाले चण्डूल, सुन्दर चित्र-विचित्र परो के सुनहले पक्षी, सख्त मिट्टी के पक्के घोसले बनानेवाले कारीगर पक्षी, लाल सीनेवाले छोटे पक्षी और

सुवह्-शाम क्षितिज मे पक्ति-वद्ध विचरण करनेवाले श्वेत वगुले आदि वहा बहुत थे। इन पक्षियो के कठ से जो सुमधुर कलरव आकाश-मडल मे आठो पहर, भिन्न-भिन्न स्वरो मे प्रतिध्वनित होता रहता था, उसके कारण फीनिक्स क्षेत्र की वह सुदीर्घ, गम्भीर एव पवित्र शान्ति और भी अधिक शातिप्रद वन जाती थी।

आदमियो के कोलाहल से भी वह भूमि शून्य थी। हा, फीनिक्स के स्टेशन से इनाडा की ओर जो पगडण्डी जाती थी उस पर सुवह्-शाम रेलवे ट्रेन के समय थोडे से आदिवासी जूलू लोग अपनी वोली मे ऊचे स्वर से वाते करते हुए निकल जाते थे। सामने वाली दूर की टेकडियो पर अलग-अलग झोपडो मे दो-चार जूलू और दो-एक गिरमिट-मुक्त भारतीय परिवार थोडी-थोडी दूरी पर वसे हुए थे। उनके दीपक का टिमटिमाना सध्या के समय फीनिक्स क्षेत्र से दीख पडता था। जव कभी भारतीय परिवार मे लडाई-झगडा हो जाता था तो उसकी एक-दूसरे को कोसने की आवाज भी सुनाई पडती थी। इसके अतिरिक्त वह स्थान पूर्णतया शात था।

जाडो मे हवा वडी तेज चलती थी और घरो के किवाडो के दरार से ऐसी पैनी आवाज निकलती थी मानो गीदड रो रहे हो। पाला वहुत पडता था। सवेरे-सवेरे घर से निकलने पर अगुलिया गल-सी जाती थी। गर्मी के दिनो मे धूप और उमस का जोर रहता था, पर लू का अनुभव याद नही आता। छोटे दिनो मे शाम को पाच-सवा पाच वजे ही सूर्यास्त हो जाता था और गर्मी के लम्वे दिनो मे शाम को सवा सात वजे तक सूर्य का दर्शन होता रहता था।

ऐसी समृद्धि मे भी पीने के पानी का भारी कष्ट था। खेतो के लिए सिचाई का कोई प्रवन्ध न था। पौधो को पानी देने के लिए लम्वे ढाल उतरकर झरने से वहगी मे पानी लाना पडता था और पीने के लिए वर्षा का पानी छप्परो के सहारे वडी-वडी टकियो मे इकट्ठा करना पडता था। झरने मे पत्तिया सडती रहती थी। इसलिए उसका पानी पिया नही जा सकता था। टीले इतने ऊचे थे कि वहा कुआ नही वन सकता था। प्रकृति की कृपा थी कि लोहे की टकियो के विलकुल खाली होने से पूर्व ही वर्षा हो जाती थी और छत का पानी उनमे भर जाया करता था। जवतक सस्था मे पक्के रास्ते तैयार नही किये गए तवतक चलना-फिरना कठिन था। एक तो घास-फूस, फिर कीचड और इससे भी वडा सकट सापो का। वाजार तो वहा से ठीक चौदह मील पर डरवन नगर में ही था। दूध भी वहा से आता था। सामने के टीलो पर रहनेवाला उत्तर भारत का गिरमिट-मुक्त

किसान कभी-कभी डेढ मील चलकर अपनी गाय का थोडा-सा दूध दे जाता था। सौदा तथा प्रेस का सामान लाने-लेजाने के लिए एक खच्चर गाडी रखी गई थी, पर स्टेशन के लिए पगडण्डी का रास्ता तो ढाई मील का था और गाडी को चार मील का चक्कर काट कर जाना पडता था।

फीनिक्स के ऐसे बीहड स्थान पर बापूजी की टोली ने अपना अड्डा जमा दिया। प्रेस का छप्पर इतना बडा था कि उसमे अग्रेजी, गुजराती, हिन्दी और तमिल भाषा के टाइपो के केस तथा दस-बारह कम्पोजीटरो के लिए स्टूल रखने की व्यवस्था हो गई। अग्रेजी व गुजराती सम्पादको के लिए अलग-अलग कार्यालय, बहीखाते, डाक आदि का अलग विभाग और बापूजी के लिए काम करने का विशेष स्थान बना दिया गया। एक साथ सोलह पन्ने छाप सकने वाली बडी मशीन ट्रेडल, काटने की मशीन, खडे-खडे काम करने की कई मेजे, ऊची-ऊची अलमारिया, आदि बहुत-सा सामान साफ-सुथरे ढग से सजा दिया गया। चारो ओर काच की खिडकिया लगाई गई थी और इतने लम्बे-चौडे छप्पर मे कही हवा या उजाले की कमी नही थी। मशीन चलाने के लिए भारी-भरकम तेल इजन था। उसके लिए अलग कोठरी बनी थी। इसी इजन के डायनमो से पूरे प्रेस मे बिजली की बत्तिया लगाई गई थी। मिट्टी के तेल के बडे लैप भी टगे थे। सक्षेप मे, प्रेस का मकान सादा था, पर उसमे सुविधाएं पर्याप्त थी। रहने की उसमे एक आदमी के लिए भी जगह नही थी। भूल से भी वहा कोई चूल्हा नही जला सकता था, न खाट या चारपाई बिछा सकता था।

साप्ताहिक के छपने का काम नियमित और व्यवस्थित हो जाने पर सभी कार्यकर्ता अपने रहने की जगह ठीक करने मे, छपाई के काम से बचने वाला समय देने लगे। कार्यकर्ताओ मे पहले-पहल दो-तीन अग्रेज, दो-चार तमिल-भाषी, दो-चार हिन्दी-भाषी, एक-दो आदिवासी जूलू नौकर और पाच-छ गुजराती थे। डरबन से जो कार्यकर्त्ता स्वेच्छासे अपना वेतन घटाकर आये थे उन सबको निजी खेती और बागीचे के लिए एक-एक, दो-दो एकड जमीन देदी गई। दो बढइयो की सहायता लेकर सभी ने अपनी-अपनी जमीन पर नालीदार चद्दरो से एक-एक कमरा खडा कर लिया। प्राय सभी ने अपने मकान टीले पर बनाए थे, इसलिए सभी सौ-पचास गज के निकटस्थ पडोसी बन गए। अपने निवास-स्थान की चारो ओर की घास को सभी ने हटा दिया और थोडा-थोडा आगन भी समतल बना लिया, इसलिए उस स्थल ने एक छोटी-सी सुन्दर बस्ती का रूप ले लिया। मकान के काम से फुरसत पाने पर सब लोग अपनी रुचि के अनुसार बागीचा लगाने मे एकाग्र

हो गए।

मेरे पिताजी और मगनकाका ने मिलकर चार एकड जमीन ली। वह अलग-अलग तीन जगह बटी हुई थी। वडा हिस्सा मुख्य टीले के ऊपर था। इस टुकडे मे टीले के ऊचे भाग पर घास निकालकर, उन्होने एक वडा चौकोर कमरा खडा किया और उसके सामने कुछ दूर पर रसोईघर का एक छोटा कमरा वनाया। झोपडो की विशेषता यह थी कि उनमे सील तथा वर्षा के पानी से वचत के लिए लकडी के चौकोनुमा ऊचे फर्श बनाये गए थे, जिससे फर्श के नीचे से गोल खभो के बीच मे होकर चौमासे का पानी निकल जाता था और फर्श पर सील नही होती थी। फर्श की ऐसी रचना के कारण चूहो की परेशानी और सापो के निवास का डर भी कम हो गया था। दीमक का त्रास वहा था ही नही। झोपडो की दीवारे नालीदार चादरो को लकडी के चौखटो पर जडकर वनाई गई थी। छत भी वैसी ही थी। यथास्थान काच की चौडी खिडकिया रखी गई थी। इस प्रकार कहने को झोपडिया होने पर भी वे सुविधा में हवादार वगलो से कम न थी।

मेरे पिताजी के जिम्मे अधिकतर अखवार के लिए लिखने-पढ़ने व वही-खातेका काम रहता था। तीसरे-चौथे दिन वह डरवन जाकर साप्ताहिक के लिए विज्ञापन प्राप्त करने, चन्दा वसूल करने और सौदा खरीदने का काम करते थे। मगनकाका दूसरे कम्पोजीटरो के साथ कपोजिंग, मशीन चलाने और दूसरी आवश्यक कारीगरी का काम करते थे। वहुत थोडे दिनो में वह इन कामो मे प्रवीण हो गए। प्रेस का समय समाप्त होते ही वह घर जाकर वढइयो के साथ जुट जाते और इस प्रकार उन्होने वढइगिरी भी सीख ली। फिर वागीचे के काम मे कस कर लग गए और फल के पौधो की वडे ही प्रेम और परिश्रम से परवरिश करने लगे। फलत दो-तीन साल मे ही हमारे घर का वागीचा नामी हो गया।

सर्वोदय-जीवन की जिस उन्नत कल्पना को वापूजी ने एक रात के जागरण व उग्र मनोमथन के वाद अपना लिया था, उसको एक वर्ष के अन्दर ही फीनिक्सवासी साहसिक युवको ने अपने प्रखर पुरुषार्थ से कार्यान्वित कर दिखाया। इसका मुख्य श्रेय वापूजी के अपने जीवन की वेगवान प्रणाली, विचारो की उन्नत और पारदर्शक स्पष्टता और उनकी सतत निष्ठा को है। नगर-जीवन के सुखो की मनोरम अभिलाषा व विपुल धन-राशि प्राप्त करने की तीव्र लालसा से विमुख वनाकर जगल मे मगलमय जीवन विताने के लिए वापूजी ने ही उन साहसिक व पुरुषार्थी युवको को लालायित किया। कदम-कदम पर उनके लिए स्पष्ट योजना वनाई, द्विविधा न हो ऐसा मार्ग-

दर्शन कराया, उनमे अटूट विश्वास, अविचल आत्मश्रद्धा और अदम्य उत्साह भर दिया।

जब रहने के लिए ठौर-ठिकाना हो गया तब बापूजी ने उन युवको को परामर्श दिया कि वे अपने-अपने परिवारो को भी फीनिक्स मे बुला ले।

: १४ :

धूमिल स्मरण

इस ससार का सर्वप्रथम आलोक मैने तब देखा जब मेरे पिताजी मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए। उन्ही दिनो पूज्य बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका से लौटकर राजकोट मे अपनी बैरिस्टरी जमाने का श्रीगणेश किया था और उन्होने मेरे पिताजी को राजकोट के अग्रेजी हाकिम की क्लर्की से बचाकर अपने साथ काम मे लगा लिया था। मेरे जन्म के समय की यह ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना साबित हुई कि मेरा भविष्य सुधर गया। वह समय सन् १९०१ के वर्ष की समाप्ति का था।

मेरा जन्म अपने नानाजी के घर पर पोरबन्दर मे हुआ था। मेरे नानाजी श्रीहीराचन्द वोरा राजकोट में सुप्रसिद्ध तथा प्रामाणिक सर्राफ थे और मुख्यत सोना-चादी का व्यापार करते थे। परन्तु देनदारो से वसूली के लिए अदालत की दहलीज पर कदम न रखने के आग्रह के कारण उनकी बहुत-सी पूजी फस गई और वह अपना रोजगार बन्द करके यात्रा को निकल गए।

बताया जाता है कि मेरे नानाजी उन प्रगतिशील व्यक्तियो मे से एक थे जिन्होने सौराष्ट्र मे अपनी कन्याओ को पहले-पहल पाठशाला में भेजा था और अपने पुत्रो को उन्होने यूनिवर्सिटी की ऊची शिक्षा दिलवाई थी।

बापूजी जब बैरिस्टरी पढने विलायत जा रहे थे तब मोढ बनियो की बिरादरी के दकियानूसी वृद्धो का मुकाबला करने मे, उन्होने बापूजी को सक्रिय सहयोग दिया था और विलायत से बापूजी के लौट आने पर राजकोट की बिरादरी मे उनका पुन प्रवेश कराने मे गाधीजी के बडे भाई को मेरे नानाजी ने बडी सहायता दी थी। धनी सेठ होते हुए भी अपनी तुलना मे निर्धन स्थिति के श्रीखुशालचन्द गाधी के पुत्र के लिए केवल सस्कारिता को देखकर अपनी कन्या को देना उस जमाने मे उनकी प्रगतिशीलता का ठोस प्रमाण माना गया था।

पोरबन्दर मे जब मेरा जन्म हुआ तब नानाजी के दिन बदल गए थे और किराये के बहुत सादे मकान मे वह रहते थे।

सुदामाजी के मन्दिर और ओतावापा के प्राचीन मकान के प्राय अधबीच मे यह मकान था। अपने बचपन मे पन्द्रह-सोलह की आयुतक मेरे मन मे इस बात का गौरव जाग्रत रहा कि मै सुदामा तथा गाधीजी के गाव का एक बालक हू। इस भावना से मुझे अनेक बार ऊचे उठने मे सहायता मिली।

अपने नानाजी के यहा किस आयु तक मै रहा, इसका मुझे पता नही। परन्तु तब के दो-तीन धुधले स्मरण अब तक मेरे चित्त पर अकित है

मगनकाका हम लोगो को लिवाकर जब फीनिक्स के लिए रवाना हुए तब मै मुश्किल से चार वर्ष का था। हिन्द महासागर की मेरी उस प्रथम यात्रा में हमारे सघ मे मगनकाका, मेरी माताजी, मेरी चाचीजी और मै मिलकर साढे तीन प्रवासी थे और दूसरे डेढ प्रवासी थे मेरे दूर के काका श्रीआनन्दलाल गाधी की पत्नी झवेर काकी और उनकी छोटी पुत्री विजया।

जब मगनकाका स्टेगर वाली दूकान छोडकर बापूजी के आमत्रण पर फीनिक्स गये तब उनके साथ आनन्दलालकाका भी दूकान और व्यापार का मोह छोडकर किसान का जीवन बिताने स्टॅगर से फीनिक्स आ गये थे।

जिस स्टीमर मे हम गये उसका रग-रूप, नाम आदि मुझे याद नही है। इतना याद है कि हमारे सघ को स्टीमर मे दो तग कोठरिया मिली थी। दिन भर मगनकाका उन कोठरियो से बाहर रहते थे, और मेरी माता, दोनो काकी और हम दोनो बच्चे कोठरी की सकरी टाड पर बिछे बिस्तर पर बैठे रहते थे। हमारी कोठरी की काच की खिडकी पर समुद्र के पानी की कोई-कोई बडी लहर जब टकराती तब डर के मारे हम सब उस सकरी टाड पर एक-दूसरे के और भी निकट सटकर बैठ जाते थे। हम लोगो का यह डर दूर करने के लिए कभी-कभी मगनकाका हमे ऊपर के खुले डेक पर ले जाते थे, डेक के किनारे लोहे का जगला उस स्टीमर पर शायद नही था। आड के लिए केवल मोटा रस्सा बाध लिया गया था। डगमगाता स्टीमर जब पानी की ओर बहुत ज्यादा झुक जाता तब ऐसा प्रतीत होता था कि बस अब वह बिल्कुल करवट लेकर पानी पर लेट जायगा और हम सब पानी मे जा गिरेगे, पर तुरन्त ही वह दूसरी ओर झुकना शुरू करता और हम गिरने से बच जाते। सारा दृश्य भयावह था, फिर भी उस समय समुद्र का दर्शन करते मुझे तृप्ति नही होती थी। मगनकाका जब लौटाकर कोठरी मे ले जाते थे तब बुरा लगता था। एक बार जब वर्षा हो

रही थी, मगनकाका हमे ऊपर वाले डेक पर टहलाने ले गये। देखते-ही-देखते समुद्र की एक बडी लहर ने डेक पर आकर झपट्टा मारा और चारो ओर पानी फैल गया और सब यात्री इधर-उधर भागे। उस समय कोहराम मच गया। मगनकाका ने मजबूती से मेरा हाथ थाम लिया, परन्तु मैंने अपनी माताजी का पल्ला नही छोडा। ऐसी विपत्ति मे मुझे अपनी माता पर ही अधिक भरोसा रहा। मगनकाका ने मुझे अपने पास लेने के लिए ज्यो-ज्यो जोर दिया, मै और भी जोर से अपनी माता से चिपका रहा। बाद मे किस प्रकार डेक से उतरकर हम लोग अपनी कोठरी मे पहुचे, इसका स्मरण मुझे नही है।

महासागर की वह लम्बी यात्रा कब पूरी हुई, हम लोग स्टीमर से कब उतरे और फीनिक्स कब पहुचे, उसका भी कोई स्मरण अब मुझे नही है। इतना याद है कि जब हम फीनिक्स पहुचे तो टीन के एक छोटे से चौकोर कमरे मे हमारा डेरा था। रात को वहा इतनी भीड हो जाती कि निकलने भर की उसमे जगह न रहती। इसलिए मै एक कोने मे दुबक कर बैठ जाया करता था। शाम की रसोई तब नही बनती थी। जगल की जमीन मे और ऊपर से बूदा-बादी का डर होने के कारण एक ही समय की रसोई मुश्किल से हो पाती थी। चिराग जलने पर घर के बडे लोग बिना कुछ खाये-पिये ही बिस्तर लगाकर लेटने के इन्तजाम मे लग जाते थे। पिताजी और मगन-काका कई बार ऊपर की टीन की छतपर भी बिस्तर लगाते थे। सब लोग जब इस काम मे लगे होते थे तब एक कटोरे मे थोडे से दूध मे भिगोई हुई डबलरोटी मेरी मा मुझे दिया करती थी, जिसे मै बडी देर तक कोने मे बैठा-बैठा स्वाद से चबाया करता था।

हमारे रहने का तग चौरस कमरा कुछ दिन बाद बदल दिया गया। उसकी छत का ढाल ऐसा बनाया गया कि बरसात के पानी का टपकना रुक जाय।

इसी मुख्य कमरे के पश्चिम मे एक बरामदा और एक कमरा और बढाया गया। पूर्व मे बाकायदा रसोईघर तैयार किया गया और उसमे धुआ निकलने के लिए ईंटो की चिमनी चिनी गई। मकान भर मे और कही ईंट-चूना काम मे नही लिया गया था। टीन और लकडी के बने इस खूबसूरत मकान मे खिडकिया काच की लगाई गई थी। उसमे लोहे की छड या जाली नही डाली गई थी, रात को भी वे खुली रहती और खिडकी के रास्ते घर मे प्रवेश करना बिल्कुल सुगम था। परन्तु उस जगल मे न कोई जानवर ही हमारे घर मे घुसा, न कोई चोर। अफ्रीका के आदि-निवासी घर

से लगी हुई सडक मे दिनरात आते-जाते थे, पर उनमे से किसी को चोरी करने का लालच नही हुआ। हमारे घर की जैसी ही रचना वाले और भी दो-तीन मकान सौ दो सौ कदम की दूरी पर तैयार हुए, जो वेस्ट साहब और आनन्दलालकाका आदि के थे।

फीनिक्स के कार्यकर्त्ता-परिवारो मे अभी कोई और लडका नही था, जिसके साथ मै खेलू। इसलिए मुझे सारा दिन अपनी माता के पास उस बडे घर मे अकेले ही बिताना पडता था। पास के घर मे आनन्दलालकाका की पुत्री विजया बहुत कम हमारे यहा खेलने आती थी, क्योकि हम लोगो को घर से बाहर निकलने मे काफी रोका जाता था।

इस मुसीबत मे नई मुसीबत यह आई कि घर में स्लेट-पेन का आगमन हुआ। अब तो मै पाच साल का हो गया था। अब मेरी पढाई शुरू हुई। उस समय की शिक्षा-पद्धति के अनुसार मुझे स्लेट पर इकाई के प्रथम अक को घटे-दो-घटे तक नित्य ही बारबार दोहराते रहना पडता था। माताजी के लिखे हुए मूल अक की लकीर को अपनी छोटी-सी पेन से दोहराते-दोहराते जब वह पौन इच मोटी लकीर बन जाती और मै बिल्कुल थक कर उदास हो जाता तब मुझपर माताजी को दया आती और वह मेरे हाथ से तख्ती छीन कर अलग रखती हुई मुझसे कहती, "जाओ, खेलो घर के बाहर।" परन्तु इस प्रकार खेलने की छुट्टी पाने पर मेरा उत्साह सूख जाता और खेल-कूद के बदले घर के पास ही मै थोडा-सा चक्कर लगाता। शाम के समय जब आनन्दलालकाका के यहा से विजया आती तब जैसे वह खेलती-कूदती, मै भी उसके साथ-साथ कुछ खेल लेता।

प्रत्येक सध्या को आकाश मे ज्यो-ज्यो अधेरा बढने लगता त्यो-त्यो मेरे सिर पर सकट मडराने लगता। एक से लेकर सारी गिनती मुझे उस समय बडो को सुनानी पडती थी। विजया एक सास में कुल गिनती सुना देती पर मुझसे कई भूले हो जाती। वैसे भी मै आयु मे बडा था और फिर लडका ठहरा! इस कारण, मेरी भूल जरा भी सहन नही की जा सकती थी। बारबार डाट-डपट कर मुझे सुनाया जाता "लाज ही नही है बेशरम को! तुझसे तो यह लडकी होशियार है!" "निरा बुद्धू ही है, बेहतर था कि लडकी ही जनमता।"

अगर पाठ लेते समय मै अकेला होता और विजया न होती तो मुझे बडा अपमान सहन करना पडता था। तब मेरी मदबुद्धि के लिए घर के बडे लोग बडा अफसोस प्रकट करते थे और विजया की बुद्धिमत्ता की बडी प्रशसा करते थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि गिनतिया याद होनी तो अलग रही, उसके प्रति मेरी अरुचि बढने लगी। खुद इकाई-दहाई रटके होशियार बनने की आकाक्षा मेरे मन मे पैदा न हुई, पर विजया की होशियारी पर मुझे रोप होने लगा, यहा तक कि जब वह अपने ताऊजी के घर चार-पाच दिन के लिए टोंगाट जाती थी तब मै मन-ही-मन मानता रहता था कि वह अब लौट कर फीनिक्स न आवे।

धीरे-धीरे मेरी पढाई, अर्थात् गिनती लिखने और सुनाने की विद्या, कसम खाने भर को आगे बढी, लेकिन घरवालो को उससे सन्तोष नही हुआ। मै सुस्त विद्यार्थी न रहू, तेज विद्यार्थी बन जाऊ, इसके लिए वे सब अधीर हो उठे और मुझे सुस्त से चुस्त बनाने का बीडा मगनकाका ने उठाया। मै भुलक्कड न रहू, मेरा प्रमादीपन सत्वर दूर हो जाय और बचपन से ही मै तेजस्वी विद्यार्थी बन जाऊ, इस आकाक्षा से रोज सध्या को घटा-दो-घटा मेरे लिए मगनकाका श्रम करने लगे।

जब मेरी माताजी पढाती, तब वह भी मुझे अप्रिय लगती थी, पर जब मगनकाका ने मुझे अपने हाथ मे लिया, तब मेरे मन का भय बहुत बढ गया और मै उनकी निगाह से बचने की कोशिश करने लगा।

प्रात काल से लेकर शाम तक मगनकाका मुद्रणालय मे और घर के बागीचे मे कठोर परिश्रम करते और शाम को घर आकर सोने से पहले मुझे पढाने का काम करते। थके-थकाये तो वह होते ही थे, उस पर जब गिनती सुनाने मे मुझसे भूल हो जाती तब उनका क्रोध उमड पडता। वह मुझ पर धमकते और अपनी सारी ताकत से मेरा कान पकड कर उसे इस हद तक ऐंठते कि मेरे पैर जमीनसे ऊपर उठ जाते। कुछ क्षण बाद उनके क्रोध मे और भी बाढ आती और मेरा कान छोडकर वह तडातड मेरे दोनो गालो पर चार-पाच तमाचे लगा देते। ऐसा मालूम होता मानो गाल पर अगारे धर दिये हो, पर मुझे यह साहस नही होता था कि अपने हाथ से मै अपने गाल को सहला लू। अश्रुधारा चलती हो, गला सूख रहा हो, फिर भी पाषाण मूर्त्ति के समान निश्चल खडा रहकर गिनती सुनाने का प्रयास मुझे चालू रखना पडता था। लेकिन जब मेरा चित्त ही विह्वल हो उठा हो तब बिना भूल के गिनती सुनाना कैसे सभव हो सकता था। नतीजा यह होता कि काका की क्रोधाग्नि और भी भडक उठती और उस समय जो भी डडा-लकडी उनके हाथ पड जाती उससे मेरे हाथ-पीठ आदि की काफी मरम्मत हो जाती।

किसी-किसी दिन मुझे भरपूर पीट डालने पर भी काका का क्रोध शात नही होता था, तब मुझे नसीहत देने के लिए वह नया उपाय काम मे लाते थे।

चार-पाच वार यह प्रयोग उन्होने किया होगा । हमारे घर के वरामदे मे लकडी का एक बडा वक्स पडा रहता था, उसे खाली करके वह मुझे उसमे वन्द कर देते थे । लकडी के उस सन्दूक मे वडी-वडी दरारे थी, इसलिए मुझे हवा तो मिल जाती, पर मेरा नन्हा-सा जी वेहद व्याकुल हो जाता । मै वहुत छटपटाता,हाथ-पैर पटकता, उस भारी ढक्कन को लाते मार-मार कर खोलने का प्रयास करता और चिल्लाता, परन्तु मेरी इन चीखो को उनके हृदय तक पहुचने से उनका प्रचड क्रोध रोक लेता था । मेरी यह ताकत कहा कि मै उस ढकने को जोर लगा के खोल दू, जिसको मेरे पहलवान काका ने अपने पैरो से दवाया हो । मेरी माता और काकी की आखो से भी अश्रु वहते, परन्तु किसी का साहस नही था, जो क्रोव भरे मगनकाका से कुछ कहे ।

जव मेरी कुछ न चलती तव हार मान कर, थक कर, मै उस वक्से में चुप पड जाता । थोडी देर वाद अपने आप जव काका क क्रोध का आवेग कुछ कम होता तव वक्से के ढक्कन पर से उतर कर मगनकाका उसे खोल देते और मुझे वाहर निकाल कर खडा करते ।

ऐसी पिटाई और सजा से जव मुझे छुट्टी मिलती तव सध्या वीत जाती, आकाश में गाढा अन्धकार छाया हुआ रहता । मै मूढवत आकाश को देखता रहता । मगनकाका मुझे छोडकर जव अपने कमरे मे चले जाते तव मुझे भरोसा होता कि अव और पिटाई न होगी ।

माताजी मेरा हाथ पकड कर मुझे ले जाती, नहला-धुलाकर नये कपडे पहनाकर सुला देती । पिताजी प्राय घर मे रहते ही नही थे । वह आवी रात तक मुद्रणालय मे उलझे रहते थे और वैसे भी मगनकाका के अनुशासन मे वाधा डालना उन्हें उचित नही लगता था ।

ताडना के इस प्रसग के कारण जितना कष्ट और उद्वेग मारखाने वाले चित्त पर कायम रहा उससे सौ गुना अविक पछतावा और दुख मारने वाले के चित्त पर रहा ।

उस प्रसग को याद करके मगनकाका कहा करते थे, "उस समय मै सचमुच नर-राक्षस ही था । अगर वापूजी ने मेरा यह जगली स्वभाव वदल न दिया होता तो उस क्रोधाधता ने न जाने कितने पाप आज तक मेरे हाथ से करवाये होते ।"

नित्यप्रति वरसती रहनेवाली इस कठोरता ने मेरी वुद्धि के द्वार खोलने मे नाममात्र सहायता भी नही पहुँचाई । मेरी मन स्थिति ऐसी हो गई कि अपनी माता, काकी, पिता आदि किसी के पास जाने का, वात करनेका मुझे साहस नही रहा । घर मे कही कुछ अच्छा नही लगता था, खाते समय

थाली में जो परोसा जाता, चुपचाप खा लेता, जितना समय तख्ती लिखने के लिए बाध्य किया जाता, लिख लेता और बाकी का सारा समय घर से बाहर दूसरे आदमियो के साथ बिताने के लिए मेरा जी छटपटाता रहता। दु ख की बात यह थी कि फीनिक्स भर मे जो एकमात्र समवयस्क बालक विजया थी वह भी हमारे घर आती तो अपनी माता के हाथ अक्सर पिट जाती। उसकी माता कुछ-न-कुछ घर-काम मे उसे लगा रखती थी और जरा-सी गलती होने पर बेलन या और जो चीज हाथ आवे वह उस पर फेक कर उसे मारती थी। मुझे स्वय विजया के यहा जाने में अपने घर वालो का डर लगता था। फिर मेरे मन मे यह भावना जाग्रत कर दी गई थी कि लडका होकर लडकी के घर खेलने जाना शरम की बात है। सार यह कि घर वालो के अतिरिक्त किसी अन्य मनुष्य के सहवास के लिए मैं बहुत तरसता रहता था।

मेरी यह कामना तब पूरी होती जब डरबन से कुछ मित्र मेरे पिताजी और काका से मिलने फीनिक्स आते और दिन भर हमारे यहा अतिथि बनकर रहते। महमान का आना मेरे लिए होली-दिवाली के त्यौहारो का-सा सुखद होता था। महमानो के साथ मिलकर जब मगनकाका हास्य-विनोद और गाना बजाना करते तब वहा से उठ कर मैं कही नही जाता था। उस सध्या को गिनती सुनाने के सकट से भी मुझे मुक्ति मिल जाती और जब अतिथि लोग फीनिक्स से लौट जाते तब मेरा मन भारी हो जाता।

अतिथियो के आगमन की भाति रविवार का आगमन भी मुझे बहुत अच्छा लगता था। मगनकाका का स्वभाव कुछ आधी-पानी का-सा था। जब आधी उठती है तब ऐसी खतरनाक मालूम देती है मानो पूरे-के-पूरे जगल को जड से उखाड फेकेगी। बडा पेड या छोटा पौधा कुछ भी नही बच पायगा, परन्तु जब आधी का उन्माद शात हो जाता है तब शीतल-मद-सुगध वायु से वातावरण भर जाता है और सर्वत्र आनन्द छा जाता है।

इसी प्रकार जब मगनकाका का क्रोध मिट जाता तब वह सबका आनन्द-विनोद भी बहुत कराते थे। रविवार को दोपहर के बाद घर के सब लोग मिलकर घूमने जाते थे। माता, काकी और दूसरी बहनें जगल की पगडडी पर दौडती। जो आगे निकल जाती उसको सबकी बधाई मिलती। मगन-काका किस्म-किस्म के फल-पौधो की पहचान कराते। चार-पाच मील उस दिन हम लोग चलते। जब मैं थक जाता तब बारी-बारी से पिताजी और मगनकाका मुझे कधे पर बिठा लेते। फिर तो मैं चारो ओर वनराजि की शोभा देखता। बादलो मे खेलता हुआ सूरज देखता और मगनकाका भी

मुझे सुन्दर-से-सुन्दर दृश्य दिखाते। उस समय वेखटके मैं पूछता कि यहा अमरूद किसने बोया ? सबसे पहला बीज किसने बनाया ? यह अधेरा कहा से आगया ? केले में बीज क्यो नही है ? इन बातो का उत्तर जरा भी गुस्से के बिना पिताजी और काका देते तथा मेरी जिज्ञासा का समाधान करने का प्रयत्न करते।

इस प्रकार मेरा पाचवा वर्ष एक ओर से अतीव शुष्क बीता और दूसरी ओर महीने मे चार-छ बार आनन्द के दिनो का भी अनुभव मे करता रहा। एक ओर गणित की कठोर और दुर्बोध विद्या के पीछे मेरा मन मुर्झा गया और दूसरी ओर फीनिक्स के आसपास की वन-श्री तथा पक्षियो की ओर मेरी दिलचस्पी बढने लगी।

: १५ :

कस्तूरबा का आगमन

अपने घर की चहारदीवारी के भीतर जब मेरी जान बहुत तग आ गई, घर वालो के पास बैठ कर बात करने का साहस नही होता था और घर से बाहर और किसी से बोलने-खेलने का मौका ही नही था, तब वहा के वातावरण मे एक के बाद दूसरा परिवर्तन हुआ और मेरा मन खिल उठा।

दो नवयुवक फीनिक्स मे आये : हरिलालकाका और गोकुलदासकाका। मैं उनके सामने बिल्कुल बच्चा ही था और वे भरे-पूरे जवान मालूम होते थे। श्रीहरिलाल गाधी बापूजी के सबसे बडे पुत्र अर्थात् पिताजी के चचेरे भाई और श्रीगोकुलदास बापूजी की बडी बहन गोकी फइबा के इकलौते पुत्र अर्थात् पिताजी के फुफेरे भाई थे। इस प्रकार अब मुझे मगनकाका के अतिरिक्त दो छोटे काका ऐसे मिले जो मुझे डाटते-डपटते नही थे, बल्कि प्रसन्न रखते थे। बारी-बारी से अपनी साइकिल पर बैठाकर मुझे फीनिक्स स्टेशन तक घुमा लाते थे। मैं ठीक तरह बैठ सकू, इसके लिए वे साइकिल के डडे पर मुलायम तकिये बाध लेते थे।

जहा तक मुझे स्मरण है, इन दोनो के पास उस समय फीनिक्स मे कोई काम या उत्तरदायित्व नही था। शायद वे कुछ दिन भ्रमण के लिए ही फीनिक्स आये थे। अच्छे-अच्छे कपडे पहनने मे दोनो एक-दूसरे से बढकर थे। फिर भी मुझे ऐसी याद है कि गोकुलदासकाका हरिलालकाका से कपडो आदि

की शान मे बढ जाते थे। हरिलालकाका के बाल घुघराले थे, पर गोकुलदास-काका के बालो की माग तथा उन्हे बनाने का ढग मुझे अधिक अच्छा लगता था। दोनो के हास-परिहास मे हरिलालकाका का हास-परिहास बढकर रहता था, परन्तु मुझ पर गोकुलदास काका की मद मुस्कराहट का प्रभाव अधिक पडता था। गोकुलदासकाका के साथ-साथ घूमने-फिरने में मुझे अधिक आनन्द आता था। वे लोग कुछ सप्ताह, या दो-चार महीने, फीनिक्स मे रहकर चले गए थे। बापूजी के पास जोहान्सबर्ग गये अथवा भारत लौट आये, यह मुझे याद नही। केवल इतना याद है कि वे लौटकर फिर फीनिक्स नही आये। बहुत दिन बाद—शायद वर्ष डेढ वर्ष बाद—हरिलालकाका के बापू के साथ ट्रासवाल मे जेल जाने की बात सुनी और गोकुलदासकाका की मृत्यु के समाचार फीनिक्स पहुचे। भारत आने पर गोकुलदासकाका की अकाल मृत्यु हो गई थी और मृत्यु के समाचार से हमारे परिवार में भारी शोक छा गया था।

बापूजी के लिए ऐसे होनहार भानजे की मृत्यु का आघात कम नही था। गोकुलदास उनके लिए अपने निजी पुत्र से अधिक थे। गोकी फइबा ने बापूजी के प्रेम का उल्लेख करते हुए मुझसे कहा था कि वह "हरिलाल और गोकुल को एक-समान देखते थे।"

बापू ने एक शाम को गोकी फइबा से कहा, "लडको को बाहर पढने भेजना है। एक को बनारस और एक को गोडल के छात्रावास में भेजना चाहता हू। बनारस किसे भेजू, यह सोच रहा हू। अपने आप मे निर्णय नही करना चाहता। मेरे लिए दोनो एक बराबर है। मै चिट्ठी डालूगा और जिसका भाग्य बनारस जाने का होगा उसे वहा और दूसरे को गोडल भेजूगा।"

फिर बापू ने पडोस के एक छोटे बालक को बुलाया। उसके एक हाथ मे एक रुपया दिया और दूसरे हाथ मे पैसा। उस बालक से कहा कि जाओ, इस घर मे जहा तुम्हारा जी चाहे, इन दोनो सिक्को को अलग-अलग जगह छिपा आओ। जब वह बालक सिक्को को छिपा आया, बापू ने अपने पुत्र और भानजे से कहा, "जाओ, सिक्का ढूढकर ले आओ।" थोडी देर बाद गोकुलदासकाका रुपया ढूढ लाये और हरिलाल काका पैसा। यह देखकर बापू ने अपनी बहन से कहा, "गोकुलदास बनारस जायगा, उसे जल्दी तैयार करो। वह भाग्यवान दीखता है।"

जिस भानजे पर बापूजी की इतनी अधिक ममता थी, उसके अकस्मात मर जाने पर भी वह शोक का घूट पी गए और मृत्यु का उत्साह से स्वागत

करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए तीव्रता मे चिन्तन-मनन करने लगे। इस सबध मे बापूजी के दो पत्र यहा उद्धृत कर देना अप्रासगिक न होगा। पहला पत्र है मेरे दादाजी और एक अन्य स्वजन के नाम और दूसरा है मगनकाका के नाम।

ता० १४-५-१९०८

वद्य मेघजीभाई और खुशालभाई,

आपका पत्र मिला। अपने मन के कुछ उद्‌गार मैंने रलियात बहन के पत्रो में प्रकट किये हैं। इसी पत्र के साथ वह पत्र भी नत्थी है। उसे आप पढे, उस पर विचार करें और बहन रलियात को पढकर सुनाए। यदि बहन भाई करसनदास के पास हो तो वहा उस पत्र को भेज दे और बहन रलियात की मन स्थिति के बारे मे मुझे सूचना देने की कृपा करें।

गोकुलदास गया सो जाना। अपने सबध के कारण स्वभावत ही इन पक्तियो को लिखते-लिखते मुझे रोना आता है। किन्तु अपने मन के विचार जो बहुत अरसे से मन मे मडरा रहे हैं, आज बहुत प्रबल हो उठे हैं। मैं देखता हू कि हम सब विकट जाल मे फसे हुए है। जैसी हमारे परिवार की दुर्दशा है वैसी ही हमारे देश की भी दुर्दशा मुझे नजर आती है। इन दिनो मेरे मन में जो विचार मुख्य है, उन्ही को मै यहा आपके सामने रख रहा हू।

गलत लिहाज या शर्म के कारण अथवा गलत मोह मे फसकर हम अपने बालको के शादी-ब्याह करने की जल्दी मचाते है। इस बखेडे के पीछे सैकडो रुपये बरबाद करते हैं और फिर विधवाओ के मुख देख-देखकर तरस खाते है। ब्याह करना ही नही, ऐसे तो मैं कैसे कहू ? पर कुछ हद तो कायम करें। बालको की शादी कराकर उन्हे हम दुख में ढकेल देते है। वे फिर सतान पैदा करके झझट में पड जाते है। हमारे नियम के अनुसार स्त्रीसग तो केवल प्रजोत्पत्ति के लिए ही विहित है। इसके अलावा जो है वह विषय ही है। हम लोग इस पथ का यत्किंचित अनुसरण करते हो ऐसा प्रतीत नही होता। यदि मेरा यह कथन गलत नहीं है तो मानना पडेगा कि अपनी ही तरह अपने बालको के शादी-ब्याह रचाकर हम उन्हे विषयी बना रहे है और इस प्रकार यह विषय-वृक्ष बढता ही चला जाता है। इसको धर्म मानना मुझे स्वीकार नही है।

अधिक नही लिखूगा। आपने वहा के हालात लिख भेजे है, पर मैं और क्या उत्तर दू ? अपने मन की बात ही मैं लिख सकता हू। यद्यपि मैं आप लोगो मे छोटा हू फिर भी आपके द्वारा मै अपने विचार सारे परिवार के सामने रख रहा हू। इसी को आप मेरी कुटुम्ब-सेवा मानें।

यदि इन उद्गारो को आप मेरा अपराध समझे तो उसके लिए क्षमा करे। चौदह वर्प तक स्वाध्याय और मनन करने के बाद और सात वर्प के आचरण के बाद अपने इन विचारो को अवसर देखकर आपके पाह रख रहा हू।

—मोहनदास के दडवत् प्रणाम

गोकुलदास काका की नई-नई ही शादी हुई थी और वह अपने पीछे एक छोटी बालिका और विधवा पत्नी छोड गए थे। इस कारण परिवार-भर मे कुहराम मच गया था। इस पर बापूजी ने जो आश्वासन का पत्र भेजा उसमे उन लोगो को बडी सात्वना मिली।

इस पत्र के ठीक आठ दिन बाद बापूजी ने मगनकाका के नाम पत्र भेजा। उसमे जीवन-मरण के बारे मे अपने विचारो को उन्होने बिल्कुल स्पष्ट रख दिया था। उस समय ट्रासवाल मे सत्याग्रह का दौर चल रहा था। जनरल स्मट्स ने समझौते का दिखावटी हाथ फैलाया था और उस समझौते को अमल मे लाने के कारण बापूजी का जीवन खतरे मे पड गया था। मीरआलम पठान ने जिस दिन बापूजी पर आक्रमण किया था, मालूम होता है, उसके पहले दिन बापूजी ने यह पत्र मगनकाका को लिखा था।

जोहान्सबर्ग,
ता० २१-५-१९०८

चि मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। मुझे लगता है कि मुझे अपनी बलि चढानी ही होगी। स्मट्स आखिर तक दगा देगा, ऐसा मै नही मानता। पर लोग अधीर हो उठे है। वे मेरी जिन्दगी पर प्रहार करने को तुले हुए है। यदि ऐसा हो तो सतोप मानना। जिसे मै कल्याण की बात समझता हू उसे पूरा करने मे यदि जिन्दगी कुरबान करनी पडे तो उससे बढकर मृत्यु और कौन-सी हो सकती है ?

जब ईश्वर ने गोकुलदास को बुला लेना उचित समझा तब मौत की बात से जी उदास क्यो हो जाय ? यह दुनिया फानी है। तो फिर मेरा जीव इस दुनिया से चल बसे तो उसके लिए चिन्ता क्यो करे ? मृत्यु-पर्यन्त मुझसे कुछ अनुचित कार्य न हो, यह इच्छा रखना पर्याप्त है। भूल से भी अपने हाथ से कुछ अनुचित न हो, इसकी चिन्ता मन मे रखनी चाहिए। मुझे मोक्ष मिल जाय ऐसी स्थिति पर भी तो मै अभी पहुचा नही हू, पर मेरी ऐसी मान्यता है कि इन दिनो मेरे विचार जिस लीक पर चल रहे है उनके उसी लीक पर रहते हुए यदि मै अपना शरीर छोड जाऊगा तो पुनर्जन्म

मिलेगा जिससे सद्य मोक्षप्राप्ति होगी।

—मोहनदास के आशीर्वाद

हरिलालकाका और गोकुलदासकाका के फीनिक्स से चले जाने के कुछ समय बाद कस्तूरबा फीनिक्स मे आ गई। पारसी महिला की तरह की उनकी गहरे बादामी रग की साडी, पैरो मे मोजे और गले की पैनी आवाज आज भी नही भूला हू।

बा के साथ बापूजी उस समय फीनिक्स आये हो, ऐसा याद नही पडता। मणिलालकाका, रामदासकाका और देवदासकाका बा के साथ आये और बापूजी का जो घर बन्द-सा पडा रहता था वह अब खुल गया। वह अब 'बडा घर' कहलाने लगा और हमारे घर में सारे दिन बडे घर की ही चर्चा होने लगी। पूज्य बा जब हमारे घर पर आती तब घर के लोग उनका बहुत आदर करते, परन्तु वह तो हमारे रसोईघर की पैडी पर बिना कुछ बिछाये ही बैठ जाती थी। मेरी माता, काकी और बा तीनो देर तक साथ बैठी रहती थी। वे बहुत धीरे-धीरे बाते करती थी और मुख पर दुख और भय की गभीर छाया नजर आती थी।

बापूजी के बारे मे सब बहुत चिंतित हो रही थी। मेरे पिता-जी दिन में कई बार मुद्रणालय से आकर पूज्य बा को समाचार सुना जाते थे। फिर जूलू लोगो के बारे में बातचीत चलती थी। वे यहा तक पहुचे, वहा तक पहुचे, ऐसी चर्चाए होती रहती थी।

फीनिक्स का स्थान जूलू लोगो के प्रदेश के मध्य मे था। फीनिक्स-वासी भारतीयो को अपने विरुद्ध गोरो की सहायता करते देखकर जूलू लोग तत्काल फीनिक्स पर धावा बोल सकते थे और उसे नष्ट कर सकते थे, परन्तु यह बापूजी की महिमा थी कि गोरो की मदद के लिए जाकर भी वह जूलू लोगो के दुश्मन नही, मित्र ही बने, जूलुओ के सेवक कहलाए और जूलू लोग सदा के लिए फीनिक्स के मित्र बन गए।

उन्ही दिनो हमारे घर मे एक घटना घटी। कुछ दिन तक मेरी काकी बीमार रही और घर मे एक छोटा बालक बढा। उसका नाम केशव-लाल रखा गया। शुरू-शुरू मे मै उसे काकी का भाई समझता रहा जबकि वह भाई मेरा होता था। उसको अपनी गोद मे लेकर खिलाने मे मुझे आनद आता था। अब घर मे रहकर दिन काटना कुछ आसान प्रतीत होने लगा था। दोपहर मे पूज्य बा हमारे घर आती थी, इसलिए स्लेट और पेसिल लेकर अपनी माता के पास बैठे रहने का कष्ट मुझे कम समय भुगतना पडता था।

देवदासकाका और रामदासकाका भी हमारे यहा आने लगे थे। पर थोडी ही देर रुक कर वे अपने घर लौट जाते । वे दोनो मुझसे क्रमश डेढ और तीन वर्ष बडे थे, इसलिए उनके खेलो मे मैं बराबरी नही कर सकता था।

पूज्य बा के आने के बाद बापूजी भी कुछ दिन फीनिक्स मे रह गए। उनके आने पर रोज सध्या के समय उनके घर पर 'सभा' होती थी। उस 'सभा' मे मेरी माताजी बहुत अच्छे-अच्छे भजन सुनाती थी। आगे चलकर जो आश्रम की साय-प्रार्थना कहलाई उसका पूर्वरूप यह सभा ही था। फीनिक्स भर के गोरे-काले सभी लोग उस समय बडे घर पर एकत्र होते थे और मेज-कुरसी पर बैठकर भजन आदि गाते थे। सबके बीच मे बापूजी बैठते थे और उनकी बात सब लोग बडी शाति से सुनते थे।

बापूजी जब फीनिक्स से चले गए तब नित्यप्रति हमारे घर मे तुलसी-रामायण की कथा होने लगी। माता-पिता और काका-काकी चारो इकट्ठे बैठकर चौपाई गाते थे। माताजी और मगनकाका का कठ एक-दूसरे का पूरक होता था और वातावरण माधुर्य से भर जाता था। मै इन मीठ सुरो को सुनता-सुनता निद्राधीन हो जाता था।

: १६ :

मेरी शरारतें

शैतानी प्रकट हो जाने या रगे हाथो पकडे जाने पर मार पडेगी, यह जानते हुए भी मै शैतानी करने से बाज न आता था। वैसे ऊधम और शरारत सभी बच्चे करते है, पर मै अपने घर मे अकेला बालक था, इसलिए शायद मेरी शैतानी और ही प्रकार की थी। साइकिल का पम्प घर मे चाहे कितनी ऊचाई पर क्यो न धरा हो, मै ऊपर चढकर उसे उतार लाता और फिर पानी से भरी बाल्टी मे उसे डुबोकर दूर-दूर तक पिचकारिया छोडता। पिताजी के हजामत के सामान मे से उस्तरा निकालकर उससे सफाई के साथ साबुन काटना, सीने की मशीन पर चुपके-चुपके हाथ आजमाना, दिन के समय मोमबत्ती जलाना, पानी की टकी का नल खोलकर फव्वारे छोडना, घर रगने के लिए आये हुए सामान को जहा-तहा प्रयोग मे लाना, इत्यादि, उलट-पलट मे कम नही करता था।

मगनकाका बागीचे के काम के लिए नया चाकू लाये थे। फलवृक्षो की

टहनिया काटने के लिए उसकी बनावट खास ढग की थी। उसकी धार उस्तरे की-सी तेज थी। मैंने चुपचाप वह चाकू उठाया और घर के पीछे बैठकर अपनी स्लेटी पेसिल को नुकीला करने लगा। पत्थर की वह पेसिल तेज चाकू से अच्छी तरह छिलने लगी, पर नोक बनने पर आई तो दाए हाथ का झटका ऐसे जोर का लगा कि बाए हाथ के अगूठे का सारा नाखून कटकर अलग हो गया। अपने ही हाथ से घायल हुआ था, इसलिए मैं जरा भी नही चिल्लाया। मिनटो तक बहते खून को अपने कपडे से बन्द करने की कोशिश में लगा रहा, पर वह बन्द नही हुआ। मैं अगूठा थामे हुए बैठा रहा। इस बीच मेरी माताजी किसी कारण वहा से निकलीं। इतना रक्त बहना देखकर वह मुझे घर मे ले आई और घाव पर पट्टी बाध दी। दर्द कम नही था, पर रोऊ तो कैसे? किसी ने मुझे मारा या डाटा नही, इस बात का ही मुझे कम सतोष नही था।

हमारे आगन मे नहाने और खेती के औजार आदि रखने के लिए एक कच्चा झोपडा बना था। उस झोपडे से सटी हुई कच्ची लकडियो का छोटा-सा मडप था और उस मडप के सहारे मगनकाका ने अगूर की बेल लगाई थी। पहली बार उस बेल मे अगूर फले थे। दक्षिण अफ्रीका में अगूर बहुत मिलते थे, पर घर के बागीचे के अगूरो का आकर्षण और ही था। छोटे-छोटे गोल-गोल, हरे-हरे दानो के गुच्छे मडप से नीचे की ओर लटकते हुए बहुत ही लुभावने लगते थे। इतने छोटे अगूर खट्टे होते है, इसका मुझे पता था, परन्तु उन खट्टे अगूरो को खाने के लिए मेरा जी ललचा रहा था।

एक दिन मुझे मौका मिल गया। घर में कोई नही था। पिताजी और काका मुद्रणालय में थे और माता तथा काकी बडे घर गई थी। दोपहर का समय था। मैं अगूर के मडप के नीचे पहुचा। हाथ तो मेरा उतना ऊचे पहुचनेवाला था नही। बास या लकडी से अगूर का गुच्छा तोडता तो बेल बिगड जाती और काका नाराज होते। आखिर मैंने ऊपर चढकर सावधानी से एक गुच्छा तोड लेने की ठानी। मडप की लकडिया बहुत पतली थी। फिर भी धीरे-धीरे एक-एक लकडी पकड कर लटकता-फादता मैं मडप की छत तक पहुच गया। फिर आगे बढकर मण्डप के बीच में पहुचा और धीरे-धीरे अगूर के उस गुच्छे तक पहुच गया जो मुझे सबसे सुन्दर प्रतीत हो रहा था। जैसे ही हाथ बढाकर उस गुच्छे को तोडने को हुआ कि बिना कुछ आवाज या झटके के धडाम से जमीन पर आ गिरा। अच्छा हुआ कि मुह के बल न गिर कर बिल्कुल चित गिरा। गिरते ही ऊपर को देखा तो वह लकडी दो टुकडे हो

गई थी, जिसके ऊपर मैंने अपना सारा वजन डाला था। पतली लकडी तो वह थी ही, वर्षा के पानी से सड भी गई थी। चोट ऐसी आई थी कि अपने आप उठ-बैठना कठिन मालूम हुआ। कम-से-कम आठ-नौ फुट की ऊचाई से गिरा था। मुश्किल से उठा और-धीरे-धीरे चलकर अपने कमरे मे बिछी हुई चारपाई पर चुपचाप जा लेटा। चोट कही फूटी नही थी, खून नही निकला था, परन्तु रीढ और कमर की हड्डिया अन्दर से दुख रही थी। मै तनकर सीधा बिस्तर पर लेटा रहा। शरीर को आराम मिला और कुछ देर के लिए आख भी लग गई। जब आख खुली तो माताजी सामने खडी थी। मै उठ बैठा। वह बोली, "आज तो तू बडा सयाना बना हुआ है। बात क्या है? खैर, अच्छा किया जो दोपहर मे थोडी देर लेट गया, दिन भर खेलते रहना ठीक नही होता।"

जबतक मै अकेला था, मेरा नटखटपन घर और आगन तक ही सीमित था। पर अब कस्तूरबा स्थायी रूप से फीनिक्स मे आकर बस गई थी। रामदासकाका और देवदासकाका से मेरी दोस्ती बढ चली थी और धीरे-धीरे मै भी बडा हो रहा था। थोडे दिन बाद बिली नाम का चौथा लडका भी फीनिक्स मे आया और इस प्रकार वहा हमारी पूरी चौकडी बन गई।

दोपहर के समय जब मगनकाका और दूसरे बडे लोग प्रेस मे जाते थे हम चारो की चौकडी बेखटके फीनिक्स के इस सिरे से लेकर उस सिरे तक दौडती फिरती थी और अनेक प्रकार के 'अव्यापारेषु व्यापार' करती थी।

बापू के घर के पूर्व मे फीनिक्स के पुराने मालिक का एक पुराना बाग था। उसमे अधिकतर पेड पुराने हो चुके थे, इसलिए उसे बडा बाग कहा जाता था। उन बूढे वृक्षो पर भी फल खूब आते थे। उस बाग की रखवाली आनन्दलालकाका के जिम्मे थी। उसमे से एक भी फल कोई ले न जाय, इसके लिए वे बहुत चौकन्ने रहते थे। हम लोगो को लगता था कि ये जो इतने फल लग रहे है और पके हुए पेड पर लटकते है वे खाने के लिए है या सडाने के लिए? यदि आनदलालकाका हमारी टोली को बागीचे के निकट देख लेते तो डाट-डपट कर तुरत भगा देते थे। इसलिए उनके पीछे उस बागीचे पर धावा बोलने मे हमे आनन्द आता था। वे बेचारे प्रेस का काम छोडकर भरी दुपहरी मे कई बार बागीचे की देख-भाल के लिए चक्कर काटते, किन्तु हम भी अपना इतजाम पक्का रखते थे। मै छोटा था, ऊचे पेडो पर चढना मेरे लिए कठिन था, इसलिए चोरी की

जगह से दूर खड रहकर पहरा देने और किसी की आहट पाते ही खबर करने का काम मेरे जिम्मे था। रामदासकाका सबसे बडे थे, इसलिए उन बडे वृक्षो की ऊची डालियो पर चढकर फल गिराने का काम उनका था। देवदासकाका और विली फलो को जमीन पर से बटोरने का काम करते थे। शहतूत का एक महावृक्ष प्राय ४० फुट ऊचा था और ऐसा ही पपीते का एक पुराना पेड करीब २५ फुट ऊचा था। इन दोनो वृक्षो के फल बहुत मीठे होते थे। रामदासकाका फल गिरा कर जबतक नीचे उतरते, तबतक उनके गिराए हुए फलो का मीठे-से-मीठा भाग नीचेवाले उदरस्थ कर चुकते थे। खरी मेहनत करने वाले घाटे में रहते, किन्तु रामदासकाका कभी झगडा नही करते थे। फल खाते समय यदि हमे दूर से आहट सुनाई देती तो हम पगडडी छोडकर उल्टी दिशा मे पलायन कर जाते और झाड-झखार पार करके बापू के मकान के पीछे स्नानघर मे पहुच जाते थे। वहा हाथ-मुह धोकर साफ-सुथरे हो जाते, जिससे किसी को पता भी न चले कि हमने फल खाये है। फलो की मौज उडाने की तुलना मे चोरी करके भी पकडे न जाने की अपनी चतुराई का हम अधिक आनन्द अनुभव करते थे।

उस बागीचे मे जब सतरो की बहार आती तब एक धावे मे सौ-दो-सौ सतरो को चीर डालना हमा` लिए मामूली बात थी। सतरो के `डो के पास ही दो-तीन पौधे बहुत ही तीखी मिर्च के थे। उनमे इच-सवा-इच की लाल सुन्दर मिर्चें लगती थी। उन्हे लवगी मिर्च कहते थे। साधारण मिर्च से वे आठ-दस गुनी तेज होती थी। उन्हे मुह मे रखते ही सारा मुह आग-आग हो जाता था और आखो से पानी बहने लगता था। इन मिर्चों को कौन ज्यादा खा सकता है, इस पर हमारे बीच होड लगती थी। फिर हम बहुत-से सतरे तोड लाते थे। सतरा छीलकर अपने हाथ मे रखते थे और लवगी मिर्च मुह मे रखते ही ऊपर से समूचा सतरा मुह मे दबा लेते थे। इस प्रकार एक के बाद एक करके दस-पन्द्रह मिर्चे और उनसे दुगुने-तिगुने सतरे खा जाते थे। कौन जीतता था, इसकी तो अब मुझे याद नही है, परन्तु इस होड मे मै बहुत पीछे नही रहता था।

धीरे-धीरे फीनिक्सवासियो के नये बागीचो मे भी फल लगने लगे। आनन्दलालकाका ने अपने घर के पास काले अगूर बो रखे थे। हरे अगूर तो हमे बहुत मिलते थे, पर काले अगूर हमारे लिए नये थे। अपने बागीचे की सार-सभाल के लिए आनन्दलालकाका ने एक नौकर रखा था, जो उत्तर-प्रदेश का था। उसे हम 'भैयाजी' कहते थे। वह हमे देखते ही हाथ मे फावडा या खुर्पी लेकर हमारे पीछे पड जाता था और कभी-कभी हमे उसके हाथ

का प्रसाद भी मिल जाता था, फिर भी हम किसी-न-किसी युक्ति से आनन्द-लाल काका की द्राक्षलताओ तक पहुच ही जाते थे और अगूरो पर हाथ साफ करके उनके पकने की नौवत नही आने देते थे। इसी प्रकार उनके बागीचे के अनन्नास, जो कच्चे होने पर इमली से भी कही ज्यादा खट्टे होते थे, चुनचुनकर चटकर डालते थे।

एक बार मगनकाका ने नहाने के कमरे मे एक टोकरी के अन्दर हमारे बागीचे के दस-पन्द्रह आम पकने के लिए रखे। दक्षिण अफ्रीका मे आम नई चीज थी। फीनिक्स भर मे शायद यह पहली फसल थी। दूसरे ही दिन शाम तक हमारी टोली ने उस टोकरी मे एक भी आम नही रहने दिया।

फीनिक्स भर मे हमारी नजर से किसी भी बागीचे के नये फलो, ताजे भुट्टो आदि का बचना कठिन था ही, पर अब हमने एक खेल ऐसा शुरु किया, जिसके कारण बिना बागीचेवाले एक सज्जन भी हमसे तग आ गए। वह मद्रास की ओर के ईसाई थे, जो बिना परिवार के एक छोटी कोठरी मे रहते थे। जब वे अपने काम पर प्रेस मे जाते, तब हम लोग उनकी कोठरी पर पहुचते और किसी-न-किसी तरह उसे खोल लेते। वहा उनके सिगरेट के डिब्बो से चमकीले कागजो और चित्रो पर हाथ साफ करते। फिर उनके अडो के सग्रह को बरबाद कर डालते। वे मासा-हारी थे। इसलिए शिक्षक बनने की बात सोचते थे। हमारा ख्याल था कि उनको नुक्सान पहुचा कर हम उन्हे विशुद्ध शाकाहारी बना देगे। फीनिक्स मे अडे आदि मिल नही सकते थे, इसलिए वे बाहर से अडे मगाकर कनस्तर मे रखते थे। मछली के डिब्बे भी मगाकर रखते। बाहर आगन मे एक शिला पडी रहती थी। उसपर जोर से एक-एक अडा पटककर हम उसे फोड देते थे। बारी-बारी से हम सब लडके अडा पटक-पटक कर देखते थे कि किसकी पटक की आवाज अच्छी हुई और अडे का पीला रस किसने अधिक दूर तक फैलाया। इस तरह दर्जनो अडे बर्बाद करने के बाद हम उनके मछली के डिब्बे खेत मे दूर फेक देते थे।

मास या मछली हमारे लिए अभक्ष्य है, किसी जीव को मारने मे पाप लगता है, यह भावना मन मे दृढ थी, इसलिए मैंने किसी जीव को कभी मारा तो नही, परन्तु शिकारियो की देखा-देखी चिडियो को जाल मे फासना, ऊची-ऊची घास मे घुसकर घोसलो को ढूढ निकालना, घोसलो मे रखे हुए रग-बिरगे अडो को गिनना, अडे से निकले हुए छोटे बच्चो की चीं-चीं सुनना और उन्हे घोसलो से निकालकर डराना, सताना इत्यादि खेलो मे मै अपना काफी समय व्यतीत करता था। दूसरे बाल-साथी न होते

तब भी अकेले-अकेले मै देखा करता था कि कौन-सी चिडिया ने कहा पर कैसा घोसला बनाया है ? उसके अडे कितने और किस रग के है ? वह कैसा गाना गाती है ? चुपके से उन घोसलो तक पहुच जाने की शिकारी जीवन की कला वैष्णव बालक के लिए दुर्लभ ही मानी जायगी, लेकिन फीनिक्स मे यह मुझे सुलभ हो गई थी ।

: १७ :

देवदासकाका के साहचर्य में

बचपन मे मुझे बडे खतरनाक प्रयोग सूझते थे। हमारे घर से कुछ दूरी पर एक कच्चा कुआ था जो सात-आठ हाथ गहरा होगा । चौमासे के बीत जाने पर उसमे एक बालटी पानी भी मुश्किल से निकलता था । उस कुए की तली का ज्यादा भाग कीचड से भरा रहता था। जो थोडा-सा पानी होता उसे लेने के लिए नीचे तक उतरना पडता था और इसके लिए बास की टूटी-सी सीढी लगी रहती थी। उस सीढी के सहारे नीचे उतर कर हम—रामदासकाका, देवदासकाका और मै—उस तैयार गारे से मिट्टी के खिलौने बनाया करते थे। एक दिन देवदासकाका और मै कुए को देखने गये और ऊपर से झाककर नीचे के कीचड का परीक्षण करने लगे। नीचे झाकते-झाकते न जाने क्यो मेरे मन मे यह जिज्ञासा जागी कि यदि इसमे कूदा जाय तो चोट आयगी या नही ? स्वय यह प्रयोग करने का साहस मुझे नही हुआ। इसलिए झट से मैने एक कदम पीछे हटकर देवदासकाका को, जो कुए की तली की ओर झाक रहे थे, धक्का दे दिया। देवदासकाका ने बडी फुर्ती से अपना सतुलन सम्हाला और वह सीधे अन्दर कूद पडे। पैरो के बल गिरने से उन्हे चोट तो नही आई, पर कीचड मे उनके सारे कपडे सन गए। गिरने से भी ज्यादा गुस्सा उनको कपडो के सन जाने के कारण आया। तुरन्त ही वह सीढी से कुए से बाहर निकल आए और मगनकाका से शिकायत करने के लिए प्रेस की ओर दौडे। उनको शिकायत करने से रोकने के लिए मै भी उनके पीछे-पीछे दौडा, परन्तु मै उन्हे रोक नही सका। उस दिन मेरा सद्भाग्य था कि मगनकाका ने मुझे पीटा नही। घर होता तो शायद वह मेरी खासी मरम्मत करते, लेकिन प्रेस के सभी लोगो ने मुझे इतना कहा-सुना कि वह मार से भी ज्यादा काम कर गया ।

कुछ ऐसा ही एक भीषण प्रयोग मैने एक बार अपने छोटे भाई केशू

पर किया। जब मेरी काकी भोजन बनाने जाती थी तब अक्सर मुझे केशू के पालने के पास बिठा जाती थी और उसे देर तक झुलाते रहने का कर्त्तव्य मुझे पूरा करना पडता था। मुझे इस तरह घर में बधा रहना बहुत अखरता था। परन्तु मुझमे इतना बल नही था कि मैं साफ-साफ कह देता—"मैं नही झुलाऊगा, मुझे खेलने जाना है।"

सोचते-सोचते एक दिन मुझे इस झझट मे छूटने की युक्ति मिल गई। मैंने सोचा कि केशू को इतना रुलाया जाय कि वह चुप ही न हो, फिर काकी को उसे लेना ही पडेगा, तब मुझे छुट्टी मिल जायगी।

यह दिवाली के बाद की बात है। फीनिक्स के शुरू के दिनो मे दिवाली के अवसर पर हम लोगो के लिए डरबन से छोटे-छोटे पटाखे मगा दिए जाते थे। उनमे रगीन दियासलाई की डिबिया भी होती थी, जो मुझे बहुत प्रिय थी। मैंने अपने पास की डिबिया की एक सीक जलाई, उसका बचा हुआ जलता भाग केशू की छाती पर छुआ दिया और तुरन्त ही सीक को खिडकी मे बाहर फेक दिया। केशू चिल्लाकर रोने लगा। काकी दौड कर आई। मुझ से पूछा कि क्या हुआ? पर जवाब कौन देता? काकी ने सारा झूला देखा और उसके आसपास भी देख डाला। अन्त मे जब केशू का कपडा उतारा गया तो उसकी छाती के नीचे जलने का निशान दिखलाई पडा। काकी पूरी बात समझ गई। जब काका घर आये और उन्हें यह किस्सा मालूम हुआ तो मेरी खूब मरम्मत हुई और अपने छोटे भाई से प्रेम करने का सुबह-शाम कई दिनो तक उपदेश सुनना पडा। उसके बाद कभी मैंने अपने छोटे भाई को खिलाने का काम छोडकर खेलने जाने का दुस्साहस नही किया।

एक बार हमारा पूरा घर जलकर राख हो गया होता। फीनिक्स मे हमारे सोने के कमरे में मोमबत्ती और दियासलाई रखी रहती थी। रात के समय बडे कमरे मे मिट्टी के तेल का लैप होता था और अन्यत्र मोमबत्ती से काम चलता था। मुझे कोई दियासलाई या मोमबत्ती मे हाथ नही लगाने देता था। मैंने लुकछिपकर मोमबत्ती जलाने का समय खोज लिया। दोपहर के समय जब पिताजी और काका भोजन के बाद प्रेस चले जाते थे और माताजी और काकी रसोईघर मे भोजन करने बैठती थी तब मैं सोने के कमरे मे पहुच जाता था और उसे खिडकी मे लगी हुई लकडी की चौखट पर खडा कर देता था। फिर उसकी दीप-शिखा को निहारता था और पिघलते हुए मोम को, जो धीरे-धीरे नीचे को उतर कर विविध आकृतिया बनाता था, देखता रहता था।

यह क्रम नियमपूर्वक बीस-पच्चीस दिनों तक चलता रहा। एक दिन अकस्मात् माताजी उसी समय कमरे में आ पहुची जब मैं मोमबत्ती जलाकर उसकी लौ देखने मे मग्न था। माताजी को देखते ही मैंने मोमबत्ती को बुझाने के लिए उस पर हाथ से झपाटा मारा और वह टीन की दीवार और लकडी के खम्भे के बीच लुढक गई। उसकी लपट दृष्टि से ओझल तो हो गई मगर बुझी या नही, यह न मैंने देखा, न माताजी ने ही जाचा। पढना छोडकर ऐसी हरकत करने के लिए माताजी ने मुझे थोडी-सी डाट बताई और फिर वह रसोईघर मे लौट गई। मैं भी खेलने के लिए निकल गया। इसके बाद १० मिनट भी न बीते होगे कि कमरे मे से धुआ निकलने लगा। मेरी काकी ने यह सबसे पहले देखा और बालटी लेकर वह वहा दौड गईं। देखा तो लकडी का बडा खभा जल उठा था और लपटे छत तक जा पहुची थी। माताजी और पूज्य कस्तूरबा भी वहा तुरन्त पहुच गईं। कोई मर्द तो उस समय आस-पास था नही, इसलिए उन तीनो ने ही उस भयानक आग को जैसे-तैसे बुझाया। जली हुई लकडी का वह निशान जब मैं भारत लौटा तबतक ज्यो-का त्यो उस घर मे बना हुआ था और मेरे नटखटपन की याद दिलाया करता था।

इन सब घटनाओ से फीनिक्स भर मे मेरा नाम 'बन्दर' पड गया था। प्रेस मे जब जाता तो वहा भी मशीनो मे उलझकर मैं कुछ-न-कुछ उलटा-सीधा कर ही डालता था। इसलिए यन्त्र चलाने वाले लोग मुझसे सतर्क रहा करते थे।

देवदासकाका भी शरारती कम नही थे। परन्तु वे मेरी तरह बदनाम नही हुए। उनके खेलो मे निपुणता अधिक थी, तोड-फोड कम। नए-नए खेलो का आरम्भ देवदासकाका ही करते थे। कभी-कभी रामदासकाका खेल मे शामिल हो जाते थे, कभी अकेले ही खेला करते थे। मुझे जब घर से छुट्टी मिल जाती, मैं सीधा देवदासकाका के पास पहुच जाता था और उनका अनुसरण करता था। फुर्ती मे पेडो पर चढ जाने, पतग बनाकर उडाने, निशाने पर पत्थर मारने इत्यादि मे मैं उनसे बहुत पिछडा हुआ था।

प्रेस के पास जो झरना था उसमे कई जगह इतना गहरा पानी था कि हम डूब सकते थे। अगर कोई बडा आदमी हमे उस गहरे पानी मे नहाते हुए देख लेता तो हमारे कान गर्म होते और हमे बाहर निकलना पडता था। इसलिए हम दोनो प्रेस से दूर, जहा झरना बडे-बडे पेडो की आड मे छिपा था, चले जाया करते थे। वहा कपडे किनारे रखकर हम दोनो ही करीब चार फुट गहरे पानी मे कूद पडते और देर तक तैरने का आनन्द लिया

करते थे। थक जाने पर पानी मे लेटे-लेटे ही वृक्ष की झुकी हुई डालियो को पकड लेने की सुविधा थी। पहले-पहल मैने जो थोडा तैरना सीखा, वह इस तरह देवदासकाका के ही कारण।

फीनिक्स मे पीने के पानी की दिक्कत थी, इसलिए टीन की ऊची-ऊची टकिया मकान की छत के सहारे लगाकर वर्षा के पानी का सग्रह करना पडता था—यह वात पहले वताई जा चुकी है। हमारे घर के लिए एक टकी का पानी पूरा नही पडता था, इसलिए डरवन मे एक दूसरी नई टकी मगवाई गई। फीनिक्स स्टेशन से प्रेस तक गाडी आ सकती थी, परन्तु टीले पर, जहा हमारे मकान थे, वहा तक गाडी का पहुचना सभव नही था। इसलिए नई टकी को प्रेस के पास ही उतार लिया गया। चार-पाच दिन के वाद रविवार की छुट्टी के रोज, फीनिक्स के वडे-वडे आदमी उस टकी को हमारे घर तक ले आने के लिए इकट्ठे हुए। ऐसा वडा और नया काम जहा हो रहा हो वहा देवदासकाका और मै न पहुचे यह भला कैसे हो सकता था? सवके पहुचने से आध-पौन घटे पहले हम दोनो वहा जा पहुचे। जमीन पर लेटी हुई वह टकी इतनी ऊची थी कि हम एक-दूसरे के कधे पर चढकर भी उसे ऊपर तक नही छू सकते थे। हमने चारो ओर घूम-घूमकर उसे देखा। फिर उसका ढक्कन खोलकर उसका मुआयना किया। वह एक लम्बे-चौडे कमरे जैसी मालूम देती थी।

दो-चार वार भीतर-वाहर से देखने के वाद हमे वह पसन्द आ गई। देवदासकाका ने मुझसे कहा, "चलो, हम इसके भीतर ही वैठ जाय। जव यह लुढकती हुई ऊपर जायगी तव अन्दर-ही-अन्दर लुढकने का वडा मजा आयगा।" मुझे उनकी यह वात जच गई और हम दोनो टकी के भीतर वैठ गए। हमने उसका ढक्कन लगा दिया, ताकि हमे कोई देख न ले। जव हमने वडे लोगो के आने की आहट सुनी तो देवदासकाका ने चुप रहने का इशारा किया और हम दोनो मौन होकर वैठ गए। सूर्यास्त होने मे देर नही थी, इसलिए वडे लोग आते ही टकी लुढकाने मे पिल पडे और लुढकाते हुए एक-डेढ फर्लांग का चढाव पार करके हमारे घर तक ले आए। सारे समय हम दोनो अपनी सास थामे हुए टकी के भीतर-ही-भीतर लुढकने का आनन्द लेते रहे। जव टकी ऊपर पहुच गई और उसे खडा करने का मौका आया तव देवदासकाका ने अन्दर मे धक्का देकर टकी का ढक्कन गिरा दिया और कूदकर निकल आए। उनके पीछे मै भी वाहर निकला। देवदासकाका साथ मे थे, इसलिए मुझे डर नही था। मुझे पक्का विश्वास था कि उनको न कोई मारेगा, न डाटेगा। फिर भी, मुझे कुछ ऐसा याद है कि दो-तीन वडे

व्यक्तियो ने देवदासकाका को घेर लिया था और उनपर प्रश्नो की झडी लगा दी थी। शायद हम दोनो के कान भी जरा-जरा गर्म किये गए थे, परन्तु हमने तो इस नए प्रकार की सवारी में आनन्द ही पाया था। बहुत दिनो तक हमे अपनी इस यात्रा का गौरव महसूस होता रहा।

पहले जहा मुझे अपना अकेलापन अखरता था वहा अब हर समय देवदासकाका का साथ अनुभव करता था। इतना ही नही, मेरे दिल मे उनका नेतृत्व बस गया था। बडो की बातो को, बडो के सदुपदेश को मै जल्दी से मजूर नही कर सकता था, पर देवदासकाका के इशारे भी मुझे शिरोधार्य होते थे। उनमे कभी मेरी 'तू-तू मै-मै' हुई हो, ऐसा याद नही पडता। मेरे कारण चाहे उनको कष्ट भुगतना पडा हो, तो भी उस छोटी आयु मे किसी दिन उन्होने मुझे कोई कडवी बात नही कही। मैने भी जानबूझकर कभी उनका अनादर नही किया। उस समय मुझपर उनके जीवन का प्रेरक असर फीनिक्स के किसी भी दूसरे आदमी से ज्यादा पडा। बापूजी के प्रत्यक्ष सपर्क मे मै तबतक नही आया था। माता-पिता तथा काका का प्रभाव मुझपर बहुत था, परन्तु खुश होकर मै जिनका अनुकरण करता था, वह मेरे बाल-साथी देवदासकाका ही थे।

देवदासकाका के सग घूमने-फिरने मे उनसे मैने कई खेल सीखे। डर छोड कर साहस से विचरना सीखा। रामदासकाका भी हमारे साथ खेल में सम्मिलित होते थे, परन्तु मै तो अधिकतर देवदासकाका के पीछे ही चलता था।

फीनिक्स मे एक सात-आठ फुट ऊचा छप्पर तैयार हुआ था। उस पर सीधे खडे होकर कूद पडने का खेल हम महीनो तक खेलते रहे। कुछ ही दिन के अभ्यास के बाद मै उसमें निपुण हो गया था। रामदासकाका, देवदासकाका और मै, तीन मे से कोई भी उस ऊचाई से कूदने मे एक-दूसरे को मात नही दे सकता था।

याद नही पडता कि हमारी इस प्रकार की सटरगश्ती बेरोकटोक कितने दिन चली, लेकिन कुछ समय बाद हमारी दिन भर की इस स्वच्छदता पर कुछ-कुछ अकुश लग गया। पहले पूज्य कस्तूरबा हमारे घर पर आकर मेरी माताजी और काकी से ही बाते करती थी, पर अब वह मेरे पिता और मगनकाका से भी बाते करने लगी। और बातो का तो मुझे पता नही, पर बा का एक वाक्य मुझे खूब याद है, जो वह दोहरा-दोहरा कर पिताजी से कहा करती थी, "छगनलाल, आ देवा-रामा ने पण हवे कइक शीखवोने!" (छगनलाल, इन देवा-रामा—देवदास-रामदास—

को भी अब कुछ पढाओ न !) बा का कहने का मतलब यह था कि जिस प्रकार घर मे मुझे पढाया जाता था, उसी प्रकार रामदासकाका और देवदासकाका को भी पढाया जाय। बा स्वय पढी-लिखी नही थी और बापूजी फीनिक्स मे नही थे। इसलिए उनको अपने मन की बात मेरे पिताजी के पास ही रखनी पडती थी।

बा की सूचना पर अमल हुआ। सवेरे नहा-धोकर देवदासकाका और रामदासकाका हमारे घर अपने बस्ते के साथ आने लगे। प्राय दो घटे तक वे माताजी के पास पढते थे। घर की रसोई के लिए साग-सब्जी तैयार करने और चावल आदि मे ककड बीनने के साथ-साथ मेरी माताजी पढाने का काम भी करती थी। मै देखता था कि पढाते समय वह कभी ऊँचे स्वर से या डाट कर कुछ नही कहती थी। वह सदा "देवदासभाई, रामदासभाई, इस तरह नही, इस तरह", जैसे मीठे और आदरयुक्त शब्दो का प्रयोग करती थी। जितने समय ये दोनो भाई हमारे यहा रहते थे उसमे एक क्षण भी बरबाद नही होता था। लिखना-पढना और प्रारम्भिक गणित सीखना उनका मुख्य कार्यक्रम था। देवदास-काका गुणाकार आदि बहुत जल्दी सीख जाते थे। गुजराती पाठ्यपुस्तक मे भी उनकी प्रगति इतनी अच्छी थी कि उनके चले जाने पर माताजी मुझसे कहती, "देख प्रभु, देवदासभाई और रामदासभाई कितने होशियार है। तू उनकी तरह तेजी से पढा कर। फिर डाट क्यो खानी पडेगी !"

: १८ :

बापूजी की पहली सीख

बापूजी कब-कब फीनिक्स आये, कितने दिन फीनिक्स मे रहे और कब जोहान्सबर्ग लौट गये, इस बात का स्मरण कोशिश करने पर भी नही होता। स्मृति-पटल पर जो बहुत धुधली याद है वह इतनी ही कि कभी-कभी कई महीनो के बाद बापूजी दो-एक दिन के लिए फीनिक्स आ जाते थे। उनकी अनुपस्थिति मे भी उनके सबध मे कुछ-न-कुछ बातचीत फीनिक्स के बडे लोगो मे चलती रहती थी। बडे लोगो की बातो का धीरे-धीरे हम पर भी प्रभाव पडने लगा और हमारे खेलकूद का तरीका भी कुछ-कुछ बदलना शुरू हो गया। निर्माण करने की वृत्ति हमारे चित्त मे पैदा होती गई। प्रत्येक बालक अपने-अपने घर के आगन में छोटी-छोटी क्यारिया तैयार करने लगा और उसमे मेथी, मूली,

मटर आदि बोने लगा। रोज शाम को ऊचा टीला उतर कर झरने से छोटी-छोटी बहगियो मे लाद कर पानी लाने और अपनी-अपनी क्यारी मे पानी देने का परिश्रम हम उत्साह से करने लगे। जब हमारे नाम की आकृति मे बोई हुई मेथी उग निकलती तब हमारे आनन्द की सीमा न रहती। हमारे लिए खेती के छोटे-छोटे औजार ला दिये गए थे। छोटी-सी कुल्हाडी भी हमे मिली थी। कभी-कभी हम सब अपनी कुल्हाडिया लेकर जगली पौधो के झुरमुट मे चले जाते थे। वहा मोटे तनेवाले पौधो पर हम अपनी कुल्हाडियो की शक्ति आजमाते और लबी, गोल, सुन्दर लकडिया और टहनिया लाकर अच्छी-सी झोपडी खडी करने के खेल खेला करते।

झोपडी का खेल हमे बहुत व्यस्त रखने लगा। अपने हाथ से झोपडी खडी करने के बाद उसमे बैठकर हम खाने-पीने का इतजाम करते थे। अपनी ही बोई हुई क्यारियो मे से मटर, भुट्टे, टमाटर आदि ले आते थे और बाकायदा पक्ति बनाकर उन्हे परोसकर खाते थे। फिर वही बैठकर कागज के तरह-तरह के खिलौने तैयार करते थे। प्रेस के फालतू कागजो मे से हमे रगीन और बडे-बडे कागज मिल जाया करते थे। कागजो को बटोरने में, उनका सही उपयोग करने मे रामदासकाका निपुण थे। डाक मे आने वाले प्रत्येक लिफाफो को वह इकट्ठा कर लेते थे। पुराने टिकटो को इकट्ठा करने में बडा परिश्रम किया था। अपने सारे टिकट-सग्रह को रामदासकाका ने हमारी सहायता लेकर गिन डाला। शायद साढे तीन हजार मे अधिक टिकट इकट्ठे थे। लम्बे-चौडे कागजो पर एक ही रग व एक ही कीमत के टिकट बिलकुल सीध मे लगाये गये थे। इतना बडा सग्रह चार-पाच महीने के अन्दर तैयार हो गया था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि जगल मे स्टेशन से दूर रहने पर भी फीनिक्स में साप्ताहिक पत्र का काम कितना फैला हुआ था और कितनी डाक वहा आती थी।

हमारी बाल-मडली का ऐसा ही सिलसिला चल रहा था कि एक दिन फीनिक्स भर में आनन्द की लहर दौड गई। बापूजी आने वाले थे। प्रेस और घर मे विशेष सफाई होने लगी। बडे लोगो के मुख पर एक नया उत्साह झलकने लगा। हम बालको ने भी बापूजी के स्वागत के लिए कुछ आयोजन करने का विचार किया। शायद रामदासकाका के सुझाव पर हमने एक बढिया झोपडी बनाने और बापूजी को दिखाने का निश्चय किया।

हम जगली पेडो से अपनी कलाई के बराबर मोटी लकडिया काट लाये। हममें सबसे ऊचे रामदासकाका थे। हमने इतने ऊचे खबे गाडे कि उनपर बनी छत से उनका सिर न टकराये और फैलकर सोया जा सके। शीघ्र ही

हमारी यह लबी-चौडी झोपडी बन गई। ऊपर घास और पत्तो से छप्पर छा लिया गया। धरती पर गोबर से लिपाई करने की बात हमे सूझ ही नही सकती थी, क्योकि वहा लिपाई हमने कभी नही देखी थी। सोच-विचार कर हम लोग प्रेस मे बडे-बडे कागज ले आये और उन्हे बिछाकर सुन्दर फर्श बना दिया। फिर कागज के छोटे-छोटे फानूस तैयार करके उनमे मोमबत्तिया जलाई और हमारे उस छोटे-से घर मे दिवाली-सी जगमगा उठी, परन्तु बापूजी को हम वह नही दिखा पाये, क्योकि वह रात को बहुत देर से आये, तबतक हम सो चुके थे।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी उठ कर, चटपट नहा-धोकर और साफ कपडे पहनकर मै बापूजी के घर पर जा पहुचा। उस समय वह बरामदे के किनारे बैठे हुए दतौन कर रहे थे। दो-एक बडे आदमी जो वहा पर खडे थे उनसे उनकी बातचीत चल रही थी। मेरे जैसे बालक का वहा जाना उनकी जरूरी बातो मे बाधा रूप हो सकता था, परन्तु मुझे किसी ने रोका नही, इसलिए बापूजी के चरण छू कर मै उनके बिल्कुल पास आकर खडा रहा।

बापूजी के पास खडे-खडे मेरा ध्यान सबसे पहले उनके सुनहले दातो पर गया। उनकी बत्तीसी मे नीचे के दो दात सुनहले थे। हसने-बोलने पर उनकी चमक बडी अच्छी मालूम होती थी। बाद मे देवदासकाका ने बताया कि वे दात सोने के नही, 'प्लेटिनम' के थे। 'प्लेटिनम' सोने से सख्त और महगी धातु होती है। उन दातो को देखकर और उनकी विशेषता सुनकर मेरे मन पर बापूजी के बहुत बडे आदमी होने की छाप गहरी हो गई। मेरे पिताजी और काका के काका होने के नाते मेरे लिए वह बडे तो थे ही, परन्तु उनके चमकीले सुनहले दातो का प्रभाव मुझ पर अधिक पडा। फिर मेरे लिए कुछ नया अनुभव भी था कि इतने बडे होने पर भी वह हसते है और हमारे घर के और फीनिक्स के बडे लोगो की तुलना मे वहसब से ज्यादा और बराबर हँसते है।

दतौन समाप्त होते-होते और भी बच्चे वहा आ गए और बापूजी ने बडो के साथ बात करना छोडकर हमसे खेलना शुरू किया। वह बारी-बारी से हमको अपने कधे पर उठाकर बरामदे के पासवाली ढलवा हरियाली पर लुढकाने लगे। हम फिर-फिर दौडकर उनके कधे पर चढते और वह फिर-फिर हमे लुढका देते। कोई आधे घटे तक यह आनन्द तथा कोलाहलमय खेल चलता रहा।

पहरभर दिन चढा तब बापूजी हम लोगो को लेकर फीनिक्सवासियो के

घरो मे चक्कर लगाने और सबके कुशल समाचार पूछने निकले । उस समय वह जालीदार कपडे की आधी बाह की सफेद कमीज और सफेद पतलून पहने थे ।

हम बापूजी के पीछे-पीछे चल रहे थे । जब उनकी जालीदार कमीज देखने से फुरसत मिली तो मैने देखा कि रामदासकाका हमारी टोली मे नही है । इसलिए मैने जोर से पुकारा, "लामदाश काका ! ओ लामदाश काका !" बापूजी ने तुरन्त मुझे टोककर कहा, " 'लामदाश' क्या कह रहा है ? 'रामदास' बोल !" मै फिर से बोला, "लामदाश ।" तब बापूजी ने सब बच्चो से कहा, "बोलो, बच्चो हिप-हिप हुर्र्र्रे !" सब मिलकर ऊची आवाज से बोले, "हिप-हिप हुर् र् र् रे !" बापूजी ने हमसे फिर इसे दुहराने को कहा । फीनिक्स की दिशाए गूज उठी । पाच-सात बार सब मिलकर बोल चुके तब उन्होने मुझसे "हुर र् र् र् रे" बुलवाया । ठीक-ठीक बोल देने पर उन्होने मुझसे कहा, "बोल, हुर्र्र्रे रामदासकाका ।" मै बोला, "हुर्र्र्र्र्रे रामदासकाका ।" चलते-चलते बापूजी ने मुझसे बारबार यह उच्चारण करवाया, और जब मेरा 'ल' मिटकर शुद्ध 'र' बन गया तब जाकर हुर्र्र्रे रामदासकाका" कहने की झझट से मुझे मुक्ति मिली । 'ल' से र—यह बापूजी से मिला हुआ मेरा पहला पाठ था । उस दिन से लेकर अन्तिम समय तक जो असख्य पाठ बापूजी ने मुझे पढाये वे उतने ही वात्सल्य से परिपूर्ण थे ।

इस समय मेरी आयु छ वर्ष की थी ।

दूसरी बार जब बापूजी फीनिक्स आये तब मेरे बदन पर बहुत से फोडे निकल आये थे । मै उनके पास खेलने गया, तो उन्होने इन फोडो को देखा और हमारे घर पर आये । मेरी माताजी से कुछ बातचीत करके उनको बता गए कि मुझे टमाटर खिलाया जाय ।

इसके बाद बापूजी ने मुझसे पूछा, "क्यो, तू टमाटर खायगा ?"

"खाऊगा ।"

"तो देख, पके हुए लाल-लाल टमाटर मत खाना । हरे, कच्चे टमाटर खाना । खाने मे कुछ कडवे तो लगेगे, परन्तु उनसे रक्त की शुद्धि जल्दी होगी ।"

मैने हरे टमाटर खाना आरम्भ कर दिया । खाने मे वह अच्छे नही लगते थे, परन्तु बापूजी ने दवाई के रूप मे खाने को कहा था, इसलिए मन मार कर भी उन्हे खाता था और अपने साथियो के सामने अपनी शान मे बट्टा नही लगने देता था ।

उन दिनों बापूजी खाने और खिलाने के शौकीन थे। वह आते तो इतवार की छुट्टी के दिन सारा फीनिक्स एक पंक्ति में बैठकर भोजन करता था। कई प्रकार के बढिया-बढिया पक्वान्न बनते थे। किसी दिन सब लोग बापूजी के घर पर भोजन करते तो किसी दिन हमारे घर पर सबकी दावत होती थी। गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक मे प्रचलित 'पूरनपोली' या 'वेड़मी' बापूजी को अन्य मिष्ठान्नो मे अधिक प्रिय थी। पूरनपोली के साथ घी अत्यधिक मात्रा मे खाया जाता है। नमकीन चीजो में उन्हे पकौडी, पकौडे, मद्रासी इडली जैसा गुजराती ढोकला पसद थे। जब कभी बापूजी हमारे घर पर भोजन करते तब नमकीन, मिठाई आदि की तैयारी करने में बा और काकी को काफी परिश्रम उठाना पडता। इसी प्रकार प्रत्येक शुक्रवार की रात भी मेरी स्मृति में विशेष रूप से रह गई है। साप्ताहिक 'इडियन ओपिनियन' को तैयार करने की वह रात होती थी। कभी-कभी सारी रात रतजगा करना पडता था। बापूजी कभी सबके साथ जागते थे और खडे-खडे रात भर काम करते थे। ऐसे अवसर पर काम करने वालो की थकान दूर करने तथा उनका उत्साह बनाये रखने को आधी रात के समय सबके लिए बापूजी खीर बनवाते थे और सहभोज करते थे।

लेकिन इन दावतो तथा बढिया-बढिया पकवान्नो का सिलसिला शुरू-शुरू में ही रहा। आगे चलकर जब बापूजी ने अपने जीवन में भारी परिवर्तन का आरम्भ किया तब ये दावते बन्द हो गईं। हमारे घर मे बहुत तेज मसालेवाली और मिर्चवाली शाक-सब्जी तथा पकौडी आदि खाना मगनकाका ने बन्द कर दिया और भोजन में थोडी-सी भी त्रुटि होने पर उग्र बन जाने वाले मगनकाका अब प्राय सौम्य बन गए। घर में अग्रेजी रहन-सहन धीरे-धीरे बढ रहा था वह भी रुक गया। भोजन के समय मेज पर छुरी काटे से ही भोजन करने की शान घट गई। रविवार को घर मे स्वाद की अनेक वस्तुए बनाने के बदले सादा भोजन लेकर घर से बाहर कही अमराई या अन्य सुन्दर स्थान पर वनभोज का सात्विक आनन्द लेने का प्रचलन बढा।

इस प्रकार फिनिक्स के जीवन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे।

: १९ :

पारिवारिक छात्रावास

वापूजी फीनिक्स मे अपनी पूर्ण युवावस्था मे थे और अकेले उनके ही वल पर उस सुदूर देश का वातावरण अनेकविध प्रवृत्तियो मे गूज उठा था। शीतकाल मे जिन प्रदेशो मे वर्फ पडती है वहा कुछ वृक्ष ऐसे होते है जो हिमस्नात के तुरन्त वाद ही फूल उठते है।

वापूजी की शक्तिया भी फीनिक्स मे इसी प्रकार खिल उठी थी और उन्होने हर पहलू मे अपने जीवन की सात्विकता प्रस्फुटित कर दी थी। मानवदौर्वल्य तो उनको छू तक नही सकता था। वैयक्तिक, सामाजिक, राजकीय, पारिवारिक—सभी क्षेत्रो मे उन्होने उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण अनुष्ठानो का सूत्रपात कर दिया था। एक ओर उन्होने जीवन भर के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया था और दूसरी ओर सत्याग्रह का वीडा उठाया था। अपने निकट के नौजवान की सारी युवावस्था धनसग्रह करने के पीछे ही वरवाद न होती रहे, इसके लिए उन्होने जहा सारा जीवन-क्रम आमूल वदलने का अनुष्ठान किया था वहा फैशन और आहार-विहार के नित-नये प्रलोभनो पर रोक लगाने के लिए भी वह जी-जान से कोशिश कर रहे थे। यह सब सुन्दर था, प्रशसनीय था, परन्तु सवसे श्रेष्ठ और भव्य था शिक्षण के क्षेत्र में उनका नवीनतम प्रयोग। यह प्रयोग उन्होने वहा शुरू तो किया, पर वहा के सत्याग्रह-आदोलन के कारण उसमें वह अधिक समय नहीं दे सके और वह प्रयोग अधूरा ही रह गया। हिन्दुस्तान आकर वापूजी की वह इच्छा सावरमती आश्रम और गुजरात विद्यापीठ मे पूरी हुई।

वापूजी ने जिस प्रथम छात्रावास का सूत्रपात किया, उसमे विश्व-वन्धुत्व और मानवता के विकास की वडी समर्थ कल्पना थी। आर्य सस्कृति की उत्क्राति भी उसमें निहित थी। हमारी उस पाठशाला मे देश-देश के शिक्षको और सभी धर्मो के विद्यार्थियो का समूह एकत्र हुआ था और उस सुयोग का भरपूर लाभ लेने का कौशल वापूजी के पास था। नेटाल और ट्रासवाल के जो भारतीय सत्याग्रही जेल गये थे उनके पुत्रो को शिक्षा देने का उत्तरदायित्व वापूजी ने अपने ऊपर ले लिया था। इस प्रकार जो नये-नये लडके फीनिक्स आये थे उनमे मद्रास के ईसाई और गुजरात के मुसलमान लडके भी थे। इन सबके लिए पढने का स्थान फीनिक्स के छोटे-छोटे झोपडो

मे निकल आया, परन्तु छात्रावास के योग्य किसी मकान की सुविधा नही थी। फिर गृहपति कौन हो, यह भी एक समस्या थी। बापूजीने इस समस्या को बडे साहस के साथ हल किया। फीनिक्सवासियो के प्रत्येक परिवार मे दो-दो तीन-तीन विद्यार्थियो को घर के ही सदस्यो की भाति रखने की योजना उन्होने बनाई और घर-घर जाकर महिलाओ को समझा-बुझा कर उसी योजना का प्रारम्भ कर दिया। उन्होने माताओ से सिफारिश की कि इन विद्यार्थियो की देखभाल उसी प्रकार सावधानी और परिश्रम से की जाय, जैसे कि अपने बच्चो की की जाती है। इस प्रकार कुटुबो को विकसित करके उनको जनसेवा से ओत-प्रोत कर देने की उज्ज्वल महत्वाकाक्षा उन्होने रखी। यह साबरमती के सत्याग्रह आश्रम की राष्ट्रीयशाला और गुजरात विद्यापीठ का सर्वप्रथम अकुर था।

हमारे घर मे तीन विद्यार्थी भरती हुए। वे सभी मुझसे ड्योढी-दुगुनी आयु के थे। उनमे सबसे होशियार और सयाने इब्राहीम का स्मरण मुझे रह गया है। आनन्दलालकाका के घर पर प्रेमजी नामक विद्यार्थी था। उसको लेकर रोज कोई-न-कोई बखेडा उठ खडा होता था और विवाद चलता था। बापूजी के घर मे जो विद्यार्थी थे उनमे माणिक्यम् को मै नही भूला हू। छोटे विद्यार्थियो पर वह चपतो की झडी लगाने मे कुशल था। वह हमारी पाठशाला का बडा विद्यार्थी तथा 'मानीटर' था तथा दो घटे बाद बदलते हुए शिक्षको के आने मे विलम्ब होने पर वर्ग की व्यवस्था सभालता था। पाठशाला के आचार्य थे श्री कोर्डिस।

हमारी पाठशाला और छात्रालय मे किसे अधिक अच्छा कहा जाय, इसका निर्णय सरल नही है। मै खुद अपने घर मे माता-पिता के पास था, इसलिए छात्रालय के बारे में मेरा कथन निर्णायक नही हो सकता। फिर भी मेरी राय मे विद्यार्थियो की पढाई के मुकाबले उनके रहने तथा भोजन की व्यवस्था अधिक अच्छी थी। अतिथि-विद्यार्थियो की सुख-सुविधा के लिए जो कुछ आवश्यक होता था, सब सावधानी से किया जाता था। हिन्दू के घर मे मुसलमान बालक को परायापन महसूस न हो, कदम-कदम पर उसे अपने घर की याद न सताए, इसके लिए भरसक कोशिश की जाती थी। हमारे घर मे उन्हे घर का सबसे बढिया भाग रहने को दिया गया था। वहा तीन पलग, फर्श पर बढिया जाजम, छोटी-छोटी मेजे आदि सजाए गए थे। मै उस कमरे मे पहुचने पर महसूस करता था, मानो किसी धनी घर मे जा पहुचा हू। वहा शान्ति बहुत रहती थी। वे विद्यार्थी बहुत धीमे-धीमे बातचीत करते थे। घरवालो को उनकी उपस्थिति महसूस न हो, इसकी

में बहुत सावधानी रखते थे। जहा तक मुझे याद है, वे मुश्किल से आठ-दस महीने हमारे यहा टिके थे, परन्तु जबतक वे रहे, हमारे घर का वातावरण बहुत नीरव और गम्भीर था। भरसक कोशिश और सेवा करने पर भी हमारे घर के बडो और अतिथि-विद्यार्थियो के बीच कुछ मानसिक सघर्ष चलता ही रहता था। दोनो ओर हृदय का विकास बापूजी के आदर्श तक नही पहुचा था।

फीनिक्स मे बापूजी ने हमारे लिए प्राथमिक पाठशाला की भी नीव रखी। पढनेवालो मे हम तीन—रामदासकाका, देवदास काका और मैं—के अतिरिक्त बाहर के भी दो-तीन लडके आने लगे, जो उम्र मे मुझसे बडे और शरीर से भी काफी मजबूत थे। प्रेस मे काम करनेवालो मे से दो-तीन सज्जनो ने पढाने का काम हाथ मे ले लिया। गणित मेरे पिताजी, गुजराती मगनकाका और अग्रेजी श्री कोर्डिस सिखाने लगे। बाहर मे आनेवाले बच्चे गिरमिटमुक्त भारतीय लोगो के थे। उनके झोपडे हमारे रहने की टेकरियो के सामने वाली टेकरियो पर थे। उन्हे मील डेढ मील से भी अधिक चलना पडता था। हिन्दी मे बातचीत करना पहले-पहल उनके साथ ही हम लोग सीखे। न जाने क्यो, उस समय हम हिन्दी को कलकतिया बोली के नाम से पहचानते थे। इसका कारण शायद यह रहा होगा कि उत्तरप्रदेश, बिहार आदि से गिरमिट मे बधकर दक्षिण अफ्रीका जाने वाले मजदूरो की समुद्र-यात्रा कलकत्ते से हुआ करती थी, इसलिए उन सबको और उनकी बोली को 'कलकतिया' कहा जाता था।

ये दूसरे बच्चे हमसे डरने के कारण या हिन्दी और गुजराती की बोली के अन्तर के कारण हमसे कुछ अलग-अलग थे। पढने के समय आकर अलग बैठ जाते और पढाई खतम होने पर आपस मे बातचीत करते हुए लौट जाते थे। उनके पुराने, बिना चमक-दमक के कपडो के कारण उनका अनादर न करने और यथासभव उनकी सहायता करने की भावना हमारे दिल मे जागृत हो गई थी, क्योकि जब पिताजी और मगनकाका आदि हमे पढाते थे तो वे हमारी बात सुनने के पहले उनकी बात सुनते थे। उन्हे समझाने मे भी वे अधिक समय लगाते थे। बच्चे दबकर, धीरे मे प्रश्न का उत्तर देते तो उन्हे निस्सकोच होकर जोर से बोलने और शर्मिन्दा न होने के लिए बढावा दिया जाता था। मगनकाका तो उनके किसान-जीवन की, उनकी परिश्रम करने की शक्ति की और सादे रहन-सहन की बार-बार हमारे सामने प्रशसा करते थे और उनमे सरलता व सादगी सीखने की शिक्षा भी देते रहते थे। मेरे मनपर इस बात का गहरा असर

पढता था और क्लास से छूटने के बाद जब कलकतिया लडके अपने घर को लौटने तब मै भी उनके साथ-साथ थोडी दूर तक जाता और आपस मे उनका भाईचारा देखा करता था। दोस्ती करने के लिए उनमे बात करने की कोशिश भी करता था, परन्तु कभी खुलकर वे मिले ही नही। शायद उनके चित्त में यह भय जम गया था कि उजले घर के ये बालक हमारा मजाक उडायगे।

वे कुछ महीने ही पढने आये। फिर न मालूम क्या हुआ, उन्होने आना बन्द कर दिया। बाद मे उधर का कोई लडका हमारे साथ पढने नही आया। समय बीतने पर धीरे-धीरे हमारी शिक्षा काफी आगे बढी और पाठशाला का भी विकास हुआ, पर अडोस-पडोस के विद्यार्थियो और लोगो मे हमारी घनिष्टता नही बढी।

फीनिक्स की इस सर्वप्रथम शाला में स्वय बापूजी ने एक भी दिन वर्ग लिया हो, ऐसा मुझे स्मरण नही है, परन्तु जब कभी वह फीनिक्स आते तब पाठशाला देखने अवश्य आते थे। वह बच्चो की पढाई इतनी नही देखते थे जितनी कि सफाई। एक बार उन्होने मेरे कान मे मैल देख लिया और नहाते समय कान में भी मैल न रहने देने के लिए मुझे समझाया। इसके बाद, पाठशाला जाने से पहले मुझे अपनी माताजी को दिखाना पडता था कि शरीर पर कही मैल तो नही है। कई बार तो स्वय पिताजी मेरे पैरो का मैल धोते और मेरे नाखून काट देते थे।

पाठशाला में हमारी पढाई व्यवस्थित रूप मे शुरु होने के कुछ दिन बाद फीनिक्स के वातावरण में अकस्मात् गम्भीरता आ गई। मैने देखा कि घर के बडो के मुख पर उदासी छा गई है। कुछ समय तक मेरी समझ मे इसका कारण नही आया। फिर बडो की बातचीत से मुझे ज्ञात हुआ कि "मोहनदासकाका किसी सकट मे है।" बाद मे यह सुना कि बोथा नामक किसी गोरे ने बापूजी, हरिलालकाका और दूसरो को भी कैदखाने में डाल दिया है। वहा पर उन लोगो को खाने के लिए केवल मक्की का बना दलिया ही मिलता है, जो उन्हें लकडी के चम्मच से खाना पडता है। पहनने के लिए उनको पूरे कपडे भी नही मिलते।

इस समाचार के बाद कई महीनो तक जब बापूजी फीनिक्स नही आये तब इस बात का अनुमान हुआ कि हम लोगो की परिस्थिति इन गोरो के बीच कैसी विकट है। बोथा की जेल से निकलने के बाद बापूजी को राजनीति के कामकाज में और भी ज्यादा उलझना पडा। फिर भी फीनिक्स के शिक्षण के प्रयोग को आगे बढाने का उन्होने आग्रह रखा और वहा बाहर के छात्रो को रखने की योजना बनाई।

बापू उस समय दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के दूसरे दौर मे फसे हुए थे। फीनिक्स मे पाठशाला व पारिवारिक छात्रालय का श्रीगणेश करके वह जोहान्सवर्ग और वहा से इग्लैड जा पहुचे थे। इस पारिवारिक छात्रावास की उम्र बहुत थोडी रही। इसके बाद बापूजी ने दुबारा कभी ऐसे छात्रावास का प्रयोग दक्षिण अफ्रीका मे या भारत में किया हो, मुझे स्मरण नही है।

यद्यपि फीनिक्स के उस छात्रावास का प्रयोग अल्पजीवी साबित हुआ तथापि फीनिक्स की पाठशाला धीरे-धीरे बढती गई। जहा तक मुझे याद है, उस पाठशाला का बाह्य स्वरूप तीन महीने से अधिक शायद ही कभी एक-सा रहा हो। समय-समय पर पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तको और शिक्षको मे परिवर्तन होता रहता था। परन्तु पाठशाला सतत चलती रही। श्री कोर्डिस के फीनिक्स छोडने के समय तक वह उनके ही मकान मे थी।

हमारे छात्रावास की स्थापना के सम्बन्ध मे सन् १९०९ की २ जनवरी के 'इडियन ओपीनियन' मे फीनिक्स की पाठशाला के सम्बन्ध मे एक सूचना प्रकाशित की गई थी। ता० ९-१-१९०९ को छात्रावास के बारे मे विशेष सूचना छपी थी, जिसका महत्वपूर्ण अश यह है

"फीनिक्स के कार्यकर्त्ताओ में जो परिवार वाले है वे अपने घर में आठ-आठ लडको तक के रहने-खाने की व्यवस्था कर सकेंगे। विचार यह है कि जिसे अपने यहा रखा जाय उसे अपने निजी बालक के समान ही सम्हाला जाय। यह प्रथा हिन्दुस्तान में पुराने समय में चलती थी। जहा तक बन पडे उसको फिर से शुरु किया जाय। हर प्रकार के हिन्दुस्तानी को लिया जायगा।

"खाने-पीने में किसी भी प्रकार का भेद नहीं किया जायगा। लडको को कुछ परिवर्त्तन के साथ वही भोजन दिया जायगा जो फीनिक्सवासी लेते है। अर्थात् आधी बोतल दूध, दो औंस (एक छटाक) घी, आटा, मीली मील (पुपु) अर्थात् मक्का का दलिया, दाल, चावल, हरी सब्जी, ताजे फल, मींगी (प्रधानतया मूगफली) खाड और डबल रोटी। इसमें से कौन-सा भोजन किस समय दिया जाय, यह हमारे सामान्य नियम के अनुसार निश्चित किया जायगा।

"इस भोजन में चाय, कॉफी या कोको का समावेश नहीं किया जायगा। अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर हमारा विश्वास है कि चाय आदि बच्चो को तो हानिकारी है ही, बडी आयुवालो को भी हानिकारी है।

"कुछ डाक्टरो का कहना है कि चाय आदि के प्रचार से लोगो में रोगो, की वृद्धि हुई है। फिर चाय, कोको और कॉफी साधारणतया गुलामी से काम करने वाले मजदूरो द्वारा पैदा कराई जाती है। नेटाल में गिरमिटियो से

इनकी खेती कराई जाती है। कोको कागो में होता है। वहा गिरमिट में बधे हुए हब्शियो से काम लेने में जो जुल्म किया जाता है उसकी कोई हद नहीं है। चीनी प्राय गुलाम मजदूरो से ही पैदा कराई जाती है। यह हम लोगों को सुविदित है। इन सब बातो को गहराई से जाचना कठिन है, फिर भी उक्त तीन चीजो—चाय, कॉफी, कोको—का उपयोग जितना कम किया जाय, अच्छा। फिर आज जबकि हिन्दुस्तान में स्वदेशी का आग्रह जोरो से किया जा रहा है, इन तीनो चीजो का त्याग उचित ही है।

"लडको का पहनावा एक-सा रखना सुविधाजनक होगा। पायजामा, कुर्ता, नेकर, सैंडल, धूपटोपी, तौलिया, रूमाल आदि का हिसाब एक पौंड तेरह शिलिंग छ पेन्स लगाया गया है। टोपी सब अपने-अपने समाजकी पहनेंगे। धूपटोपी धूप में काम करते समय पहनी जायगी। जो मा-बाप यह पोशाक पहनना या इतना खर्च करना न चाहें अथवा इतनी सादगी सिखाना पसन्द न करें, वे एक अलग सन्दूक में अपने घर के कपडे दे दें।

"सोने के लिए खाट देने का हमारा इरादा नहीं है, किन्तु जेल की तरह के तख्त का प्रबन्ध करने का विचार किया गया है, क्योंकि हमारी राय में वे अधिक आरोग्यप्रद होते है। रजाई-गद्दो के बदले कम्बलो का प्रयोग भी हमें अधिक आरोग्यप्रद प्रतीत हुआ है। इस प्रकार बिस्तर में तीन कम्बल, एक तकिया, चार चादर और तकिए के तीन गिलाफ अवश्य होगे।

"पढने का शुल्क नहीं रखा गया है। प्रेस में काम करने वाले ही पढायँगे और उनको वहा से आजीविका मिल जाती है। इसके लिए प्रेस ने सम्मति दे दी है। फिलहाल एक समिति बनाई गई है, जो शिक्षा-पद्धति आदि के बारे में विचार करती रहेगी।"

यद्यपि 'इडियन ओपीनियन' के इस लेख मे बापूजी के हस्ताक्षर नही है, फिर भी लिखावट से स्पष्ट है कि यह स्वय उनका ही लिखा हुआ है। यह लेख गुजराती मे है।

: २० :

शिक्षा का नवीन प्रयोग

बापूजी ने फीनिक्स मे पहले-पहल जो पाठशाला प्रारम्भ की उसमे उन्होंने परीक्षाओ का या दूसरी-तीसरी-चौथी आदि श्रणियो का नाम तक नही रखा था। यही नही, फीनिक्स की पाठशाला के लिए कोई विशष

शिक्षक भी नही बुलाया गया था। बरसो तक फीनिक्स की पाठशाला चली, परन्तु वहा पर एक भी व्यक्ति ऐसा नही बुलाया गया जिस पर शिक्षक की छाप लगी हो, अर्थात् जो पेशेवर शिक्षक रहा हो, क्योकि बापूजी ने हमारी पढाई की सारी नीव ही और ढग मे रखी थी।

पढाई की पुस्तके कौनसी हो, पाठ्य-क्रम क्या हो, या पढाई की कसौटी क्या हो,इस सबध मे बापू ने न कोई आदेश दिया,न कोई विशेष आग्रह रखा। बालको को पढाने वाले व्यक्ति सुयोग्य हो और विद्यार्थी पर अच्छा प्रभाव डालने वाले हो, इस बात की सावधानी बापूजी ने रखी और यह काम फीनिक्स मे बसे हुए कार्यकर्ताओ को ही उन्होने सौपा।

बापूजी के प्रेम भरे परिचयो के कारण यह फीनिक्स को सुयोग प्राप्त हुआ था कि वहा पर अनेक देश और अनेक धर्म के लोग आ इकट्ठे हुए थे। जर्मन, अग्रेज, अफ्रीकी, चीनी, ईसाई, पारसी, मुसलमान, यहूदी तथा वैष्णव, सबका पॅचमेल फीनिक्स मे माधुर्य से और हार्दिकता से चल रहा था। परस्पर घृणा, ऊंच-नीच का भेद, या पग-पग पर कटुता का वहा अस्तित्व नही था। समय के अपने बाल्पन के दिन याद करने पर मै यही अनुभव करता हू कि मुझे एक विशाल परिवार मे और सुन्दर सुरक्षित वातावरण में दिन-रात विचरने का अवसर मिला था। मेरे लिए पिताजी और मगनकाका जैसे आदरणीय और माननीय थे, उसी प्रकार हमारी पाठशालाके जर्मन शिक्षक कोर्डिस भी आदरणीय और माननीय थे।

बापूजी ने अपने जीवन मे एक-से-एक बढकर आश्रम और विद्यालय बनाये तथा सचालित किये, किन्तु उन सबमे कोर्डिस-शाला अपने ढग की निराली थी। वहा के चेतनमय वातावरण की स्मृति आज भी मुझमे स्फूर्ति पैदा करती है।

श्रीकोर्डिस का घर फीनिक्स मे मिट्टी से बना हुआ और घास से छाया हुआ पहला घर था। उसके चारो ओर मनोहर बागीचा था। कभी-कभी वह एक हब्शी नौकर रख लेते थे, पर अधिकतर काम स्वय ही करते थे। इतने बडे मकान मे अकेले रहने पर भी वह उसे आइने के समान स्वच्छ और पूर्णतया व्यवस्थित रखते थे। उनकी नस-नस मे जर्मन खून दौड रहा था। इसलिए नजाकत तो वे सहन कर ही नही सकते थे। हम लोगो के शरीर चपल बने और हमारी तितिक्षा-शक्ति बढे, इसके लिए वह सदैव जाग्रत रहते थे।

श्रीकोर्डिस के पढाने का ढग भी अनोखा था। मुह से बोलकर समझाना मानो उन्हे पसन्द ही नही था। जोर-जोर से अपनी बात दुहरा कर

विद्यार्थी के दिमाग मे घुमड देने का प्रयास करते हुए मैंने उन्हे कभी नही देखा। न किसी अन्य यूरोपवासी शिक्षक को ही ऐसे चीखते हुआ पाया। वह अपने आग्रह को प्रकट करके प्रत्यक्ष अनुभव कराकर शिक्षा देते थे। उदाहरणार्थ, सुलेख सिखाने के लिए दो फुट लम्बी और लगभग आधा इच व्यास की पेन्सिले उन्होने हमारे लिए मगाई थी। लिखते समय उस पेन्सिल का ऊपर का सिरा हमे अपने दाए कधे की सीध मे रखना पडता था और नीचेवाला सिरा पकडने मे अगूठे को और तर्जनी को बिलकुल सीधा रखना पडता था। यदि लिखते-लिखते अगूठे या तर्जनी की जरा भी गोलाकृति हो जाती या हम अगुली पर ज्यादा दवाव दे देते, अथवा ऊपरवाला सिरा दाए कधे की सीध को छोड देता तो कोर्डिस साहव चुपके से हमारी पीठ के पीछे आ धमकते और पेन्सिल को छीनकर उससे हमारी अगुलियो के जोडो पर दो-चार तडातड वार कर देते थे। उनकी दृष्टि हमारे भले-बुरे अक्षरो पर उतनी नही रहती थी जितनी कि हमारे लिखने, बैठने और पेसिल पकडने के तरीके पर।

उनकी पाठशाला मे प्रत्येक विद्यार्थी को अनुशासन का पालन बडी सावधानी से करना पडता था। पाठशाला की समाप्ति पर वह हमे एक कतार मे खडा करके व्यायाम कराते थे। किसी की एडियो के बीच का कोण थोडा-सा भी बदल जाय या घुटना जरा भी झुक जाय तो उसकी आफत आ जाती थी।

कोर्डिस साहव का इशारा होते ही उनके बताए हुए पेड पर हमे बन्दर की-सी तेजी से चढ जाना पडता था और पेड से उतरते समय जहा से वह बताए तत्काल धरती पर कूद पडना होता था। कूदने मे कोई लडका ढील करे और हाथ मे पकडी हुई डाल को आज्ञा पाते ही छोड न दे तो कोर्डिस साहव का मुह क्रोध से लाल हो जाता था। उनकी हुकार सुनकर अपने-आप डाली हाथ से छूट जाती थी।

कोर्डिस साहव के सजा देने के दो तरीके थे। जरा-जरासी बात पर वह विद्यार्थी की दीवार की ओर मुह करके खडा होने के लिए मजबूर करते थे।

अनुशासन, व्यवस्था, स्वच्छता आदि पर कोर्डिस साहव जितना जोर देते थे उतना पुस्तको की पढाई पर नही देते थे। रामदासकाका को अग्रेजी सिखाने के लिए उन्होने काफी परिश्रम किया था, परन्तु अधिकतर वह पदार्थ-विज्ञान के ही पाठ विनोदपूर्ण ढग से पढाया करते थे। खरगोश, बिल्ली, कुत्ते, चूहे आदि के आख, पैर, पजे और दूसरे अवयवो मे जो अन्तर होता है, वह समझाते थे। तरह-तरह के प्राणियो के चित्र बताते थे। भौगो-

लिक चित्रो को सूक्ष्मदर्शक काच से वडा करके दिखाते थे और ऐसे विपयो की सचित्र पोथिया पढाते थे।

मेरे पिताजी को इस तरह की पढाई पसन्द नही थी। उनको यह समय की वरवादी प्रतीत होती थी और उनके वैष्णव मानस को पशु-पक्षियो के शिकारी अवयवो की वाते अग्राह्य थी। परन्तु फीनिक्स मे वह एक ही पाठ-शाला थी, इसलिए वह मुझे वहा भेजने के लिए मजबूर थे।

मगनलालकाका इस कोर्डिस-शाला मे नियमपूर्वक समय निकाल कर आया करते थे और गुजराती तथा गणित पढाते थे। उस समय हम वडी एकाग्रता से उनके पास पढते थे। दिन भर मे यही घटा हमे पढाई का प्रतीत होता था। अन्य समय मानो शरीर की आदतें वनाने मे वीतता था। मेरा अनुमान है कि यदि पूरे चार वर्प भी कोर्डिस साहव की वह पाठशाला चली होती तो जर्मन स्फूर्ति और कठोर आदते हम लोगो के जीवन मे स्थायी हो जाती।

कोर्डिस साहव के अतिरिक्त दूसरे विदेशी शिक्षको मे, जिनका मुझे स्मरण है, उनमे श्री पोलक वहुधा फीनिक्स आते थे। वह जोहान्सवर्ग के कार्यालय मे वापूजी के पास काम करते थे। रस्किन की उस पुस्तक के वह प्रशसक थे ही, जिसके कारण वापूजी की 'सर्वोदय' की कल्पना सुस्पष्ट हुई थी और फीनिक्स मे डेरा जमाया था। यहा के विकास मे उनको भी दिलचस्पी थी। फीनिक्स की स्थापना व 'इडियन ओपीनियन' के सचालन में उनका महत्वपूर्ण सहयोग था। वरसो तक 'इडियन ओपीनियन' के अग्रेजी विभाग का सपादन श्री पोलक ने ही किया था। उन्होने अपने लिए भारतीय नाम 'केशवलाल' चुना था। रविवार की छुट्टी के दिन पिताजी, मगनलालकाका और दो-तीन अन्य फीनिक्सवासी वाग की छाया में वैठकर विनोद-वार्त्ता करते थे।

चलते-फिरते कई वार पोलक साहव मुझसे अपनी अगुली पकडवा लिया करते और अग्रेजी मे अनेक प्रश्न पूछा करते थे। मै अग्रेजी नही के वरावर समझता था, इसलिए वह अपना प्रश्न वार-वार छोटा करके पूछते थे और मुझसे उत्तर प्राप्त करते थे। इस प्रकार उन्होने अग्रेजी मे मेरा प्रवेश कराया। वह इतनी धीमी आवाज मे वोलते थे कि अपनी कर्णेद्रिय को मुझे तीक्ष्ण वनाना पडता था। उनका स्वभाव इतना विनोदी और सरल था कि उनके पास जरा भी सकोच का अनुभव नही होता था।

श्री आइजक एक ऐसे अग्रेज अतिथि थे जिनके आने पर फीनिक्स के सभी वच्चे खुश हो जाते थे। उनका स्वभाव विदूपक का-सा था। प्रात -काल से रात तक वे हँसाने की कोई-न-कोई वात हमारे सामने रखते ही रहते

थे। सीधी तरह बोलना और बात करना मानो वह जानते ही न थे। कभी कुर्सी पर बैठ कर अपने पैर का अगूठा नचाते, कभी मेढक की चाल चलते, कभी चौक कर भाग निकलते और बच्चो की सारी टोली को अपने पीछे दौडाते। जब वह अभिनय के साथ रीछ और बन्दरो की कहानी सुनाते तब मानो वह जानवर ही हमारे सामने उपस्थित हो जाते थे! किन्तु उनके भरपूर हास्यरस मे अवाछनीय बात जरा भी नजर नही आती थी।

फीनिक्स के भारतवासी व्यक्तियो मे श्री सेम ऐसे थे, जो हमे पढाने के लिए पाठशाला मे नही आते थे, फिर भी परोक्ष रूप से वह हमारे शिक्षक ही थे। वह फीनिक्स के मुद्रणालय के इजीनियर थे। यत्रो को सुधारना, साफ रखना, अखबार छापना, पुस्तको की जिल्द बाधना, इत्यादि कार्य श्री सेम के हाथ मे था। उनके हाथ काले हो तो भी उनके हाथ से कागज या किताब पर धब्बा नही लगता था, यह देखकर हमे बडा आश्चर्य होता था। वह शिकार भी खेला करते थे। ऊचे वृक्ष की शाखा पर जाते हुए साप को वह एक ही बार बन्दूक चलाकर नीचे गिरा देते थे। जब वह हिरन का शिकार करने जाते तब ऊची घास मे छिप-छिपकर चलने की उनकी कला देखने मे मुझे बडा आनन्द आता था। शिकारी होने पर भी वह बालको के बडे प्रेमी थे। हम लोग बागीचो मे चोरी करे या नटखटपन करके प्रेम की कोई मशीन बिगाडे तो अनेक बार उनकी पैनी नजर हम पर पड जाती थी। परन्तु उन्होने कभी हमे डाटा-डपटा नही, न हमारी शिकायत ही किसी से की, केवल धीरे-से हम समझा दिया करते थे। उनकी बात हम मान भी लेते थे। वह मद्रासी ईसाई थे और उनका पूरा नाम 'गोविदस्वामी' था।

श्री क्वीन नाम के एक चीनी सज्जन भी फीनिक्स मे कुछ समय के लिए आये थे। उनके बारे मे मुझे इतना याद है कि उनके पीछे-पीछे हम फीनिक्स के बागीचो मे घूमते थे। उनके विचित्र उच्चार सुनने मे हमे मजा आता था। उनका वेश और हावभाव हमे अजीब-सा लगता था।

एक थे श्री किचन। वह जहा-तहा बिजली की रोशनी लगाते रहने मे उलझे रहते थे। शाम के समय वह बेकार कनस्तरो को खेतो मे ढग मे रखकर अपनी पिस्तौल से चादमारी किया करते थे। मुझे ऐसा याद है कि वह बापूजी के मकान मे ही रहते थे और उस घर के निर्माता भी वही थे। श्री पोलक मे पहले 'इन्डियन ओपीनियन' के अग्रेजी विभाग का सपादन-कार्य श्री किचन ही करते थे। पता नही क्यो, वह बहुत पहले ही फीनिक्स मे चले गए थे और कुछ वर्ष बाद मैने सुना कि उन्होने आत्महत्या करली।

डरबन से जब दाऊद शेठ, रुस्तमजी शेठ, उमर शेठ आदि फीनिक्स

आते थे, तब उनके आतिथ्य के लिए हमे काफी दौड-धूप करनी पडती थी। उनके लिए आवश्यक चीजे दौडकर हमे ही लानी पडती थी। यदि हमारे काम करने मे सुस्ती दीख पडती तो वह नाराज हो जाते थे। फीनिक्स मे कहा पर कौन-सा नया शाक किस पौधे पर है इसकी जानकारी मुझे अधिक रहा करती थी और उनके लिए नई तरकारी लाने का काम करने मे मुझे उनसे शाबासी मिलती थी।

सार यह कि ये अतिथि भी हमारे शिक्षक थे, जिनके द्वारा फीनिक्स के एकान्त कोने मे हमारा सबध शेष दुनिया से थोडा-बहुत जुड जाता था।

इस प्रकार यदि बापूजी फीनिक्स में महीनो तक नही आते थे तो भी उनकी छाया दिनरात हम पर बनी रहती थी और उनके कारण हमारी उस जगल की पाठशाला मे एक अन्तर्राष्ट्रीय विद्यापीठ का-सा वातावरण कायम रहता था तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्कार हमे जान-अनजान मे मिलते रहते थे।

श्रेणी और वार्षिक परीक्षा का क्रम न होने पर भी फीनिक्स की पाठशाला मे पढाई का स्तर 'मेट्रिक्युलेशन' तक पहुचाने का था। परन्तु अनेक शिक्षको के बदलते रहने के कारण उनकी वह इच्छा पूरी न हुई। हमारी पढाई ढीली ही रही। उन्होने जो योजना बनाई थी उसकी रूप-रेखा ९ जनवरी, १९०९ के 'इडियन ओपीनियन' मे इस प्रकार प्रकाशित हुई थी

"इस पाठशाला का प्रधान उद्देश्य लडको का चारित्र्य विकसित करना है। कहा गया है कि सच्चा शिक्षण बच्चे अध्ययन करने पर प्राप्त करते है। अर्थात् तब उनमें ज्ञान प्राप्त करने की अभिरुचि पैदा होती है। ज्ञान तो अनेक प्रकार का होता है। कुछ हानिकारक होता है। इसलिए यदि विद्यार्थियो का चारित्र्य सुगठित न किया जाय तो वे विपरीत ज्ञान प्राप्त कर लेते है। बिना तरीके के, जो आया सो पढाते रहने के कारण, कई लोग नास्तिक हो जाते है और बहुत पढे हुए होने पर भी कई चरित्रहीन बन जाते है। इसलिए लडको की नीतिमत्ता सुदृढ करने में उन्हें सहायता देना इस पाठशाला का मुख्य उद्देश्य है।

"लडको को उनकी स्वभाषा, अर्थात् गुजराती अथवा हिन्दी और शक्यत तमिल तथा अग्रेजी का ज्ञान दिया जायगा। अकगणित, इतिहास, भूगोल, वनस्पति तथा प्रकृति का ज्ञान दिया जायगा। जो लडके आगे बढ पायगे उन्हें बीजगणित और रेखागणित भी सिखाया जायगा? मैट्रिक्युलेशन तक तैयारी करा देने की धारणा रखी गई है।

"धर्म शिक्षण के लिए माता-पिता जिस धर्मगुरु को चाहें, भेज सकते हैं। हिन्दू लडको को हिन्दू माता-पिता की इच्छा के अनुसार हिन्दू धर्म के मूल तत्त्व सिखाए जायगे। हिन्दुस्तानी ईसाइयो को ईसाई धर्म के तत्त्व श्री वेस्ट और श्री कोर्डिस थियोसफी के आधार पर सिखायगे। मुसलमान लडको को जुम्मे के दिन डरबन जाने की इजाजत दी जायगी। हमारा विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति की तालीम धर्म की तालीम के विना व्यर्थ है। इसलिए प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वह अपने-अपने धर्म का शिक्षण और जिसे सासारिक ज्ञान वताया जाता है, दोनो ही एक साथ दे। गहराई से विचार करने पर पता चलेगा कि जिसे हम सासारिक शिक्षण कहते है, वह भी धर्म को सुदृढ करने की ही तालीम है। हमारा विश्वास है कि इस उद्देश्य से रहित जो शिक्षा दी जाती है वह वहुधा हानिकारक होती है।

"भारत के प्रति वच्चो का प्रेम वढाने और उन्हें स्वदेशाभिमानी वनने में सहायता देने के हेतु से भारत का प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास सिखाया जायगा।

"यह विचार हम लोगो को भी सही जच जावे और जिस ऊची पदवी का मैं चित्रण कर रहा हू, वह हम प्राप्त करें, ऐसी चाह रखोगे तो ईश्वर हमें ऐसा अवसर देगा।"

: २१ :

हमारे संस्कार

फीनिक्स मे पाठशाला और पारिवारिक छात्रावास का जव से श्रीगणेश हुआ, तवसे कुछ ऐसा ही वातावरण वहा उत्पन्न हो गया था कि अन्य विषयो की पढाई मे हम सावधान न भी रहे, धर्म के विषय मे किसी के सामने नीचा न देखना पडे, इस वात की जागरूकता तथा अभिलाषा हमारे अदर वनी रहती थी।

उस समय जितने वालक पढ रहे थे उनमें हिन्दुओ की सख्या आधे से कम थी। विद्यार्थी अथवा शिक्षक एक-दूसरे के धर्म पर छीटाकशी या वादविवाद नही करते थे। पर अपने-अपने धर्म की अच्छी-अच्छी वाते सुनने-सुनाने का उत्साह उस वातावरण मे था। भारतीय ईसाई अग्रेजी भाषा, अग्रेजी तौर-तरीके और इतवार की सम्मिलित प्रार्थना मे अपना गौरव विशेष रूप से प्रदर्शित करते थे। हिन्दुओ के त्यौहारो का उत्साह छिपता नही

था। वे वार-वार आनेवाले त्यौहार मनाने मे अपनी विशेषता अनुभव करते थे। मुसलमान लडके अपने दीन और कुरान की प्रशसा के गीत गाते हुए नही अघाते थे। लेकिन धर्म की भिन्नता के कारण हमारे वीच मे कभी अन-वन का प्रसग पैदा नही हुआ।

फिर भी अपने वालको की सस्कारिता शुद्ध रहे और वे सगति-दोष के शिकार न वने यह हमारे माता-पिता के लिए चिन्ता का विषय था। वापूजी के जैसी ऊची श्रद्धा को अपनाना उन लोगो के लिए कठिन था, जो सनातन धर्म के परम्परागत भावनाशील अनुयायी थे।

हमारे घर मे जो तीन विद्यार्थी थे उनमे दो मुसलमान थे। उनकी देखभाल और सुविधा के लिए हमारे घरवालो को कम परिश्रम नही करना पडता था। कस्तूरवा को वापूजी ने इससे भी कडी कसौटी पर चढाया था। हमारे घर मे सौम्य प्रकृति तथा धनी घराने के गुजराती लडके थे, परन्तु वा के यहा उग्र प्रकृति के ईसाई लडके थे, जो मद्रास की ओर से श्रमिक के रूप मे आकर दक्षिण अफ्रीका मे वसे हुए गिरमिट-मुक्त परिवारो के वालक थे।

मेरे माता-पिता कट्टर वैष्णव परम्परा पालनेवाले थे। अभी तक मै वह दिन नही भूला हू जव हमारे घर मे वापूजी के मुसलमान मित्रो को आदरपूर्वक भोजन कराने के वाद, मेरी माताजी और काकी उनके उपयोग मे आए हुए पीतल के वर्तनो को अग्नि मे तपाकर ही रसोईघर मे रखती थी। मेरे पिताजी के लिए भी मुसलमानो की पक्ति मे भोजन करना एक विकट समस्या थी। उन्होने अपने-आप को वापूजी के हाथो मे पूर्णतया छोड रखा था, इसलिए वह वापूजी के अनुसार चलने का भरसक प्रयास करते थे और अपने मन की वात मन मे ही रखते थे। परन्तु उनको विधर्मियो के साथ वापूजी की घनिष्ठता विकट समस्यारूप प्रतीत होती थी। पिताजी के मुख से मैने इस सवध मे अधिक नही सुना, क्योकि उन्हे वोलने की आदत वहुत कम है। लेकिन उनकी पुरानी डायरी मे कही-कही दो-चार शब्द मिल जाते है, जिनसे उनके मनोमन्थन का पता चलता है। उस समय दक्षिण अफ्रीका मे वापूजी 'भाई' के नाम से प्रसिद्ध थे और पिताजी ने अपनी डायरी मे उनका उल्लेख मोहनदासकाका के साथ-साथ केवल 'भाई' के नाम से भी किया है। डायरी के कुछ उद्धरण इस प्रकार है

४ जनवरी १९०६ शाम को ६ वजे हमारी ट्रेन जोहान्सवर्ग स्टेशन पहुच गई। रामा, देवा, मणिलाल, वापू, और श्रीमती पोलक स्टेशन पर मुझे लिवाने आये थे। उनके साथ ७ वजे घर पहुचा। नहाने-धोने के वाद भोजन के लिए सव मेज पर जा वैठे। सारी अग्रेजी रीतिया देखकर अजीव लगा।

मन मे अनेक विचार आये—हमारी रीति अच्छी या इनकी, यह निश्चय नही कर पाया। भोजन मे ब्रेड, शाक, दाल-भात आदि वस्तुए थी। भोजन के बाद कोको था। भोजन के आरम्भ होने से पहले 'भाई' ने गीताजी के प्रथम अध्याय के २८ से २७ श्लोक पढे और गुजराती में उनका अर्थ पढा। दस बजे सो गया। सोने की सुविधा बडी अच्छी थी।

५ जनवरी १९०६ ५ बजे उठकर साढे ६ बजे स्नान आदि मे निवृत्त हो गया। मोहनदासकाका के कहने पर मणिलाल मेरे बूट पालिश करनेके लिए ले गया। इसकी मेरे मन पर गहरी छाप पडी, जिसे लिख सकना मेरी शक्ति के बाहर है। सभी लोग बिना कुछ खाये-पिये काम के लिए निकल पडे। मै भाई के साथ उनके दफ्तर तक पैदल गया, जो करीब दो मील की दूरी पर है। रास्ते मे 'इडियन ओपीनियन' साप्ताहिक के सम्बन्ध मे बातचीत हुई। ठीक साढे नौ बजे भाई ने दफ्तर मे काम शुरु कर दिया। दफ्तर मे काम करने-वाली कन्या को देखकर मन मे कई विचार आये। दोपहर के समय भाई ने और दफ्तर के सब लोगो ने केले और मूगफली का अल्पाहार किया। उसके बाद प्रेस के खर्च का हिसाब बारीकी से जाचा गया और शाम को साढे पाच बजे भाई के साथ मै घर आया। रात को भोजन के समय अग्रेज मित्र पोलक-दम्पति का खुलकर मिलना-जुलना देखकर विचार मे पड गया।

६ जनवरी १९०६ भोजन के समय भाई के घर श्री पोलक के विवाह के सिलसिले मे कुछ सज्जनो को दावत दी गई थी। अग्रेज, मुसलमान, हिन्दू, सब थे। भोजन के समय का विनोद मुझे अत्यधिक जान पडा।

७ जनवरी १९०६ कल के मुकाबले आज चक्की मे गेहू पीसने मे थकावट कम हुई।

११ जनवरी १९०६ स्मिथ, पोलक और श्रीमती पोलक भाई के घर मे ही रहते है और बहुत आजादी का बर्ताव करते है, यह देखकर बहुत विचार आते है।

१२ जनवरी १९०६ मैने श्री बीन को और भाई ने श्री वेजरनाजर को 'इडियन ओपीनियन' मे तमिल और हिन्दी विभाग बन्द करने के लिए भेजा।

१४ जनवरी १९०६: बापूजी के कई पत्र लिखे और उर्दू कायदा सीखना शुरु किया।

२० जनवरी १९०६ . ईसा हाजी शुगरकेन कालोनी की ट्रेन से आये। उनको लिवाने के लिए भाई और उमरसेठ के साथ मै भी गया। दोपहर मे सब मेहमान श्री आइज़क, कैलनबैक, ईसा हाजी, उमर सेठ व हाजी हबीब

हाजिर थे। पोलक हिन्दुस्तानी पोगाक पहने थे। भोजन मे मै अलग बैठा था।

२७ जनवरी १९०६ · शाम को ६ वजे की गाडी से मै फीनिक्स मे डरवन गया। कनाट के ड्यूक डरवन मे थे। रात को साढे सात वजे भाई जोहान्सवर्ग से आये। सब लोग सीधे काग्रेस-भवन मे गये। ढाई सौ से तीन सौ व्यक्तियो तक का सहभोज हुआ। मै हिन्दू मित्रो के साथ बैठा।

१६ मार्च १९०६. के पत्र मे मालूम हुआ कि भाई ने प्रिटोरिया मे मुसलमानो से माफी मागी। पढकर गहरे विचार मे पड गया।

डायरी की इन पक्तियो से अनुमान होता है कि ईसाई, मुसलमान आदि के साथ एक-रूप हो जाना पिताजी के लिए आसान नही था। पर बापूजी की श्रद्धा इस प्रकार की थी कि जहा सामान्य लोग अधेरा और निराशा देखते थे वहा बापूजी को जीवन और प्रगति की झलक दिखलाई पडती थी। जहा औरो को सकट तथा विनाश नजर आता था, वहा बापूजी को सफलता और कल्याण के स्पष्ट दर्शन होते थे। ऐसा न होता तो वह अपने घर के छोटे बच्चो के साथ अन्य धर्मो के बच्चो के रात-दिन रहने की व्यवस्था क्यो करते ?

हमारे घर मे जो अन्य तीन धर्मों के बालक थे, उनमे से इब्राहीम का असर मुझपर अधिक पडा। वह पढने मे जैसा चतुर था वैसा ही बोलने मे भी। उसकी स्वच्छता से रहने की आदत भी आकर्षक थी। उसका बात करने का ढग भी बडा लुभावना था।

फीनिक्स भर मे छोटे-बडे सभी व्यक्ति इब्राहीम की होशियारी की तारीफ किया करते थे। इधर मै अपनी मूढता के लिए बदनाम-सा था और अपने बारे मे ऐसी निन्दा सुन-सुनकर मेरी भावना ऐसी बन गई थी कि जब मै किसी की तारीफ सुनता तो मुझे वह स्वर्ग से उतरा हुआ-सा प्रतीत होता था। उसकी शक्ति एव चातुर्य का मूल किस बात मे है, इसकी खोज मे मै लगा रहता था। फिर जो कुछ समझ में आता उसकी आजमाइश भी किया करता था।

कई दिनो तक अवलोकन और मनन करते रहने के बाद इब्राहीम के चातुर्य और उसकी समझदारी का मूल मैने खोज निकाला। उसकी नाक की जड मे, जहा चश्मा रखा जाता है, एक चोट का चिह्न था। उसके कारण बात करते समय उसकी नाक की खाल खिचा करती थी और उसकी लम्बी पैनी नाक नाचती हुई दिखलाई पडती थी। मुझे यकीन हुआ कि उसकी

विशेषता का मूल उसकी नाक का यह चिह्न ही है। यदि ऐसा ही चिह्न मेरी नाक पर भी हो जाय तो मैं भी उसी के बराबर अक्लमन्द और शरीफ माना जाऊंगा। बस मैं एक कोने मे जा घुसा और वहा पर छिपे-छिपे मैंने एक कटोरी की धार से अपनी नाक की खाल छीलना आरम्भ कर दिया। लगातार चार-पाच दिन तक यह उपक्रम जारी रहा। रोज शाम को थोडी-थोडी चमडी घिस कर सवेरे उठते ही मैं शीशे मे अपना मुह देखता कि ठीक इब्राहीम का जैसा चिह्न नाक पर बना या नही। किन्तु बदकिस्मती से वह निशान भोंडा बन गया। नाक में दर्द काफी रहा, परन्तु अपना चातुर्य बढाने के लोभ-वश मैंने उसे बर्दाश्त किया। जब वह घाव भर गया तब दुबारा मैंने अपनी नाक की जड छीलकर चिह्न को सुधारने की कोशिश की, पर वह चिह्न सुधरा ही नही। आखिर मैंने हार मानी और मन मे सतोष कर लिया कि मेरे नसीब में ही बुद्धूपन बदा है और इस प्रकार मन को समझाकर मैंने वह प्रयास छोड दिया।

फीनिक्स मे जो गोरे आते थे वे हम पर अपनी श्रेष्ठता की धाक बैठाने का प्रयास करते हुए मालूम नही पडते थे। पोलक तथा आइजक आदि हमारे यहा राज्यकर्त्ता की हैसियत से नही आते थे, किन्तु बापूजी जैसे व्यक्ति ने अपने कट्टर विरोधियो को प्रेम और कष्ट-सहन के बल से जीत लेने का जो अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, उसको देखने और उसमे सहायता करने के लिए बापूजी के निमत्रण पर आते थे। जबतक वे हमारे साथ रहते थे, अभिन्न होकर रहते थे। बापूजी की भी यह सूचना थी कि उनका स्वागत हृदय से किया जाय, जिससे भारतवर्ष की और भारतवासियो की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हो। इस सूचना का अमल विशेषत मेरे पिताजी और काका करते थे। वे उनके साथ सारा दिन बिताते थे। उनकी हर प्रकार की आवश्यकता पूरी करने की कोशिश करते थे। इस कारण भी गोरे लोगो की श्रेष्ठता मेरे मन मे बस गई थी। एक मुख्य कारण उनकी भाषा भी थी। मैं देखता था कि चारो ओर अग्रेजी भाषा की ही प्रतिष्ठा है। इसलिए वे लोग मुझे अधिक सामर्थ्य वाले प्रतीत होते थे। हर जगह, हर कोने में सारी बातचीत अग्रेजी मे ही होती थी। प्राय सभी पुस्तकें अग्रेजी मे ही मिलती थी। हम लोगो को जो सुन्दर व सचित्र बालसाहित्य मिलता था वह भी अग्रेजी में होता था। हँसी-खेल की कहानिया अग्रेजी मे ही मिलती थी। 'चिल्ड्रन्स एनसाइक्लोपीडिया' नाम का सुन्दर मासिक पत्र जब आता था और उसके चित्र, उसकी विज्ञान की बातें तथा चमत्कारपूर्ण कथाए मगनकाका हमे सुनाते थे, तब अग्रेजी का श्रेष्ठत्व मेरी कच्ची बुद्धि को बहुत ही प्रभावित करता था। उस समय मैंने

अपने अनुभव से यह महसूस किया था कि जो कोई अंग्रेजी समझ और बोल नही पाता, वह पूरा आदमी ही नही है। ऐसे व्यक्ति को अपने चारो ओर का वार्त्तालाप तथा विनोद चुपचाप मूढवत सुन लेना पडता था। मेरे मन मे गोरे लोगो के प्रति देवत्व की भावना अकुरित हो गई थी और मुझे अंग्रेजी भाषा ही विद्या की साक्षात मूर्त्ति प्रतीत होती थी।

: २२ :

स्वभाषा तथा पर-भाषा

बापूजी के सबसे बडे पुत्र हरिलालकाका मुख्यत पढाई के उद्देश्य से ही अपने पिता से निराश होकर घरसे निकल भागे थे। बुद्धि, दक्षता और कष्ट-सहन में हरिलालकाका बापू के साथियो से कम शक्तिवाले नही थे, परन्तु बापूजी स्कूल और कालेजो मे दिये जानेवाले शिक्षण के खिलाफ थे और काका आधुनिक उच्चशिक्षण प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए हरिलाल-काका जैसे सम्वेदनशील व्यक्ति का उनके पास रहना कठिन हो गया। स्वय बापूजी बैरिस्टर थे और इग्लैंड जाकर ऊची शिक्षा प्राप्त कर आए थे। इतना ही नही, अपनी उस विद्वत्ता का नित्य के काम-काज मे पूरा-पूरा उपयोग भी कर लेते थे। फिर भी अपने पुत्रो को उस शिक्षा मे वचित रखने का उनका दृढ आग्रह था। उस आग्रह की ऊची भूमिका को समझना आसान नही था फलत हरिलालकाका के लिए आवश्यक हो गया कि वह अपने पिता का आसरा छोडकर अपने-आप ऐसा शिक्षण प्राप्त करें, जिससे ससार मे उनकी गिनती पढे-लिखो मे हो।

फीनिक्स की पाठशाला के श्रीगणेश की जो बातें मैंने लिखी है, वे सन् १९०८-९ की है। बापूजी ने हम लोगो को पढाने का जो यह नया उपक्रम किया था, उससे पहले ही हरिलालकाका बापूजी को छोडकर जोहान्सबर्ग से भारत चले आए थे और अहमदाबाद के हाई स्कूल मे मैट्रिक की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

पिताजी के सग्रह मे बापूजी का लिखा एक पुराना लेख मिला है, जो १७ सितम्बर, १९०९ को लन्दन से लिखा गया था। उस समय राजकोट मे गुजराती साहित्य परिषद का तीसरा अधिवेशन होनेवाला था। इस निमित्त से बापूजी ने स्वभाषा के बारे मे यह निबन्ध लिखा था। उसपर से पता चलता

है कि बापूजी ने फीनिक्स की पाठशाला मे अग्रेजी की पढाई पर क्यो जोर नही दिया। लेख इस प्रकार है

"हिन्दुस्तान मे आजकल नई हवा चल रही है, किन्तु हिन्दू, मुसलमान, पारसी सभी 'मेरा देश' या 'हमारा देश' की रट लगा रहे है। इस सम्बन्ध मे हमे फिलहाल राजनैतिक दृष्टि से नही सोचना है। भाषा की दृष्टि से विचार करने पर हमारी समझ मे सीधे यह बात आती है कि 'हमारा देश' की पुकार हम अपने अन्तर मे करे, इससे पहले अपनी भाषा का स्वाभिमान हमारे दिल मे पैदा होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तान भर में छोटे-बडे सभी लोग अपनी-अपनी भाषा के बारे मे ध्यान देने लगे है—यह एक सन्तोष की बात है। ऐसे उद्गार भी सुनाई पडते है कि कुछ ऐसा होना चाहिए कि प्रत्येक भारतवासी आपस मे एक भाषा का प्रयोग कर सके। भविष्य में यह सम्भव भी हो सकता है। यह तो सभी लोग स्वीकार करेंगे कि वह भाषा हिन्दी की ही होनी चाहिए। लेकिन यह कदम भविष्य मे जोर पकड सकता है। 'मैं हिन्दुस्तानी हू' यह गौरव हमारे दिल में पैदा होना चाहिए और इसी के अन्तर्गत यह गौरव भी उदित होना चाहिए कि 'मै गुजराती हू।' अगर ऐसा न हुआ तो हम न तेरह के रहेगे, न त्रेपन के, न हम घर के रहेगे, न घाट के।

"प्रत्येक प्रान्त के अग्रणी दूसरे प्रान्तो की भाषाओ का ज्ञान प्राप्त न करें तो काम नही चलेगा। गुजराती के लिए बगाली, मराठी, तमिल, हिन्दी आदि भाषाए सीखना आसान है, कठिन नही है। जितनी माथापच्ची और जितना प्रयास गलतफहमी मे पडकर हम लोग अग्रेजी भाषा पढने में करते है, उससे आधा प्रयास भी यदि देश की भाषाओ को सीखने के लिए करे तो देश मे नया वातावरण पैदा हो जायगा और इस तरह बडी मात्रा मे हिन्दुस्तान का उद्धार हो सकेगा।

"हिन्दुस्तान की शिक्षा के बारे में लार्ड मेकाले ने जो विचार प्रकट किये है, उन पर मैं मोहित था। दूसरे भी बहुत से लोग उनसे मोहित है। लेकिन अब मेरा मोह टूट गया है और मैं चाहता हूँ कि औरो का मोह भी खत्म हो जाय। परन्तु इस पर अधिक चर्चा के लिए यह स्थान नही है। यदि ऊपर की बाते सही है तो यह भी सही है कि गुजराती भाषा के लिए हम अलग विचार कर सकते है। गुजराती लोग आपस मे अग्रेजी मे बातचीत करें तो ऐसा कहे बिना रहा नही जाता कि यह निम्न स्थिति का सूचक है। अग्रेजी के मोह के कारण हमारी मातृभाषा दरिद्र हो गई है। हम स्वय उसका अपमान कर रहे है, इसलिए हम बिल्कुल ही दीन बन जाते है। जब मै अपने विचार गुजराती

मे ठीक तरह से प्रकट न कर सकने और अग्रेजी में कर सकने की स्थिति पर विचार करता हू, तब मेरा सारा शरीर काप उठता है। जिन्होने अपनी भाषा का अनादर किया है वे भला देश का क्या भला कर सकेंगे ? गुजरात की महान प्रजा किसी समय गुजराती को भूलकर दूसरी भाषा को अपनाए, यह स्वप्न मे भी सभव नही हो सकता और यदि यह सम्भव नही है तो जो लोग उस भाषा को छोड देते है वे देश के अर्थात् अपनी प्रजा के द्रोही है, यह कहना अत्युक्ति नही होगा।

'यह वाक्य गलत नही है कि 'भाषा मे प्रजा का चित्र प्रतिबिम्बित होता है।' इसीलिए गुजराती, बगाली, उर्दू, मराठी परिषदे होने लगी है यह बहुत अच्छे भविष्य का द्योतक है। जो भारतवासी स्वदेश मे बाहर जाते है, उनको इस सम्बन्ध मे बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। उनपर बहुत बडा उत्तरदायित्व है। यदि वे अपनी भाषा को भूल जायगे तो पाप के भागी होगे।

"कुछ अधिक अग्रेजी पढे हुए लोगो के लेखो म मैने पढा है और कुछ को कहते हुए सुना है कि वे स्वय गुजराती की अपेक्षा अग्रेजी ज्यादा जानते है। यह हमारे लिए बडी शर्म की बात है। वास्तव मे जो व्यक्ति अग्रेजी मे लिखते या बोलते है, वे न तो सही अग्रेजी लिख पाते है और न बोल ही पाते है। यही स्वाभाविक है। यह सच है कि कुछ विचार हम अग्रेजी मे अधिक स्पष्टता से प्रकट कर सकते है, लेकिन यह भी हमारे लिए शर्म की ही बात है। अग्रेजी व्याकरण और मुहावरे हम भलीभाति जानते है, ऐसा नही कहा जा सकता। जबकि गुजराती व्याकरण और मुहावरे कोई भी भारतीय ठीक तरह से जान सकता है। उसमे भूतकाल के बदले वर्तमान काल का प्रयोग भूलकर भी कोई नही करेगा, तब हमारे अग्रेजी लिखने मे अग्रेजी पढने वालो की भी ऐसी भूलें बहुत ज्यादा नजर आती है। मुहावरे के दोषो का तो कोई अन्त ही नही है। गुजराती मे हम सही उच्चारण न करे, ठीक तरह से सयुक्ताक्षर न बोले, यह सम्भव है, लेकिन इस कारण हम गुजराती कम जानते है यह कहना गलत होगा। उच्चारण की भूले भी सहज दूर की जा सकती है।

"ऐसी दलीले सुनी जाती है कि जो विद्यार्थी अग्रेजी पढना चाहते है उनको अग्रेजी बोलने का अभ्यास करना ही चाहिए। क्या यह भ्रम नही है ? जब गुजराती इकट्ठे हो तब यदि वे गुजराती मे बोलेंगे तो अग्रेजी के ज्ञान मे कमी नही आयगी, बल्कि वृद्धि ही होगी, क्योकि ऐसा करने पर, हमारे सुनने मे केवल अग्रेजो की ही अग्रेजी आयगी और हमारे कानो की शक्ति तीव्र होकर गलत अग्रेजी तुरन्त पहचान लेगी।

"इग्लैंड मे आये हुए विद्यार्थी अपने अध्ययन में इतने अधिक व्यस्त नही रहते कि वे गुजराती पुस्तक पढ ही न सके। जिसको आगे जाकर अपने देश की सेवा करनी है, सामाजिक काम करना है, उसे अपनी मातृभापा के लिए समय निकालना ही होगा। यदि मातृभापा को भुलाकर ही अग्रेजी सीखी जा सकती हो तो देश-कल्याण का मूल हेतु मारा जायगा और बेहतर है कि अग्रेजी सीखी ही न जाय।

"फिर गुजराती भापा कोई साधारण भापा नही है। जिसमें नरसिह मेहता, अखा भगत और दयाराम जैसे कवि पैदा हुए है, उस भापा को बहुत विकसित किया जा सकता है। फिर जिस भापा के बोलनेवाले ससार के तीन महाधर्मो—हिन्दू, इस्लाम और जरथुस्ती—के अनुयायी है, वह भापा इतनी ऊची हो सकती है, जिसकी कोई सीमा नही। एकही विचार गुजराती भापा द्वारा तीन तरीके से दर्शाया जा सकता है। पारसी जिसे खुदा, मुसलमान जिसे अल्लाहताला और हिन्दू जिसे ईश्वर कहेगा उसे अग्रेजीमे केवल 'गाड' के एक ही नाम से पुकारा जायगा।

"मुसलमानो के गुजराती लेखन मे अरबी और शेख सादी की फारसी की छाया होगी। पारसी की गुजराती में, जरथुस्त के जिन्दावस्ता की छाया होगी, हिन्दू की गुजराती मे सस्कृत की छाया होगी। हिन्दू और मुसलमान तो हिन्दुस्तान की सभी भापाओ के लिए है, किन्तु पारसियो को मानो गुजराती के लिए ही खुदा ने ईरान से भेज दिया है। उनके उत्साही स्वभाव के कारण गुजराती भाषा को अत्यधिक लाभ पहुच सकता है। फिर गुजराती अखबार आजकल उनके हाथ मे है, इसलिए उनको पूरे उत्साह से गुजराती के भविष्य की रक्षा करनी चाहिए। उनसे एक ही विनती करनी आवश्यक है कि अब जब कि गुजराती आपकी मातृभापा हो गई है और उसको आप छोड नही सकते तो उसका खून न करे। पारसी लेखक अच्छे विचार सरल गुजराती मे पेश करते है, किन्तु भापा के उच्चारण और हिज्जे के तो मानो दुश्मन ही है।

"सब गुजरातियो के लिए यह सोचने की बात है। हिन्दू, मुसलमान और पारसी, तीनो अपने अलग-अलग चौके मे डटे हुए जान पडते है। मुसलमान अभी तक शिक्षण-क्षेत्रमे गहराई तक नही गए है, इसलिए गुजराती पर उनका स्पष्ट असर नही दीखता। किन्तु अब वे पढने लगे है। इस दिशा मे हिन्दुओ और पारसियो को उन्हे आगे बढाने का यत्न करना चाहिए।

"राजकोट मे होने वाली परिषद से मेरा नम्र निवेदन है कि उसके

नेता गुजराती भाषा के जानकार हिन्दू, मुसलमान और पारसियो की एक स्थायी समिति का निर्माण करे। वह समिति गुजराती भाषा मे तीनो कौमो द्वारा लिखे जानेवाले साहित्य पर निगरानी रखे और लेखको को सलाह-मशविरा दे। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि विचारशील लेखक अपने लेखो को ऐसी समिति से बिना कुछ पैसे दिए सुधरवा सके।

"अन्त मे विलायत जाने वाले भारतीयो से मै कहूगा कि अग्रेजो का उदाहरण लेकर उन्हे आपस मे अपनी मातृभाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने से भारत की उन्नति होगी और उसका एक कर्तव्य पूर्ण माना जायगा। ऐसा करना कुछ कठिन नही है।"

बापूजी के इन विचारो का अमल हमारे घर मे निष्ठापूर्वक और समझकर किया गया। मेरे पिताजी और मगनलालकाका को घर मे अग्रेजी बोलने की जरा भी आदत नही थी। मुझे याद है कि मै यदि भूलकर गुजराती बातचीत मे अग्रेजी शब्द मिला देता था—जैसे कुरसी के लिए 'चेयर', चम्मच के लिए 'स्पून' और द्राक्ष के लिए 'ग्रेप्स' शब्द का प्रयोग करता था तो मगनकाका तुरन्त पूछते थे कि वह शब्द गुजराती है या अग्रेजी, और फिर अग्रेजी आमफहम शब्दो के लिए भी वह गुजराती शब्द सिखाते थे। पिताजी मेरे योग्य सरल गुजराती साहित्य का सग्रह करते रहते थे और बार-बार उन पुस्तको को दोहराने के लिए मुझे प्रोत्साहित करते थे। गुजराती के बाद उन्होने मेरे हाथ मे छोटी तथा सुन्दर हिन्दी पुस्तके दे रखी थी और बगाली वर्णमाला सीखने का श्रीगणेश भी कराया था, परन्तु तब मेरा ध्यान गुजराती को छोडकर और किसी भाषा पर नही लगता था।

हरिलालकाका बापूजी की इच्छा के विरुद्ध अहमदाबाद के हाई स्कूल मे पढने गये थे। मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा मे वह प्रथम बार उत्तीर्ण रहे थे। उन्होने फ्रेच भाषा ली थी। दुबारा भी वह फ्रेच ही सीख रहे थे। इस सम्बन्ध मे बापूजी ने यह पत्र लिखा था .

श्रावण वद्य नवमी,
सवत् १९६७ (सन् १९११)

चि० हरिलाल,

फ्रेच पर तुम बेकार समय और पैसे नष्ट कर रहे हो, ऐसा मै मानता हू। ऐसा अमूल्य समय यदि सस्कृत के लिए तुम देते तो कितना कल्याण होता,

इस बात का अनुमान मै तुम्हे कैसे कराऊ ? आजकल जिस वातावरण मे तुम घूम-फिर रहे हो वह वातावरण भ्रष्ट है, इसलिए तुमको फ्रेंच की सूझी। शायद एक वर्ष देर मे तुम पास होते, परन्तु सस्कृत सीख लेते तो कितना अच्छा रहता! सस्कृत के ज्ञान से हिन्दुस्तान की सभी भाषाओ के द्वार खुल जाते है। तुमने अपने हाथ मे उन्हे बन्द कर दिया। दुबारा तुमने फ्रेंच का विषय लिया है, इसलिए यह लिख रहा हू। अब भी तुम विचार करो और एक वर्ष परीक्षा को छोड कर भी सस्कृत आरम्भ करो। ऐसा करने के लिए यदि तुमको घर के अध्ययन के लिए सात रुपयो के बदले आठ देने पडे तो भी मुझे अधिक सन्तोष होगा।

फिर भी तुम अपने मन की बात ही करना। तुम्हारे मार्ग में मै विघ्न डालना नही चाहता। मेरी सलाह एक मित्रकी सलाह है, यही समझना।

—बापू के आशीर्वाद

: २३ :

असली शिक्षा

बापूजी के जीवन मे परस्पर विरोधी बातो का आश्चर्यजनक योग था। एक ओर तो वह अग्रेजी भाषा और अग्रेजियत से अपने देशवालो को दूर रखने का प्रयत्न करते थे, दूसरी ओर अग्रेजो की अच्छी बाते सीखने की प्रेरणा करते थे। फीनिक्स के जीवन मे ऊपरी सजधज से वह गोरो को मुग्ध कर देना चाहते थे, किंतु भारतवासी परिवार भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनियो के अकिंचन रहन-सहन मे भी पीछे न रहे, यह भी उनकी अभिलाषा थी। खेती मे, रसोई मे और दूसरे काम-काज मे वह हमे आधुनिक विज्ञान का पूरा लाभ दिलवाना चाहते थे और साथ ही गरीब-से-गरीब जीवन के आदर्श को अपनाना चाहते थे। मगनकाका और पिताजी, बापूजी की इस विचार-परम्परा के भक्त थे और गरीबी को अपनाने के सबध मे बापूजी बार-बार इन्हे परामर्श दिया करते थे। इन दोनो भाइयो के नाम लिखा हुआ बापूजी का निम्न पत्र विशेष उल्लेख योग्य है

सन् १९०९

चि० छगनलाल और मगनलाल

मुझे दुबारा वकालत का पेशा न करना पडे, इसमे ही भलाई है। मेरे

मन की यह गहरी इच्छा है। जबतक मैं जीवित हू, फीनिक्स मे हम लोग सपूर्ण गरीबी का अनुभव करे, ऐसा मैं चाहता हू। ईश्वर से ऐसा समय मागता हू, लेकिन इसके विपरीत लक्षण देखता हू। हम लोग सच्ची गरीबी भोगने लगे, ऐसा समय पूर्णरूप से आवे यह मुश्किल दीखता है। डाक्टर मेहता की सहायता इसमे विघ्नरूप दीखती है। जबतक वह सहायता आती रहे तबतक "कल के लिए धेला भी पास नही है! क्या होगा?"—ऐसा अनमोल लाभ हमको नही मिलेगा, यह सन्देह मन में रहता है। उस स्थिति को मैं अनमोल लाभ गिनता हू, क्योकि ससार मे प्रधानतया ऐसी स्थिति मौजूद है।

बुद्ध आदि की भी यही स्थिति थी और आगे के लिए भी उन जैसो की ऐसी स्थिति रहेगी। इसके बिना आत्माराम को नही जाना जा सकता, यह मन मे जच गया है। नरसिंह मेहता ने और सुदामाजी ने यह ज्ञान सही-सही सिखाया, ऐसा दृढ विश्वास मुझे बैठ रहा है।

इद्रियो का भोग भोगते हुए यह कहना कि मैं उससे परे हू, इद्रियाँ अपना काम करती है, गलत है। हममे से एक भी व्यक्ति इस वाक्य का उच्चारण करने की योग्यता नही रखता और जबतक हम सच्ची गरीबी को नही अपनायगे तबतक कोई भी यह वाक्य नही कह सकता। राजा आदि पुण्य के प्रताप से राजा बनते है, ऐसा मानना निराधार है। अपने कर्म के प्रताप मे वे राजा बने है—ऐसा चाहे तो कह सकते है। लेकिन उसे पुण्यकर्म कहना तो आत्मा के गुणो की छानबीन करने पर गलत मालूम होता है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

बापूजी बहुत ऊची कसौटी के लिए अपने को तैयार कर रहे थे और अपने साथ के कार्यकर्त्ताओ को भी अकिंचन जीवन के आदर्श को अपनाने के लिए प्रेरित कर रहे थे।

बापूजी गरीबी का जितना स्तवन करते थे उतना ही महत्व जीवन को श्रेष्ठ और सुदर बनाने को देते थे। जीवन की स्थूल आवश्यकताओ में कमी करके नैतिक समृद्धि बढाने पर जोर देते थे। यह कदापि उन्होने पसद नही किया कि अपने सगी-साथी और देशवासी दीन-हीन और दरिद्र जीवन को स्वीकार कर ले। अपने घर के और अपनी सस्था के बालक और विद्यार्थी बडे होने पर कमजोरी की और मायूसी की जिंदगी बिताने के लिए मजबूर न हो, लेकिन बडी आयु के होने पर सब बच्चे ससार मे शान के

साथ रह सके, इस दृष्टि से बालको को सिखाने-पढाने पर बापूजी बहुत शुरु मे जोर देते थे। इस सबध मे बापूजी के कुछ महत्वपूर्ण पत्रो से यह स्पष्ट हो जायगा ‘

— १ —

चि० छगनलाल ता० २३-१-०२

तुम्हारी चिट्ठी मिली। पढकर खुशी हुई। अग्रेजी मे ही लिखते रहना। मुशी का वेतन चुका देना। अपनी काकी (कस्तूरबा) के पास से पैसे ले लेना।

चि गोकलदास और हरिलाल को 'काव्यदोहन' (गुजरात के प्राचीन कवियो द्वारा रचित महाभारत तथा भागवत आदि की कहानियो का सग्रह) मे कहानिया सुनाना अच्छा होगा। 'काव्यदोहन' के सभी भाग मेरी पुस्तको मे है। उसमे से सुदामाचरित्र, नलाख्यान, अगदविष्टि आदि आख्यानो को अर्थ के साथ सुनाओगे, तो अच्छा होगा। हरिश्चन्द्र का आख्यान मौखिक या पुस्तक से सुनाना। अग्रेजी कवियो के नाटक सुनाना फिलहाल आवश्यक नही है। उनमे रस भी नही आयगा । और, हमारे प्राचीन आख्यानो से जितना सार ग्रहण करना है उतना अग्रेजी कवियो से मिलने वाला नही है। लडको का वर्ताव वर्ग मे सही रहे, इसके लिए सतर्क रहना। तुम और किसे पढाने जाते हो, लिखना।

एक भी लडके मे कोई बुरी आदत पैदा न हो, इस बात की चौकसी रखना। यह भी ध्यान रखना कि सत्य के प्रति उनका रुख नित्य ही भक्ति-भाव का बना रहे।

पढने के साथ-साथ व्यायाम भी पूरी तरह करवाना।

आदरणीय खुशालभाई और देव भाभी से दडवत् कहना।

शुभेच्छुक
मोहनदास के आशीर्वाद

— २ —

जोहान्सबर्ग
ता० ५-२-०३

चि० छगनलाल

मेरा बहुत अनिश्चित है। भरसक कोशिश करने पर भी तुमको सतोष देने वाले समाचार मै नही दे सकता। यदि यहा रहने की बात न हुई तो मार्च मे यहा से चल सकने की सभावना है। यदि यही रहना होगा तो छ महीने बाद कस्तूरबा आदि को बुला पाऊगा। तुरन्त बुला लेने का मौका नही है। फिर भी यदि कर्तव्य से चूकने की स्थिति न होगी तो भरसक प्रयत्न करके

मे वही आऊँगा। यहा पर कोई रेशम की शैया नही है। इससे अधिक निश्चित समाचार मै अभी नही दे सकता।

चि० मणिलाल की पढाई के निमित्त होने वाले वेतन-खर्च की चिन्ता मत करो। उसे वाद्य सीखने के लिए अवश्य भेजो। वहा जाने से उसे रोक लिया, यह ठीक नही किया। इसमे तुम्हारा दोष नही है, तुम्हारी काकी का है।

शुभेच्छुक
मोहनदास के आशीर्वाद

उक्त दोनो पत्र बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका से मेरे पिताजी के नाम बबई भेजे थे। इससे पता चलता है कि जब फीनिक्स आश्रम की कल्पना भी नही थी और रस्किन की पुस्तक को बापूजी ने देखा भी नही था, उस समय भी शिक्षण के सबध मे उनके विचार अस्पष्ट न थे, अपितु शिक्षा का आदर्श उनके चित्त मे सुस्पष्ट ही था।

परतु जब ऊपर के पत्र लिखे तब बापूजी के समक्ष किसी विद्या सस्था या आश्रम को चलाकर बालको को शिक्षा देने का प्रश्न नही था। यह प्रश्न फीनिक्स की स्थापना होने पर उनके सामने आया। फीनिक्स के आरभ मे मै, देवदासकाका आदि छोटे बच्चे थे। मणिलालकाका बडे थे। फीनिक्स के सभी बालको मे वह प्रथम विद्यार्थी थे। उनके नाम लिखे गए बापूजी के पत्र मे उनकी शिक्षा-विधि अधिक मूर्त्त दीखती है।

— ३ —

प्रिटोरिया का कैदखाना
२५-३-०९

चि० मणिलाल,

जेल मे अब मैने बहुत सारा पढ डाला है। मै इमर्सन, रस्किन, मैजिनी की कृतिया पढता हू। उपनिषद भी पढता रहा हू। शिक्षण का अर्थ ज्ञान नही है, किन्तु चारित्र्य के विकास या धर्म की भावना की जाग्रति है। इस सबध मे मेरा जो मत है वह इस प्रकार की पढाई से दृढ हो रहा है। अपनी गुजराती मे उसे हम 'केलवणी' के नाम से जानते है। यदि 'केलवणी' (शिक्षण) का उद्देश्य यही है—और मेरी समझ मे उसका यही सही उद्देश्य है तो मै कहूगा कि तुम उत्तम प्रकार की 'केलवणी' ले रहे हो।'

बा की सेवा करके उसके उलहनो को सहन कर लेना, चि० हरिलाल की अनुपस्थिति मे चि० चची (श्रीमती हरिलाल) का दिल दुखे नही, इस प्रकार उसकी आवश्यकताओ को अनुमान से समझकर देखभाल करना

और रामदास तथा देवदास की सभाल रखना—इस सबसे बढकर शिक्षण क्या हो सकता है ? इस काम मे यदि तुम पार उतरोगे तो तुमने आधी से अधिक 'केलवणी' प्राप्त करली, ऐसा मान लेने मे मुझे क्या हर्ज हो सकता है ?

उपनिषद पर नाथूराम शर्मा की प्रस्तावना के एक वाक्य का मेरे मन पर बडा प्रभाव पडा है। उन्होने बताया है कि ब्रह्मचर्य की प्रथम अवस्था सन्यस्थ की अतिम अवस्था के समान ही है।

यह बात सर्वथा सही है कि निर्दोष अवस्था मे, यानी केवल बारह वर्ष की आयु होने तक ही, मौज की जा सकती है। लडका जब प्रौढ बनता है तब तुरत ही उसे अपना उत्तरदायित्व समझना सीखना-चाहिए। इस वय के बाद प्रत्येक व्यक्ति को आचार-विचार, सत्य और अहिंसा मे सयम की ओर बढना चाहिए। यह काम इस तरह से नही करना चाहिए कि चित्त को थकावट और उकताहट हो, बल्कि स्वाभाविक विनोद से करना चाहिए। मुझे याद है कि जब मैं तुम्हारी आज की आयु से छोटा था तब अपने पिताजी की सेवा-शुश्रूषा करने मे मुझे सच्चा आनन्द मिलता था। बारहवे वर्ष के बाद मैंने मौज-शौक की परछाई तक नही देखी थी। यदि तुम वास्तविक सद्गुणो का अनुसरण करोगे, अपने जीवन को गुणमय बनाओगे, तो मैं मानूगा कि तुमने मेरा 'केलवणी' का आदर्श पूरा किया है। इन गुणो से सुसज्ज होकर तुम ससार के किसी भी कोने मे चले जाओगे तो अपना गुजारा प्राप्त कर सकोगे और आत्मज्ञान—ईश्वर ज्ञान—की प्राप्ति की ओर मुड सकोगे। इसका यह अर्थ नही है कि तुम्हे अक्षरज्ञान नही लेना चाहिए, लेकिन उसे प्राप्त करने के पीछे तुम्हे बेचैन नही होना चाहिए। उसके लिए काफी मौका रहेगा। फिर भी शिक्षण लेने का हेतु भी यही तो है कि वह सेवा-कार्य मे सहायक बने।

यह मत भूलना कि भविष्य मे हमारे लिए गरीबी रहेगी। ससार के बारे में मैं जितना अधिक सोचता हू यही समझ में आता है कि धनी होने के मुकाबले गरीब रहने मे चित्त को अधिक समाधान मिलेगा। लक्ष्मीनन्दन बनने से, धनकुबेर बनने से, गरीब रहने मे सार है। गरीबी के फल अधिक सुन्दर और मीठे होते हैं।

मैं मानता हू कि जिन्होने कई युगो के पहले यज्ञोपवीत का त्याग किया है उनका उसे पुन स्वीकार करना गलत होगा। शूद्र और अन्य सब वर्णो मे जाति-भेद कम नही है। इस समय तो यज्ञोपवीत उलटी बाधा डाल रहा है। इस विषय पर भविष्य मे विस्तार से चर्चा करूगा।

—बापू के आशीर्वाद

— ४ —

चि० मणिलाल,

तुमको क्या करना है—इस सवाल से तुम मायूस हो गए। अगर तुम्हारे लिए मैं जवाब दू तो कहूगा कि तुम अपना फर्ज अदा करने वाले हो। फिलहाल तुम्हारा काम अपने माता-पिता की सेवा करना है। इससे आगे तुम्हे चिंतित नही रहना। आगे की चिंता तुम्हारे मा-बाप को है। जब वे चल बसेगे तब वह चिता तुम पर आयगी। इतना निश्चय तो होना ही चाहिए कि तुम्हे वैरिस्टरी का या डाक्टरी का पेशा नही करना है। हम गरीब है और गरीब रहना चाहते हैं। पैसे की आवश्यकता केवल भरण-पोषण के लिए होती है। फीनिक्स को उन्नत करना हमारा काम है, क्योकि उसके जरिए हम आत्मा को खोज सकते है और देश-सेवा कर सकते है। इतना यकीन रखना कि मैं निरन्तर तुम्हारे लिए चिन्ता करता हू।

मनुष्य का असली पेशा यही है कि वह अपने चारित्र्य को ठोस बनाये। धन कमाने के लिए कुछ खास सीखना पडे, ऐसा नही है। जो आदमी नीति का रास्ता कभी नही छोडता, वह भूखो नही मरता। और यदि वैसा समय आता है तो वह डरता नही है।

तुम निश्चित रह कर जो अभ्यास वहा हो सके उसे करते रहो। यह लिखते हुए तुमसे मिलकर अपने सीने से लगाने को जी करता है। ऐसा नही हो पाता, इसलिए आख मे पानी आ जाता है। यह निश्चय रखो कि तुम पर बापू कभी निर्दयता का बर्ताव नही करेगे। मैं जो कुछ करता हू, तुम्हारा भला समझ करके करता हू। तुम जब दूसरो की सेवा कर रहे हो तो तुम्हे कभी मारा-मारा नही फिरना पडेगा, यह विश्वास रखो।

—बापू के आशीर्वाद

— ५ —

१२-१०-९

चि० मणिलाल,

तुम किस श्रेणी मे हो—इसका उत्तर नही दे सकते? अब बताना कि बापू की श्रेणी मे हू। पढने का विचार तुम्हे क्यो आया करता है? अगर कमाने के लिए आता है तो ठीक नही है, क्योकि ईश्वर सबके लिए चारा-दाना दे ही देता है। तुम मजदूरी करके पेट भर सकते हो। फिर हम को तो फीनिक्स मे अथवा ऐसे काम मे मरना है, जहा पर कमाई की बात को गुजाइश ही कहा? अगर तुम्हे देश की खातिर पढना है तो वह तो तुम इस समय भी कर रहे हो। यदि आत्मा को पहचानने के लिए पढना है तो उसके लिए अच्छा

बनना सीखना चाहिए। तुम अच्छे हो, ऐसा मव कोई कहते है। अव रही बात अधिक काम करने के लिए तुम्हारे पढने की। इसके लिए जल्दवाजी की जरूरत नही है। फीनिक्स मे जो हो सके वह करते रहो। फिर देख लिया जायगा। तुम्हारे लिए मैं चिता करता हू, यह विश्वाम हो तो तुम स्वय चिता छोड देना।

—वापू के आगीर्वाद

— ६ —

जोहान्सवर्ग
कार्तिक वदी पचमी १९६६
(सन् १९०९ का अन्त)

चि० मणिलाल,

जवतक नीति को दृढ रखोगे और अपने कर्तव्य को पूरा करते रहोगे तवतक मैं तुम्हारे अक्षर-ज्ञान के वारे मे निश्चित रहूगा। शास्त्र मे जिन यमनियमो को वताया गया है, उनको कायम रखो तो वस है। अपने शौक के लिए अथवा अपने को अधिक लायक वनाने के लिए अक्षर-ज्ञान वढाओगे तो मै उसमे सहायक वनूगा। यदि नही वढाते तो उलहना कभी न दूगा। फिर भी यदि मन मे कुछ निश्चय कर लो तो उस निश्चय पर स्थिर रहने का प्रयत्न करना। आजकल तुम प्रेस मे क्या कर रहे हो, कव उठते हो, खेती मे क्या कर रहे हो, यह लिखना।

—वापू के आशीर्वाद

मणिलालकाका की ही आयु के मेरे छोटे काका श्रीजमनादास गाधी, फीनिक्स आने से पहले भारत की मरकारी पाठशालाओ के ढग के एक हाई स्कूल मे राजकोट मे पढते थे। उनके नाम लिखे गए वापूजी के पत्रो में से कुछ वाक्य उद्धृत करने योग्य है

"मै स्कूली पढाई के विरुद्ध नही हू, लेकिन उसकी मोहर के विरुद्ध हू। आजकल के स्कूलो मे पहली वाधा यह है कि शिक्षक नीतिवान नही होते। दूसरी यह कि बच्चे शिक्षको से अलग-से रहते है। कुछ विषयो के पढने मे वेकार समय नष्ट होता है, यह तीसरी और पाठशालाए अक्सर हमारी हथकडी के चिह्नरूप होती है, यह चौथी वाधा है।"

दूसरे एक पत्र मे वापू ने लिखा है

"मै अच्छे स्कूल के विरुद्ध नही हू। लेकिन मेरा विश्वास है कि वहुत सारे लडको वाला स्कूल अच्छा हो नही सकता। फिर पाठशाला तो वास्तव

में वही होती है जहा पर लडके चौबीसो घटे रहते है। ऐसा न हो तो शिक्षण दो प्रकार का हो जाता है।"

इन पत्रो मे बापूजी ने जो विचार व्यक्त किये है उन्हीकी परिपाटी वह फीनिक्स की पाठशाला मे कायम करने के इच्छुक थे। एक प्रकार से फीनिक्स का वातावरण उसके लिए विशेप अनुकूल था, क्योकि वह जगल मे एकान्त वस्ती थी। भारत के देहातो मे जो सामाजिक कुरीतिया नजर आती है उनकी वहा छाया तक नही थी।

: २४ :

मेरी कमजोरी

ऐसे श्रेष्ठ वातावरण मे मुझ जैसे वालक को प्रगति के पथ पर अहर्निश अग्रसर होना चाहिए था, परन्तु गेहू के खेतो मे वथुआ की भाति मेरे चित्त-क्षेत्र मे कुठित मनोवृत्तिके अकुर क्यो जमे, यह समझ मे न आने वाली समस्या है। लेकिन यह तथ्य है कि वहा के पुनीत वातावरण मे भी अनेक कमजोरियो ने मुझे दवा लिया।

हमारी पाठशाला मे मध्याह्न के समय जव छुट्टी होती और मेरी माताजी झरने पर कपडे धोने के लिए जाती तव मै भटकता न रहू और पढने मे चित्त लगाऊ, इस दृष्टि से वह लम्बे-लम्बे जोड-गुणा मुझे करने को दिया करती थी। जव घर मे कोई न रहता तव ये सवाल करते बैठना मेरे लिए कारावास-सा हो जाता था। मेरा जी जल उठता था और मै स्लेट-पेंसिल को अपना जानी दुश्मन समझता था। जो सवाल पद्रह-वीस मिनट का होता, वह मेरे लिए घटो का वन जाता था। नजर अको पर गडी रहती, पर सही जवाव क्या है, इसकी सूझ नही होती थी। इस पर जब मा लौट कर आती और सवाल अधूरे देखती तव उनको सन्देह हो जाता कि मैने सवाल किये ही नही, खेलता ही रहा हू। जो किये होते उनमे भी उनको गलती मिलती और प्रत्येक भूल पर मुझको डाट-फटकार सहनी पडती। कुछ दिन वाद मेरे वाल-साथी देवदासकाका और रामदासकाका ने मुझ पर हमदर्दी दिखाई। वे घूमते-घामते मेरे घर की ओर आ निकलते और गणित मे मुझे उलझा हुआ देखकर जल्दी-जल्दी सवालो को हल कर के मुझे जवाव वता देते और मै स्लेट पर उत्तर लिखकर उनके साथ खेलने निकल जाता। जव माताजी लौट कर आती और सही उत्तर देखती तो प्रसन्न हो उठती और मुस्कराती निगाह

से मुझे देखती। परन्तु उन्हें क्या पता था कि बेटे ने प्रगति नही, अधोगति प्राप्त की है।

यह छोटी भूल हो या बडी, इसने जीवन भर के लिए गणित के क्षेत्र मे मुझे कमजोर बना दिया। यही नही, गणित की चुस्ती खो देने के कारण मैं जीवन की अनेक दूसरी बातो मे भी ढीला रह गया।

श्रुतलेख मे भी मेरा कच्चापन कभी मिटा नही। पिताजी का लेखन बहुत सुन्दर था। मेरे अक्षर खराब न हो, इसके लिए उन्होने शुरू से ही बहुत ध्यान दिया था, लेकिन पिताजी की वह विरासत मै नही अपना सका।

मेरे लिए अक्षर से भी अधिक मुसीबत श्रुतलेख मे तथा नकल करने मे होनेवाली भूलो की थी। वैसे तो गुजराती भाषा मे ह्रस्व-दीर्घ के बारे मे शुरू से ही जैसी अराजकता फैली हुई थी वैसी शायद ही किसी अन्य भारतीय भाषा मे रही हो। किन्तु मेरी भूले केवल ह्रस्व-दीर्घ की या युक्ताक्षर की ही नही होती थी। 'आ' और 'ए' की मात्रा की गलतिया भी बहुत होती थी। लेखन को दो-तीन बार दोहराने पर भी छूटी हुई मात्राए मेरी नजर मे नही आती थी।

गेद के खेल मे भी मै कच्चा था। फीनिक्स मे क्रिकेट का खेल बाकायदा बहुत कम होता था, परन्तु उसका छोटा-सा अनुकरण हम लोग किया करते थे। गेद के भारतीय खेल भी हम खेलते थे और कई बार मगनकाका भी हमारे खेल मे शामिल होते थे। मेरे लिए गेद का हरएक खेल अक्सर आसू बहाने का निमित्त बनता था। निशाना लगाने और गेद पकडने के लिए मै कम फुर्ती से नही दौडता था। गेद को ध्यान मे देखता था, परन्तु जैसे रेल का प्रवासी भागते-भागते, हाफते-हाफते स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुच जाय और उसी समय सीटी बजाती हुई गाडी प्लेटफार्म छोड दे, वैसा ही अन्तर मेरे फैले हुए हाथो और गेद मे रह जाया करता था। मेरी टोलीवालो की नाराजगी, मगनकाका का गुस्सा और मेरे मन की निराशा—तीनो के मिश्रित प्रभाव से समझ नही पडता था कि कहा भाग जाऊ, कहा छिप जाऊ।

श्रुतलेख में और गेद पकडने मे जो कमी छोटी आयु से ही मुझमे थी उसका कारण मुझे अपनी बीस-बाईस वर्ष की आयु मे अकस्मात् मालूम हुआ, जबकि डाक्टर ने मेरी आखो के लिए ठीक नम्बर का चश्मा दिया। मैने देखा कि चन्द्रमा को बिना चश्मे के जिस स्थान पर देख पाता था, चश्मा चढाने पर वह अधिक दाई ओर दीख पडता था और तब मेरी समझ मे आया कि वह मेरा दृष्टिदोष था। मै जिस जगह पर गेद समझकर हाथ फैलाता था, वहा से वह चार-पाच इच दाईं ओर होकर निकल जाती थी। लेकिन उस समय

मगनकाका भी मेरी उस शारीरिक त्रुटि को समझ नही पाये थे।

छोटे बच्चे की आँख के जन्म-जात दोष को सुधारने का प्रयत्न विशेष रूप मे भारत मे साधारण स्थिति के माता-पिता मे घर करना सम्भव नही था। परन्तु फीनिक्स के बालको की शारीरिक, बौद्धिक आदि शक्तियो का विकास करने के लिए जाग्रत प्रयत्न करने की अकाक्षा पिता-काका के दिलो मे पैदा हो गई थी।

बात यह थी कि बचपन में मेरी दाई आख की पुतली नाक की ओर के कोने मे दबी हुई थी और वहा से हटकर घूम नही सकती थी। इस प्रकार मगनकाका ने मुझे डरबन लेजाकर डाक्टर से एक प्रकार का हरा पट्टा दिलवाया था। अपनी बाई आख पर वह मुझे बाधना पडता था। इस तरह सही काम करने वाली आख को बन्द कर देना मुझे बहुत बुरा लगता था और मौका मिलते ही बाई आख पर का वह पट्टा आँख मे उतार फेकता था, परन्तु मगनकाका बडी सतर्कता मे मुझे ऐसा करने से रोकते थे। इस कठिन अभ्यास का सुफल मुझे यह मिला कि कोने मे दबी हुई मेरी दाई पुतली बाहर निकली और बहुत कुछ स्वाभाविक रूप से काम करने लगी।

यदि फीनिक्स के हमारे शिक्षक अपनी साधना और अन्य व्यवसायो मे अधिक समय बचा कर शिक्षण-कार्य के लिए दे सकते तो बहुत सभव है कि मुझ जैसे बालक की कई कमजोरिया निर्मूल हो सकती। फिर भी इसमे कोई सदेह नही कि नैतिक शिक्षण का जो आग्रह वहा पर बापूजी ने सबके सामने रखा था और गरीबी की जो आराधना की थी उसके कारण शिक्षको द्वारा पढाई के लिए बहुत कम समय दिये जा सकने पर भी, हम विद्यार्थियो ने वहा पर अच्छे सस्कार के बीज अनायास ही कुछ-न-कुछ अवश्य ग्रहण किये।

: २५ :

निर्भयता की शिक्षा और अभ्यास

छुटपन मे बच्चो को भूत-प्रेत और चूहे-बिल्ली के आतक की कहानिया सुना-सुना कर उनमे भय के सस्कारो की जड जमा दी जाती है। ऐसे सस्कारो के कारण उनके भावी जीवन मे आत्म-बल और निर्भयता जैसे उन्नत सस्कारो का सर्वथा अभाव हो जाता है। स्वय बापूजी बचपन मे कितने डरते थे, इसका उल्लेख उन्होने 'आत्मकथा' मे विस्तार से किया है। लेकिन वही बापूजी

फीनिक्स मे छोटे-बडे सभी आश्रमवासियो को आत्मबल और निर्भयता की किस प्रकार शिक्षा देते थे, उसका विवरण यहा अप्रासगिक नही होगा

फीनिक्स मे आश्रम-स्थापना के प्रारभिक दिनो की बात है। बापूजी इस भयानक जगल के खुले मैदान मे सोया करते थे। उन दिनो उनका विरोधी दल उग्र बना हुआ था और उन पर खतरा मडरा रहा था। फलत उनकी रक्षा के लिए दो-एक बलिष्ट नौजवान रतजगा किया करते थे। जब बापूजी को पता चला कि उनकी रक्षा के लिए पहरा दिया जाता है तो उन्होने उन सेवा-भावी युवको को पहरा देने मे रोक दिया।

जोहान्सबर्गकी बात है। गाधीजी के एक जर्मन मित्र श्री कैलनबैक उनकी रक्षा के लिए उनके पीछे-पीछे चला करते थे। एक दिन अपने दफ्तर से बाहर जाने के लिए बापूजी ने खूटी पर से अपना कोट उठाया। बगल की खूटी पर कैलनबैक का कोट टगा था। उसकी जेब मे रिवाल्वर-सा कुछ दीख पडा। गाधीजी ने जेब मे देखा तो वह सचमुच ही रिवाल्वर था। उन्होने कैलनबैक को बुलाया और पूछा, "जेब मे यह रिवाल्वर क्यो रखते हो?" कुछ झिझकते हुए कैलनबैक ने कहा, "कुछ नही, योही रखा है।"

गाधीजी ने मुस्कराकर पूछा, "रस्किन और टाल्स्टाय के ग्रथो मे कही ऐसा भी लिखा है कि बेमतलब ही जेब मे रिवाल्वर रखा जाय?"

इस व्यग्य से कैलनबैक की झिझक और भी बढ गई। बोले, "मुझे पता लगा था कि कुछ गुडे आप पर हमला करने वाले थे।"

"और आप उनमे मेरी रक्षा करना चाहते है?" गाधीजी ने गभीरता से कहा।

"जी हा।"

कैलनबैक का उत्तर सुनकर गाधीजी खिलखिलाकर हँस पडे। बोले, "चलो, अब तो मै पूरा निश्चित हो गया। मेरी रक्षा का सारा बोझ परमेश्वर मे आपने ले लिया। जबतक आप मौजूद है मुझे अपने को सुरक्षित मानना चाहिए।"

कैलनबैक इस व्यग्य को सुन कर चुप खडे थे। कुछ रुक कर गाधीजी ने फिर कहा, "क्या सोचते हो? भगवान पर श्रद्धा रखने का यह लक्षण नही है। सर्वशक्तिमान प्रभु सबकी रक्षा के लिए सर्वत्र है। इस रिवाल्वर से मेरी रक्षा करने की चेप्टा छोड दो।"

"भूल हो गई। अब मै आपकी रक्षा की चिता नही करूगा," कैलनबैक ने नम्रता मे कहा। और उन्होने रिवाल्वर को वहा मे अलग कर दिया।

इस घटना के बाद बापूजी के प्रति इतना वैमनस्य बढ गया कि स्वय

बापू को भी प्राणघातक हमला होने की आशका जान पडी । उन्होने मगन-काका के नाम लिखे निम्न पत्र मे इसका उल्लेख भी किया है

जोहासवर्ग
२१-५-१९०८

चि मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला । मेरे लिए चिंता करने की आवश्यकता नही है । मै मानता हू कि मुझे अपनी वलि चढानी ही पडेगी । स्मट्स आखिर तक धोखा दे सकेगा, ऐसा मै नही मानता। लोग अधीर हो उठे है। वे मेरे जीवन पर प्रहार करने को तुले बैठे है। उनको मौका मिल जाय, और यदि ऐसा हो तो सतोप मानना । जिस बात को मै कल्पनामय समझता हू उस बात के लिए जिंदगी की वलि चढानी पडे तो उसमे अधिक सुखद-मृत्यु और कौन-सी हो सकती है ।

—मोहनदास के आशीर्वाद

इस पत्र के कुछ ही दिन बाद जोहान्सवर्ग के राजमार्ग पर मीर आलम-नामक पठान ने लोहे की सलाख से बापूजी पर घातक प्रहार किया था। यह दुर्घटना सर्वविदित है, लेकिन मीर आलम के प्रति गाधीजी ने जो व्यवहार किया, उससे न केवल वह अपनी करतूत के लिए लज्जित ही हुआ, प्रत्युत उन्हे अपना मार्ग-दर्शक मानने लगा ।

अपने हाथ की दसो अगुलियो की छाप न देने के कारण जब उसे देश-निकाला मिला तो बबई पहुचने पर उसने अपनी टूटी-फूटी अग्रेजी मे बापू के नाम एक पत्र भेजा, जिसका सार यहा देता हू

"मै बबई पहुच गया हू । आप कुशलतापूर्वक होगे । ट्रासवाल के सारे समाचार मैने गुजराती अखबार मे निकलवा दिये है। पजाब पहुचने पर वहा के अखबारो मे भी निकलवाऊगा। लाहौर मे अजुमन इस्लाम की बैठक मे मै हाजिर रहूगा और ट्रासवाल की सारी खबर सुनाऊगा। लाहौर जाकर लाला लाजपतराय से मिलूगा और उनकी राय लूगा । सीमा-प्रात पहुचने पर सब मित्रो से चर्चा करूगा और जो बन पडेगा, करूगा । अफगानिस्तान मे भी सबको वहा की स्थिति का परिचय दूगा। श्री काछलिया, उमरजी सेठ, दाऊद मोहम्मद, रुस्तमजी पारसी और सोसाइटी के सब भाइयो से मेरा सलाम कहिएगा और मेरा पत्र मीटिंग में रखिएगा ।"

इससे प्रकट होता है कि एक जानी दुश्मन भी गाधीजी के आत्म-बल का लोहा मान गया और उनका अनुयायी बन गया ।

यही नही कि गाधीजी प्रवासियो को ही इन गुणो के लिए तैयार कर रहे थे, वल्कि इन भावो के पत्र भारत के नौजवानो को भी लिखते रहते थ। मगनकाका से छोटे नारायणदासकाका उन दिनो ववई मे नौकरी करते थे। वापू पत्रो द्वारा अपने आदर्शो का प्रचार किस प्रकार करते थे, इसका पता निम्न दो पत्रो मे चलता है

लन्दन
७-८-१९०९

चि नारायणदास,

तुम्हारा पत्र पढकर मुझे वहुत आनन्द हुआ। यह मै जानता हू कि हिन्दुस्तान के कुछ विद्वान लोग लडाई (दक्षिण अफ्रीका मे की जाने वाली सत्याग्रह की लडाई) का रहस्य समझते नही है। यह इस वात का सूचक है कि हमारे मूल पूर्वजो ने आत्म-वल का जो ज्ञान प्राप्त किया था वह अव दव गया है। उसे फिर से प्रकाश मे लाने के लिए धैर्य की आवश्यकता होगी। समय तो जायगा, पर ज्यो-ज्यो समझदारी पैदा होगी त्यो-त्यो आत्मवल की कसौटी चमक उठगी। मै जिस आत्मवल के वारे मे लिख रहा हू वह मदिर आदि मे जाने के वाह्योपचार मे निहित नही है। कभी-कभी तो ऐसे वाह्योपचार उस वल के विरोधी सावित होते है। यदि तुम 'इडियन ओपीनियन' सावधानी से पढते होगे तो यह कथन कुछ अश में तुम्हारी समझ मे आया ही होगा। वहा वैठे-वैठे भी तुम इस वल का प्रयोग कर सकते हो। सत्य और अभय का विकास उसका प्रथम पाठ है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

जोहान्सवर्ग,
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी, सवत् १९६६
(सन् १९१० का प्रारभ)

चि नारायणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। वहा रहकर भी तुम यहा के उद्देश्यो मे सहायक वन सकते हो। मै देख रहा हू कि वहा पर भी हमें वहुत सघर्ष करना पडेगा। ऐसा करने के लिए तुम्हे अपना चारित्र्य सुदृढ करना चाहिए। तुमने हमारे धर्म के मूल तत्वो को जान लिया है? यदि तुम कहो कि मै तो सारी गीता मुखपाठ कर चुका हू, उसका अर्थ भी मुझे आता है, धर्म का मतलव जानता हू, तो फिर इस प्रश्न को स्थान ही कहा रहता है? लेकिन मूलतत्व जानने से मेरा मतलव है उसके अनुसार आचरण करना।

"दैवी सम्पत्ति मे प्रथम गुण अभय है"—यह श्लोक तुमको याद होगा। तुमने अभयदान को थोडे अश मे भी पा लिया है? जो करना उचित समझो,

उसे करने के लिए निडरतापूर्वक देह के गिरने तक भी प्रयत्न करोगे ? जब तक इस अंश तक अभय पद को प्राप्त न कर लो तबतक उसका सेवन करते हुए उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना। इतना करोगे तो तुम बहुत कुछ कर सकोगे। इस सम्बन्ध में प्रह्लाद, सुधन्वा आदि के दृष्टातो को तुम्हे याद करना चाहिए। ये सब दन्तकथाए है, ऐसा मत मानना। हिंद के पुत्र ऐसे काम करने वाले हो गए है। इसीलिए उन आख्यानो को आज हम कठस्थ करते है। आज भी प्रह्लाद और सुधन्वा, हरिश्चन्द्र और श्रवण भारत मे नही है, ऐसा मत समझना। जब हम उस योग्य बनेगे तब उनसे हमारी भेट हो जायगी। वे बम्बई की अट्टालिकाओ मे कभी नही आयगे। पत्थर की जमीन मे गेहू की पैदावार की आशा करना व्यर्थ है। बम्बई मे रहना हो तो यह बात मन के साथ दृढ कर लेनी चाहिए कि बम्बई नरक की खान है। वहा रहने मे कोई सार नही है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

इसके अलावा, आश्रमवासी बच्चो को निर्भयता की शिक्षा देने एव अभ्यास कराने का वर्णन भी रोचक है। जब मै मुश्किल से सात-आठ बरस का था, तब उस सूने जगल मे रात के समय घर के बडे लोग मुझे अकेला छोडकर चले जाते थे और बापूजी के घर से पहर भर रात बीते लौटते थे। इस बीच मै अधेरे घर मे निर्भय होकर सोया रहता। इसी प्रकार मुझे सर्वथा निडर बनाने के लिए मगनकाका ने भी विशेप यत्न किये। वह मुझे गहरे अधेरे मे करीब आधा फर्लांग की दूरी पर देवदासकाका के यहा सदेश देने भेज देते और जब मै निडरता पूर्वक सदेश देकर लौट आता तो मेरी पीठ थपथपाते।

धीरे-धीरे यह क्रम रात मे ढाई मील की दूरी तक जाने का हो गया और इस प्रकार बचपन मे ही निर्भयता के सस्कार मुझमे पनप गए।

इन्ही दिनो की एक अन्य घटना है, जिसके कारण मेरे बाल-हृदय पर पिताजी के साहस का गहरा प्रभाव पडा था। एक दिन रात को दो-ढाई बजे वह डरबन से प्राय १६ मील की लबी यात्रा करके बीहड और सुनसान जगल से होकर साइकल द्वारा पहाडी के ऊबड-खाबड रास्ते से घर आये थे। बापूजी ने उनको आधी रात मे डरबन से फीनिक्स जाने की आज्ञा दी थी। अगले दिन सवेरे ३०-४० अतिथियो को लेकर बापूजी फीनिक्स पहुचने वाले थे। पिताजी के फीनिक्स पहुचने पर बापूजी के आदेशानुसार मेहमानो के लिए तत्काल रसोई करने का काम कस्तूरबा, मेरी माताजी और दूसरो ने शुरू कर दिया।

दिन निकलते ही बापूजी अपने मेहमानो के साथ फीनिक्स आ पहुचे और समय पर सब को भोजन मिल गया।

: २६ :

दुराग्रह की हद

फिनिक्स के जिस वातावरण मे मेरा वचपन बीता उसमे झूठ बोलने का सस्कार ग्रहण करने की वात थी ही नही। वहा जो लोग थे उनका व्यवहार सरल था। कोई किसी से छल-कपट नही करता था। माता, पिता, काका आदि घर के वडे, अपने-अपने नित्य के जीवन मे सदाचारी और धर्मभीरु थ। फिर वापूजी का प्रभाव सारे फीनिक्स पर और हमारे घरवालो पर इतना अधिक था कि प्रतिदिन सत्यनिष्ठा और जीवन की पवित्रता को वढाने का आग्रह प्रत्येक व्यक्ति के मन मे गहरी जड पकडता जा रहा था।

ऐसे पुनीत वातावरण मे सच को छोड कर झूठ को पकडने की मेरी वृत्ति न जाने कैसे पनप रही थी। छोटी-छोटी वातो मे मै झूठ वोल देता और घर मे वडो के लिए यह वडी समस्या वन गई थी कि मुझ से झूठ वोलना कैसे छुडाया जाय ?

एक वार झूठ वोलकर मैने मगनकाका के प्रकोप को अत्यत वढा दिया। घटना यो हुई फीनिक्स मे हमारा रसोईघर छोटा था, परन्तु वह वहुत स्वच्छ रहता था। अन्न-भडार, वरतन मलने और हाथमुह धोने की व्यवस्था इत्यादि भी उसी चौकोर कमरे मे थी। एक दिन दोपहर के समय मेरी माताजी और काकी फीनिक्सवासी अन्य परिवारो मे मिलने-जुलने के लिए गई हुई थी और घर मे मै अकेला इधर-उधर उलट-पुलट कर रहा था। तभी घूमते-घामते देवदासकाका, रामदासकाका आदि दो-तीन लडको की मडली हमारे यहा आ पहुची। इन सवको चमत्कृत करने के लिए न जाने क्यो एकाएक मुझे एक नई वात सूझी। मैने उनसे कहा, "चलो, एक खेल करे।" मै आगे वढा और सव मेरे पीछे-पीछे रसोईघर मे आये। रसोईघर मे घुस कर मै एक मेज पर चढ गया और काफी ऊचाई पर अपना हाथ पहुचा कर मैने टाड से लाल दवाई की एक वडी-सी पुडिया निकाली। पुडिया लेकर मै मेज से उतरा और रसोईघर के कोने मे रखे हुए पानी के पीपे के पास गया। उसमे हाथ-मुह धोने का पानी रहता था और उसमे पीतल की टोटी लगी हुई थी। पीपे का ढक्कन उठाकर मैने अपने पास की लाल दवा—परमेगनेट पोटाश—की पुडिया से आधी दवा पानी मे डाल दी। करीव तीन-चार वडी चम्मच के वरावर दवा उस दो-चार वाल्टी पानी मे डालकर मैने उसे कडछुल से हिला दिया। उसके वाद टोटी खोल दी। लाल सुर्ख पानी की सुन्दर जलधारा

उनमे मे वह चली। उनमे अपने हाथ भिगोने के लिए मैंने सबको आमन्त्रित किया। मभी लडके बडी प्रसन्नता मे देर तक यह तमाशा देखते रहे। आधे मे ज्यादा पीपा खाली हो गया तब नल बद करके और रसोईघर बन्द करके हम लोग बागीचो मे खेलने को चल दिए।

मगनकाका रोज के नियम के अनुसार, काम मे लौटने पर रसोईघर के उस पीपे के पास, हाथ-मुह धोने के लिए आये। उनको वहा देखकर मैं सहम गया और उनकी निगाह बचाकर दूसरे कमरे मे चला गया। मिनट-दो-मिनट ही बीते होंगे कि मगनकाका की आवाज सुनाई दी, "किसने यह पानी बिगाडा है ?" मेरी काकी और मेरी माता दोनो अपने-अपने काम में लगी थी। पीपे के पानी के लाल होने की बात का उन्हे पता भी नही था।

मगनकाका ने मुझे बुला कर पीपे का वह पानी दिखाया और पूछा, "यह किसने बिगाडा है ?"

"मुझे पता नही," मैंने साहस के साथ जवाब दिया।

"पता तो तुझे होना चाहिए, घर मे तेरे अलावा और कौन है जो ऐसा करता ?" काका ने कहा।

"हम सब यही खेलते थे। पर इसका मुझे पता नही।"

"तो क्या अपने-आप यह पानी रग गया ? तुममे से ही किसी ने इसमे रग डाला होगा।"

"मुझे पता नही।"

काका ने और बहुत से सवाल किये, पर मैं अपनी बात पर डटा रहा।

तब उन्होंने डाट-डपट की, मेरे कान ऐंठे और चपते लगाई। परन्तु मैं अपने निश्चित उत्तर मे जरा भी नही हटा। मैंने सोचा कि मार तो हर हालत मे पडेगी ही। अपने मुंह अपने-आपको झूठा क्यो स्वीकार करू ? झूठ दोहराता रहूगा तो वह सब मान लिया जायगा।

इधर मेरी जिद का जोर बढता गया, उधर मगनकाका का चित्त मुझे सुधारने के लिए जोर पकडता गया। झूठ बोलने की मेरी यह बुराई कैसे मिटाई जाय, इस चिंता ने उनके हृदय को दुखी बना दिया। थप्पडो मे जब मैं बाज नही आया तब वह मुझे घर मे बाहर ले गए और बागीचे में बनी एक टट्टी मे बद कर दिया। मैं डरा नही और न सच बोलने की अक्ल ही मुझमे आई। थोडी देर बाद काका ने मुझे बाहर निकाला और सच कहलवाने के लिए बडी मीठी आवाज से उलट-पुलट कर प्रश्न किये। परन्तु मैं उनकी सारी बाते पी गया। फिर सजा मिली, पर मैं अपनी बात पर अडिग बना रहा। काका बहुत दुखी हुए।

काका-भतीजे के बीच का यह द्वन्द्व कोई डेढ-दो घटे चलता रहा। तब मेरी माताजी आई और आखो मे आसू भर कर बोली, "बालक को कही ऐसी सजा दी जाती है।" इतना कह कर वह मुझे हाथ पकडकर ले गई।

अपने दुराग्रह मे मै उस समय भले ही अपनी बात पर अडा रहा, पर मै आज अनुभव करता हू कि वह मेरी भयकर भूल थी और मगनकाका ने जो किया वह बिल्कुल ठीक था। सत्य-पालन पर बिना इतना आग्रह रखे आश्रम की नीव पक्की नही हो सकती थी। मैने झूठ बोला और मगनकाका आदि को इतना दुखी किया, इसका आज भी मुझे पछतावा है।

यह मगनकाका की महानता थी कि उस दिन के बाद उन्होने कभी मेरे शरीर को हाथ नही लगाया। शायद उन्होने यह भी निश्चय कर लिया कि आगे किसी भी बालक को न पीटा जाय।

इस प्रसग के बाद मेरे मन को भी कुछ नया प्रकाश मिला। मेरे मन मे यह भावना पैदा हुई कि घरवालो को कितना अधिक दुखी कर रहा हू। उस दिन से पहले मेरे मनमे भावना थी कि मै सबकी डाट-फटकार के ही योग्य हू और सबका अप्रिय हू, परन्तु अब यह बात ध्यान में आई कि घर मे मेरा स्थान कम नही है। माता के वात्सल्य ने और मगनकाका की क्षमा ने मेरे कठोर मन को पिघला दिया।

: २७ :

स्वदेशी की उपासना

बापू ने जब सर्वोदय के सिद्धात लोगो के सामने रक्खे तब श्रम और त्याग को उन्होने बहुत महत्व दिया। परन्तु घर मे या सस्था मे स्वदेशी यानी भारत की बनी चीजे बरतने की बात पर उन्होने ध्यान नही दिया था। यही नही, अग्रेजी वेशभूषा के बारे मे वह काफी सावधान थे। आगे चलकर जब उन्होने स्वावलम्बन और सादगी पर ध्यान दिया तो स्वदेशी का मार्ग खुल जाना स्वाभाविक था।

आश्रम के नित्य के जीवन मे स्वदेशी का पालन विधिवत रूप से अहमदाबाद मे आश्रम की स्थापना होने पर शुरु हुआ। लेकिन जिस प्रकार किसी वृक्ष के भूमि की सतह के ऊपर फलने-फूलने से पहले उसकी तैयारी होती है, उसी प्रकार स्वदेशी के लिए अभी से तैयारी हो रही थी।

एक दिन हमारे घर में कुछ नया सामान आया। पिताजी, मगन-काका, मणिलालकाका और दो-एक अन्य फीनिक्सवासी उस नये सामान को उलट-पुलट कर बड़े ध्यान से देखते रहे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि उस सामान में कपड़े के दो-चार थान और अगरबत्ती, आदि छोटी-मोटी चीजे थी। एक-एक चीज देखने के साथ-साथ उस पर चर्चा भी होती।

इसी बातचीत के सिलसिले में प्रथम बार मैंने बंगाल और पंजाब का नाम सुना। यह भी सुना की बंगाल में स्वदेशी कपड़े ही पहनने का प्रचार अधिक है। अब स्वदेशी माल खरीदने की चर्चा हमारे घर में होने लगी। मुख्यत मणिलालकाका और मगनलालकाका ने उन स्वदेशी वस्तुओ की विशेष प्रशंसा की और दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी अपने भारत देश का बना माल भविष्य में खरीदने का उत्साह प्रदर्शित किया।

कपड़े के जो थान आये थे उनमें खाकी जीन और मद्रासी कपड़े को अधिक पसन्द किया गया। इन दोनो कपड़ो का रंग फीका और मटमैला था। विलायत के बने जो कपड़े हम घर में बरतते थे उनकी तुलना में इन कपड़ो का रंग और चमक बहुत घटिया थी। फिर भी अपने देश की बनी इन स्वदेशी चीजो का मेरे चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा।

फीनिक्स के वातावरण में उस समय अपने देश के प्रति श्रद्धा-भक्ति की लहर जोरो पर थी। जहा तक मुझे याद है, बापूजी और हरि-लालकाका तब ट्रासवाल में जेल काट रहे थे। हरिलालकाका की पत्नी, जिनको मैं अपने मातृपक्ष की अत्यधिक निकटता के सम्बन्ध के कारण गुलाब मौसी कहता था, उन्होंने तथा मेरी माता ने मिलकर एक छोटा-सा गीत लिखा। उसका भाव था देश-हित के लिए दौड़ो। तन-मन-धन को अर्पण कर जेल-महल में जाकर आनन्द करो। पू० कस्तूरबा और फीनिक्स की अन्य माताएं दोपहर बाद इकट्ठी बैठकर इस गीत को बड़े मधुर और गद्‌गद् कंठ से गाती थी। मैं बड़ी श्रद्धा से उसे सुनता था और खेल-कूद के समय उसे गुनगुनाया करता था। इस भजन के सरल शब्दो का मेरे मन पर जैसा गम्भीर प्रभाव पड़ा, वैसा ही गम्भीर प्रभाव पिताजी और काका की उस एक ही दिन की स्वदेशी वस्तुओ के सम्बन्ध की बातचीत का भी पड़ा। स्वदेशी के प्रति अपनेपन की भावना तभी से मेरे मन पर गहरी अंकित हो गई और तब बढ़िया-से-बढ़िया और चमकीले-से-चम-कीला विलायती माल भी मेरे लिए इतना चित्ताकर्षक नहीं रह गया, जितना पहले था।

एक बात हमारे घर में अच्छी थी और वह यह कि जो कुछ नया परि-

वर्तन घर मे करने का विचार अपनाया जाता था उसमे दो राये क्वचित ही होती थी। पिताजी और काका दोनो ही नये परिवर्तन को लाने मे सहयोग से काम करते थे और मेरी माताजी व काकी भी नई वात को अपनाने मे पूरा मन लगाती थी। इन सबमे मगनकाका सबसे आगे रहते थे और और उनका सुझाव सब स्वीकार कर लेते थे। 'स्वदेशी' की ओर मुडते ही घर के लिए खरीदी जाने वाली चीजो पर मगनकाका ने कडी छानवीन शुरू कर दी। कपडे का रगढग वदल दिया गया। मेरे लिए गहरे नीले रग का मखमल का वना हुआ चमकीला 'सेलर्स सूट' (नाविक के पहनने के नमूने का कोट-पतलून) सिलवा दिया था, वह अलग कर दिया गया। खाकी कपडे का जो स्वदेशी थान आया था, उसके मेरे लिए कोट और नेकर घर मे ही वनवाये गए। उस कपडे को काट कर सीने के लिए कई दिन तक सध्या के समय स्वय मगनकाका, मेरी माताजी और काकी का सम्मिलित प्रयत्न चलता रहा। तीनो ने एक-दूसरे को सीना-काटना सिखाया और एक अच्छी खासी कपडे की जोड मेरे लिए तैयार हो गई। सेलर्स सूट मुझे वहुत प्रिय था, परन्तु जव घर का वना हुआ यह सादा कोट-नेकर तैयार हो गया तब उसे पहनकर मुझे ऐसा लगने लगा कि अव मै छोटे लडके से वडा आदमी वन गया हू। कुछ दिन वाद जव हम लोग डरवन गये तव वहा के जान-पहचान वाले गुजराती मित्र और व्यापारियो ने मगन-काका के कौशल और साहस की वडी प्रशसा की। वैसे डरवन नगर मे जहा वच्चा-वच्चा भी इग्लड के वने श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सूटवूट मे वनठन कर घर से वाहर कदम रखता था, मेरी घर की सिली हुई खाकी व मोटी खुरदरी पोशाक कुछ विचित्र-सी दीख पडती थी, परन्तु स्वदेश-प्रेम, स्वदेशी की धुन और अपने पुरुषार्थ से अपनी चीज तैयार करने की निष्ठा को देखकर सभी भारतीय मित्रो मे फीनिक्स के इस काम का स्वागत ही हुआ।

छोटे नाप के मेरे कपडे वनाने मे सफलता मिल जाने पर मगनकाका ने वडी कमीजे और कोट-पतलून वनाने का प्रयोग किया। वाजार से तैयार मिलेसिलाये कपडे लाना प्राय वन्द ही हो गया। कपडो के सम्वन्ध मे आग्रह रक्खा गया कि वह अहमदावादी मिल का ही हो। यहा तक कि इग्लैंड की वनी नकटाई पहनने का भी मगनकाका ने त्याग कर दिया। विलायती नेकटाई के वदले रगीन धागे से मेरी काकी द्वारा जालीदार नेकटाई तैयार करवाई और जवतक सूट-वूट रहा, डरवन जाते समय वही नेकटाई लगाते रहे।

कपडो की तरह और भी चीजो के प्रयोग के सम्वन्ध मे देसी ही

खरीदने और वरतने का प्रयास वढता गया। उसके वदले घर में ही मगन-काका ने वढई के औजार वनाये और छोटी अलमारी, मेज, चौकी आदि अपने हाथ से वनाने लगे।

: २८ :

प्रतिज्ञा का वल

प्रतिज्ञा-पालन के सम्वन्ध मे वापूजी वहुत ही कट्टर थे। जिम प्रकार भरत की प्रार्थना, विनती, तर्क आदि सबकुछ रामचन्द्र के सामने व्यर्थ सिद्ध हुए उसी प्रकार प्रतिज्ञा-पालन के सम्बन्ध मे वापूजी के आगे उनके साथी-सवधी ओर अनुयायियो की सारी दलीले और अपनी कमजोरी की स्वीकृतिया विल्कुल वेकार सावित होती थी। अपने निकट का कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कोई भी क्यो न हो, प्रतिज्ञा की मर्यादा का उल्लघन करने की कोशिश करता तो वापूजी अत्यन्त दुखी होते।

वापूजी शुरू से ही अपनी सस्थाओ के कर्मचारियो को छोटी-मोटी प्रतिज्ञाए लेने के लिए लगातार प्रोत्साहन दिया करते थे और फिर प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए उन्हे विवश कर देते थे। 'सादा जीवन और ऊचे विचार' के ध्येय को अमल मे लाने का निष्ठा से जिन व्यक्तियो ने फीनिक्स मे वसने का वापूजी का आमत्रण स्वीकार किया था, उनमे से सभी लोग वहुत दिनो तक फीनिक्स मे नही टिक पाये।

जिन व्यक्तियो ने वापूजी के साथ रहकर प्रतिज्ञाए लेने तथा उनका पालन करने का अभ्यास डाला, वे ही लोग धीरे-धीरे वापूजी के आश्रमवासी वन गए। वापूजी का विश्वास था कि "जो मनुष्य व्रतवद्ध नही रहता वह किसी भरोसे का नही होता।" अपने सहकारियो और विद्यार्थियो को इसी पैमाने से वापूजी नापते थे।

वास्तव मे वापूजी के पास सस्था-सचालन के लिए प्रतिज्ञा-पालन ही सव से वडी निधि थी। वर्षा ऋतु के वादलो की तरह जव भावनाओ का जोर वढ जाता है तव किसी भी सस्था की स्थापना सहज मे हो जाती है, परतु थोडा समय वीत जाने पर लोगो का जोश ठडा पड जाता है। एक ओर कार्य-भार वढता जाता है, दूसरी ओर कार्यकर्ताओ का आपस मे मेलजोल घटने लगता है और तीसरी ओर आर्थिक कठिनाइया वढ जाती है। फीनिक्स की सस्था के सचालन मे भी वापूजी को इन कठिनाइयो का सामना कम नही

करना पडा। इस पर एक विशेष कठिनाई बापूजी के लिए यह थी कि फीनिक्स से तीन-चार सौ मील दूर ट्रान्सवाल मे राजनैतिक सघर्ष मे उन्हे अपना अधिकतर समय लगाना पड रहा था। इस मुसीबत मे भी बापूजी ने फीनिक्स के ध्येय की ओर सस्था की प्रगति को शिथिल नही होने दिया। एक बार जिस ऊचे विचार को अपना लिया उस विचार पर प्रतिज्ञापूर्वक डटे रहने की बापूजी की निष्ठा ने 'फीनिक्स' के विकास के मूल-स्रोत का काम दिया।

अपने नित्य जीवन मे छोटी और बडी बातो पर प्रतिज्ञा-बद्ध रहने की बापूजी की लीक पर चलने का सफल प्रयत्न करने वालो मे उस समय श्री कैलनबैक और मगनकाका मुख्य थे। इन दोनो ने बापूजी का विश्वास अधिक सम्पादन किया था। श्री कैलनबैक ट्रान्सवाल मे अहर्निश बापूजी के साथ रहते थे और बापूजी के प्रत्येक काम को पूरा करने मे सहयोग देते थे। मगनकाका फीनिक्स मे रहकर अपनी सूझ-बूझ मे बापूजी के निर्देश का भरसक पालन करते थे। इसलिए दोनो को क्रमश बापू के हनुमान और लक्ष्मण का उपनाम विनोद मे दिया जाता था। मगनकाका के नाम बापूजी का लिखा हुआ एक पुराना पत्र नीचे दिया जाता है। उस पर चैत्र सुदी सप्तमी की तिथि है, पर वर्ष नही है। सदर्भ से वह सन् १९०९ मे लिखा प्रतीत होता है।

चैत्र सुदी सप्तमी

चि मगनलाल,

तुम्हारे हिसाब से आज सप्तमी होनी चाहिए। छगनलाल के पत्र पर पडी हुई तिथि से मालूम होता है कि तुम्हारी व मेरी तिथि एक ही है। साथ वाले दोनो पत्र कल लिखे गए थे। तुम्हारा पत्र आज मिला। ठीक किया जो तुमने लिखा। मेरे पत्रो के मिलने के बाद भी तुम ऐसा ही पत्र लिखते। तुम लक्ष्मण तो हो ही, लेकिन ऐसा सुदृढ पत्र लिख कर तुमने भरत का काम किया है। जैसे-जैसे मै विचार करता हू, मुझे की इस दीनता को देखकर रोने का जी होता है। एक बार ने मुझे निराश किया था, मै रोया था। ने चोरी करके मुझे धोखा दिया तब रोया था। आज फिर मेरी ऐसी स्थिति ने की है। उनके ऊपर मेरी इतनी श्रद्धा और प्यार है कि उन्होने जो अनुचित किया वह खुद मैने किया हो, ऐसा मुझे महसूस हो रहा है। सवेरे भजन करने के बदले मन उसी विचार मे उलझ गया। को फीनिक्स छोडना था तो ठीक तरह मे छोडा जा सकता था। इस समय तो वह साधारण नीति मे भी चूक गए है। हद हो गई है। इससे समझना चाहिए कि अभी और कितनी भावना करना बाकी है। इससे यह भी सूचित होता है कि मनुष्य को प्रतिज्ञा

लेने की आवश्यकता है। जो करना हो उसके लिए मन को दे डालने का नाम है प्रतिज्ञा। मन को मुक्त रखने से सैकडो विघ्न आते है। प्रतिज्ञा प्रगति की कुजी है। "मुझ से वन पडेगा तवतक मै मास नही खाऊगा," ऐसा दरिद्र वचन मुझे मास खिला कर छोडेगा। "देह के गिरने पर भी मै मास नही खाऊगा, ऐसा दृढ वचन मुझे वचायगा ओर ऊचे ले जायगा। जिन तीन प्रतिज्ञाओ को विलायत जाते समय मैने लिया था उन्होने मुझे वचाया है। ने ऐसी सुदृढ प्रतिज्ञा नही ली है। फीनिक्स मे रहने के वारे मे यद्यपि ने मुझे जताया तो यह कि उन्होने प्रतिज्ञा ली है, किन्तु उन्होने अपने मन से प्रतिज्ञा नही ली दीखती, अन्यथा आज उनकी यह हालत न होती।

यदि चाहो तो इस पत्र को और माथ के दूसरे दोनो पत्रो को भी के पास भेज सकते हो।

—मोहनदास के आशीर्वाद

: २९ :

सेवा सर्वोपरि

'स्वदेशी' की उपासना शुरु होने के कुछ महीने वाद पिताजी के साथ हमारे स्वदेश आने की वातचीत चली, परन्तु मि वेस्ट के वीमार पड जाने के कारण आठ-नो महीने हमे रुक जाना पडा। पिताजी और मि वेस्ट दोनो 'इन्डियन-ओपीनियन' के सयुक्त व्यवस्थापक थे और दोनो एक साथ छुट्टी पर नही जा सकते थे। फिर मि वेस्ट की वीमारी इतनी वढ गई थी कि उनकी तीमारदारी के लिए हर घर से वारी-वारी एक फीनिक्स-वासी को उनके विस्तर के पास उपस्थित रहना आवश्यक था। फीनिक्स मे डाक्टर-वैद्य की सुविधा नही थी, परन्तु वीमार की परिचर्या और शुश्रूषा मे प्रमाद न हो, इमकी सावधानी वापूजी पूरे आग्रह से रखवाते थे। वापूजी ने मणिलाल-काका के नाम जो दो पत्र लिखे है, उनसे इस सवध मे उनकी सजगता का अच्छा परिचय मिलता है।

१७-९-९

चि मणिलाल,

परोपकार करना, दूसरो की सेवा करना और ऐसा करने मे अपने को रत्ती भर भी वडा न मानना यही सच्ची शिक्षा है। यह वात अपनी आयु के वढने के साथ तुम अनुभव करोगे। वीमार आदमी की सेवा करने के वरावर

दूसरा उत्तम मार्ग क्या हो सकता है ? धर्म का बहुत-सा अश इस मार्ग मे आ जाता है ।

मि वेस्ट को मुर्गी का शोरवा आदि हमने दिया, उसका विचार निष्पक्ष बुद्धि से करना आवश्यक है। वा का ऐसा शोरवा दिये विना यदि उसके शरीर का अन्त हो जाता तो वह मुझे मजूर था। परन्तु वा की स्वीकृति के विना उसे मै कदापि नही देने देता । देखो, देह को आत्मा से बढकर प्यारा नही होने देना चाहिए। देह से आत्मा को जो अलग पहचानता है वह देह की हिंसक रक्षा नही करेगा। यह सब अति कठिन वात है, किन्तु जिसके सस्कार अत्यत पवित्र है वह उसे सहज बुद्धि से समझता है और इसका आचरण करता है । देह मे रहकर ही आत्मा भला या बुरा कर सकती है, यह धारणा वहुत ही गलत है। इस धारणा से समार मे घोर पाप हुए है और हो रहे है। देह तो दमन करने के लिए हमे मिली है ।

—वापू के आशीर्वाद

१२-१०-९

चि मणिलाल,

तुम मि वेस्ट ओर दूसरो की सेवा करते हो यह तुम्हारी सर्वोत्तम पढाई है। जो आदमी अपने कर्त्तव्य का पालन करता है वह निरन्तर पढता ही है। तुम जैसा लिख रहे हो, अध्ययन को तुम्हे छुट्टी देनी पड रही है, यह सही नही है। तीमारदारी करने में तुम अध्ययन ही कर रहे हो।

अक्षरज्ञान को छोडना पड रहा है, यह सही बात है, पर सेवा का अवसर वार-वार नही मिलता। अक्षरज्ञान वाद मे लिया जा सकता है। मन मे यह विश्वास रखो कि जव तुम्हारा मन स्वच्छ है तो वीमार की सेवा के कारण तुम बीमार नही पडोगे। यदि वीमार हो भी गए तो मै चिन्तित नही होऊगा । अपना रहन-सहन सुधारना, यही अध्ययन है, दूसरा सव मिथ्या है।

—वापू के आशीर्वाद

इन पत्रो से प्रकट होता है कि ट्रान्सवाल मे अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी फीनिक्स की छोटी-मोटी वातो से वापूजी पूरे जानकार रहते थे। अपने लिए अपने पुत्र के लिए और मगनकाका जैसे अपने परिवार के युवको के जीवन मे त्याग और सेवा का आग्रह वढाते जाते थे। स्वय अहिंसा के कट्टर उपासक थे, फिर भी वीमार अग्रेज मित्र को मासाहार पहुचाने की व्यवस्था करने की महान उदारता वापूजी के हृदय मे थी।

मि वेस्ट की वीमारी साधारण नही थी। मेरा खयाल है कि गम्भीर

प्रकार के 'टाइफाइड' के रोग से वह पीडित थे। सोलह-सत्रह वर्ष की आयु के अपने होनहार पुत्र को उनकी सेवा मे लगाए रखने का महान साहस बापूजी जैसे असाधारण पिता ही कर सकते है। यह भी बापूजी की छत्रछाया का प्रताप था कि पूरा भारतवासी परिवार एक अग्रेज साथी की पूरी आत्मीयता से परिचर्या करे।

जबतक मि वेस्ट अपनी लम्बी बीमारी से उठे नही तबतक तो पिताजी का फीनिक्स से बाहर निकलना शक्य नही रहा। बाद मे फीनिक्स से चलने की तैयारी हो ही रही थी कि अकस्मात् मेरा छोटा भाई जल गया। एक दिन मध्याह्न के समय हम सब भोजन करने के लिए रसोईघर के साथ वाले बरामदे में बैठे थे। रसोईघर के सभी बरतन फर्श पर कायदे से रखकर पिताजी ने हम बच्चो को अपनी-अपनी थाली पर अर्ध गोलाकार ढग से बिठाया और परोसने लगे। रोटी मिल जाने पर 'दाल-दाल' कहता हुआ कृष्णदास दाल की पतीली पर लपका और अपने आप ढक्कन खोलने लगा। तीन वर्ष का बच्चा तो वह था ही। ढक्कन खोलने के झटके से वह जमीन पर गिर पडा और पतीली भी उलट गई। गरम-गरम दाल उसके कपडे पर गिरी। पिताजी ने बडी शीघ्रता से कृष्णदास को उठा लिया और उसका कपडा उतार दिया, परन्तु कपडा उतारने मे कृष्णदास के कधा, गाल, कान आदि बुरी तरह से झुलस गए।

हाथ-के-हाथ घर मे जो बना इलाज किया गया। जल जाने का विशेष उपाय वहा कोई नही जानता था। मगनकाका डरबन गये और दवाई ले आये। उन्होने बताया कि चूना और तेल का मिश्रण है। जलने की जगह पर इस तेल की पट्टी बाधी गई। इतनी भारी पीडा रोयें-कराहे बिना चुपचाप कृष्णदास सहता रहा। चार-पाच दिन तक घर मे सब बहुत चिन्तित रहे। बाहर बडी तेज हवा चल रही थी और कृष्णदास के जलन के घावो को हवा से बचाना बहुत आवश्यक था। प्राय सात-आठ दिन तक सुबह से शाम तक मुझे उसकी खाट के पास उपस्थित रहना पडा। उसकी पीडा को देख कर क्षण भर भी वहा से हटने की इच्छा मुझे नही होती थी। खेल-कूद सब भूल गया। बीमार की सेवा का यह प्रथम अनुभव मुझे सदा याद रहेगा।

एक बार आश्रम की प्रार्थना मे प्रवचन करते हुए बापूजी ने कहा था, "जब हम किसी बीमार की सेवा करे तब हमारे मन मे इस प्रकार की भावना पैदा होनी चाहिए कि ईश्वर करे उस रोगी की सारी पीडा मुझे मिल जाय और उसकी वेदना दूर हो जाय।" बापू का यह आदर्श वचन बताता है कि दूसरो के सुख-दुख को उन्होने कितना आत्मसात कर लिया था।

: ३० :

फीनिक्स आश्रम की समस्याएं

राजनैतिक सघर्ष मे अत्यधिक व्यस्त होने पर भी बापू का ध्यान बराबर फिनिक्स आश्रम की ओर बना रहता था। वहा की समस्याओ के बारे मे वह बराबर सोचते ओर आवश्यक आदेश देते रहते थे।

यहा मै उनके दो-तीन पत्रो के कुछ अश एक पुराने पत्र-सग्रह से दे रहा हू। इन पत्रो पर तिथि या हस्ताक्षर नही है, फिर भी उन्हे पढने से प्रतीत होता है कि बापू ने उन्हे फीनिक्स सस्था के सचालन के सबध मे लिखा था। मेरा अनुमान है कि ये पत्र मगनकाका के नाम ही लिखे गए होगे

– १ –

अपने प्रति असतोष या मर्म वचनो के कारण यदि तुम हटना चाहो तो इसमे भेद-बुद्धि समझी जायगी और उन लोगो के लिए एव तुम्हारे लिए मेरा जो कर्तव्य होगा उसमे मुझे बाधा आवेगी। तुम हटने का रास्ता लो, इसमे उनका अकल्याण ही होगा। हम महाप्रयास मे पडे है। तत्त्वज्ञान की खोज कर रहे हैं।

– २ –

तुम जरा-सा विचार करो तो देख सकोगे कि कोन किसको निकाले, यह सवाल पैदा होता ही नही है। जब फीनिक्स की स्थिति कमजोर पडेगी तब निकालने-रखने की बात नही रहेगी। लेकिन जिसे खरा रग लगा होगा वही रहेगा। उस समय तो यह प्रश्न आयगा कि कौन रुकेगा। आज हम वेतन नही दे रहे है, लेकिन खानाभर दे रहे हैं। इसमे कमी करके कष्ट उठा कर सूखी रोटी खाकर कोन रहेगा, यही सवाल है।

फीनिक्स भी फीनिक्स मे ही रहेगा, यह बात कहा है? जहा फीनिक्स का हेतु है, वही फीनिक्स है। हम सारी तैयारी हिंदुस्तान के लिए कर रहे है।

मेरी आत्मा तुम समर्थ मानते हो वैसी ही तुम्हारी है। हमारी आत्मा के बीच कोई भेद नही है, किंतु तुम्हारे अदर जिस मात्रा मे अनात्मपन, भीरुता, सशय, अनिश्चय आदि हो, उन्हे निकाल दो तो हम दोनो एक समान ही है। अतर इतना ही है कि महाप्रयास से मैने बहुत सारे मोठ[1] बीन डाले है, उतने

१ बापू का आशय गुणो में मिश्रित दोषो को दूर करना है।

ही और उसमे अधिक दृढता पूर्वक तुम साहस करोगे तो वीन सकोगे।

३

विपद के लिए धैर्य के समान और कोई उपाय नही है। सत्याग्रह आदि का जो साधन ट्रान्सवाल मे है वही देश मे होना चाहिए, इसमे मुझे कोई शका नही है। परन्तु का पत्र बताता है कि तैयार तो फीनिक्स जैसे स्थल मे ही हो सकेगे। स्मशान मे सोते हुए भी निडर रहना, यह कर्तव्य है, परतु स्मशान मे सोने का प्रारभ करने वाला मनुष्य, वहा पर लेटते ही मरा-मरा-सा हो जाय, यह सभव है। इस प्रकार मेरे और तुम्हारे लिए तो फिलहाल हिंदुस्तान स्मशान रूप है। वहा पर बिस्तर लगा कर हम लोग मीराबाई के भजन 'बोल मा, बोल मा, बोल मा रे, राधाकृष्ण बिना बीजु बोल मा' इत्यादि गा सके, ऐसी तैयारिया यहा पर करनी उचित है—करनी पड रही है। किसी भी प्रकार से किसी भी समय प्राप्त होने वाली मौत को दिल से बधाई देने का बल मुझ में आवेगा, ऐसा आभास मुझे होता रहता है। ऐसा सभी को हो, यह चाहता हू।

बालक होने के कारण मुझे उन समस्याओ का ठीक-ठाक पता नही, जो फीनिक्स सस्था के अतरग मे बडो को चिंतित कर रही थी। लेकिन बापूजी के इन पत्रो से थोडा-सा आभास मिलता है कि स्वेच्छा से स्वीकृत की गई गरीबी को निभाने के लिए फीनिक्सवासियो को अपने मन मे बडा सघर्ष करना पड रहा था। मेरे स्मृति-पट पर फीनिक्स के उस समय के वातावरण का यह चित्र अकित है कि महीनो तक फिनिक्स के मुख्य कार्यकर्त्ता आपस म कम बोलते थे। प्रेस मे सब लोग अपने-अपने स्थान पर गुमसुम कार्य किया करते थे। वहा से छुट्टी पाकर अपने खेतो मे व्यस्त रहते थे और रविवार के दिन बापूजी के मकान पर सध्या समय सभा करके भजन-कीर्त्तन आदि करते थे, परतु बातचीत उस समय भी बहुत ही कम होती थी। फीनिक्स के शुरु-शुरु के दिनो मे जो आपसी वार्ता-विनोद और खेल-कूद होते थे, वह अब नही थे। मि पोलक को तो बापूजी ने अपने सहयोग के लिए फीनिक्स से जोहान्सबर्ग बुला लिया था। इस पर ट्रासवाल मे सत्याग्रह का सघर्ष कठिन-से-कठिन-तर होता जा रहा था। स्वय बापूजी और अन्य सत्याग्रही लगातार जेल का कष्ट उठा रहे थे। इस कारण भी फीनिक्स के वातावरण मे हसी-खुशी का कम हो जाना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त यह बात भी स्वाभाविक थी कि सस्था मे धन के अभाव के कारण नई-नई मुसीबते पैदा हो तो कार्य-कर्त्ताओ के बीच मानसिक तनाव और छोटे-मोटे मतभेद बढ जाय।

अनेक बार सध्या के समय प्रेस के काम से लौटने के बाद हमारे घर के

आगन मे पिताजी और मगनकाका दस-पन्द्रह मिनट तक अत्यत चिंतित होकर फीनिक्स के अपने अन्य साथियो के सबध मे, विचार-विनिमय करते थे। और पिताजी अधिक उदास होकर तथा मगनकाका अधिक कठोर मौन धारण कर घर के बागीचे मे परिश्रम करते रहते थे। यह दृश्य मुझे स्पष्ट याद है।

ऐसे समय मे बापूजी को भी फीनिक्स की याद कितनी अधिक चिंतित रखती थी, यह प्रिटोरिया जेल से मि पोलक के नाम भेजे एक पत्र से मालूम हो जाता है

प्रिटोरिया जेल
२६ अप्रैल, १९०९

प्रिय श्री पोलक,

आर्थिक समस्या के बारे मे मै भारी उलझन महसूस करता हू। फीनिक्स के ऊपर ऋण-भार बना रहे, इस बात से मुझे बहुत कष्ट पहुचता है। मेरे घर के जो कुछ चन्द गहने आदि है और इग्लैड से कानून की जो नई किताबे मै लाया हू तथा मेरी किताबो मे जो ला रिपोर्ट है उनको बेचकर फीनिक्स का कर्ज अदा कर देना। इस कर्ज को पूरा करने के लिए आवश्यक हो तो एनसाइक्लोपीडिया तथा हमारे दफ्तर की बडी तिजोरी भी बेच देना। कानून की पुस्तके शायद ब्लेफर्ड, बेल्सन अथवा गाडफ्रे खरीद लेगे। यदि उनमे से कोई न ले तो इन चीजो की सूची बनाकर मित्रो मे घुमाना। तिजोरी के तो १५ पौड आने ही चाहिए।

मणिलाल का लम्बा पत्र मुझे मिला है। अच्छा लिखा है।

कोडिस का भाषण कैसा हुआ और कहा किया गया, मुझे लिखना। बबई से लौटने मे ठक्कर कुछ किताबे व टाइप लाये क्या? मै देख रहा हू कि ठक्कर अपनी पत्नी के साथ छगनलाल के यहा रह रहे है। छगनलाल तो बोलेगे नही, पर इससे दोनो को नुकसान है। मित्र की स्थिति विकट हो जाती है। हद से ज्यादा बोझ छगनलाल को नही उठाना चाहिए। उनकी मा ने मुझसे कहा था कि छगनलाल की आदत हरे-भरे पेड के नीचे सूखने की है। यह सही है। फीनिक्स के दूसरे परिवारवालो को भी जिनके यहा ज्यादा बच्चे है, अतिथि का बोझ अपने ऊपर नही लेना चाहिए, बल्कि पुरुषो को चाहिए कि वे अपनी पत्नी का बोझ हल्का करे।

मै चाहता हू कि सब फीनिक्सवासी टाल्स्टाय की जीवनी और उनके प्रायश्चित्त-पत्र अवश्य पढे। दो दिन मे पढे जा सकेगे। गुजरातियो को चाहिए कि वे कवि राजचन्द की उन दोनो पुस्तको को पढ ले जो मेरे सग्रह मे वहा पडी है। सध्या की प्रार्थना के समय प्रतिदिन दस मिनट उसे पढा जा सकता है।

राजचन्द के बारे में जितना अधिक मनन करता हू मेरी राय दृढ होती जा रही है कि अपने समय के वह सर्वश्रेष्ठ भारतीय थे। उस पुस्तक को पढने से मुझे बडी शान्ति मिली है। बार-बार पढने योग्य पुस्तक है। अग्रेजी साहित्य मे इसकी तुलना मे आ सके ऐसी विचारो की शुद्धि मे पूर्ण पुस्तक टाल्स्टाय की पुस्तक के अतिरिक्त मुझे नही दीखती। कवि राजचन्द और टाल्स्टाय दोनो ने जैसा उपदेश दिया है वैसा अपने जीवन में भी आचरण किया है। उसमे गहरा अनुभव है।

मणिलाल को अपने अध्ययन के बारे मे कुछ असतोष है। इसको मै समझ सकता हू, वह रहेगा। हम सब भिन्न-भिन्न अनुभव ले रहे है। इस अनुभव मे प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियो की बलि दी जा रही है। उनको चाहिए कि वे जो-कुछ सिखाया जा रहा है वह भली-भाति सीख ले। मुझे उम्मीद तो है कि उनकी परीक्षा मै स्वय ले सकू, ऐसा दिन मुझे मिल जायगा। मेरी अपेक्षा है कि मै स्वय उसे पढाऊगा। वह रेखागणित मे कच्चा है यह मै जानता हू। इस समय परिश्रम करने और नियमित जीवन बिताने की वह आदत डाले। इससे उसे काफी लाभ होगा। बाग-काम मे भी वह समय देता है यह अच्छा है। फिर उसे निश्चित होकर आनन्द से अपने काम मे एकाग्र होना चाहिए।

फीनिक्स मे सभी लडके माणिकम् से तमिल सीखना शुरू कर दें। मगनलाल से कहना कि जिस प्रकार उसने अग्रेजी काव्य याद कर लिये उसी प्रकार तमिल भी याद कर ले।

हरिलाल की पत्नी वियोग के कारण चिता मे रहती है या प्रसन्न रहती है। बा घर का काम अब कुछ कर सकती है? स्कूल का मकान कहा तक पहुचा? सभी छात्रो के खर्च मे कुछ घटती करने की आवश्यकता है। उनके मात-पिता से मिल कर छगनलाल उन्हें समझाए।

स्वामी शकरानद के रुक जाने से मुझे खुशी हुई। हिंदू और मुसलमान कौमो के बीच जो सद्भाव है, उसको अधिक पुष्ट करने की कोशिश वे करेंगे ऐसी मुझे आशा है। वेस्ट से कहना कि प्रत्येक रविवार को सबको एकत्र करके प्रार्थना करने का जो प्रारभ किया है उसे किसी भी हालत मे छोडना नही। श्रीमती वेस्ट की बीमारी के समय प्रार्थना-स्थल बदल देना अधिक उपयुक्त होगा। पर प्रार्थना बन्द रहनी ही नही चाहिए। मेरे पत्र की फीनिक्स से सबधित बातो को वेस्ट के पास लिख भेजना। मैने जो उत्तर मागे है, छगनलाल ब्यौरे से लिख भेजें। मै उम्मीद रखता हू कि सात मई तक छगनलाल का पत्र मुझे मिल जायगा।

—मो क गाँधी

जेल मे बैठे-बैठे सत्याग्रह आदोलन की गति-विधि के बारे मे बापूजी जितने उत्सुक रहते थे, उससे कही अधिक फीनिक्स सस्था की प्रगति और फीनिक्स मे काम करने वालो की विचार-शुद्धि तथा जीवन-शुद्धि के लिए वह उत्सुक रहते थे। क्योकि अपने और अपने साथियो का जीवन ऊचा उठता रहे तो सत्य की लडाई मे सफलता देर-सवेर मिल ही जायगी, इसमे बापूजी को लेशमात्र भी शका नही थी।

: ३१ :

हमारी स्वदेश वापसी

दो-एक महीने बाद जब कृष्णदास बिल्कुल ठीक हो गया, हम लोग फीनिक्स से हिन्दुस्तान आने के लिए चले। छ वर्ष समुद्रपार रहने के बाद पिताजी राजकोट लौट रहे थे। मुझे भी अपने दादा और दादीजी के दर्शनो की बडी उत्सुकता थी। मगनकाका ने अपने पुत्र केशु को भी हमारे साथ भेजने का निश्चय किया। फीनिक्स से जब हम चले तब हमारी सख्या बाल-बच्चो सहित छ थी। माताजी, पिताजी, केशु, कृष्ण, मेरी छोटी बहन नर्मदा और मैं। फीनिक्स के घर मे रुकने वालो मे तीन जने थे—मगनकाका, काकी और केशु की छोटी बहन राधा। भारत की यात्रा पूरी करके डेढ वर्ष बाद जब हम फीनिक्स लौटे तब मेरी बहन नर्मदा नही रही थी।

डरबन से हमारे स्टीमर को पोरबन्दर पहुचने मे ४१ दिन लगे। आजकल बम्बई से डरबन पहुचने मे १४ या १६ दिन लगते है। पिताजी ने मेल स्टीमर छोडकर साधारण स्टीमर पसन्द किया। इससे लाभ यह हुआ कि उस छोटी आयु मे ही मै अफ्रीका के पूर्वी किनारे के महत्वपूर्ण बदरगाहो का अवलोकन कर सका। डरबन से हम 'केजर' नाम के स्टीमर मे चले, जो जर्मन कम्पनी का था। उसका भोपू ब्रिटिश स्टीमरो की तरह काला और मनहूस नही था। बहुत सुदर लाल-पीले रग के पट्टे उस पर थे। वह बहुत बडा और इतना पुराना था कि उसको हिन्द महासागर पार करने की इजाजत नही थी।

जंजीबार के बाद 'सोमाली' नाम के एक नए और छोटे जर्मन स्टीमर मे हम लोग हिन्द महासागर पार करके भारत पहुचे। लौटते समय भी हम उसी स्टीमर मे गये, क्योंकि हमारा टिकट वापसी था, जिसकी मियाद डेढ साल की थी।

जब पोरबदर पहुचे तो बदरगाह पर स्वागत के लिए आई हुई भीड के बीच मेरी माता ने मुझे नारायणदासकाका का परिचय दिया। नारायणदास काका सबसे पहले हमे बापूजी के बडे भाई के यहा ले गए। उनका पूरा नाम था लक्ष्मीदास करमचद गाधी। मोहनदासकाका के सगे बडे भाई कोई बहुत बडे आदमी होगे, इस कल्पना से मै उनके घर पहुचा। गुजरात-सौराष्ट्र मे बैठने के लिए जैसे झूले होते है वैसे झूले पर वह बैठे थे। हम सबने उनके चरण छुए। उनका भाल-प्रदेश बहुत विशाल था। पूरे घर मे बडी गम्भीरता फैली हुई थी। वह विनोद, बातो की वह भरमार, जो फीनिक्स मे बापूजी के आने पर रहती थी, उनके यहा मैने नही देखी। थोडी देर पिताजी से उनकी कुछ बाते हुई और हम उनके घर से लौटकर राजकोट के लिए चल पडे।

राजकोट मे दादाजी और दादीजी हमारी प्रतीक्षा मे थे। हमारे स्टीमर को सवा महीने से अधिक बीत गया, इससे वह चिंतित हो रहे थे। जब हम पहुचे, दोनो बुआ और दादीजी दौडकर स्वागत के लिए आई। घर के प्रवेश-द्वार पर ही जोशीजी महाराज पिताजी की जन्म-कुडली फैलाये हिसाब लगाने बैठे थे कि हमारी यात्रा मे कोई विघ्न तो नही आ उपस्थित हुआ? जोशीजी का हिसाब पूरा होने से पहले ही हम लोग पहुच गए।

राजकोट पहुच कर मुश्किल से आठ-दस दिन पिताजी घर रह पाये। उनको मि पोलक के साथ सारे भारत के प्रवास मे जाना जरूरी हो गया, क्योकि दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह के आन्दोलन मे एक नया अध्याय शुरु हो गया था।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास मे उस समय की राजनीतिक परिस्थिति के सबध मे बापू ने लिखा है

"दोनो ओर कुछ शिथिलता आई थी। सरकार ने देख लिया था कि जेलखाने भरने से चुस्त सत्याग्रही हारने वाला नही है। हिन्दी लोग भी उग्र मुकाबला करने को तैयार नही थे। कडा मुकाबला किया जा सके इतनी सख्या में सत्याग्रही रहे ही नही थे। कुछ कायर बने गए थे, कुछ बिल्कुल पराजित मनोवृत्ति के हो गए थे और चुस्त बने रहने वाले सत्याग्रहियो को मूर्ख समझते थे। इधर मूर्ख लोग अपने को समझदार मानते थे और ईश्वर पर, सत्याग्रह के सघर्ष पर तथा अपने साधन की सत्यता पर पूर्ण विश्वास रखकर जमे हुए थे। उन्हे भरोसा था कि अन्त मे विजय सत्य की ही होगी।"

घनघोर अधेरे मे भी बापूजी का दमकता हुआ श्रद्धाबल ऐसा था कि निराशा उन्हे छू तक नही सकती थी। जल्दी ही ऐसा समय आया कि जेल के

वाहर निकल कर राज्यकर्त्ताओ से चर्चा करने के लिए जाने का उनको अवसर मिला। पिछले प्रकरण मे मि पोलक के नाम प्रिटोरिया जेल मे लिखा हुआ वापूजी का जो पत्र दिया गया है उसमे लिखने की तारीख २६ अप्रैल मन् १९०९ की है। तीन महीने की सजा काट कर वापूजी मई के मध्य मे रिहा हुए और तुरन्त ही फिर से सत्याग्रह करके वह जेल गये तथा २४ मई को उनको तीमरी वार तीन महीने की सजा मिली। इसके तीन सप्ताह वाद ही, १६ जून १९०९ को ट्रान्सवाल की भारतीय जनता उठ खडी हुई। जोहान्सवर्ग मे आमसभा की गई और वापूजी को तथा श्री पोलक को क्रमश इग्लैड और भारत मे प्रतिनिधि-मण्डल ले जाने के लिए नेता चुना गया। इधर वापूजी ने अपना मन जेल-महल मे कष्टो की उपासना करने मे लगाया था और अपनी सस्था के विकास करने तथा रचनात्मक कार्य मे अपना सवकुछ होम देने का सकल्प किया था। लेकिन जनता ने उन्हे राजकीय समझौते के लिए प्रयत्न करने को विवश कर दिया। वापूजी ब्रिटिश पार्लमेंट के सदस्यो के पास दक्षिण अफ्रीका के हिन्दियो की वात रखने के लिए ता २३ जून को केपटाऊन से रवाना हुए और १० जलाई १९०९ को लदन पहुचे।

इधर भारत मे श्री पोलक अकेले ही आये, क्योकि उनके माथ भेजने के लिए ट्रासवाल के भारतीयो ने जिन प्रतिनिधियो को चुना था उन सभीको वहा की सरकार ने सीखचो के पीछे ढकेल दिया था।

यहा आकर श्री पोलक ने ववई, कलकत्ता, मद्रास, इलाहावाद आदि कई शहरो मे जाकर भारत के उस समय के राजकीय नेताओ को और अखवार वालो को ट्रान्सवाल के सत्याग्रह की जानकारी दी। पिताजी ने भी उनके साथ दो-एक मास तक देशभर मे प्रवास किया और उनके काम मे यथाशक्ति सहयोग दिया।

इस प्रवास से राजकोट लौटने के वाद तुरन्त पिताजी को वापूजी की सूचना मिली कि वह वैरिस्टरी पढने के लिए विलायत जाय।

: ३२ :

वैरिस्टरी किसलिए ?

भारतीय प्रवासियो पर दक्षिण अफ्रीका मे कानून के वल पर और सरकारी अफसरो की जोर-जवरदस्ती से जो अशोभनीय अन्याय दिन-प्रति-दिन होते

रहते थे, उनका निवारण करने मे वापूजी अपनी वैरिस्टरी की विद्या का भरपूर प्रयोग कर रहे थे। ट्रान्सवाल के जोहान्सवर्ग नगर मे वकालत का काम करने के लिए वापूजी ने अपना कार्यालय खोल रखा था। उसमे वापूजी के साथ काम करने वाले अनेक सहायक थे, जिनमे मि रिच, मि पोलक जैसे विद्वान अग्रेज भी थे। अदालत मे अपना मुकदमा लडने के लिए भोले और प्राय अनपढ भारतवासियो को सद्‌बुद्धि वाले नि स्वार्थ और चतुर वकील की सहायता दक्षिण अफ्रीका मे हर समय मिलती रहना जरूरी थी। अगर भारतीय ओर एशियाई लोगो के पक्ष मे काम करने वाला कोई भी समर्थ वकील या वैरिस्टर न होता तो दक्षिण अफ्रीका से भारतीय व एशियाई लोगो की जड वडी जल्दी उखाड दी जाती।

दक्षिण अफ्रीका मे जो सत्याग्रह-आन्दोलन चलाया जा रहा था उस आन्दोलन की नीव मे असहयोग का उद्देश्य नही था। अग्रेजी सरकार और अग्रेजी अदालते न्याय के पथ पर चलने की निष्ठा रखती है, यह भरोसा तव वापूजी के मन मे था। इस कारण जव एक ओर वर्ण-विद्वेष वाले कानून का भग करके वीर सत्याग्रही जेल जा रहे थे तव दूसरी ओर ट्रान्सवाल के हिन्दी व्यापारियो आदि के छोटे-मोटे मुकदमो की पैरवी करने का काम वापूजी के वकालत के कार्यालय द्वारा चलाया जा रहा था। वापूजी वकालत का यह सारा काम कर्त्तव्यवुद्धि से तथा निश्चित ओर स्वल्प मेहनताने से करते थे। जव सत्याग्रह, जेल-यात्रा, फीनिक्स की सस्था आदि का काम वढता गया और वापूजी के पास समय कम रहने लगा तव वकालत के काम का सिलसिला कायम रखने के लिए और व्यक्तियो को तैयार करना वापूजी ने आवश्यक समझा। फिर वापूजी का इरादा ट्रान्सवाल और दक्षिण अफ्रीका के काम से जल्दी-से-जल्दी छुट्टी पाकर भारत लौटने का था। इसलिए भी अपने पीछे काम सभाल सकें, ऐसे दो-चार नवयुवको को वैरिस्टरी सिखाने की वात वापूजी ने अपने मन मे पक्की की। इस दृष्टि से एक तो मि पोलक से सोलिसिटर का अभ्यास-क्रम पूरा करने के लिए वापूजी ने आग्रह किया। दूसरे श्री सोरावजी शाहपुरजी अडाजनिया को, जो होनहार पारसी युवक थे, वैरिस्टर वनने के लिए वापूजी ने लदन भेजा। वह वैरिस्टर होकर दक्षिण अफ्रीका लौट आये और सेवा का काम भी उन्होने आदर्श रूप से शुरू कर दिया। परन्तु ऐसे भले और श्रेष्ठ व्यक्ति का वुलावा ईश्वर के दरवार से वडी जल्दी आ गया और दक्षिण अफ्रीका की भारतीय जनता शोकमग्न होकर उनका स्मरण ही करती रह गई।

वापूजी ने लन्दन जाकर वैरिस्टर हो जाने के लिए मेरे पिताजी से भी

कहा। मेरे पिताजी भारत मे मैट्रिक पास थे और फीनिक्स मे 'इन्डियन ओपीनियन' के सपादन का काम वर्षो तक करने से उनके अग्रेजी-ज्ञान मे काफी वृद्धि हुई थी। इसलिए लन्दन मे पढना उनके लिए आसान था। परन्तु सामान्य बुद्धि के व्यक्ति को वापू का यह तरीका समझ मे आना कठिन था। अपने ही पुत्र, हरिलाल गाधी और मणिलाल गाधी स्कूल-कालेज मे पढने के लिए और यूनिवर्सिटी मे जाकर वैरिस्टरी-जैसी उच्च-शिक्षा विद्या प्राप्त करने के लिए व्याकुल थे। तव वापूजी उस शिक्षा को निरर्थक एव हानिप्रद वताकर उन्हे ऐसा करने से रोकते थे। लेकिन उन्ही दिनो मे सोरावजी, मेरे पिताजी आदि को विलायत पढने के लिए भेजने की सारी व्यवस्था वापूजी ने स्वय की।

वापूजी के स्वभाव की यह मौलिक विशेषता थी। रेलवे-मोटर आदि यत्रो के चक्कर मे न पडने के लिए वापूजी सवसे वारम्वार आग्रह करते थे, परन्तु देश-सेवा का काम पूरा करने के लिए उन साधनो का वह उपयोग भी कर लेते थे। इसी प्रकार प्रचलित यूनिवर्सिटियो की शिक्षा के विरुद्ध होते हुए भी वापूजी ने दक्षिण अफ्रीका का सेवा-कार्य पूरा करने के इरादे से मेरे पिताजी को विलायत भेजा। उनकी लदन की पढाई का खर्च वापूजी के परम-मित्र डा प्राणजीवन मेहता ने दिया।

वैरिस्टरी की परीक्षा देकर पिताजी के लौटने मे जव कुछ महीने वाकी रहे तव राजकोट मे हमारे घर के वातावरण मे उत्साह वढ गया। मेरे छोटे चाचा जमनादास गाधी, जो उस समय हाई स्कूल मे पढते थे, वैरिस्टर के वडप्पन की नई-नई वाते घर मे सुनाते थे। जव वैरिस्टर वन कर पिताजी लौटेगे तव घर मे यह शोभा नही देगा, वह नही जचेगा, आदि। वैरिस्टर के वेटे को इस तरह कपडा पहनना होगा, इस प्रकार शान से वातचीत करनी होगी, इत्यादि वाते सुन-सुन कर मुझे भी आभास होने लगा कि चार-छ महीनो के वाद सचमुच मै भी वडा हो जाऊगा और राजकोट की पाठशाला के लडके मेरी ओर आश्चर्य-चकित होकर देखेगे।

परतु अग्रेजो जैसा साहव वनने की इस धुन का कुप्रभाव मुझ जैसे कोमल वुद्धि वाले पर वढे, इससे पहले ही ईश्वर ने हमारी रक्षा की। पिताजी को अकस्मात् इग्लैंड से लौटना पडा। वहा की कडी सर्दी से वह वीमार पड गए। वहा के डाक्टरो ने उन्हे तीन-चार सप्ताह आराम के लिए इटली भेजा। परतु वहा से लदन लौटने पर दुवारा उनकी वीमारी वढ गई। इसलिए डाक्टरो ने उन्हे विना परीक्षा दिये ही तुरन्त स्वदेश लौट जाने के लिए विवश किया।

इग्लैंड मे पिताजी लौटकर राजकोट आ गए। उसके आठ-दस दिन वाद

वापूजी का तार आया और उसी समय फीनिक्स के लिए प्रस्थान की तैयारी शुरू हो गई।

: ३३ :

फिर फीनिक्स : वापू के प्रेरक पत्र

कई नगरो की झाकी देखते हुए हम वम्बई पहुचे। शीघ्र ही स्टीमर पर जाने की व्यवस्था हो गई और दुवारा अपने जाने-पहचाने 'सोमाली' स्टीमर मे पहुच कर मेरा जी खिल उठा। समुद्र-यात्रा की जो तैयारिया की गई उसमे वबूल के दातुनो की एक वडी गड्डी, विस्कुट के डिब्बे, चावल व आलू की वोरी और मेरे लिए वम्बई के वनियो की-सी काली गोल टोपी आदि चीजे थी।

'सोमाली' जर्मन स्टीमर के लिए हम लोगो का वापसी टिकट दूसरे दरजे का था, परन्तु हमारे जैसे वडे परिवार के लिए आवश्यक वडे कमरे की दूसरे दरजे मे कमी थी, इसलिए इस वार हमारी यात्रा पहले दरजे में हुई। जमनादासकाका का, जो हमारे साथ जा रहे थे, टिकट तीसरे दरजे का लिया गया, क्योकि वह नया लिया जाना था, इसलिए खर्च मे वचत की जा सकी। उन्होने आरामकुर्सी साथ मे ले ली थी और उसी पर खुले डेक मे उन्होने सारी यात्रा तय की। मुझे पहले दरजे के उन सजे-सजाये कमरो के मुकावले खुले समुद्र की लहरो को देखने और यात्रियो की चहल-पहल मे अधिक आनन्द आता था। पिताजी के वदले छोटे काका के पास ही मै अधिक समय विताता था। छोटे काका रामायण और दूसरी पुस्तके पढने मे दिन विताते थे। मै नाविको की दिनचर्या देखने और स्टीमर की मशीनो की गतिविधि जाचने मे उलझा रहता था। प्राय तीन सप्ताह वाद एक दिन व्राह्म मुहूर्त्त मे हमारे जहाज ने डरवन केव न्दरगाह मे प्रवेश किया। विल्कुल तट पर लगने से पहले सूर्योदय होने की प्रतीक्षा की गई। जव हम पहुचे तव मगनलालकाका और काकी को हमने एक दूसरे वडे जहाज पर देखा। वे खडे हुए मुस्करा रहे थे।

मगनकाका को प्रसन्न देखकर मुझे तसल्ली हुई, क्योकि मुझे डर था कि उनसे मैंने जो चिट्ठी लिखने का वादा किया था, वह पूरा न होने की वजह से वह नाराज होगे। किन्तु उन्होने एक शब्द भी मुझसे नही कहा। मै उतावला हो रहा था कि फीनिक्स की सारी वाते उनसे यही पूछ लू। किन्तु दो-चार

मिनट के बाद ही कुछ अंग्रेज अफसर हमारे बीच आ धमके और मगनकाका व पिताजी उनसे बातचीत में उलझ गए। अगर हम लोग गोरी चमड़ी के होते तो आधे घंटे में ही स्टीमर से उतरकर शहर में पहुंच सकते थे, पर हम तो थे हिन्दुस्तानी। हम जैसों के लिए डरबन के दरवाजों में सरलता से घुसने की गुंजाइश नहीं थी।

गोरे अफसर और पिताजी के बीच बहुत देर तक बातचीत हुई। इसके बाद उसने जमनादासकाका को अंग्रेजी में बड़ा कागज भरकर कुछ लिखवाया। और उसे यकीन हुआ कि जमनादासकाका पढ़-लिखे व्यक्ति हैं। पिताजी के पास अपना, मेरी माताजी का और सभी बच्चों का वापसी टिकट था और नेटाल में प्रवेश पाने का परमिट भी था। इसलिए अन्य भारतीयों के मुकाबले चुंगी के अधिकारी के चंगुल से हमारा छुटकारा जल्दी हो गया और दक्षिण अफ्रीका की धरती पर हम उसी दिन मध्याह्न से पहले पैर रख सके। लेकिन कुछ पटेलों का स्टीमर से नीचे उतारना टेढ़ी खीर हो गया। उनकी सहायता के लिए पिताजी को बहुत देर तक अफसर के साथ बातचीत करनी पड़ी। दो पटेल तो बहुत ही परेशान हो गए। वे पिताजी के पास गिड़गिड़ा रहे थे। उनके लिए पिताजी ने भरसक कोशिश की, परन्तु वह अधिकारी रत्तीभर भी नहीं पसीजा। उसे शायद यह शक हो गया था कि उन पटेलों के पास अपने नहीं, किसी और के परमिट हैं। इसलिए उनकी कानूनी जांच करने पर वह तुल गया।

चुंगी से पार होने के बाद हम सीधे रुस्तमजी सेठ के घर पहुंचे, जो हम सब फीनिक्सवासियों के कुटुम्बीजन-से बने हुए थे। वहां कुछ देर ठहर कर हम लोग स्टेशन पर गये और फीनिक्स के लिए रवाना हो गए। घंटे भर का रेल का सफर और ढाई मील की पैदल यात्रा पूरी करने तक सारे मार्ग में मगनकाका से मैंने बहुत-सी बातें सुनीं। हमारी अनुपस्थिति में फीनिक्स में कई परिवर्त्तन हो चुके थे। बापूजी ने ट्रांसवाल में अपनी दिनचर्या में भोजन में कठिन प्रयोग शुरू किये थे। यह सब सुनकर मैं चकित रह गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं किसी नई दुनिया में पहुंच गया हूं।

हम लोग जब फीनिक्स पहुंचे, रात हो गई थी। दूसरे दिन सवेरे मैं फीनिक्स में चक्कर काटने को निकल पड़ा। हमारे घर का चौड़ा बागीचा बहुत सुन्दर हो गया था। संतरे, केले, लुकाट, नीबू, सब कुछ फलने लगे थे। एक सुन्दर नया मकान पुस्तकालय के लिए बन गया था। किन्तु हमारे घर के पड़ोस में जो दूसरे मकान थे, वे सुनसान हो गए थे। बापूजी का बड़ा घर भी सूना पड़ा था और हमारी कोर्डिस-शाला उजड़ गई थी। साथ ही, जब मुझे

पता चला कि महीनो तक बापूजी के फीनिक्स आने की सभावना नही है और देवदासकाका भी बापूजी के पास ही रहने वाले है तो मै उदास हो गया।

किसी दिन बापूजी का पत्र, किसी दिन बापूजी द्वारा सूचित की गई पुस्तक, किसी दिन टाल्स्टाय की कहानिया और उनके उपदेश आदि पर चर्चा होती थी। मेरी समझ मे कुछ अधिक नही आ पाता था, परन्तु मगन-काका की एक बात मेरी समझ मे आ गई। वह यह कि "जो पसीना न बहावे, उसे भोजन करने का अधिकार नही है, हाथ मे कुदाल या कुल्हाडी के निशान न पडे हो उसको भोजनालय मे प्रवेश मिलना ही नही चाहिए।" उन चर्चाओ से दूसरी बात मेरी समझ मे यह आई कि साहब बन कर रहना अच्छा नही। बापूजी बडप्पन छोडकर मजूर-किसान का जीवन अपनाने का जो आग्रह करते है वह ठीक है। सूट-बूट की शान के चक्कर मे हमे नही पडना चाहिए।

मै बता चुका हू कि जब मेरे पिताजी लन्दन बैरिस्टरी पढने के लिए गये थे तब राजकोट मे अपने छोटे काका की प्रेरणा से अग्रेज साहबो का-सा जीवन प्राप्त करने के लिए मै कैसे दिवा-स्वप्न देखने लगा था और बैरिस्टर का बेटा बनकर राजकोट के स्कूल के लडको के बीच ऊचा सिर रखकर घूमने-फिरने की कैसी उम्मीद रखता था। फीनिक्स लौटने के कुछ ही दिन बाद जमनादासकाका मगनकाका के प्रभाव मे आ गए और साहब बनने की उमग छोडकर बापूजी की बात को समझने और करने की आकाक्षा हमारे दिल मे पैदा हुई। मै यह नही कह सकता कि जमनादासकाका के मन मे क्या-क्या बात उठती थी, परन्तु अपने बारे मे बता सकता हू कि जब मैने मगन-काका के मुँह से सुना कि बापूजी ने बूट और मोजे पहनना छोड दिया है तब उनके इस त्याग का मुझ पर गहरा प्रभाव पडा। तबतक मै यह समझता था कि हमारे घर मे जिस प्रकार पिता, काका आदि है उसी प्रकार हमारे घर के, हमारे परिवार के, बडे और श्रेष्ठ व्यक्ति बापूजी है। परन्तु अब मेरे छोटे-से दिमाग मे यह भावना पैदा हुई कि बापूजी हमारे घर के बडे है। मामूली आदमी की तरह शान और शोभा के पीछे वह पडनेवाले नही है। अच्छी-से-अच्छी बात को खोजकर वह सबको सिखाने वाले तथा सबसे अच्छे पुरुष है।

यह सही है कि उस समय अपने मन के इन भावो को मै इस प्रकार की भाषा मे व्यक्त नही कर पाता था, परन्तु इसमे कोई शक नही कि बापूजी की महानता ने उस समय मेरे हृदय मे गहराई तक अपना स्थान जमा लिया।

अचानक एक दिन जमनादासकाका फीनिक्स से जोहान्सबर्ग चले गए। मुझे बाद मे पता चला कि बापूजी ने उनको अपने पास टाल्स्टाय फार्म

पर बुलाया है। इस प्रकार फीनिक्स मे मेरा अकेलापन और भी बढ गया। स्वदेश से लौटने के बाद दूसरे बाल-मित्रो के अभाव मे जमनादास-काका के साथ दिन बिता कर मै अपना मन बहलाता था। डेढ-दो महीने के बाद वह साथ भी मुझसे छिन गया और मेरी कठिनाई बढ गई। जब जमनादास काका फीनिक्स से जा रहे थे तब मैने भी उनके साथ जाने की माग की; परन्तु ट्रासवाल जाने के लिए मेरे नाम का परमिट बनवाने की दिक्कत सामने आई और इससे भी ज्यादा बाधा देनेवाली बात यह हुई कि मै अभी बच्चा था। बापूजी के पास अनेक छोटे-छोटे लडके इकट्ठे हुए थे। उनके बीच मुझे अकेला भेजने के लिए मेरे पिताजी सहमत नही थे। इस प्रकार राजकोट से फीनिक्स तक की यात्रा के बाद भी बापूजी से मै दूर-का-दूर ही रहा।

यदि बापूजी जोहान्सबर्ग ही रहते तो शायद उनके पास जाने का मेरा इतना मन न होता, परन्तु अब तो उन्होने जोहान्सबर्ग से इक्कीस मील दूर लोली स्टेशन पर फीनिक्स से भी बढिया आश्रम खोला था। वहा उनके पास रामदासकाका, देवदासकाका और मणिलालकाका थे और फीनिक्स से हिन्दुस्तान आने के पहले के मेरे कई बाल-मित्र वहा थे। उस नए आश्रम को न देख सकने के कारण उन दिनो मेरा मन बहुत बेचैन रहने लगा। यहा बापू के कुछ पत्रो को देना अप्रासगिक न होगा जो उन्होने उन दिनो मगनकाका को लिखे थे और जिनके द्वारा जीवन का सही मार्ग अपनाने की उन्होने प्रेरणा दी थी।

— १ —

शुक्रवार की रात

चि मगनलाल,

सत्य का सेवन करने के लिए बहुत कष्ट उठाना पडता है। सत्य का सेवन करने वालो को शारीरिक दुख न उठाना पडा हो, ऐसा उदाहरण मुश्किल मे मिल पायगा। विश्वास बैठे तो शारीरिक दुख ही सुख है। जो भी हो, यह विचार अपनाने जैसा है। 'सत्य की जय' इस वाक्य का काफी अनर्थ किया गया है, परन्तु उससे हमे अछूता रहना आवश्यक है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

बापूजी के इस सक्षिप्त पत्र के सदर्भ का पता नही चलता। सत्य की दुहाई देकर कौन-से अनर्थ किये जाते है, इसका स्पष्टीकरण बापूजी के इस पत्र मे नही मिलता। परन्तु पत्र की ध्वनि से उसका सार निकाला जा सकता है कि सत्य के पुजारी को इहलोक मे रिद्धि-सिद्धि, सुख-चैन आदि प्राप्त करने

मे विजय मिलती है, यह कल्पना जड-मूल से गलत है और ऐसी लालसा से हमे सर्वथा अछूता रहना चाहिए।

हमे अपना रास्ता सोच-समझकर निश्चित करना चाहिए। इसी को लक्ष्य मे रखकर एक दूसरे पत्र मे बापू जी ने लिखा

— २ —

माघ सुदी १०

चि नारायणदास,

यह ऐसा विकट समय आ गया है कि कुछ प्रश्नो मे और कुछ लोगो के लिए अपने बुजुर्गो की आज्ञा का पालन करने के विषय मे विचार करने की आवश्यकता रहती है। मुझे तो लगता है कि माता-पिता का प्रेम इतना गूढ होता है कि बहुत सबल कारण न हो तो उनके दिल को चोट पहुचानी उचित नही। परन्तु अन्य बुजुर्गो के बारे मे मन ऐसा स्वीकार नही करता। नीति के प्रश्न मे जहा पर हमे थोडा-सा भी सशय हो वहा पर भी कम दरजे के बुजुर्गो की बात का उल्लघन किया जा सकता है—करना कर्त्तव्य हो सकता है। जहा पर नीति के बारे मे सशय ही न हो वहा पर माता-पिता की आज्ञा का भी उल्लघन किया जा सकता है—करना यह कर्तव्य होता है। यदि मुझे मेरे पिता चोरी करने के लिए कहे तो मुझे वह नही करनी चाहिए। मेरा विचार ब्रह्मचर्य के पालन का हो और माता-पिता दूसरे प्रकार की आज्ञा दे तो उनकी आज्ञा का विनयपूर्वक मुझे उल्लघन करना चाहिए। जबतक मणिलाल और रामदास सयाने और दक्ष न हो तब तक उनकी सगाई करनी ही नही, यह मै अपना धर्म समझता हू। यदि मेरे माता-पिता जीवित होते और उनका विचार मेरे विचार से विपरीत होता तो मै विनयपूर्वक उनका विरोध करता और मै मानता हू कि वे मेरी बात स्वीकार कर लेते।

इतना लिखना काफी है। अधिक शका उठे तो लिखना। सद्वृत्तिवाले हो और मेरी बात का अनर्थ नही करोगे ऐसा समझकर मैने यह लिखा है। पाखडी व्यक्ति मेरे कथन को उद्दडता बतायगा अथवा मेरे वचन पर मूढ विश्वास रखकर उसका अनर्थ करेगा और गलत बात मे बुजुर्गो की आज्ञा का उल्लघन करेगा। शायद यह भी अर्थ निकालेगा कि बुजुर्गो को मजूर न हो तो भी खतरनाक बीमारी से बचने के लिए मद्य-मास का सेवन करना कर्त्तव्य है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

उस समय स्वतत्र विचार करने के लिए बापूजी कितने आग्रही थे

इसका पता नीचे के पत्र से चलता है

— ३ —

शनिवार, रात को ९ बजे

चि मगनलाल,

एक के बाद दूसरी पुस्तक पढते-पढते अन्त मे तुम अन्तर-विचार कर सकोगे। प्रत्येक पुस्तक मे कुछ-न-कुछ त्रुटि होती है, होनी ही चाहिए। लिखने-वाले के चारित्र्य की छाप उसके लेख मे अनिवार्य रूप से पडेगी ही। इसलिए मनुष्य-मात्र के लिखने म त्रुटि का होना अवश्यम्भावी है। मूग मे से जिस प्रकार हम करडु (न सीजने वाले मूग) अलग कर देते है, इसी प्रकार पढाई मे भी करना। जब इस प्रकार अन्तर-विचार की आदत हो जायगी तब ऐसा विवेक शक्य होगा।

—मोहनदास के आशीर्वाद

— ८ —

रविवार

चि मगनलाल,

आत्मा के अतिरिक्त सबकुछ क्षणभगुर है, इस विचार को हर समय दोहराते रहना आवश्यक है। यही नही, उससे सबधित कार्य मे सतत सलग्न रहना चाहिए। ज्यो-ज्यो विचार करता हू, सत्य और ब्रह्मचर्य की महिमा की कल्पना मे मन प्रफुल्लित हो जाता है। ब्रह्मचर्य का और अन्य सभी नीतिमत्ता का समावेश सत्य के अन्दर हो जाता है। फिर भी ब्रह्मचर्य का महत्व इतना भारी है कि उसका आसन सत्य की बराबरी का समझना चाहिए, यह विचार मुझे आया करता है। मुझे दृढ विश्वास है कि इन दोनो के द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा को दूर किया जा सकता है। वास्तविक बाधा तो हमारा अपना मनोविकार ही है। यदि बाह्य सबधो पर सुख का लेशमात्र भी आधार हम न रखे तो लोग क्या कहते है, यह न सोचकर हमे क्या करना चाहिए, यही हम सोचेगे।

—मोहनदास के आशीर्वाद

— ५ —

इस समय तो यह बात है। मैने जो बताया है उसके विरुद्ध यदि सारी दुनिया हो तो भी मुझे निराशा होने वाली नही है। यह कोई घमड से भरा वचन नही है, परन्तु सत्य वचन है। हिन्दुस्तान के लिए करने का हमारा मनोरथ है यह बात नही, अपितु स्वय अच्छे बने यह मनोरथ है। यही मनोरथ

होना चाहिए। बाकी सब गलत है। जिसने आत्मा को जाना नही उसने कुछ नही जाना। रावण के उत्साह का अनुकरण करके हम आत्मा की ओर मुडे।

: ३४ :

स्मट्स सरकार की क्रूरता : बापू की दृढता

सन् १९०९-१० के वर्ष मे जब दक्षिण अफ्रीका के चार प्रान्त मिलकर एक यूनियन कायम हुआ और गोरो का सगठन मजबूत हुआ तब सत्याग्रहियो का काटा अपने मार्ग से हटाने के लिए स्मट्स-सरकार तुल गई। सरकारी कानून से और जहा आवश्यक प्रतीत हो वहा कानून को ताक पर रखकर भी उसने अन्याय करने पर अपनी ताकत लगा दी। ट्रान्सवाल मे कडाके की ठड पडती थी। रात भर पाला गिरता था। ऐसी हालत मे भी सत्याग्रही कैदियो को बहुत हलके केवल दो कम्बल ओढने-बिछाने को मिलते थे। प्रात काल से ही जब हाथ-पैर की अगुलिया सुन्न हो गई हो, उनसे पत्थर तोडने का और तालाब खोदने का काम निर्दयतापूर्वक लिया जाता था। खाने के लिए नि सत्व और रद्दी भोजन दिया जाता था और जेल के जमादार-नम्बरदार का व्यवहार अपमानजनक रहता था। जेल के ऐसे बेहद कष्टो के होते हुए भी जब वीर सत्याग्रही प्रसन्न-वदन जेल काटते थे और एक बार जेल मे छूटते ही दुबारा कानून भग कर जल मे जा बैठते थे तब ट्रान्सवाल की सरकार आपे से बाहर हो गई। जेल के लिखित-अलिखित नियमो के द्वारा जो उत्पीडन हो रहा था उससे उसको तसल्ली नही हुई तो उसने सत्याग्रहियो को देश-निकाला देने का तरीका अपनाया। एक स्टीमर मे प्राय पचहत्तर सत्याग्रहियो को जबरदस्ती समुद्रपार भारत मे भेज दिया। सत्याग्रहियो को यह यात्रा कैदी की हालत मे कराई गई। स्टीमर मे कपडे-लत्ते और खाने-पीने की भारी दुर्व्यवस्था रही। कई के परिवार, जमीन और चल-अचल सम्पत्ति दक्षिण अफ्रीका मे छूट गई और स्टीमर मे जो दुख उन्हे भोगना पडा, उसके फलस्वरूप नारायणस्वामी नामक एक तरुण को यात्रा मे ही अपने जीवन से हाथ धोना पडा। इधर ट्रान्सवाल मे जेल के कष्ट से उत्पीडित होकर एक दूसरे तरुण नागापन के प्राण-पखेरू उड गए। दोनो ही सत्याग्रह के इतिहास मे प्रथम शहीद बन गए।

'इन्डियन ओपीनियन' के २६ जून १९०९ के अको मे बापूजी ने ट्रान्स-

वाल के रहने वाले हिन्दियो के नाम एक अपील निकाली

"जो शिष्टमडल विलायत जा रहा है उसके साथ मै भी जा रहा हू । हम चार थे। उनमे से दो प्रतिनिधि तो गिरफ्तार हो गए है और इस समय जेल मे विराजमान है । दूसरे भी हिन्दवासी जो बहुत बार आहत हुए है, उन्हे फिर से गिरफ्तार किया गया है । ऐसे अवसर पर विलायत जाना मुझे बिल्कुल सुहाता नही है । फिर भी यूरोपवासी मित्रो मे सभी का मत है कि मुझे विलायत जाना चाहिए । इसलिए मि हाजी हबीब के साथ मै जा रहा हू । लेकिन जो माग हम लोग कर रहे है और जिसके न मिलने के सबब सैकडो हिन्दी जेल जा चुके है वह माग विलायत जाने से प्राप्त हो जायगी ही, ऐसा निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता ।

"ऐसा भी हो सकता है कि लार्ड क्रू डेप्यूटेशन से मिलने मे ही इन्कार कर दे और कहे कि जो लोग कानून के खिलाफ हो रहे है वह उनसे नही मिल सकते। शिष्टमडल भेजने वालो को यह समझ लेना आवश्यक है कि इस समय जब कि दक्षिण अफ्रीका के सभी हाकिम लोग विलायत मे एकत्र हो रहे है तब शिष्टमडल भेज कर हम लोग केवल एक प्रयोगमात्र कर रहे है, ताकि बाद मे जाकर पछताना न पडे । शिष्टमडल के सबध मे आशा का महल खडा करना व्यर्थ है ।

"जडी बूटी—अक्सीर दवाई—तो केवल जेल ही है। चन्द हिन्दी भी बार-बार जेल जाते रहेगे तो अत मे हमारी माग पूरी होगी ही । ऐसा एक भी हिंदी अत तक लडता रहेगा तो भी माग पूरी होगी । यह लडाई 'सच-झूठ' की है । सच हिन्दी कौम के पक्ष मे है ।

"कौम मे फूट डालने वाले हिंदी मौजूद है । सरकार के पास हिंदी जासूस है । उन लोगो के मारफत कौम को गलत रास्ते पर ले जाने की पैरवी होती रहती है ।

"शिष्टमडल जब विलायत मे होगा तब इस प्रकार की पैरवीया और भी अधिक की जायगी । प्रत्येक हिन्दवासी का कर्तव्य है कि वह इन सब प्रयासो का विरोध करे । जो लोग जेल नही जा सकते वे अपने-अपने घर मे स्वस्थता से बैठे रहे । कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार के कागज पर हस्ताक्षर लेने आवे तो पूरी-पूरी जाच-पडताल करने से पहले उस कागज पर अपने हस्ताक्षर हरगिज न दिए जाय, यह आवश्यक है । शिष्टमडल को सहायता देने के लिए स्थान-स्थान पर सभाए करने की आवश्यकता है । ये सभाए केवल ट्रान्सवाल मे ही नही, सारे दक्षिण अफ्रीका मे की जानी चाहिए । यह भी याद रखा जाय कि यह शिष्टमडल सत्याग्रहियो के वास्ते नही जा रहा है।

सत्याग्रहियो का भरोसा तो सत्य के ऊपर ही है। सत्य का पालन करना, यही उनकी विजय है। किन्तु जो इस मार्ग पर अंत तक टिक नही पाये है, उनके मन की भावनाओ को सतोष दिलाने के लिए तथा सम्भव हो तो सत्याग्रहियो पर पडने वाले बोझे को कुछ हल्का करने के लिए यह शिष्ट-मडल जा रहा है। अर्थात् सत्याग्रहियो को तो शिष्टमडल पर जरा भी आकाक्षा की दृष्टि नही रखनी है। जब उनके सत्य का बल ट्रान्सवाल की सरकार के असत्य के बल से अधिक हो जायगा तब अपने-आप सत्याग्रहियो के दुख दूर हो जायगे, यह बात याद रख कर सत्याग्रही को जेल जाने का अवसर ढूढते ही रहना है।

—मोहनदास करमचन्द गान्धी"

भय और सकट के ऐसे ताडव के कारण कई सत्याग्रहियो का आगे बढने का उत्साह ठण्डा पड गया। पहले ही उनकी सख्या थोडी थी। वह और भी सीमित हो गई। देश-निकाला और सपत्ति का छीना जाना बहुत लोग बर्दाश्त नही कर पाये। परन्तु जो कुछ सत्याग्रही आगे बढे वे कुन्दन जैसे निखरे हुए साबित हुए। उनका जोश दुगना हो गया। अन्यायी के अन्याय को उन्होने बढ-बढकर अपने सिर पर ओढ लिया। नतीजा यह हुआ कि ससार मे दक्षिण अफ्रीका की सरकार के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठने लगी। ट्रान्सवाल के भारतीयो के प्रतिनिधिमडल के नेता के रूप मे इग्लैड मे जो आवाज उठाई उस पर भले-भले अग्रेजो ने ध्यान दिया और भारत मे मि पोलक की सहायता माननीय गोखले ने अपनी सारी शक्ति लगा कर की। भारत-सेवक-समिति ने भारत का लोकमत जगाने का काम उठा लिया। गोखले ने देश मे जगह-जगह सभाओ मे मि पोलक के व्याख्यानो की व्यवस्था की तथा उस समय कलकत्ते मे जो केद्रीय धारा-सभा थी उसमे कानून बनवा कर और अधिक गिरमिटियो का दक्षिण अफ्रीका भेजा जाना रोक दिया।

सन् १९१० की फरवरी की पच्चीस तारीख को गोखले द्वारा रखा गया यह कानून भारत की धारा सभा ने स्वीकृत कर लिया। इससे पहले उस समय के महान दाता सर रतन ताता ने पच्चीस हजार रुपए की रकम दक्षिण अफ्रीका भेज कर सत्याग्रहियो को सहायता पहुचाई। लोकमत के प्रचड विरोध के फलस्वरूप सत्याग्रहियो को दक्षिण अफ्रीका से देश-निकाला देने की प्रवृत्ति पर रोक लग गई तथा भारत भेजे गए पचहत्तर सत्याग्रहियो के जत्थे को दक्षिण अफ्रीका बुला लिया गया।

मि पोलक को भारत मे जो सफलता मिली उसकी तुलना मे बापूजी को इग्लैड जाने मे कुछ भी सफलता नही मिली, ऐसा कहा जा सकता है।

वहां तो ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश मंत्री लार्ड क्रू ने उनको धमकी दी और दक्षिण अफ्रीका के भारतीय शिष्टमंडल में फूट डालने का भी प्रयास किया। परन्तु बापूजी की निष्ठा और सद्वृत्ति के सामने कुटिल राजनीति का बस नहीं चला। बापूजी को इंग्लैंड से खाली हाथ ही लौटना पड़ा। लंदन में होने वाली बातचीत के दौर में भारतीयों के लिए दक्षिण अफ्रीका के भावनाओं ने तो यह चुनौती दे दी थी कि "दक्षिण अफ्रीका के कानून में गोरे-काले का भेद बना ही रहेगा और यदि भारतीय लोग ज्यादा विरोध करेंगे तो उन्हें और भी परेशानियां उठानी पड़ेगी।" इस चुनौती को दृढ़ता और शान्तिपूर्वक बापूजी ने सुन लिया था। सत्याग्रह का संघर्ष बहुत दिन तक चलाने की आवश्यकता उनको प्रतीत हो रही थी। इस संबंध में 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' में बापूजी ने लिखा है

"इस बार इंग्लैंड से लौटने वाला हमारा डेपुटेशन कोई अच्छी खबर नहीं ला सका। लार्ड एम्पटील की कही हुई बातों का असर भारतीय लोगों पर क्या होगा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं थी। अन्त तक मेरे साथ कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर कौन-कौन जूझनेवाले हैं, यह मैं जानता था। सत्याग्रह के बारे में मेरे विचार और भी परिपक्व हुए थे। उसकी व्यापकता और अलौकिकता को मैंने अधिक समझ लिया था। इसलिए मैं शान्त था। विलायत से लौटते समय मैंने स्टीमर में ही 'हिन्द स्वराज्य' लिखी थी। उसका हेतु केवल सत्याग्रह की भावना बताने का था। वह पुस्तक मेरी श्रद्धा का मानदंड है। इसलिए मेरे सामने यह प्रश्न ही नहीं था कि अब आगे की लड़ाई में मेरे साथ संख्या की दृष्टि से कितने सत्याग्रही होंगे।

"किन्तु पैसे के लिए मुझे चिंता थी। बहुत लम्बे समय तक सत्याग्रह का युद्ध चलाना आवश्यक दीखता था और हमारे पास पैसे नहीं थे, यह भारी दुख प्रतीत हो रहा था। उस समय मैं आज की तरह स्पष्ट रूप से नहीं समझता था कि पैसे के बिना ऐसी लड़ाई लड़ी जा सकती है, और पैसे के कारण कई बार लड़ाई दूषित हो जाती है। परन्तु मैं आस्तिक हूं। ईश्वर ने मेरा उस समय भी साथ दिया। मेरी भीड़ को उसने सम्हाला। एक ओर दक्षिण अफ्रीका की भूमि पर कदम रखते ही मुझे लोगों को हमारे शिष्टमंडल की असफलता की खबर देनी थी तो दूसरी ओर प्रभु ने पैसे की कठिनाई से मुझे मुक्त किया। केपटाउन उतरते ही इंग्लैंड से तार आया कि सर रतन ताता ने पच्चीस हजार रुपए दिये हैं। उस समय के लिए इतनी रकम पर्याप्त थी। हमारा काम चल गया।"

बापूजी ने इंग्लैंड से चलते समय लार्ड एम्पटील को जो उत्तर दिया था

उसे भी यहा देना अप्रासगिक न होगा

"मै जिनकी ओर से बोल रहा हू वे लोग गरीब है और सख्या में थोडे है। लेकिन वे सब ऐसे है, कि अपनी मौत को हथेली पर लिये हुए है। उनकी लडाई व्यवहार और सिद्धात दोनो के लिए है । यदि दो मे से एक को छोडना पडेगा तो वे व्यवहार को छोड कर सिद्धात के लिए जूझेगे। जनरल बोथा की शक्ति और सत्ता का हमे अनुमान है, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को उसकी तुलना में हम अधिक वजनदार मानते है। इसलिए प्रतिज्ञा के पालने के अतिरिक्त हम लोग बरबाद हो जाने के लिए तत्पर है। हम अपने धैर्य को बनाए रखेगे। हमारा विश्वास है कि अपने निश्चय पर हम डटे रहेगे तो जिस ईश्वर के नाम मे हमने प्रतिज्ञा ली है वह उस प्रतिज्ञा को पार लगायगा। हा, जो थोडे से लोग है वे प्रतिज्ञा का पालन करेगे ही और आशा बनाए रखेगे कि कष्टसहन करने की हमारी शक्ति अन्त मे जाकर उनके हृदय को भेदेगी और वे 'एशियाटिक एक्ट' (एशिया वालो पर अर्थात् काली-पीली चमडी वालो पर रोक-थाम लगाने के लिए बनाया गया कानून) हटा देंगे।"

इस प्रकार सघर्ष की तुमुल रणभेरी को सुनकर और सुनाकर जब बापूजी लदन से दक्षिण अफ्रीका लौटे तब समुद्र-यात्रा मे उनको थोडा समय मिल गया। ट्रान्सवाल पहुच कर तो उन्हे धधकते हुए दावानल मे दुबारा जूझना ही था। पर यात्रा में मिलने वाले इस थोडे से समय का उपयोग भी उन्होने अपनी थकावट दूर करने मे नही किया, न उन्होने अपने मन का बोझ हलका करने के लिए समुद्र-यात्रा के आनन्द-प्रमोद का लाभ लिया। उन्होने अपनी सारी शक्ति जनता के लिए साहित्य सृजन मे लगा दी। बापूजी के स्वभाव की यह विशेषता थी कि जब चारो ओर घना अन्धकार छा जाता था और उनके साथी तथा दूसरे लोग निपट निराशा के सागर मे डूबने लगते थे तब बापूजी अपने चित्त को स्वस्थ रखकर अपने हृदय के गह्वर मे बहुत ही गहराई तक चले जाते थे और अपने परिशुद्ध और सस्कारी हृदय में से बहुत ऊचे प्रकार के आशा-मोती बीन लाते थे तथा इस प्रकार असख्य भग्न-हृदय लोगो मे आशा का सचार करके उन्हे प्रसन्न वदन बना देते थे।

ऐसा एक उच्च से उच्चतर मोती, या चिन्तामणि की तुलना मे आ सके, ऐसा श्रेष्ठ रत्न बापूजी ने उस समुद्र यात्रा के समय अपने हृदय-तल से लाकर ससार के चरणो मे धर दिया। बापूजी ने उस पुस्तक का नाम 'हिन्द-स्वराज्य' रखा। इसके बाद बरसो तक बापूजी के मौलिक साहित्य का प्रवाह चालू रहा, फिर भी 'हिन्द-स्वराज्य' का स्थान बापूजी की अनेक कृतियो मे चोटी

का रहा है। उसमे बापूजी ने अपने सारे जीवन की रूपरेखा अकित कर दी है। सत्याग्रह के सिद्धात का मूल रहस्य उसमे स्पष्ट कर दिया गया है और बता दिया है कि एक मजदूर और सुसस्कारी व्यक्ति अकेला हो और साधनहीन हो, तो भी वह उन मनुष्यो का मुकाबला सफलतापूर्वक कर सकता है जो सख्या मे कई गुने अधिक हो या लोभी, स्वार्थी और सैकडो हथियारो से सुसज्जित हो। उसमे यह भी प्रतिपादित किया गया है कि उच्च-से-उच्च बल और सादे-से-सादे जीवन को छोडकर सच्ची विजय के लिए ओर कोई शक्ति ससार मे नही है।

'हिन्द-स्वराज्य' लिखने के साथ-साथ लेखक ने अपना जीवन उसी राह पर ढालने के लिए कैसा पक्का सकल्प कर लिया था, इसका प्रमाण हमे उनके उस समय के पत्रो से मिलता है

यूनियन केसल लाईन
आर एम एस 'किल्डोनन केसल'
२४-११-०९

चि मगनलाल,

हम कब मिल सकेंगे, पता नही। इसलिए सब बातो का उत्तर यही से लिख रहा हू। इस बार स्टीमर मे मैने जो काम किया है उसकी कोई हद नही है। मि वेस्ट आदि को जो मैने पत्र और लेख भेजे है उसके द्वारा तुम्हे उस श्रम का पता चलेगा। मुझे बहुत कुछ कहना है, पर यह तो तभी हो सकता है जब हम मिल सके। इस समय तो आवश्यक बात ही लिखूगा।

चि सतोक की स्थिति के बारे मे पढ कर सन्तोप हुआ।

फीनिक्स का नाम सिवा फीनिक्स के और कुछ न रखना ही उचित है। मै चाहता हू कि मेरा नाम भुला दिया जाय और यह चाहता हू कि मेरा काम रहे। जब नाम भुला दिया जायगा तभी काम रहेगा। नाम आदि रखने-करने की झझट मे फसने का समय नही है। हम प्रयोग कर रहे है। ऐसी स्थिति मे नाम के पीछे क्यो पडे ? और जब नाम की बात आ जायगी तब हमे मध्यम शब्द खोजना पडेगा। ऐसा शब्द, जिसमे हिन्दू-मुसलमान का प्रश्न उठे ही नही। 'फीनिक्स' शब्द अनायास ही मिल गया है, और वह उत्तम है। पहले तो वह अग्रेजी शब्द है, इसलिए जिनके प्रदेश मे हम रह रहे है, उनका भी आदर होता है, फिर वह तटस्थ शब्द है। उसका अर्थ तो यह है कि फीनिक्स पक्षी अपनी राख मे से ही फिर से पैदा होता है अर्थात् वह मरता नही है, ऐमी यह कथा है। सार यह कि फीनिक्स की भाति हम लोग भी राख हो जायगे तो भी हम मरने वाले नही है, ऐसा हमारा विश्वास है। इसलिए फिलहाल

तो फीनिक्स नाम ही पर्याप्त है। भविष्य मे फिर देख लिया जायगा। इस समय तो हमारी राह और हमारी शक्ल फीनिक्स के जैसी ही है।

भाई ठक्कर को जो पत्र लिखा है वह पढना।

—मोहनदास के आशीर्वाद

यूनियन केसल लाइन
२७-११-०९

चि मगनलाल,

पैसे की स्थिति के बारे मे मि मेकीनमार का पत्र पढने के बाद और मि वेस्ट को पत्र लिखने के बाद मन में जो विचार उमड रहे है वे तुमको लिखना चाहता हू। यह पत्र पुरुषोत्तमदास को पढने के लिए देना।

फीनिक्स की कसौटी अब होने वाली है। जोहान्सबर्ग से अब पैसे नही मिलेगे। हमारी प्रतिज्ञा है कि जबतक फीनिक्स मे एक भी व्यक्ति मौजूद रहेगा तबतक कुछ नही तो अखबार का एक पृष्ठ ही प्रकाशित करेगे और लोगो में पहुचायगे। वहा पर कुछ भी खटपट मत होने देना। कोई कुछ बोले, बर्दाश्त कर लेना। डरबन का आफिस बन्द करना पडे तो हर्ज नही। यह याद रखना कि सदैव मुख्य बात को पकडना। इसके लिए और जो कुछ गौण करना पडे, छोडना पडे, छोड देना। मूल बात तो यही है कि चाहे कुछ भी हो, फीनिक्स छोडना नही है और अखबार अवश्य प्रकाशित करना है। इस बात को कायम रखने की खातिर यदि कुछ खोना पडे तो भले। अखबार को मूर्त्ति बना कर हम उसकी पूजा करना नही चाहते, किन्तु हम अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना चाहते है। अखबार मे जय नही है, जय प्रतिज्ञा मे है। ट्रासवाल का कानून हटाने मे कोई विशेषता नही है। प्रतिज्ञा के पालन मे सर्वस्व है। ऐसा करने पर आत्मा का विकास होता है और हमारी सारी प्रवृत्ति का भेद यही है, वही होना चाहिए। तुम यह सूचित करो कि वेस्ट डरबन जाय, पर आफिस रहे। अथवा चाहो तो मणिलाल को भेजना।

मै तुम दो ही व्यक्तियो को बतला रहा हू कि यदि मणिलाल की इच्छा होगी, और बा की इजाजत होगी तो अब मणिलाल को सत्याग्रह-युद्ध मे बलि चढाना है। ऐसा करने पर उसका अस्थिर चित्त शान्त होगा। उसने मेरे पास ऐसी माग भी की है। यदि ऐसा हो ही नही पायगा तो वह डरबन चला जाय, यही ठीक है, और तुम फीनिक्स रह सकोगे। यदि आवश्यक हो तभी ऐसा करना। मन मे यह निश्चय कर लेना कि और कही से पैसे न भी मिले तो तुम व्याकुल या विचलित न होओगे। यदि पैसे नही आयगे तो और प्रकार से आमदनी करके भी तुम फीनिक्स का काम पूरा करोगे। यदि

और कोई फीनिक्स मे न रहे तो भी तुम फीनिक्स मे मरते दम तक रहोगे ऐसा उद्देश्य घोपित करना। तुम्हारा शौर्य और लोग भी अपनायगे, बगर्ते कि उसमे अविनय न हो, पर यह आत्म-स्थिरता का शौर्य हो। ऐसा शोर्य सच्चा होना चाहिए, दिखावे का नही। वह मुख का शोर्य (वाचिवीर्य) नही होना चाहिए। ऐसे ठोस शौर्य की प्रतिध्वनि उठे विना हरगिज न रहेगी, यह निश्चयपूर्वक समझना।

और जो परिवर्त्तन आवश्यक हो करना। कुछ परिवर्त्तन यदि अनुचित जचे तो भी उसे होने देना। हानि-लाभ के पचडे मे पड कर अपने आग्रह को धरे रहना व्यर्थ है। अज्ञानवश हम यह मानते है कि अपने परिश्रम से हम रोटी पाते है। जिसने दात दिये है वह दाना देता ही है, यह वात यदि ठीक समझ मे आजाय तो उत्तम है।

—मोहनदास के आशीर्वाद

मगनकाका के नाम वापूजी ने जो गहरी वाते लिखी है उन्ही के साथ-साथ रामदासकाका के लिए भी एक छोटा-सा पत्र लिखा है। इससे पता चलेगा कि अपने घर के जीवन मे परिवर्त्तन करने के लिए वापूजी कितने तत्पर हो गए थे।

किल्डोनन केसल,
वुधवार,

चि रामदास,

तुम्हारे लिए कुछ भी नही लाया हू, इसलिए वापू पर गुस्सा मत करना। मुझे कोई वस्तु पसन्द ही नही आई। यूरोप की वस्तु पसन्द न आवे, उसमे मैं क्या करता ? मुझे तो हिन्दुस्तान का सवकुछ पसन्द है। यूरोप के लोग ठीक है, उनका रहन-सहन ठीक नही है।

—वापू के आशीर्वाद

: ३५ :

वापूजी का अद्‌भुत अनुष्ठान

डर तो यह था कि दक्षिण अफ्रीका पहुचते ही वापूजी की गिरफ्तारी हो जायगी। "किलडोनन केसल" स्टीमर से वापूजी ने जो पत्र लिखे उनमे वापू ने स्वय यह सभावना प्रदर्शित की थी। मणिलालकाका को निम्न पत्र उन्होने लिखा था

किलडोनन केसल
ता २४-११-०९

चि मणिलाल,

अब रात के १॥ बजे है। केपटाऊन तक अब पाच दिन की मजिल बाकी है। दाहिने हाथ से लिखते-लिखते मै थक गया हू इसलिए तुम्हे यह पत्र अब बाये हाथ से लिख रहा हू। मुझे सीधा ही जेल जाना होगा, यह सभव है इसलिए यह पत्र लिख रहा हू।

मेरे जेल जाने पर तुम प्रसन्न ही होओगे यह मै मान लेता हू, क्योकि तुम समझदार हो। इस लडाई का भेद यह है कि जेल जाकर हम लोग खुश हो और खुश रहे।

फीनिक्स के बारे में तुमने प्रश्न किया, यह ठीक किया। हम आत्मा को किस प्रकार खोज सके, और किस प्रकार देश-सेवा कर सके, इसका पहले विचार करना होगा। इसके बाद ही फीनिक्स क्या है, यह समझाया जा सकेगा। आत्मा को खोजने के लिए सबसे पहले नीति को दृढ बनाना चाहिए। नीति का अर्थ है सत्य, ब्रह्मचर्य आदि गुणो का सपादन करना। ऐसा करने पर अपने-आप देशसेवा हो जायगी।

ऐसा करने मे फीनिक्स बहुत सहायक है। मै समझता हू कि शहरो मे, जहा पर मनुष्य बहुत ही गिचपिच रहते है, जहा बहुत सारा लालच मौजूद रहता है, वहा पर नीति प्राप्त होना बडा कठिन है। ज्ञानी पुरुषो ने फीनिक्स जैसा एकात स्थल दरशाया है। सही पाठशाला अनुभव है। जो अनुभव तुमने फीनिक्स मे पाया वह और जगह नही दिया जा सकता।

—बापू के आशीर्वाद

जनता की धारणा और बापूजी के विचार के विपरीत इस बार स्मट्स सरकार ने सत्याग्रहियो के प्रति अपनी नीति बदल दी।

उस समय सत्याग्रह-आन्दोलन की परिस्थिति बहुत नाजुक हो गई थी। १२ जुलाई १९०८ से—अर्थात् ट्रासवाल में रहने के अनुमति-पत्रो की हजारो की सख्या मे होली जला देने के दिन से—जेल जाने का जो ताता बधा था उसे अब डेढ वर्ष बीत चुका था। जो सत्याग्रही जेल की सजा पूरी करके छूटता था वह मुश्किल से दो-तीन सप्ताह का विराम लेकर दुबारा जेल चला जाता था। ट्रासवाल मे भारतीयो की कुल आबादी का प्राय तिहाई हिस्सा जेल या देश-निकाले की सजा भुगत चुका था। ट्रासवाल मे रहने वाले आठ हजार भारतीयो मे से दो हजार तो तग आकर ट्रासवाल छोड

गए थे। दूसरी ओर स्मट्स सरकार के न्यायालयों द्वारा सत्याग्रहियों को दी गई सजाओं का क्रमांक ढाई हजार के ऊपर पहुंच चुका था। दक्षिण अफ्रीका के अन्य प्रांतों के कुछ सत्याग्रही ट्रांसवाल में अपने भारतीय बन्धुओं की सहायता के लिए जाते थे सही, परन्तु नब्बे या पचानवे प्रतिशत सत्याग्रही ट्रांसवाल के ही थे। बार-बार जेल जाते रहने के बाद उनका उत्साह ठंडा हो जाना स्वाभाविक ही था। वे किसी आध्यात्मिक साधना के लिए नहीं, अपना पेट पालने के लिए दक्षिण अफ्रीका आये थे और साग-सब्जी की फेरी या दूसरे छोटे-मोटे रोजगार करके अपना और परिवार का गुजारा करते थे। ऐसी हालत में यह स्वाभाविक ही था कि जेल जाने वालों की संख्या इतने लंबे समय के बाद कुछ हजार से घटकर कुछ सौ तक ही सीमित हो जाती। स्मट्स-सरकार राजनीति में कच्ची नहीं थी। उसने अनुमान लगाया कि कानून भंग करके जेल जाने वालों की बाढ़ जिस प्रकार कम हो गई है उसी प्रकार बचे-खुचे मुट्ठी भर सत्याग्रही भी जेल की यातनाओं से थक जायगे और सत्याग्रह की यह जिद अपने-आप बिल्कुल ठंडी पड़ जायगी। इसलिए बापूजी को गिरफ्तार करके नया बवंडर उठाने से स्मट्स सरकार बचती रही। बापूजी लंदन से लौटने के बाद अनेक बार बिना अनुमति-पत्र के ट्रांसवाल गये और उन्होंने स्मट्स की सरकार को पत्र लिखकर सूचित भी किया कि गरीब फेरी वालों को जब जेल में ठूंस दिया जाता है तब मेरे जैसे अगुवा को, जो आपके कानून की दृष्टि में अधिक अपराधी है, जेल न भेजना अन्याय है। फिर भी स्मट्स-सरकार ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया।

बापूजी का बल, प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ने न देने की दृष्टि से जब सरकार ने उनको गिरफ्तार नहीं किया तब उन्होंने स्वयं कारावास के कठिन-से-कठिन जीवन को अपनाया। अपने वचन पर जेल जाने वाले साथियों का साथ देने के लिए बापूजी ने टाल्स्टाय-वाडी में महान अनुष्ठान शुरू कर दिया।

इंग्लैंड से लौटकर बापूजी ने अपना गृहस्थाश्रम पूर्ण रूप से समेट लिया। देश-सेवा का काम करने के साथ-साथ अबतक जो वकालत चल रही थी वह सदा के लिए बंद कर दी। उस समय जब वकालत का सिलसिला चालू रहता था तब बापूजी की मासिक आमदनी औसतन आठ-दस हजार रुपये थी। बापूजी ने इस आय का मोह बिल्कुल छोड़ दिया। यह बात नहीं कि उन्होंने बैंक में कोई रकम जमा कर ली थी और उसके सूद से उनके और उनके परिवार का पेट पालने की गुंजाइश हो गई थी, यह भी नहीं कि 'इंडियन-ओपीनियन' अखबार के लेखक के नाते उनको कुछ मेहनताना मिलता था अथवा सत्याग्रह के संचालन के लिए प्राप्त चंदे से ही खर्च निकालने की कोई व्यवस्था

हो गई थी। वापूजी ने अपने को और अपने बच्चो को केवल ममाज के भरोसे छोड दिया था। उन्हे विश्वास था कि जब तक समाज की सेवा का काम अपनी गक्ति मे किया जायगा, तबतक सेवक की रोटी की व्यवस्था कर देने की सद्वुद्धि भगवान समाज को देगा ही, और उनके विश्वास के अनुसार एक-न-एक मित्र उनका निजी खर्च विना किसी शोहरत के उठाता रहा।

जब वापूजी ने देखा कि जेल जाने वाले सत्याग्रहियो के वाल-बच्चो की परवरिग का सवाल कठिन होता जा रहा है तब उन्होने उन मारे परिवार-वालो को किमी एक जगह एकत्र करने का विचार किया। अलग-अलग रहने मे मकानो का किराया ही इतना चुकाना पडता था, जिसमे पच्चीस-तीस परिवारो की गुजर हो सकती थी।

फीनिक्स से जोहान्मवर्ग ३०० मील मे भी अधिक दूर था और वह प्रात भी दूमरा था। इमलिए ट्रासवाल में ही कही गहर से वाहर जगह ढूढना आवश्यक था। मि० कैलनवैक ने लोली स्टेशन के पास ११०० एकड जमीन खरीदी। ४ जून १९१० को वह खरीदी गई और दो दिन वाद ही कई लोगो के साथ वापूजी वहा रहने के लिए पहुच गए। इस प्रकार 'हिन्द-स्वराज्य' लिखने के ७ महीने पूरे होने से पहले ही वापूजी ने उम पुस्तक के आदर्श पर एक वडी मजिल तय की।

उम समय वापूजी की आयु चालीस साल की थी। एक वैरिस्टर के लिए कमाई करने का यह मध्याह्न ममझना चाहिए। फिर जोहान्सवर्ग जैसी सुवर्ण-नगरी मे वापूजी का काम तो जमा-जमाया था। वीच वाजार में उनका आफिम था, गोरे मोलेसिटर, गोरे स्टेनोग्राफर, गोरे क्लर्क आदि का पूरा समाज था। प्रतिष्ठा की कोई कमी नही थी। वापूजी चाहते तो खूब कमाते और खूब दान भी देते। परन्तु दाता कहलाने का भी उनको मोह नही रहा था। एक वार का किस्सा है कि एक व्यक्ति को मुसीवत के समय वापूजी ने तीस पौंड उधार दे दिये। उसे वडी जरूरत थी। वापूजी के पास कुछ रकम तो जमा रहती नही थी, उनकी कमाई का प्राय सारा धन हाथ-के-हाथ फीनिक्स आश्रम और वहा का साप्ताहिक पत्र चलाने मे खर्च हो जाता था। इसलिए उन्होने अपने पास धरोहर रखे हुए चदे के पैसे से उस व्यक्ति को सहायता दे दी। लेकिन देने के वाद रात को उन्हे नीद नही आई। इम प्रसग की वात करते हुए वापूजी ने फीनिक्स के आश्रम-वासी मित्र रावजी भाई से कहा था "सोने को गया तव नीद न आई। दिल मे आया कि मुझमे ऐसा पाप क्यो हुआ ? उस भाई के साथ मोहव्वत रखने के लिए चदे का पैसा देने का मुझे क्या अधिकार था ? यदि वे पैसे जल्दी

नही मिले, और ऐसी दशा मे अकस्मात मेरी मृत्यु हो जाय तो मै उस ऋण को कैसे अदा करूगा ? इन विचारो से मेरे हृदय की वेदना बेहद बढ गई। ईश्वर का स्मरण किया और हृदय मे दृढ सकल्प किया कि भविष्य मे आम चदे का उपयोग कदापि किसी व्यक्ति के काम के लिए नही करूगा। उस रकम को शीघ्र-से-शीघ्र जमाकर देने का निश्चय किया, तब कही नीद आई।"

दूसरे दिन सवेरे अपने दफ्तर मे जाते ही बापूजी को एक तार मिला, जिसमे नब्बे भारतवासियो पर ट्रासवाल की सरहद मे गैरकानूनी ढग से दाखिल होने के इल्जाम मे मुकदमा चलाने की बात थी। उसी क्षण बापूजी ट्रेन मे सवार होकर उस गाव मे पहुच गए। सारे किस्से की पक्की तरह जाच कर ली और वह मुकदमा अपने हाथ मे लेने से पहले ही अपने नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति से वकालत के शुल्क की तीन-तीन गिन्निया प्राप्त की, साथ ही एक गिन्नी चदे के रूप मे भी माग ली और मैजिस्ट्रेट के सामने बहस करके उन भारतीयो को निरपराध साबित किया।

बापूजी के लिए एक ही दिन मे हजार दो हजार रुपये कमा लेना बाये हाथ का खेल था, फिर भी उन्होने धन का ढेर लगाने मे अपनी सामर्थ्य की वृद्धि नही देखी। जीवन की शुद्धि और महात्मा टाल्स्टाय की तरह किसान का श्रमपूर्ण और सादा जीवन अपनाने मे अपनी सामर्थ्य और शक्ति का अखड स्रोत उनकी दृष्टि मे आया।

जब बापूजी जोहान्सबर्ग को छोडकर टाल्स्टाय-बाडी के चौडे मैदान मे जाकर बसे, तब वहा रात को सिर छिपाने के लिए एक छप्पर तक नही थी। लोटा भर पानी के लिए आध मील मे कम नही चलना पडता था। बाजार इक्कीस मील दूर जोहान्सबर्ग मे था और नित्य की आवश्यकताओ के लिए इतनी दूर से अन्न आदि सामान ढोकर लाना पडता था।

परन्तु बापूजी का व्यक्तित्व इतना शीतल, मधुर और उत्साहप्रद था कि उनके साथ अनेक व्यक्ति टाल्स्टाय फार्म मे रहने के लिए लालायित हो उठे। तामिल, आन्ध्रवासी, गुजराती, बिहारी और हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी प्रकार के लोगो का वहा पर समाज जुड गया। जेल जाने वाले सत्याग्रहियो के परिवारो की महिलाए—बच्चे तो थे ही—और हट्टे-कट्टे नौजवान तथा ढलती आयु वाले भी वहा जाकर बापूजी के पास अपना जीवन बिताने मे अपना सौभाग्य समझते थे। उस समय टाल्स्टाय-बाडी का सक्षिप्त नाम 'फार्म' प्रचलित हो गया था। दो वर्ष तक बापू इस फार्म पर रहे और इसके सस्कार और चारित्र्य का विकास और सगठन करने मे अपनी सारी शक्ति

लगा दी। इतने थोडे समय मे 'फार्म' की ख्याति सारे दक्षिण अफ्रीका मे वहुत वढ गई। फीनिक्स का प्रभाव वहा के सत्याग्रहियो पर कम नही था, परन्तु 'फार्म' के सामने फीनिक्सवासियो के लिए और कई भारतवासियो के लिए भी फार्म अथवा लोली के नाम का उच्चारण स्वर्ग या अमरपुरी के नाम जैसा कर्णप्रिय, सुखद और उत्साहवर्द्धक वन गया था। लोली वह रेलवे स्टेशन था जहा से टाल्स्टाय फार्म मील भर दूर था। फीनिक्सवासियो के तो प्राण मानो फार्म मे ही वसे हुए थे। पग-पग पर फार्म की चर्चा होती रहती थी।

एक दिन मैने सुना कि वापूजी ने चाय का परित्याग कर दिया है और चाय की जगह गेहू को भूनकर उसका चूरा प्रयोग मे लारहे है। एक वात और सुनी कि सवेरे से लेकर दोपहर तक वापूजी और श्री कैलनवैक हब्शी मजदूरो के साथ खेतो मे मजदूरी करते है,वहा की सख्त जमीन मे फल के पौधे लगाने के लिए दो-दो फुट गहरे खोदने का काम चल रहा है। जिसे खोदने मे हब्शी तक थक जाते है उसको वापूजी उनकी जैसी फुर्ती से खोदकर तैयार कर देते है। दूसरी ओर उनके आहार-प्रयोग चल रहे है, इस कारण उनके शरीर में कमजोरी आ गई है। कभी-कभी तो चक्कर खाकर गिर पडने की नौवत आ जाती है। फिर भी वह अपना काम छोडते नही है। इतना ही नही, वापूजी हब्शी-मजदूर के जितना ही काम करने का आग्रह रखते है। कैलनवैक इस काम मे वापूजी से भी वढ जाते है। उनकी वरावरी कोई नही कर सकता है।

जमनादासकाका जव फार्म पर पहुचे तो उनके नियमित पत्र फीनिक्स आने लगे। उन पत्रो मे विशेषत अलोने और विना चीनी के भोजन-पेय की वाते रहती थी। दूसरे कई लोग भी अलोना भोजन करते थे और चीनी छोड देते थे। किस-किसने अलोना आरभ किया, किसने उसे कायम रक्खा, कौन थक गए, अलोना करने वाले क्या खाते है, वापू स्वय क्या लेते है, इन चर्चाओ से जमनादासकाका के पत्र भरे रहते थे। उन पत्रो के कारण, भोजन के समय हमारे घर मे इस वात की वहस रहती थी कि अपनी रसोई मे क्या-क्या परिवर्त्तन किया जाय। फलत थोडे ही महीनो मे हमारे घर की रसोई मे काफी परिवर्तन हो गया। कभी-कभी मगनकाका,जिनको वहुत तेज मिर्च-मसाले के विना खाना सुहाता ही नही था, नमक विल्कुल छोड देते थे। हमारे भोजन की सादगी और सात्विकता दिनोदिन वढती जाती थी।

जमनादासकाका के पत्र में एक वार खवर आई कि यहा आजकल लकडी चीरने का काम चल रहा है। वापूजी और श्री कैलनवैक के साथ फार्म के दूसरे जवान लोग भी अपनी कुल्हाडिया लेकर मध्याह्न तक लकडी चीरते

है। सभी लोग मुलायम और आसानी से फटने वाली लकडिया चुनकर चीरते है और गठीली लकडिया छोडकर चले जाते है। ऐसी गाठ वाली लकडियो को चीरने का काम वापूजी ने स्वय अपने ऊपर ले रखा है। उन्हे चीरते-चीरते वह पसीने से तर-बतर हो जाते है। दूसरे लोग बीच-बीच में कुल्हाडी छोडकर आराम के लिए इधर-उधर हो जाते है, परन्तु ऐसी कडी गाठो को चीरते हुए भी वापूजी की कुल्हाडी अविरल रूप से चलती रहती है।

फार्म से जो खबर आती थी उसको तत्काल अमल मे लानेका मगन-काका आग्रह रखते थे। ऊपर वाली चिट्ठी पढने के वाद हमारे यहा भी अपने हाथ से लकडी चीरने का काम शुरू हो गया। फीनिक्स के आस-पास 'वाटलस' विलायती ववूल के वन लगाए जाते थे। उसी ईंधन का हमारे यहा प्रयोग होता था। चीरने मे वह लकडी बवूल से भी सख्त थी। सवेरे नहाने से पहले वारी-वारी से पिताजी और मगनकाका उन लकडियो को चीरते थे। मुझे यह गिनने मे आनन्द आता था कि किसकी कितनी चोट के वाद प्रत्येक टुकडा अलग होता था।

: ३६ :

वापूजी की तेजस्विता

पहली वार जब वापूजी का दर्शन हुआ तब मैं सात वर्ष का वालक था। तब वह ससार की दृष्टि मे अलौकिक नही बने थे। मेरे लिए वह घर के साधारण बुजुर्ग से अधिक नही थे। उन दिनो के प्रसग बहुत स्पष्ट नही है। उसके वाद दस वर्ष की आयु में दुबारा वापू को देखने का प्रसग आया।

मगनकाका एक दिन फीनिक्स में दोपहर को समाचार लाये कि वापूजी डरबन आ गए है, रात को फीनिक्स आयगे और कल हमारे घर पर ही भोजन करेंगे। साथ-ही-साथ उनके भोजन में क्या-क्या किस मात्रा मे होना चाहिए इसकी चर्चा भी उन्होने मेरी माताजी से कर ली। होली-दिवाली के पर्व के समय जिस प्रकार घर में रसोई की धूम मचती है वैसी ही धूम हमारे घर में शुरू हो गई। किसी भी चीज में नमक न डालकर अनेक प्रकार के व्यजन तैयार करने में माताजी और चाचीजी व्यस्त हो गई। मैं भी सारा समय उनकी मदद में लगा रहा। मैने मूगफली छीली, चीनी पीसी, वादाम तोडे और जो कुछ माताजी ने वताया किया। तैयार होने वाली चीजें ठीक बनी है या नही यह चखकर वताने का लाभ भी मैने पाया।

दूसरे दिन सवेरे उठते ही मै वापूजी के घर पहुचा। रात को वह आ गए थे। अव मै इतना छोटा नही रह गया था कि पहले की तरह उनके कधे पर चढ जाता। वापूजी फीनिक्स में एक ही दिन रुकने वाले थे। इसलिए काम मे वह इतने व्यस्त रहे कि मुझसे खेलने, वात करने की उनको फुरसत ही नही थी। फिर भी मै वहुत देर तक उनकी अगुली पकडे-पकडे उनके साथ घूमता रहा।

फीनिक्स के छापेखाने के मुख्य कार्यकर्ताओ के साथ वातचीत करने में वापूजी का सवेरे का सारा समय वीता। सारे समय उनके मुख के भावो को देखते रहने में मुझे थकावट नही आई। फीनिक्स के वडे-वडे आदमी भी वापूजी के सामने वहुत छोटे मालूम दे रहे थे। वापूजी के मुख से प्रत्येक शब्द वहुत गम्भीरता से निकलता था और सुनने वाले उनके एक-एक वाक्य से अधिक चिंतन में और गहरे विचार में गोता लगाते प्रतीत होते थे। मध्याह्न के समय प्राय एक वजे वापूजी हमारे घर पर भोजन के लिए आये। घर में दो वडी-वडी मेजें थी। उनको जोड कर उनपर लम्वी सफेद चादर विछा दी गई थी। दोनो सिरो पर और वाजुओ पर दस वारह कुर्सिया थोडे-थोडे अन्तर पर रख दी गई थी। मेज पर खीर, तश्तरिया और चपातिया रखी गई थी । फिर केले, कटे हुए टमाटर, टमाटर का साग, सतरे, मोसम्वी, नीवू, मूगफली के दाने, मूगफली का पाक, मूगफली कूट कर वनाया हुआ मक्खन (नट-वटर) और अन्य कई वस्तुए करीने से सजाकर रख दी गई थी। आठ-दस आदमियो के साथ वापूजी आये। एक तरफ की वीच की कुर्सी पर वह स्वय वैठे और मेज की सारी चीजें जाचकर अपने दोनो ओर वैठे हुए व्यक्तियो की थाली में परोसने लगे। भोजन शुरू हुआ। खीर, रोटी और तरकारी का भोजन समाप्त हो चुकने के वाद फलो की वारी आई। तश्तरी से उठा-उठाकर केले, नारगी आदि अपने पासवालो को और दूर वैठे हुओ को भी पहुचाने के वाद वापूजी ने स्वय रोटी-साग-फल आदि पाच-छ चीजें ली। उनके सामने की कुर्सी पर वैठे-वैठे मै यह सव देखता रहा। प्राय डेढ घटे तक वापूजी के भोजन का क्रम चलता रहा। भोजन के साथ-साथ वापूजी ने अपने काम के सम्वन्ध में वहुत-सी वातें की। उन्होने वह डेढ घटा वेकार नही जाने दिया।

भोजन के वाद वापूजी सीधे प्रेस में चले गए और फिर काम में लग गए।

सध्या के समय रविवार न होने पर भी वापूजी के घर पर वैठक हुई। उन दिनो वैठकें रविवार के मध्याह्न में तीन से पाच वजे तक के समय में हुआ करती थी और अग्रेजी तथा गुजराती भजन गाकर समाप्त होजाती थी।

बापूजी के होने के कारण उस दिन रात में देर तक बैठक चलती रही। मैं तो जल्दी ही सो गया था। बापूजी कब सोये, इसका पता मुझे नही चला।

अगले दिन सवेरे बापूजी ने डरबन के लिए प्रस्थान किया। मेरे पिताजी भी उनके साथ गये। मुझे भी डरबन तक उनके साथ जाने का मौका मिला। डरबन पहुचकर हम लोग सीधे 'पोर्ट' (बन्दरगाह) पर गये। मि० पोलक उसी दिन हिन्दुस्तान से लौटने वाले थे, इसलिए उनके स्वागत के लिए अनेक हिन्दू, मुसलमान, पारसी आदि बडे-बडे लोग वहा इकट्ठे हुए थे। स्टीमर को बन्दरगाह में प्रवेश मिल गया था, परन्तु अभी चबूतरे के किनारे लगने में थोडी देर थी। बापूजी रुस्तमजी सेठ, दाऊद सेठ, उमर सेठ आदि डरबन के नेताओ के साथ बातचीत कर रहे थे। जिस चबूतरे के किनारे स्टीमर लगने वाला था, वहा से करीब बीस कदम की दूरी पर एक बडा गोदाम था। उसकी छाया में वे सब लोग खडे थे। उन लोगो से अलग होकर मैं अपने पिताजी के साथ स्टीमर लगने का स्थान देखने के लिए पहुचा।

धीरे-धीरे स्टीमर आकर चबूतरे की सीध में लग गया। उतरने के लिए सीढी जमीन पर लगा दी गई। उस सीढी से एक ओर कुछ पाच-सात कदम दूर, मैं और पिताजी खडे थे। स्टीमर के ऊपर के डेक पर श्री पोलक खडे थे। उनके साथ पिताजी ने कुशल-मगल की बातें शुरू की। मेरा ध्यान उस ओर था, जहा स्टीमर को जमीन में गडे खम्भो से मोटे-मोटे रस्सो द्वारा बाधा जा रहा था। इसी बीच कोई बीस-पच्चीस बरस का एक अग्रेज जवान, जो बन्दरगाह का कोई कर्मचारी होगा, वहा आया और हमारे तथा स्टीमर के बीच जो सकरी जगह थी उसमें से होकर दूसरी तरफ निकल गया। जाते-जाते उद्दडता के साथ उसने मेरे पिताजी से कहा, "चलो, हटो यहा से।" उसको निकलने के लिए जगह चाहिए, यह समझकर पिताजी जहा खडे थे वहा से एक कदम पीछे की ओर हट गए और पोलक साहब से बातें करते रहे। मिनट भर भी तो नही बीता होगा कि वह गोरा जवान फिर वहा आया और बोला, "चलो, ह——ट जाओ।" पिताजी हटे नही और वही खडे-खडे पोलक साहब से बातें करते रहे। यह देखकर उस अफसर का मिजाज गरम हो गया और वह गरजकर पिताजी से बोला, "अबे, सुनता क्यो नही? इस सीढी के पास से हटने के लिए तुझसे कह रहा हू। हट क्यो नही जाता? हटो इधर से।" कहकर वह पिताजी को धक्का देने के लिए आगे बढा। पिताजी उसको कुछ उत्तर दें या वहा से हटें इससे पहले बापूजी और दूसरे और लोगो का ध्यान उस ओर गया। वह युवक जिस तेजी से चिल्लाकर

बोला था उससे दुगनी ऊँची आवाज में बापूजी ने डाट लगाई—He shan't move an inch अर्थात् वह एक इंच भी नहीं हटेगा। तीन ही शब्द की यह गर्जना इतनी तीखी थी कि आकाश गूंज उठा। वह अंग्रेज इस अचानक हमले से चौंक उठा और पिताजी की ओर से मुड़ कर बापूजी के पास पहुँचा। गुस्से में भरा वह बोला, "क्या नहीं हटेगा? उसे हटना ही पड़ेगा। जहाज पर कुछ गड़बड़ी करनी है क्या?" बापूजी का पुण्य-प्रकोप प्रज्वलित हो उठा। वह गरज कर बोले, "नहीं—नहीं, यह एक इंच भी नहीं हटेगा। तुम क्या करना चाहते हो?" झगड़ा आगे बढ़े, उससे पहले ही कुछ बड़े अंग्रेज अफसर वहां पर जमा हो गए और उस अफसर को समझाते हुए कहने लगे, "यह तो गांधी हैं मामूली कुली नहीं हैं। इनसे तुम क्यों झगड़ रहे हो? यह और इनके साथी ऐसे नहीं हैं जो स्टीमर पर कुछ गड़बड़ी करें।" यह कह वे उस युवक को बापूजी के पास से अलग ले गए। यह देख बापूजी के आसपास हिन्दियों की जो भीड़ इकट्ठी हो गई थी, उसने तथा स्टीमर पर के सभी हिन्दी-यात्रियों ने एक-स्वर—"शरम, शरम" (Shame, Shame) के नारे लगाये। वह बेचारा युवक खिसिया गया और सब भारतीयों ने अपने स्वाभिमान का गौरव महसूस किया।

मि० पोलक आदि से बात-चीत कर शाम के समय बापूजी डरबन से सीधे जोहान्सबर्ग लौट गए।

मेरी इच्छा बापूजी के साथ टाल्स्टायवाडी जाने की थी पर वह पूरी नहीं हुई। बापूजी जाते समय मुझसे कहते गए कि तुम टाल्स्टायवाडी नहीं जा सके, पर देवदास को तुम्हारे पास फीनिक्स में रहने को भेजूंगा। वह और तुम साथ-साथ फीनिक्स में रहोगे तो ज्यादा मजा रहेगा।

: ३७

देवदासकाका

जैसा कि बापूजी ने मुझे आश्वासन दिया था उन्होंने अपने छोटे पुत्र देवदासकाका को टाल्स्टाय फार्म से फीनिक्स भेज दिया। बात यह थी कि जेल जानेवाले सत्याग्रहियों की छावनी के रूप में तथा आदर्श श्रमिक का जीवन अपनाने के प्रयोग-क्षेत्र के रूप में टाल्स्टाय-फार्म श्रेष्ठ स्थान था, परन्तु विद्या-प्राप्ति के लिए वहां संतोषप्रद व्यवस्था नहीं थी। जीवन की बुनियाद को

अधिक ठोस बनाने के लिए और ज्ञान तथा संस्कार दोनों का गहरा अनुशीलन करने के लिए बापूजी के विचार में फीनिक्स का स्थान अधिक महत्वपूर्ण था। इसी वजह से उन्होंने देवदासकाका को फीनिक्स भेजा और उनकी पढाई का उत्तरदायित्व मगनकाका तथा पिताजी को सौंपा।

निश्चित दिन ट्रेन से देवदासकाका ही उतरे। कार्यवश बापूजी डरबन में रुक गए थे। दो मिनट तक तो मैं देवदासकाका को पहचान भी नही सका। उनका ऊंचा-पतला बदन, मामूली कोट-पतलून और छोटे-छोटे बाल देखकर मुश्किल से मैं निश्चय कर पाया कि सचमुच यही देवदासकाका है।

स्टेशन से ढाई मील का पैदल रास्ता पूरा होने तक मैं बडे गौर से देवदासकाका का अवलोकन करता रहा। वह क्या व कैसे बोलते है, क्या देखते है, उनकी आवाज में कैसा परिवर्त्तन हुआ है, ये सब मेरे लिए जानने की बातें थी। तीन बरस पहले जब हम एक साथ खेलते-कूदते थे, हम लोगो को कंघे और ब्रश से अपने बाल संवारने में करीब आधा घंटा लग जाता था। फार्म से लौट कर आनेवाले देवदासकाका में इतना परिवर्त्तन होगा, इस बात की मुझे कल्पना तक न थी। कुछ दूर तक हम सब चुपचाप चलते रहे। फिर देवदासकाका ने मौन भंग किया और उन्होंने श्रीवीरजीभाई से पूछा, "आप मुझे कितने दिन में कम्पोज करना सिखा देंगे।" वीरजी फीनिक्स प्रेस के गुजराती विभाग के फोरमैन थे और देवदासकाका को लेने फीनिक्स स्टेशन आये थे। घर पहुंचने तक इसी सिलसिले में बात होती रही। उस सारी बात का सार मैंने यह निकाला कि छापेखाने में कम्पोज करने का काम सीखने के लिए बापूजी ने उनको तीन महीने के लिए फीनिक्स भेजा है। इसके बाद उनको फिर फार्म लौटना है और फीनिक्स में भी फार्म के नियमो का पालन करना है।

दूसरे दिन बापूजी कुछ घंटे के लिए फीनिक्स आये। उन्होंने देवदास-काका की पढाई के बारे में मेरे पिताजी और मगनकाका से बातचीत की। अलोने आहार का आरम्भ कर देने के लिए बापूजी ने देवदासकाका को कहा। मगनकाका आदि ने उनसे अनुरोध किया कि अलोने-व्रत की कड़ाई कम कर दी जाय, परन्तु बापूजी अपनी बात पर अडिग रहे। केवल रविवार के दिन नमकीन पदार्थ खाने का अपवाद छोडकर शेष दिन अलोने का आग्रह रखने के लिए उन्होंने देवदासकाका को समझाया और यह बात उनके मन पर जमा दी।

दूसरी बात देवदासकाका के लिए बापूजी ने यह तय की कि प्रति दिन दुपहरी में दो से चार बजे तक कुदाल लेकर खेत में खोदने के

लिए जाना चाहिए। ये दो बातें निश्चित करने के बाद बापूजी फिर जोहान्सबर्ग लौट गए।

इस बार जब बापूजी आये थे तब उनके नियमो में एक कठोर नियम और बढ गया था। नमक की तरह चीनी का भी उन्होंने परित्याग कर दिया था। चीनी छोड देने के कारण उनके भोजन के लिए रसोईघर में पहले के समान कई चीजें तैयार करने की सुविधा मेरी माताजी को नही मिली।

देवदासकाका के आने पर मेरा व्यक्तित्व मानो उनमें समा गया। मैं उन्हीके साथ-साथ रहने लगा। पढने-लिखने, खेलने, खाने या और कोई काम करने का विचार मैं उनके बिना नही कर पाता था। वह मेरे लिए 'बडे विद्यार्थी' (मानीटर) तो थे ही, साथ-साथ पूर्णतया मेरे नेता भी बन गए। उनका कपडे पहनने, बटन लगाने, दोडने, कुदाल पकडने और नाक साफ करने तक का ढग अपनाने के लिए मैं सतत प्रयत्न करता था। उनके कार्यक्रम के साथ-साथ मेरा कार्यक्रम भी निश्चित किया गया।

सवेरे उठकर नहाने-धोने के बाद भोजन के समय तक हम दोनो गुजराती, गणित, सुलेखन और अग्रेजी का अध्ययन करते थे। पिताजी हमें पढाते थे। देवदासकाका के अलोने-व्रत में मैंने उनका साथ दिया। जब वह छापेखाने में कम्पोजिग सीखने जाते मैं बैठकर पढता था। फिर दो बजे से चार बजे तक मगनकाका के साथ हम लोग खोदने का काम करते थे और सध्या के समय खेल-कूद कर सो जाते थे।

आयु में देवदासकाका मुझसे अधिक बडे नही थे, परन्तु वह अपने को बालक महसूस करते हो, ऐसा मालूम नही पडता था। बडो के साथ बडो की तरह बरतते थे। वैसे, सभी के प्रति विनय रखते थे, लेकिन मगनकाका का आदर वह विशेष रूप से करते थे। बागीचे में दोपहर के समय जब मगनकाका हम दोनो को अपने साथ खोदने के लिए ले जाते थे, तब मैं उनका भय मानकर उनके इशारे पर जिस प्रकार काम करता था उसी प्रकार देवदासकाका भी। उनको अपना बडा समझकर नम्रतापूर्वक उनकी सूचना का पालन करता था। मगनकाका के साथ बहस में वह शायद ही उतरते थे। एक ओर देवदासकाका, और दूसरी ओर मैं और बीच में मगनकाका, इस प्रकार हमारी कुदाली सतत आगे-ही-आगे बढती जाती थी।

हम दोनो चाहे कितने ही थक जाय, तबतक अपना हाथ नही रोकते थे जबतक मगनकाका खुद विश्राम न लें। मगनकाका विश्राम लेते भी थे तो मुश्किल से दो-तीन मिनट रुककर फिर से कुदाल चलाने लगते थे।

सम्भव है कि कागज पर यहा जो वर्णन कर रहा हू वह फीका मालूम देता हो, परन्तु खोदने में हमें जो आनन्द और रस आता था वह अवर्णनीय था। इतना कठिन परिश्रम होते हुए भी पता नही चलता था कि दो घटे कव वीत गए। मुझे कोई दिन ऐसा याद नही आता, जव हमारे मन में आया हो कि इस परिश्रम से कैसे वचें। पसीने के मोती ज्यो-ज्यो वढते जाते थे और हाथ के फफोले ज्यो-ज्यो कडे पडते जाते थे, त्यो-त्यो हमारा आनन्द वढता था। वसे, मगनकाका का गुस्सा वडा तेज था, लेकिन काम के इन घटो में कभी उन्होने गुस्सा किया हो, ऐसा मुझे याद नही है। लगभग सारा काम मौन रहकर होता था। वीच-वीच में थोडा-सा मधुर विनोद और हँसी आदि करके मगनकाका हमारा उत्साह वढाते थे। जैसे मेरा अपनापन देवदासकाका के पास खो जाता था, उसी प्रकार मगनकाका के पास हम दोनो का व्यक्तित्व खो जाता था। मगनकाका का सकल्प, उनका परिश्रम, उनके हाथ की सुघडता, उनका उत्साह और एक के वाद एक तालवद्ध पडने वाली उनकी कुदाल की चोटो का प्रवाह हमें अपने में समा लेता था। उस समय हमें इस वात का जरा भी आभास नही था कि हमारा कुदाल चलाने का यह वर्ग कितना महत्वपूर्ण है और मगनकाका की महत्ता का भान तो था ही नही। वास्तव में इस सारी क्रिया ने वडे भारी रसायन का काम किया—ऐसा रसायन कि जिसके फलस्वरूप वर्ष-सवा-वर्ष वाद ही हम आधे आदमी से प्राय पूरे आदमी वन गए।

रविवार का दिन हमारे लिए मौज का दिन होता था। उस दिन काम की और पढने की छुट्टी के साथ-साथ अलोने की भी छुट्टी रहती थी। इसलिए हमारा उत्साह वेहद वढ जाता था। घर में उस दिन मसालेदार गर्म-गर्म भोजन मिलता था और मानो छ दिन का नमक एक ही दिन में खा लेने के लिए हम नमकीन चीजो पर हाथ धोकर टूट पडते थे। भोजन करके दूर तक घूमने जाते थे, दौडते थे, पतग उडाते थे और वागवानी भी करते थे। इस प्रकार तीन महीने तक हमारा यह कार्यक्रम चलता रहा। इतने समय मे मानो एक युग वीत गया हो, ऐसा मुझे जान पडा। सूनापन और निरुत्साह अदृश्य हो गया और नई-नई वातें सीखने और जानने की उत्सुकता से जीवन रसमय वन गया।

तीन महीने समाप्त होने पर देवदासकाका के साथ मुझे फार्म जाने को मिलेगा या नही, इस चिन्ता में मै था, लेकिन जव इस वात का भरोसा हो गया कि तीन महीने समाप्त होते ही देवदासकाका चले जानेवाले नही है, तव मुझे शाति हुई। तवतक टाल्स्टाय-वाडी से पूज्य वा फीनिक्स आ गई थी।

बापूजी का घर खुल गया था। मै अपने घर और देवदासकाका अपने घर भोजन, शयन आदि करने लगे थे। फिर भी हमारा सहवास जरा भी शिथिल नही हुआ। हमारी पढाई और विकास का क्रम साथ-ही-साथ सतत आगे बढता जाता था।

: ३८ :

गोखलेजी का स्मरणीय प्रवास

एक दिन सवेरे नित्य से कोई दो घटे पहले मगनकाका प्रेस मे घर लौट आये। उस समय पूज्य बा भी हमारे घर पर ही थी। कोई खास बात न हो तो प्रेस के समय मे मगनकाका घर नही आया करते थे। मै उनके पीछे हो लिया। वह सीधे बा के पास गये और बोले, "बापू का पत्र है, उनको पगडी चाहिए। माननीय गोखलेजी आने वाले है। उनको लिवाने के लिए बापू को केपटाउन जाना होगा। जब गोखलेजी जहाज से उतरेगे, तब उनके सम्मान के लिए सिर पर पगडी पहनकर ही जाना बापू आवश्यक समझते है।"

बापूजी की पगडी की शोहरत तो मैने बहुत सुनी थी, परन्तु उसे देखा नही था। फिर भी अखबारो के ढेर मे चित्र और फोटो आदि देखा करता था। उन चित्रो मे कई ऐसे होते थे जिनमे बापूजी की पगडी और उनकी पैनी नाक पर विशेष व्यग्य रहता था। टोपी और पगडी के विचित्र मेल-वाली दुमदार पगडी व्यग्यचित्र मे बडी अजीब और अनोखी मालूम देती थी। लेकिन उसे पहनते हुए बापूजी को मैने नही देखा था।

गोखलेजी जब दक्षिण अफ्रीका पधारे तब बापूजी को बैरिस्टरी छोडे लगभग डेढ वर्ष बीत चुका था। अपना बैरिस्टरी का दफ्तर बन्द करने के साथ-साथ उन्होने अपना जोहान्सबर्ग का घर भी बन्द कर दिया था और टालस्टायवाडी के लिए आवश्यक चार जोडी कपडो के अतिरिक्त अपना कुल सामान फीनिक्स भेज दिया था। अब आवश्यकता पडने पर उन्होने अपने बन्द सामान से वह पगडी ढूढकर भेजने के लिए लिखा था।

बापूजी का यह सन्देश सुनकर पहले तो बा सोच मे पड गई कि अब वह पगडी कहा ढूढी जाय और यदि मिल भी जायगी तो पहनने योग्य रही होगी या नही, जर्जर तो वह हो ही गई थी। इस शका का समाधा-

करते हुए मगनकाका ने पूज्य बा मे कहा कि यदि उसको मुधारना आवश्यक हो तो मुधरवा लिया जायगा, ऐमा बापूजी ने लिखा था। वह चाहते है कि नई पगडी बनवानी न पडे और उम पुरानी मे ही काम चलाया जाय।

दूसरे दिन पूज्य बा ने मगनकाका को वह पगडी सौंप दी। देखने मे वह लम्बी गोल नाव-मी दीखती थी। गत्ते की-सी चीज का सख्त ढाचा था और उसपर बिलकुल काले रग की बारीक मलमल चढी थी। कपडा काफी पुराना पड गया था। उसके मिल जाने पर मगनकाका खुग हो गए और उसी दिन उसे ठीक-ठाक करके उन्होने पार्सल द्वारा उमे बापूजी के पास भेज दिया।

फीनिक्स स्टेशन के लिए कोई बना-बनाया रास्ता नही था। एक पगडडी थी जो कही बहुत चौडी और कही बहुत सकरी हो जाती थी। रास्ते मे अनेक टीले और नाले पडते थे। बरसात के समय टीलो मे नीचे आनेवाले पानी के बहाव के कारण वह सकरी पगडडी इधर-उधर मे टूटी और खुदी हुई रहती थी। फिर बीसियो गिरमिटिये मजदूर फावडे और बेलचे लेकर उस रास्ते को सुधारने लगे। कही गड्ढे भर रहे है, कही मिट्टी काटकर भूमि को समतल बना रहे है और सारा रास्ता चौडा कर रहे है।

अपने देश से गोखलेजी महाराज आ रहे थे, उनकी मोटर के वास्ते यह रास्ता ठीक किया जा रहा था।

मैने देवदासकाका से पूछा, "इसमे इन लोगो को क्या दिलचस्पी ? वे लोग अपनी जमीन मे रास्ता क्यो ठीक कराते है ?"

देवदासकाका ने बताया कि गोखलेजी बापूजी से बडे है। वह यहा की सरकार के भी मेहमान है, इसलिए यदि गोरे लोग यह रास्ता मुधारे नही तो उनकी प्रतिष्ठा को हमारे देश मे ठेस पहुचेगी।

कुछ दिन के बाद 'इडियन ओपिनियन' मे गोखलेजी के सुन्दर फोटो छपने लगे। केपटाउन शहर मे एक शानदार, खुली बग्घी मे आमने-सामने गोखलेजी और बापूजी बठे थे। बापूजी के सिर पर वही दुमदार पगडी जच रही थी और बग्घी के चारो ओर लोगो की भारी भीड थी।

फीनिक्स के लोगो मे बातचीत का मुख्य विषय गोखलेजी का आगमन और उनका स्वागत-समारोह ही बन गया। बातचीत मे लोग कहते, "गाधी-गोखले के पीछे अपने देशवासियो की तो पूछो ही मत, गोरे लोग भी पागल-से बने हुए है। भीड-की-भीड उमडती है। बापूजी ने गोखलेजी का इतना भव्य सत्कार कराकर इस देश मे भारतवासियो की प्रतिष्ठा बहुत

अधिक बढा दी है। गोखलेजी की सेवा करने मे बापूजी ने दिन-रात एक कर रखा है। गोखलेजी के सत्कार मे भारतवासियो की ओर से कही जरा-सी भी कसर नजर आती है तो बापूजी खबर ले डालते है। एक-से-एक बढकर सेवक गोखलेजी की सेवा के लिए उपस्थित रहते है, पर इन बीसियो सेवको के होते हुए बापूजी स्वय अपने हाथ से गोखलेजी की सारी सेवाए करते है। गोखलेजी के सम्मान व आदर-सत्कार मे रत्ती भर भी कमी न रह जाय इसके लिए बापूजी पूरी सावधानी रखते है।"

इधर फीनिक्स मे हमारी दिनचर्या मे परिवर्तन हो गया। डरबन शहर मे भारतीय लडको और लडकियो की दौडो के दगल किये जानेवाले थे और जीतनेवालो को गोखलेजी के हाथ से इनाम दिलाये जानेवाले थे। इस दगल मे फीनिक्स की पाठशाला के बच्चो को भी निमन्त्रित किया गया था। फीनिक्स आश्रम और आसपास दो-तीन मील मे बसनेवाले गिरमिट-मुक्त भारतीयो के बच्चो को मिला कर हमारी सख्या मुश्किल से सात-आठ हुई। फिर भी मगनकाका ने खेलो के लिए उत्साह मे तैयारिया करवाई। आधमील की दौड, सौ गज की दौड, तीन पैरो की दौड, ऊची कुदान, लम्बी कुदान आदि के अभ्यास मे आधा दिन बीतने लगा। इन सभी खेलो मे देव-दासकाका अव्वल आया करते थे।

अन्य तैयारियो मे, फीनिक्स में, जहा हम लोग बसते थे, वहा के छोटे-बडे सभी रास्ते साफ-सुथरे किये गए, मुख्य-मुख्य स्थानो से घास साफ की गई और फीनिक्स मे गोखलेजी के पधारने पर उनके स्वागत के लिए मगन-काका हम लोगो को भजन सिखाने लगे। उनमें कुछ रामायण की चौपाइया और दोहे थे और एक अग्रेजी भजन था। हमारी रोज की पढाई को तो पूरा विराम मिल गया था।

जोहान्सबर्ग आदि में होनेवाले भव्य स्वागत-समारोह की बाते सुनकर देवदासकाका का मन फीनिक्स मे स्थिर नही रहता था। वहा जाने के लिए वह उत्सुक रहने लगे। जोहान्सबर्ग तो वह नही जा सके, परन्तु मारित्सबर्ग तक जाने के लिए उनको अनुमति मिल गई। देवदास-काका के द्वारा मैने भी उनके साथ मारित्सबर्ग तक जाने की अनुमति प्राप्त कर ली। अन्त मे एक दिन प्रात काल हम दोनो डरबन मे रुस्तमजी सेठ के घर पर पहुच गए।

डरबन से भारतवासियो की एक पूरी ट्रेन मारित्सबर्ग तक गोखलेजी के स्वागत के लिए जानेवाली थी। उसके छूटने मे करीब चार घटे की देर थी।

वही जमनादासकाका आ गए। हमे बडी खुशी हुई। डरबन मे गोखले-जी के स्वागतार्थ जो तैयारिया हो रही थी उनमे कुछ कसर हो तो उसे जाचने और ठीक कराने के लिए बापूजी ने उनको यहा भेजा था। जमना-दासकाका से हमने ट्रासवाल मे हुए गोखलेजी के भव्य स्वागत की बहुत-सी नई बाते सुनी। जब गोखलेजी टाल्स्टायवाडी गये थे तब वहा किस-किस व्यक्ति को क्या-क्या काम दिया गया था और किसने अपने काम को सुचारु रूप से किया आदि बाते विस्तारपूर्वक जमनादासकाका ने देवदास-काका को सुनाई और इस प्रकार मेरे सामने फार्म का एक स्पष्ट कल्पना-चित्र आ गया।

टाल्स्टायवाडी मे स्वागत के लिए स्थानिक चीजो से ही सजावट की गई थी। जोहान्सबर्ग के बाजार से या कही से कपडे की कतरन भी सजावट के लिए नही लाई गई थी। टाल्स्टायवाडी के विद्यार्थियो और शिक्षको द्वारा किये गए कठिन परिश्रम से वहा के बागीचे मे जो फल-फूल तयार हुए थे उनसे ही टाल्स्टायवाडी सजाई गई थी। पके-अधपके रग-बिरगे आड़ू-अलूचे और अन्य फलो के हरे-ताजे गुच्छे लटकाकर मेहराबे तयार की गई थी। वहा की सादगी, शोभा और शान्ति से गोखलेजी मुग्ध हो गए।

भोजन के पश्चात् हम सब मारित्सबर्ग जाने के लिए स्टेशन को चल पडे। उस समय हमारा तिरगा झडा तो था नही, पर भारतीय समाज का उत्साह और आनन्द प्रकट करने के लिए सैकडो झडे-झडिया रुस्तमजी सेठ के घर से बाटे गए। अनेक रगो के छोटे-बडे झडे थे, जो हम सबने अपने हाथ मे ले लिये। जलूस बनाकर हम लोग डरबन के स्टेशन पर पहुचे। सारी ट्रेन हम लोगो से ठसाठस भर गई।

तीसरे दर्जे के दो-तीन डिब्बो को छोडकर पूरी-की-पूरी ट्रेन मे गलियारा (कारिडोर) था, अर्थात् चलती गाडी मे एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे मे जाने का मार्ग बना हुआ था। आमतौर से वहा की पूरी गाडी देखने का मौका हम भारतीयो को नही मिलता था, क्योकि गोरो के डिब्बे अलग हुआ करते थे। उस दिन का लाभ लेकर मैने और देवदासकाका ने पूरी ट्रेन मे दो बार चक्कर काटे।

करीब तीन घटे की यात्रा के बाद हम मारित्सबर्ग जा पहुचे। हम लोग अपने अनेकविध झडो के साथ गोखलेजी के पास शहर की ओर चल दिए।

गोखलेजी आ गए थे और शायद सभा भी हो चुकी थी। हम लोगो

ने जाकर वह बगला बाहर से देखा, जिसमे उनको ठहराया गया था। नैटाल प्रात की राजधानी होने की वजह से मारित्सवर्ग नगरी सुन्दर बागीचे जैसी बनी हुई थी।

दूसरे दिन सुबह उठकर कोई तीन मील पैदल चलता हुआ हमारा संघ मारित्सवर्ग स्टेशन पर पहुचा। मै और देवदासकाका किसी तरह सीधे गोखलेजी के डिब्बे के पास पहुच गए। डरवन से जो खास गाडी आई थी उसमें गोखलेजी का 'सैलून' जोड दिया गया था। यह सैलून दक्षिण अफ्रीका की सरकार की ओर से उनके स्वागतार्थ विशेष रूप से दिया गया था। गोखलेजी के डिब्बे मे वापूजी तथा दूसरे एक-दो व्यक्तियो को छोडकर किसी का प्रवेश नही हो पाता था। हम दोनो को तो वापूजी ने स्वय ही डिब्बे के अन्दर ले लिया था।

'सैलून' में गोखलेजी केवल कुरता पहने हुए, नगे सिर बैठे थे। सिर के आधे वाल सफेद और आधे काले थे। पास जाकर हमने उनके पैर छुए। किसीने देवदासकाका का परिचय करवाया तो गोखलेजी ने उनकी ओर देखा और थोडा मुस्कराए, फिर अपने हाथ की पुस्तक पढने मे एकाग्र हो गए।

'सैलून' मे हम लोगो के पहुचने के कुछ देर वाद मारित्सवर्ग से ट्रेन चल चुकी थी। थोडी ही देर वाद वापूजी गोखलेजी के कपडे अपने हाथ मे लेकर उनके सामने खडे हो गए और नम्रतापूर्वक वोले कि "अब स्नान से निबट लिया जाय।"

वह सैलून स्वय जनरल स्मट्स का था। हमने देखा कि उसमें फर्स्ट क्लास के डिब्बे से भी कही अधिक सुविधाए थी।

देवदासकाका और मै यह सब आश्चर्य-मुग्ध होकर देख रहे थे कि बापूजी गोखलेजी को स्नानगृह मे पहुचा कर हमारे पास आये और बहुत धीमी आवाज मे हम दोनो से कहा कि अब तुम लोगो ने सब देख ही लिया है। सो अब जाकर सबके साथ बैठो। जहा पर अपना काम न हो वहा पर बेकार नही रुकना चाहिए।

बापूजी की यह आज्ञा पाकर 'सैलून' से निकल कर हम दोनो दूसरे डिब्बो मे चले गए और अन्य लोगो के जा बैठे। मारित्सबर्ग से डरबन तक प्राय. ४०-४५ मील तक एक स्थान पर ट्रेन रुकी। पर सारे रास्ते रेल के दोनो ओर जगह-जगह मनुष्यों की भीड़ नजर आती थी। वे लोग खुशी के जो नारे लगाते थे उस आवाज से ट्रेन के चलने की आवाज भी दब जाती थी।

उन दिनो गोखलेजी का स्वास्थ्य अच्छा नही रहता था। धीमा बुखार, सिर दर्द, कमजोरी आदि की उन्हे शिकायत थी। जोहान्सवर्ग मे उन्हे आठ-दस दिन विस्तर पर लेटे रहना पडा था। फिर भी दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न को हल करने के लिए अपने शरीर की चिंता न करके वह अविरत परिश्रम किया करते थे। वापूजी उनके पहरेदार वन गए थे। विश्राम के समय लोगो की भीड उनके पास न हो इसकी वह सावधानी रखते थे। भोजन अपने हाथ से पकाकर और तैयार करके देते थे। उनके कपडे भी वापूजी स्वय धोकर तैयार करते थे। साथ ही गोखले अधिक श्रम न करे इसकी भी खवरदारी रखते थे। और अपने गुरु पर शासन भी चलाते थे।

जोहान्सवर्ग का एक प्रसग है। श्री कैलनवैक के सुन्दर वगले मे गोखले-जी को टिकाया गया था। अगले दिन जोहान्सवर्ग मे दावत होने वाली थी। उस दावत मे दक्षिण अफ्रीका की सरकार के मुखिया जनरल स्मट्स और जनरल वोथा भी आनेवाले थे। उस दावत के भाषण की तैयारी करने के लिए रात मे ही गोखलेजी लिखने वैठ गए। वापूजी की नीद खुली तो देखा कि आधी रात के वाद शायद रात को दो वजे के समय दिया जल रहा है। तव दोनो के वीच इस प्रकार चर्चा हुई

"आप अभी तक क्या कर रहे है ?"

"दावत के भाषण के लिए नोट तैयार कर रहा हू।"

"हमे नही चाहिए आपका ऐसा भाषण। अपना आराम मत विगाडिए।"

"तो क्या इसे फाड दू ?"

"जी हाँ, फाड दीजिए।"

"लो, फाड दिया, पर अव तो वह तैयार है। कहो तो तुम्हे सुना दू।"

यह कहकर गोखलेजी ने उसी समय वे नोट ज्यो-के-त्यो सुना दिये, जो उन्होंने फाडकर टोकरी के हवाले कर दिए थे। और वास्तव मे जोहान्सवर्ग का वह भाषण दक्षिण अफ्रीका मे उनका सवसे वडा और अत्यधिक प्रभाव-शाली भाषण रहा।

उन्ही दिनो का एक किस्सा और मेरे सुनने मे आया। वापूजी के पास रहने वालो मे श्री प्रागजी देसाई वडे वुद्धिवादी थे। प्रत्येक वात की नुक्ता-चीनी करने के लिए सवाल पूछते रहते थे। उन्होने गोखलेजी से एक वार पूछा, "कहते है कि आपको अपने पुराने व्याख्यान याद रहते है। कोई एक सुना दीजिए।" थोडा-सा याद कर गोखलेजी ने सन् १९०५ मे आक्स-फोर्ड विश्वविद्यालय मे दिये गए भाषण के कुछ अश ज्यो-के-त्यो सुना दिये।

दक्षिण अफ्रीका के इतिहास मे वापूजी ने लिखा है, "गोखले को

एक आदत थी जिसे मै कुटेव कहता था। वह नौकर मे ही सेवा लेते थे और सफर मे नौकर को साथ रखते नही थे। मैने और श्री कैलनबैक ने उनके पैर दबाने के लिए बहुत निहोरे किये पर वह माने ही नही। हम लोगो को पैर छूने भी नही दिया बल्कि कुछ नाराज होकर डाटने लगे, 'क्या तुम्ही लोग दुख झेलने के लिए पैदा हुए हो और मुझ जैसे लोग तुमसे सेवा लेने के लिए ? तुम्हारे इस तकल्लुफ का बदला यह है कि मै तुम्हे अपने को छूने ही नही दूगा। तुम सब शौच के लिए दूर तक जाओगे और मेरे लिए कमोड रखोगे, यह क्यो ? मै तुम्हारा गर्व दूर करूगा।' और इस तरह उन्होने हम लोगो को अपनी शारीरिक सेवा करने ही नही दी। खाने-नहाने आदि में हमारी सहायता लिये बिना उनका चारा नहीं था। जब हम लोगो को आश्रम के फर्श पर बिस्तर लगाते हुए देखा तब उन्होने अपना बिस्तर भी चारपाई से नीचे बिछाया। वह जितने गम्भीर थे उतने ही विनोदप्रिय भी थे और उनके प्रत्येक वाक्य मे सत्य और स्वदेशाभिमान झलकता था और वह अपने सेवक को रिझाने का पूरा खयाल रखते थे।"

ऐसे महान व्यक्ति जब डरबन पधारे तब डरबन स्टेशन पर जैसी भीड जमा हुई थी वैसी मैने कभी नही देखी थी। बाद मे भारत आने पर बापूजी के लिए वैसे विराट जन-समुदाय को एकत्र देखने का सौभाग्य अनेक बार मिला, फिर भी डरबन की उस स्मृति का असर मेरे मन पर विशेष रह गया। स्टेशन के फाटक से लेकर जहा तक नजर पहुचती थी मानव-सागर उमडा पडता था।

गोखलेजी के टाउनहाल के भाषण के बारे मे लोगो को कहते सुना कि वह बहुत ही सुन्दर भाषण था। टाउनहाल का वह विशाल कक्ष भारतीय और गोरे दर्शको से भरा हुआ था। सबकी आखे और कान गोखलेजी की ओर एकाग्र हो गए थे। उनका भाषण, भाषण नही था, मानो मन्त्रो का प्रवाह था। उनका प्रत्येक शब्द स्पष्ट, गम्भीर और सुनने वालो के दिलो को हिला देने वाला था। उस भाषण ने वहा के भारतवासियो के दिल मे आशा का सचार किया और गोरो के अत करण मे न्यायबुद्धि की चिनगारी जगाई।

मै भी उस सभा मे गया था। पर मेरी उत्सुकता तो गोखलेजी के हाथो बच्चो को जो इनाम बटनेवाले थे, उन्हे देखने की थी। इसलिए हम लोग तो भागते हुए घुडदौड के मैदान पर पहुचे, जहा सैकडो बालक—लडके और लडकिया—अलग-अलग टोलियो मे खेल-कूद के कार्यक्रम मे लगे हुए थे।

गोखलेजी तीन बजे पधारे और सारे मैदान मे पूर्ण शान्ति और

व्यवस्था छा गई। हम लोग उस ओर बढे, जहा बडे आदमियो के लिए बठकर देखने का मकान-सा बना हुआ था। कुछ विशेप प्रकार के खेल—बडे आदमियो की दौड, साइकल दौड और कुछ देर फुटबाल का खेल आदि उनके सामने किये गए। कार्यक्रम समाप्त होने पर दुमजिले मे गोखलेजी इनाम देने के लिए नीचे उतरे और उनके हाथो से, बडे-बडे चादी के बर्तन, किताबे आदि, इनाम-विजेताओ ने प्राप्त किये।

जब यह हो रहा था तब मुझे भी एक बहुत बढिया इनाम मिल गया, जिसे मै कभी नही भूल सकता। किन्तु वह गोखलेजी के हाथ से न मिलकर एक गोरे सैनिक के हाथो मिला था।

बडे लोगो के लिए जो अहाता बना हुआ था उसके अन्दर मै अपने पिताजी के साथ पहुच गया था। कडी धूप के कारण जोर की प्यास लगी तो मै पानी पीने के लिए उस अहाते से बाहर निकल गया। लौटते समय फाटक पर भीड थी, इसलिए मै प्रवेश नही कर सका। विवश होकर मै हद-बन्दी के रस्सो के नीचे से अन्दर घुसने लगा। घुटने पर झुककर ज्योही मैने सिर अन्दर किया कि मेरी पीठ पर जोर का चाबुक पडा। मुह से चीख निकल गई। मैने नजर ऊपर उठाई तो एक ताड-सा ऊचा, हट्टा-कट्टा लाल मुह वाला गोरा-पुलिसमैन हाथ मे लम्बा कोडा लिये हुए दिखाई दिया। मेरी समझ मे नही आया कि यह हुआ क्या? मेरी चीख सुनकर पिताजी और दूसरे कई आदमी वहा आ गए। उन्होने छोटे बच्चे पर हाथ उठाने के लिए उस सैनिक को शर्मिदा किया और मुझे अन्दर ले लिया। वह गोरा बडबडाने लगा कि इसे अन्दर जाना था तो फाटक के रास्ते से क्यो नही गया? मेरी पीठ पर चाबुक की मार उपड आई। मेरे लिए यह इनाम किसी चादी के वर्तन या किताब से बढकर रहा।

गोखलेजी केपटाउन से लेकर डरबन तक के बडे नगरो मे और टाल्स्टायबाडी तथा फीनिक्स के सुदूर देहाती क्षेत्र मे लगभग डेढ महीने तक प्रवास करते रहे। स्वास्थ्य उनका बहुत नाजुक था। फीनिक्स जैसे स्थल पर जहा सवारी के लिए मुश्किल ही कच्चा रास्ता बना था उनको प्रवास करने मे बहुत कष्ट उठाना पडा, परन्तु उन्होने बडी प्रसन्नता से यह सारा प्रवास किया और जब वह भारत लौटे तब अफ्रीका के भारत-वासियो के मन मे स्वदेश के लिए जीवन न्योछावर करने का उत्साह और भी दृढ बनाते गए। हम फीनिक्स-वासियो के मन मे उन्होने यथाशीघ्र भारत पहुच जाने की उत्कठा बढा दी।

डरबन मे गोखलेजी का स्वागत किया गया, उसके दूसरे दिन वह

फीनिक्स पधारे। हम लोग उनसे पहले फीनिक्स पहुच गए थे। उन दिनो, गुजराती मे 'गोखले गणित' भाग प्रथम हमारी पाठ्य-पुस्तक थी। उसके मूल रचयिता गोखलेजी स्वय थे और गुजराती मे उनका अच्छा अनुवाद छपा था। गणित के ऐसे महान प्रोफेसर के हमारे फीनिक्स मे पधारने पर वह गणित के सवाल अवश्य पूछेगे, ऐसी हमारी धारणा थी। इसलिए उनके पधारने के दिन हमने अपने गणित के पाठ भरसक दोहरा लिये। सध्या के समय वह फीनिक्स आये। उनके फीनिक्स स्टेशन से आश्रम तक आने के लिए एक हलकी-सी घोडागाडी की व्यवस्था विशेष रूप से की गई थी। जब, गोखलेजी पधारे तब वह अत्यधिक थक गए थे। हम लोगो ने बारी-बारी से उन्हे प्रणाम किया, उसके बाद भजन का कार्यक्रम शुरु हुआ। सबसे पहले 'इटर्नल स्पिरिट' नामक अग्रेजी भजन, जो दो महीने तक कोशिश करके मगनकाका ने इसी प्रसग के लिए हम लोगो को सिखा रखा था, देवदासकाका ने और मैने गाया। उसके बाद तुलसी रामायण मे 'जेहि सुमिरत सिधि होइ' आदि मगलाचरण के सोरठे गाये गए। एक-दो भजन और भी हुए और बाद मे हम लोग गोखलेजी के आराम के खयाल से वहा से हट गए।

सवेरे उठने पर मुझे पता चला कि हमारे चले आने के बाद गोखलेजी ने देवदासकाका से एक अजीब प्रश्न किया था, जिसका जवाब देना बडो को भी कठिन मालूम हुआ। प्रश्न यह था कि "मान लो, तुम अपने माता-पिता के साथ किसी वन मे भ्रमण करने गए हो, तुम्हारी एक ओर कुछ दूरी पर पिताजी चल रहे है और दूसरी ओर माताजी चल रही है। ऐसे मौके पर एक भूखा बाघ सामने से आ जाता है। यदि तुम पिताजी की सहायता के लिए जाओगे तो बाघ माताजी को मार डालेगा, और यदि माताजी की सहायता करने जाओगे तो वह पिताजी को खा जायगा। बताओ ऐसी हालत मे तुम किसकी सहायता करने दौडोगे ?"

सवेरे जब मै उठा, मगनकाका ने मुझसे भी यह प्रश्न पूछा। मै इसका उत्तर नही दे सका। मगनलालकाका ने बताया कि देवदास भी इसका उत्तर नही दे सके थे और दूसरे जो लोग वहा बैठे थे, वे भी उत्तर देने मे असमजस मे पड गए थे। अत मे बापूजी ने उत्तर दिया "मै स्वय बाघ के पास चला जाऊगा और इस प्रकार माताजी और पिताजी दोनो की रक्षा हो जायगी।"

फीनिक्स के कई स्थलो को देख लेने के बाद जरा भी आराम न करके गोखलेजी तागे मे बैठ कर बापूजी के साथ श्री डूबे की शिक्षण-सस्था देखने

के लिए चले गए। वह सस्था हब्शी बालको के लिए चलाई जा रही थी और हब्शी अध्यापक ही बडे प्रयत्न और परिश्रम से उन्हे पढाते थे। बापूजी और गोखलेजी के अलावा दूसरा कोई उनके साथ नही गया। सब, बापूजी की सूचना के अनुसार, अपने-अपने काम मे लगे रहे। जब बापूजी गोखलेजी को हमारी सस्था दिखा रहे थे, तब भी उनके पीछे किसी ने भीड नहीं की थी। बडो मे पिताजी और बालको मे शायद मैं ही अकेला उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। श्री डूबे के स्कूल तक उनके साथ जाने की मुझे इच्छा थी, परन्तु बापूजी ने किसीको अपने साथ नही लिया। कोई दो घटे बाद गोखलेजी डूबेजी की सस्था से लौट आए, फिर स्नान-भोजन करके आराम के लिए हमारी पाठशाला मे पधारे। उस मकान के चारो ओर पूर्ण शाति रहती थी। बापूजी ने इस बात के लिए बडी सावधानी रखी थी कि गोखलेजी के आराम मे जरा भी विघ्न न पडे। किसी के परो की आहट भी नही हो। जब गोखलेजी उस मकान मे जाकर चारपाई पर लेट गए तब बापूजी उनके पास बैठ कर बहुत धीरे-धीरे बाते करने लगे।

दो महीने तक जिनके स्वागत के लिए फीनिक्स मे तैयारिया होती रही थी उन्होने दो दिन हमारे बीच रहकर सबको धन्य किया। एक शात पवित्र प्रकाश ने मानो फीनिक्स की उस भूमि पर अपने आशीर्वाद बिछा दिये। काम और सेवा के साथ-साथ सभी को बुद्धि का विकास और ज्ञान की उपासना भी सतत करनी चाहिए, यह सदेश वह फीनिक्स के वातावरण मे भर गए और जैसी शाति से आये थे वैसी ही शाति से उन्होने फीनिक्स से विदा ली। उनको विदा देने के लिए किसी भी प्रकार का समारोह नही किया गया। परन्तु हम लोगो के हृदयो को वह अपने साथ ले गए। गोस्वामी तुलसीदास ने जो कहा है, "बिछुरत एक प्रान हर लेहीं" उसका कुछ अनुभव वह हमे करा गए।

भारत लौटते समय गोखलेजी के आग्रह को मान कर बापूजी भी श्री कैलनबैक सहित जजीबार तक उनको पहुचाने गये।

बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका के इतिहास मे लिखा है "जजीबार में हमारा जो वियोग हुआ वह हम दोनो के लिए अतिशय दुखदायी था। किन्तु देहधारियो का निकट-से-निकट का सहवास भी अत मे जाकर समाप्त होता ही है, ऐसा समझकर कैलनबैक ने और मैंने सतोष किया।"

: ३९ :

एक कटु अनुभव

गोखलेजी को पहुचाकर बापूजी जजीबार से सीधे ही, शायद रेल के रास्ते से, जोहान्सबर्ग पहुचे। फीनिक्स में बापूजी के स्वदेश लौटने की बातो ने जोर पकडा और हम लोग आखिरी फैसला जानने के लिए कि जनरल बोथा और जनरल स्मट्स की सरकार अपने वर्ण-विद्वेष के कानून को कब और कैसे वापस लेती है, उतावले हो गए। हम सब जल्दी-से-जल्दी स्वदेश जाने को उत्सुक थे। जमनादासकाका ने तो लौटने का निश्चय ही कर लिया। परन्तु नेटाल छोडकर निश्चितता से जाने के लिए उनका मन नही मानता था। यदि दक्षिण अफ्रीका की सरकार अपनी बात से मुकर जाय और गोखलेजी के परिश्रम के बावजूद सत्याग्रह की दुबारा नौबत आ ही जाय तो उस समय जमनादासकाका दक्षिण अफ्रीका से अनुपस्थित नही रहना चाहते थे। इस दुविधा से उन्होने यह रास्ता निकाला कि उनके भारत पहुचने के बाद भी यदि सत्याग्रह छिड ही गया तो वह पहले स्टीमर से दक्षिण अफ्रीका के लिए चल पडेगे और दक्षिण अफ्रीका आकर सत्याग्रह मे शामिल हो जायगे।

इस प्रकार अपने मन का समाधान करके जमनादासकाका फीनिक्स से भारत के लिए रवाना हुए। उन्हे विदा करने के लिए पिताजी, मगनकाका आदि के साथ मै भी डरबन तक गया।

डरबन में हम लोग सदा की भाति रुस्तमजीकाका के यहा ठहरे थे। जिस दिन हम डरबन पहुचे उसके दूसरे दिन बडे सवेरे जमनादास-काका को ले जाने वाला स्टीमर 'गोदी' (डाकयार्ड) से छूटने वाला थी। जमनादासकाका ने अपना सामान दिन मे ही स्टीमर पर पहुचा दिया था। सध्या बीतने पर डरबन के मित्रो से भेंट करके वह रातके आठ-नौ बजे बन्दरगाह जाने के लिए रवाना हुए। हम लोग भी उन्हे विदाई देने के लिए बन्दरगाह तक गये। डरबन की पक्की, सुन्दर और स्वच्छ सडको पर बिजली की बत्तियो का प्रकाश जगमगा रहा था, जन-कोलाहल शात हो गया था और टहलते-गपशप करते हम मजे में जा रहे थे। लगभग आध-पौन घटे चलने के बाद हमे खयाल हुआ कि पैदल पहुचने मे बहुत देर हो जाएगी और कप्तान आदि सो जायगे तो बडी दिक्कत होगी। अभी रात के दस नही बजे थे और ट्रामगाडिया चल रही थी। हम सब ट्राम पर सवार हो गए।

डरबन की ट्राम गाडिया दो-मंजिली होती थी। उनकी नीचे वाली मंजिल केवल गोरो के लिए सुरक्षित रखी जाती थी। ऊपर की मंजिल मे भी प्रथम तीन-चार बेचे गोरे लोगो के लिए ही सुरक्षित रहती थी और केवल पिछले हिस्से की कुछ बेंचो पर अश्वेत लोगो के बैठने की व्यवस्था थी। जब हम लोग ट्राम मे सवार हुए तब रात का समय था, इसलिए ऊपर की मंजिल पूरी खाली थी। कायदा तोडने की नीयत से नही, पर सहजस्वभाव ने हम लोग सबसे आगे वाली दो बेचो पर जा बैठे। दस-पन्द्रह मिनट तक हमने पूरे वेग मे दौडती हुई ट्राम से डरबन नगर की शोभा देखने का और आपस मे बातचीत करने का आनन्द लिया। इसके बाद न जाने कैसे ट्राम के कडक्टर के ध्यान मे यह बात आई कि हम काले कुलियो ने श्वेत प्रभुओ के आसन पर बैठने का दुस्साहस किया है। वह झपट कर हमारे पास आया और बोला, "उठो इधर से, पीछे जाकर बैठो।" मगनकाका ने उसे तुरन्त उत्तर दिया, "यह नही हो सकता।" कडक्टर अकड गया और तेज होकर डाटने लगा, "तुमको उठना ही पडेगा।" मगनकाका ने दृढता से कहा, "जो चाहो सो करो, मगर हम यहा से नही हटेगे।"

कडक्टर तिलमिला उठा। उसने घटी बजाई और ट्राम रोक ली। फौरन ट्राम का चालक कडक्टर की सहायता के लिए नीचे की मंजिल से ऊपर आगया। कुलियो को आगेवाली बेंचो पर देखकर उसकी आखो से अगारे बरसने लगे। कडक्टर को दुगुना जोर मिला। उसने मगनकाका की पीठ पर जोर का घूसा जमाया। फिर भी मगनकाका अपनी जगह से नही हटे। तब दोनो ने मिलकर मगनकाका की बाहे पकड ली और वे उनको बेंच से उठाने के लिए खीचने लगे।

हमारी ओर से घूसे का जवाब घूसे से देने की बात थी ही नही। मगनकाका ने बेंच के जगले को बडी मजबूती से पकड लिया। इस कारण दोनो गोरे मिलकर भी मगनकाका को आसानी से नही खीच सके। तब एक गोरे ने उनकी कमर को अपने हाथ से कस लिया और दूसरे ने बडी मुश्किल से उनकी मुट्ठिया जगले से अलग की और फिर ऊपर वाली खिडकी से उनको उन्होने नीचे की ओर ढकेल दिया। मगनकाका कसरती जवान थे, फुर्तीले थे, इसलिए गिरते-गिरते भी उन्होने अपना सतुलन सभाल लिया और जमीन पर गिरने से पहले ही नीचे वाली मंजिल के जगले को पकड लिया। और इस प्रकार भारी चोट से बच गए। मगनकाका के बाद इसी तरह हमारी मडली के प्रत्येक व्यक्ति को पकड-पकड कर

और धक्के दे-देकर सीढी के रास्ते से नीचे लुढका दिया गया। मै बच्चा था, इसलिए मुझे उन लोगो ने हाथ नही लगाया। परन्तु जब सब लोग नीचे फेक दिये गए तो मेरे लिए अपने-आप नीचे उतरे बिना कोई चारा न रहा। मुझे डर था कि मगनकाका को सख्त चोट आई होगी परन्तु जब मै नीचे गया तो देखा कि वह तो खडे-खडे मुसकरा रहे है।

ट्राम बिजली के वेग से अदृश्य हो गई। हम लोग पैदल ही 'गोदी' (डाकयार्ड) तक पहुचे। स्टीमर पर जमनादासकाका सवार हुए, अलविदा हुई, और शीघ्र ही स्वदेश मे परस्पर मिलने का दिन निकट आने की आशासे हम पैदल लौट पडे।

कुछ दूर चलने पर हम ट्राम की पटरियो के पास पहुचे। ट्राम पर जो अपमान हुआ था वह फिर आखो के आगे घूम गया। मन मे जोश आ गया। हमने कडक्टर और ड्राइवर के गुडेपन का प्रतिकार करने का निश्चय किया। मणिलालकाका का आग्रह था कि उन ट्रामवालो का दुबारा मुकाबला किया जाय। हम भारतवासी ऐसे नही है जो पगपग पर ठोकरे खाते फिरे, यह बात गोरो के गले उतारने का हमने मन-ही-मन निश्चय कर लिया। अखबारो मे समाचार प्रकाशन करवा देने से काम बनने वाला नही था और वहा के गोरे अखबार उसे प्रकाशित करे, यह उम्मीद रखनी भी बेकार थी। ट्राम कम्पनी के मुख्य कार्यालय या पुलिस-थाने मे भी सुनवाई नही होती थी। सारा प्रश्न ही गोरे और काले के बीच का था। कुछ देर यह सब चर्चा होती रही। मणिलालकाका का सुझाव था कि उसी नम्बर की ट्राम गाडी पर दुबारा सवार होकर उन्ही आगे की बेचो पर बैठा जाय और दृढतापूर्वक सत्याग्रह किया जाय। बडो ने भी नवजवान मणिलालकाका की बात स्वीकार की और लगभग पौन घटे तक उसी स्थल पर हम लोग ट्राम की प्रतीक्षा मे खडे रहे। परन्तु वह ट्राम वहा आई ही नही और उस पर हमला करने का हमारा जोश मन-का-मन मे ही रह गया। आधी रात का समय हो चुका था इसलिए हम लोग अधिक प्रतीक्षा करना छोड कर और अपमान का कडुआ घूट पीकर पैदल ही रुस्तमजीकाका के घर पहुचे।

: ४० :

बापूजी की चिकित्सा में

मेरे छोटे भाई कृष्णदास को मियादी बुखार हो गया था और उसने उग्र रूप धारण कर लिया था। छ वर्ष से भी छोटी आयु का वह बालक

सूख कर अस्थि-पिजर-मात्र रह गया था। चौदह दिन समाप्त होने पर भी उसका बुखार हलका नही हुआ था। टाल्स्टाय-फार्म मे जमनादासकाका ने कई रोगियो को बापूजी के पास रह कर, उनकी चिकित्सा-विधि से रोग-मुक्त होते देखा था। इस आधार पर राजकोट जाते हुए वह सलाह देते गए कि उसे बापूजी को दिखाना चाहिए। उसकी हालत नाजुक जान माताजी और पिताजी ने बापूजी की सलाह के अनुसार जो जानते थे किया और बापूजी को तुरत खबर भेज दी। तत्काल बापूजी का तार आया, "मै आ रहा हू।" तीसरे दिन शाम को वह फीनिक्स आ पहुचे। उनको लिवाने के लिए मै भी स्टेशन पर गया था। ट्रेन से उतरते ही उन्होने कृष्णदास के स्वास्थ्य के बारे मे बारीकी से पूछताछ की। जब हम लोग घर पहुचे तब अन्धेरा हो गया था। कृष्णदास को देखकर और जरूरी सूचनाए देकर बापूजी अपने घर चले गए।

दूसरे दिन सवेरे अचानक मुझे तेज बुखार हो आया। बापूजी ने मुझे देखा और निदान लिया, "प्रभु को भी मियादी बुखार है।" और उन्होने मेरी भी चिकित्सा का काम अपने हाथो मे ले लिया। बापूजी ने कृष्णदास को सबसे पहले दूध देना बन्द कर दिया, और पानी मे केवल कागजी नीबू निचोड कर दिन मे चार-पाच बार दो-दो घटे के अतर से देने लगे। इसके उपरात उसे दिन मे दो बार ठडे पानी से भीगी चादर मे लपेट कर कमरे के बाहर खुली हवा मे सुलाने का प्रयोग आरम्भ किया। शरीर पर गीली चादर लपेट कर उस पर कम्बल लपेट दिया जाता था। चादर के अन्दर कृष्णदास पसीने से तर हो जाता था। जब गरमी सहन नही होती थी तब उसे चादर से निकाला जाता था। और बन्द कमरे मे गीले अगोछे से सारा बदन पोछ कर धुले हुए साफ कपडे पहना कर बिस्तर पर लिटा दिया जाता था।

तीन या चार दिन मे उसका ज्वर हलका पड गया और घर भर मे जो चिंता फैली हुई थी वह विलीन हो गई। कृष्णदास को हसाने और प्रसन्न रखने के लिए बापूजी बात-बात में जो विनोद किया करते थे उसके फल-स्वरूप घर में चारो ओर हसी गूज उठती थी। सुबह, दोपहर और शाम को प्रतिदिन तीन बार बापूजी हमारे घर आते थे। पानी मे अपने हाथ से नीबू निचोड कर और छान कर देते थे और सावधानी रखते थे कि नीबू के अदर का ज़रासा रेशा भी उसके पेट में न जाय। भीगी चादर मे लपेटने के समय अपने हाथ मे घडी लेकर स्वय खड़े रहते थे और पन्द्रह-बीस मिनट तक अनेक तरह की बाते करके कृष्णदास को खुश कर देते थे। सारे वातावरण मे

प्रसन्नता का ऐसा अमृत बरसने लगता था कि रोगी का कष्ट, और रोग का विष चाहे कितना ही विषम क्यो न हो, उसे दबना ही पडता। बापूजी ऐसे वैद्य थे कि उनके उपचार जिस मात्रा मे प्राकृतिक चिकित्सा के थे, उससे कही अधिक मन पूत थे और देह का अपेक्षा देही पर अधिक असर डालते थे।

इक्कीसवे दिन, अर्थात् बापूजी की चिकित्सा शुरू होने के चौथे या पाचवें दिन बाद, कृष्णदास सर्वथा ज्वर-मुक्त हो गया, केवल निर्बलता बाकी रही।

मुझे बुखार था, परतु मेरे लिए किसी को विशेष चिता नही थी। बापूजी की छाया मे मेरे ज्वर का उग्र रूप हुआ ही नही। जिस दिन बुखार आया उसी दिन से मेरे पेडू पर चौबीसो घटे गीली मिट्टी की पट्टी बधी रहती थी। काली चिकनी मिट्टी से ककड अलग करके उससे तैयार किये गए गारे को डेढ बालिश्त चौकोर कपडे पर दो अगुल मोटाई मे कच्ची ईट की तरह फैलाया जाता था और नाभि के नीचे उसे बाध दिया जाता था। घटे, डेढ-घटे बाद जब वह पट्टी सूख कर कडी हो जाती थी तब पट्टी बदल दी जाती थी। सध्या के समय प्रति दिन पाव घटे तक कटि-स्नान कराया जाता था, जिसमे नाभि के ऊपर और घुटने से लेकर पजो तक का हिस्सा कम्बल मे ढक कर पेडू पर रुमाल से पानी के अन्दर मालिश की जाती थी। ज्वर का पता चलने पर जब पहली बार बापूजी ने मुझे कटि-स्नान के लिए पानी मे बैठाया, तब मुझे जोर की नीद आ रही थी, इसलिए बैठना अच्छा नही लगता था। फिर भी बापूजी ने मुझे 'टब' मे बैठाया और अपना हाथ मेरे सिर के नीचे रख कर पानी मे बैठे-बैठे ही आराम से नीद लेने की सुविधा कर दी।

टब मे बैठते समय ठडे पानी की वजह से मुझे कपकपी मालूम हुई, परन्तु बापूजी ने सीने और पैरो पर इस तरह कम्बल लपेट दिये थे कि शरीर मे गरमी आ गई और मै सो गया। पिताजी लगभग आध घटे तक मेरे पेडू को पानी मे ही मुलायम कपडे से रगडते रहे। इसके बाद मुझे बाहर निकाल कर, अगोछे से पोछ कर और कपडे पहना कर चारपाई पर सुला दिया। रात के समय एनीमा देकर मेरी आतो को जितना हो सका साफ किया गया।

पहले तीन दिन इसी प्रकार बीते। खाने के लिए कुछ भी नही और पीने के लिए केवल गरम पानी। मुझे भी खाने-पीने की इच्छा नही होती थी। चौथे दिन पानी मे नीबू निचोड कर दिया गया। यह क्रम छ दिन तक चला। साथ-साथ नित्य प्रति इसके अलावा रोज एक बार 'एनीमा' और दो बार कटि-स्नान का क्रम चालू रहा।

मेरी चारपाई ऐसे वरामदे मे रखी गई थी जो पश्चिम और दक्षिण दिशा मे विलकुल खुला था। वहा पर खुली और तेज हवा और सायकाल की धूप आती थी। दक्षिण की ओर गुलाव की सुन्दर फुलवारी थी और पश्चिम मे फल-वृक्षो का सुन्दर वागीचा। मै खाट पर पडा-पडा इन दृश्यो को देखता रहता था, इसलिए समय सहज ही कट जाता था। वहा के तेज वायु से शरीर का रक्षण करने के लिए सावधानी से मुझे हर समय कम्वल ओढाकर रखा जाता था, केवल मह और नाक को खुला रखा जाता था। रात के समय चारपाई वरामदे से कमरे मे हटा दी जाती थी, परन्तु कमरे मे भी खिडकिया खुली रखी जाती थी। एक वडी खिडकी मेरे सिरहाने पर थी। मै चौवीस घटो मे लगभग अठारह घटे गहरी नीद सोता था।

वापूजी ने दस दिन तक मुझ पर अपने मिट्टी-पानी के प्रयोग किये। उसके वाद चिकित्सा के क्रम मे थोडा परिवर्तन किया। रोज सवेरे आकर वह मेरी जीभ की जाच किया करते थे। ग्यारहवे दिन सवेरे उन्होने जिह्वा-परीक्षा के वाद मुझसे कहा, "अव तेरी जीभ साफ हो गई। आज मै कुछ खाना दूगा।"

दस दिन तक गरम पानी के सिवा मेरे पेट मे कुछ गया ही नही था, इसलिए दो-एक दिन से खाने की इच्छा जोर पकड रही थी। वापूजी ने स्वय ही यह वात कही, इसलिए मै वहुत खुश हो गया। खाने की स्वीकृति मिलने के दो घटे वाद मुझे सवसे पहले नमक या चीनी के विना नीवू का पानी ही मिला। दोपहर के वाद दो 'ग्रेनडेला' (एक प्रकार का फल) तोड कर उसका छना हुआ रस दिया गया।

'ग्रेनडेला' फल मुझे वहुत प्रिय था। भारत मे मैने कही वह फल नही देखा। पर दक्षिण अफ्रीका मे वह विना खास सार-सम्हाल के पैदा होता है। उसकी सेम की जैसी वेल होती है। कच्चे फल का रग हरा होता ह और पकने पर वह जामुन या वैगन का-सा हो जाता है। आकृति मे वह अडाकार और वडे कागजी नीवू या छोटी नारगी के वरावर होता है। फल के भीतर केसर के रग का पतला रस निकलता है और उसके वीज काले और पपीते के वीज के वरावर वडे और चपटे-से होते है। उसके स्वाद की तुलना मीठे कधारी अनार के स्वाद से की जा सकती है।

ज्वर-मुक्त होने के वाद भी कई दिन तक वापूजी ने मुझे या कृष्ण को दूध नही दिया। हमारी निर्वलता हटाने के लिए उन्होने फलो के रस का ही आहार हमारे लिए रखा। मेरा ज्वर छूटने के तीसरे दिन से मुझे अनन्नास का रस मिलने लगा। एक गिलास रस पीने के वाद मुझे और कुछ

लेने की भूख नही रहती थी। सुवह् पिया हुआ रस शाम तक काम दे जाता था ।

अनन्नास का रस जव भली-भाति हजम होने लगा और चारपाई मे अपने-आप वैठने-उठने की शक्ति आ गई तव हम लोगो को वापूजी ने केला देना आरम्भ किया। आधे केले से शुरु किया गया। वापूजी अपने हाथ से केले को छील कर धीरे-धीरे कुचलते थे और फिर उसे मथ कर दूध जैसा तरल वना देते थे। उसका एक कण भी ठोस न रहने पाता था। इसमे इतना अधिक समय खर्च होता था कि कृष्णदास तो वहुत अधीर हो उठता था। परन्तु वापूजी पूरे धैर्य से केले को मथते जाते थे और कृष्ण को वातो मे लगाए रहते थे। केला मथ जाने के वाद उसमे एक नीवू निचोडते थे और फिर काफी देर तक उसका सम्मिश्रण करते थे। सुन्दर पेय वनने के वाद धीरे-धीरे छोटे चम्मच से हमे चूसने ('सिप' करने) के लिए वह दिया जाता था ।

जव तक विस्तर छोड कर हम दोनो खेलने न लगे, हमे काफी शक्ति प्राप्त न हो गई, तव तक वापूजी ने हमको फलो के रस पर ही रखा। कमजोरी मिटाने के लिए अन्न, शाक, खिचडी, दलिया अथवा मूगफली या वादाम की जैसी कोई चीज दी गई हो, ऐसा याद नही पडता। औपधि के नाम से तुलसी या नीम जैसी पत्ती और मसाले के नाम से काली मिर्च जैसी वस्तुए भी हमे नही दी गई ।

मै जव ज्वर-मुक्त हुआ उसके छ-सात दिन वाद मैने वापूजी को पिताजी से यह कहते हुए सुना "यदि इन दोनो भाइयो की वीमारी ने मुझे यहा पर रोक न रखा होता तो आज से पहले ही मै 'फार्म' लेकर यहा आ गया होता। अव पूरे 'फार्म' को समेट कर ही यहा आने का मेरा विचार है। ऐसा करने मे पन्द्रह-वीस दिन सहज ही वीत जायगे। दुवारा वहा जाना न पडे इसलिए वहा से सभी को अपने साथ लिवा लाऊ यही उचित होगा।" वापूजी के ये उद्गार सुनकर मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा।

मै स्वय टाल्स्टायवाडी जाने के लिए दो वरस से छटपटा रहा था। अन्त मे ईश्वर ने मेरी उस उत्कठा को दूसरे तरीके से पूरा किया। गोखले-जी के लौट जाने के वाद लगभग तीसरे महीने मे टाल्स्टायवाडी के सभी शिक्षक और विद्यार्थियो के साथ वापूजी फीनिक्स आ गए और फीनिक्स ही अव उनकी सारी प्रवृत्तियो का केन्द्र-स्थान वन गया।

: ४१ :

टाल्स्टायवाड़ी की स्मृतियां

टाल्स्टायवाडी मे बापूजी ने शरीर को सुदृढ, सशक्त और बहुत ही फुर्तीला बनाने पर जोर दिया था। इसलिए वहा सभी के बीच अपना वजन बढाने की तथा अधिक-से अधिक चलने की होड लगी रहती थी।

फार्मवासियो मे एक दतकथा ऐसी प्रचलित हो गई थी, जो वहा की गतिविधि की तथा वातावरण की लाक्षणिक रूप से सूचक है और बहुत विनोदपूर्ण भी है।

डरबन नगर मे रहने वाले एक गुजराती व्यापारी का सुपुत्र कुछ महीने फीनिक्स मे रह गया था और फीनिक्स मे मेरा सहपाठी रह चुका था। बाद मे उसके पिता ने उसे बापूजी के पास टाल्स्टायवाडी भेजा था। वह स्वभाव से बहुत सरल था और हर किसी की बात को बिना परखे ही मान लेने वाला था। उसका अहभाव इतना अधिक और असतुलित था कि वह हर बात मे अपने को प्रथम बनाने की धुन के कारण कई बार बुद्धू बन जाता था। लडके भी उसका गुणगान करते अघाते नही थे।

टाल्स्टायवाडी के शिक्षक और विद्यार्थी बार-बार तुलना किया करते थे कि शरीर की ऊचाई, मोटाई एव तौल मे कौन बाजी मारता है। वजन मे क्या घट-बढ हुई, यह जानने के लिए अक्सर सब लोग अपना तौल करने जाया करते थे। एक बार तोल के समय कुछ लडको ने मिल कर इस वणिक-पुत्र को घेर लिया। गणित के वर्ग मे प्रश्न का हल निकालने मे वह कमजोर नही था और 'टन' बडे-से-बडे वजन को कहा जाता है, यह उसको मालूम था। पर इस बात का बिलकुल अन्दाज न था कि 'टन' का वजन कितना अधिक होता है। जब लडको ने गम्भीरता-पूर्वक काटा देखकर उसे बताया कि तुम्हारा वजन चालीस टन है तब उसने इस बात का भरोसा कर लिया और मन-ही-मन फूला न समाया। उछल-उछल कर सबसे कहने लगा "देखोजी, मै सबसे आगे निकल गया। मै तौल मे अब चालीस टन हू।"

वह दौडकर बापूजी के पास भी पहुच गया और उसने उनको भी बता दिया कि "मै चालीस टन हू।" बापूजी तो विनोद-प्रिय थे ही। लडको के इस मनोविनोद मे वह भी शामिल हो गए और उस लडके को बडी गम्भीरता से उन्होने बधाई दी। चारो ओर उसकी प्रशसा फैल गई, हर

मुह से यह वात कही जाने लगी, "वाह भाई, कमाल है! इन जनाव ने मवसे वाजी मार ली! पूरे 'चालीस टन' हो गए।" अपनी इस प्रशसा मे हमारे इस बाल-मित्र को इतना हर्ष होता था कि प्रशसा की बौछार के पीछे जो व्यग था वह उसकी समझ मे ही नही आता था। कई दिनो वाद उसको पता चला कि सबने मिलकर उसे बुद्धू बनाया था। लेकिन उसके लिए 'फार्टी टन' (चालीस टन) का जो सबोधन प्रचलित हो गया था वह कायम ही रहा। उसके बाद सभी लोग उसे "फार्टी टन वोस्टर" अर्थात् "चालीस टन की डीग हाकने वाला" नाम से पुकारते रहे।

बापूजी ने जब फार्म में भोजन के नये-नये नियम बनाये, आमिष-भोजियो को सयुक्त रसोई मे निरामिष भोजन मे ही सतोष करने के लिए समझाया और रमजान-महीना तथा श्रावण-मास साथ-साथ आने पर मुसलमान लडको को रोजा रखने को और हिन्दुओ को एक ही समय भोजन करने को प्रोत्साहित किया, तब उन्हे स्वादिष्ट रसोई बना-बना कर भोजन कराने की पूरी सावधानी रखी थी। वह अपने ही हाथ से पकाते और परोसते थे। जब उन्होने विद्यार्थियो से अलोने आहार का प्रयोग करवाया तब वह अपनी सारी वत्सलता से लडको को सरोबार रखते थे।

छात्रावास मे ऊधम मचाने से भी बढकर शिक्षको को तग करने मे फार्म के कुछ लडके मशहूर हो गए थे। वे बापूजी की धाक मानते थे। श्री-कैलनबैक से भी डरते थे। बापूजी जब मौजूद होते तो कायदे से चलते थे और कैलनबैक से शरारत करने का शायद उन्हे मौका ही नही मिलता था, क्योकि उनके सामने वे लगातार काम मे लगे रहते थे। कुदाल लेकर खोदने या फल-वृक्ष की टहनियो को कतरकर व्यवस्थित करने का काम कैलनबैक इतनी तेजी से करते कि काट-छाट कर गिराई हुई टहनियो को खाद के गड्ढे में पहुचाने में तीन-तीन जवान भी थक जाते थे, दूसरे, वह इतने खबरदार थे कि जो लडका काम करने से बचने की कोशिश करता था उसे अवश्य ही अपने साथ रखते थे। जब बापूजी और कैलनबैक किसी काम से बाहर जाते थे तब अन्य शिक्षको को तग करने मे लडके कोई कसर उठा नही रखते थे।

फार्म मे दिलचस्प समय वह होता था, जब कडा परिश्रम करने के बाद मध्याह्न मे कैलनबैक साहब और बापूजी भोजन के लिए बैठते थे। दोनो केवल फलाहारी थे, फिर भी ठीक डेढ घटे तक उनका भोजन चालू रहता था। चौबीस घटो मे वे केवल यही भोजन पाते थे और इस एक वक्त के भोजन में भी बडी पाबदिया थी। नमक नही, मिर्च मसाले नही, दूध-घी नही,

चीनी-गुड नही और अन्न या द्विदल धान्य भी नही। इसके अतिरिक्त जो कुछ मिले उसे आग पर पकाये बिना ही खा लिया करते थे। केले और मूगफली दो चीजे फलाहार मे मुख्य होती थी। इन दोनो को खूब चबा-चबाकर मुह मे घोलकर खाने का बापूजी का नियम था। प्रात काल से मध्याह्न तक खेत मे कडा परिश्रम करने और टाल्स्टाय फार्म की आरोग्य-वर्द्धक जलवायु के कारण भोजन मे केले और मूगफली की मात्रा कम नही रखी जा सकती थी, इसलिए वास्तव मे बापूजी को भोजन का वह डेढ घटा भी कम पडता था, और दूसरे काम की जल्दी होने के कारण इतने समय मे अपना फलाहार समाप्त करने के लिए शीघ्रता करनी पडती थी। फार्म के लडको को यह डेढ घटा आराम और खेल-कूद के लिए मिल जाता था। इसके बाद वहा की पाठशाला मे पढाई का काम शुरू होता था।

पाठशाला के मुख्य शिक्षक बापूजी स्वय थे, पढनेवालो की कक्षा अनेक थी और कक्षा-विद्यार्थियो की मातृभाषा भी चार-पाच प्रकार की थी—गुज-राती, हिंदी, तमिल और अग्रेजी भाषी लडके थे। कुछ लडके जो ट्रासवाल मे ही जन्मे थे, उनके लिए डच लोगो की भाषा सुगम थी। पूरे नौजवान युवक और दूध के दातवाले लडके एव लडकिया भी थी। एक-दो बच्चे तो इतने छोटे थे, जिनको हमेशा गोद मे ही रखना पडता था। जेल गये हुए सत्याग्रहियो के बीवी-बच्चो को बापूजी ने फार्म मे आश्रय दिया था। इस प्रकार जिस बच्चे के पिता मौजूद न हो उसके पिता का काम भी बापूजी अपने ऊपर ले लेते थे। किसी-न-किसी बच्चे को गोद मे लेकर प्राय खडे-खडे ही बापूजी लडको को पढाया करते थे। कभी कोई लेख लिखवाते थे और कापिया जाचते थे। यदि मै भूलता नही हू तो दो-एक लडको ने मुझे यहा तक बताया था कि अनेक बार बापूजी ने पैर से कलम पकडकर जाची हुई कापी पर दस्तखत किये थे, क्योकि नन्हे बच्चे को गोद मे लेने के कारण उनके दोनो हाथ घिरे रहते थे। फार्म की पाठशाला मे इस तरह पढाई का काम मुश्किल से दो घटे होता था। फीनिक्स मे आने के बाद ही बापूजी के पास रहनेवाले लडको की पढाई कुछ व्यवस्थित रूप से शुरू हुई।

फार्म का एक असाधारण कार्यक्रम पैदल प्रवास का था। टाल्स्टाय-वाडी से जोहासबर्ग २१ मील था। दो बजे रात को चलकर दिन निकलते-निकलते जोहान्सबर्ग पहुचना सभव होता था। कई बार बापूजी इस पैदल प्रवास की होड भी करवाते थे। ऐसी एक होड मे जमनादासकाका ने श्री-कैलनबैक को भी हरा दिया था और इनाम पाया था। उन्होने चार घटे पैंतीस मिनट मे २१ मील की वह पैदल यात्रा पूरी की थी।

वहा की सख्त ठड मे बडे जोर का पाला पडता था । सूर्योदय से पहले पानी पर बरफ भी जम जाया करती थी । इस पर बापूजी ने फार्म-वासियो से बूट और जुराब का त्याग करवा दिया था । ऐसी हालत मे नडके ही पैदल चल पडना आसान काम नही था । मर्दाने खेलो की जैसी ही वीरता का यह काम था । यदि कोई उनमे ढीला पडता तो बापूजी उसकी बराबर खबर लेते थे ।

एक बार श्री कैलनबैक ने जमनादासकाका का कायम किया हुआ चार घटे पैंतीस मिनट का रेकार्ड तोडने का बीडा उठाया । सदा के नियमानुसार वह टाल्स्टायवाडी से अपनी पीठ पर बगल-थैला लादकर चल पडे । रास्ते मे समय होने पर कलेवा करने का सामान बगल-थैले मे था । परन्तु कधे पर कसा हुआ बगल-थैला खोलने और उसमे खाने का सामान निकालने तथा फिर से थैला कधे पर बाधने मे काफी समय खर्च हो जाने का भय था । इसलिए अपनी जेब मे चादी के सिक्के रास्ते के किसी होटलवाले के हाथ मे देकर उन्होने नाश्ता खरीद लिया और चलते-ही-चलते जलपान किया । सामान की खरीद के बाद दूकानदार से बची हुई रेजगारी वापिस लेने के लिए भी कैलनबैक नही रुके । इस प्रकार पिछला रेकार्ड चन्द मिनटो से तोडने मे वह कामयाब हुए । जब बापूजी को इस बात का पता चला तब उन्होने श्री कैलनबैक को आडे हाथो लिया और कहा कि ऐसा साहबपना बिलकुल अशोभनीय है कि बगल मे खाना मौजूद हो तब भी पैसे डालकर दूसरा खाना खरीदा जाय । बापूजी की इस टीका के कारण श्री कैलनबैक बहुत मायूस और रोने-से हो गए थे ।

प्रति सप्ताह कम-से-कम एक बार बापूजी भी टाल्स्टाय-फार्म से जोहान्सबर्ग पैदल जाया करते थे । श्री कैलनबैक भी उनका साथ देते थे । मुश्किल से दो या तीन घटे रात को झपकी लेकर बापूजी उठ खडे होते थे और ठीक दो बजे, ब्राह्ममुहूर्त्त मे पहले ही, पैदल यात्रा आरम्भ कर देते थे । बापूजी की रफ्तार कम नही थी । पाच या साढे पाच घटे मे वह अपने आफिस तक का २१ मील का पैदल प्रवास पूरा कर लेते थे । प्रात काल पैदल जाने के बाद उसी दिन शाम को बापूजी और दूसरे सब लोग रेलगाडी से फार्म लौट आते थे ।

एक बार का किस्सा है । जोहान्सबर्ग से कई लडको के साथ बापू-जी फार्म से लौट रहे थे । साथ मे बोरी-भर मूगफली थी । एक गोरा टिकट-बाबू बापूजी से भिड गया कि उस बोरी को तुलवाकर आवश्यक रेल-महसूल दिया जाय । बापूजी ने उसे समझाया कि वह प्रवासियो के

भोजन की चीज है, उसका किराया लेने का कानून नही है। परन्तु वह ऊचे दिमाग वाले टिकट-बाबू बापूजी की बात को समझ नही पाते थे। तब बापूजी ने अपने साथवाले सभी लडको को सारी मूगफली बाट दी और बोरी खाली कर दी। लडके भी तुरन्त मूगफली छील-छीलकर खाने लगे। यह देखकर वह टिकट-बाबू खिसिया गया और चुपचाप वहा से चलता बना।

टाल्स्टाय-बाडी के जीवन मे उत्साह था, आनन्द था। एक ओर कठिन परिश्रम और कठोर तप था तो दूसरी ओर बापूजी की वत्सलता और प्रेम बरसता रहता था।

: ४२ :

साधना-भूमि फीनिक्स

बापूजी टाल्स्टाय-बाडी (फार्म) का सारा परिवार लेकर फीनिक्स आये, उस समय गो-धूलि वेला थी। बापूजी के स्वागत के लिए हम लोग कुछ दूर चलकर आगे गये थे। वह डरबन से सोलह मील पैदल चलकर आ रहे थे। फीनिक्स आश्रम की सीमा से करीब मील भर दूरी पर हमें उनके दर्शन हुए। सूर्य-प्रकाश पश्चिम की ओर सिमट रहा था। पगडडी के दोनो ओर के ऊचे-ऊचे 'वॉटल' वृक्षो पर सध्या की छाया बिछती जा रही थी। उस श्यामल आभा मे बापूजी के शुभ्र वस्त्र बहुत सुन्दर लग रहे थे। वह आधी बाह की कमीज और पतलून पहने हुए थे। पतलून को नीचे से करीब घुटनो तक मोड रखा था। लम्बे-लम्बे डग रखते हुए और चारो ओर प्रसन्नता बखेरते हुए बापूजी तेजी से सबसे आगे आ रहे थे। उनके पीछे तीन-तीन चार-चार की टोलियो मे छोटे-बडे फार्मवासी घिसटते हुए-से चले आ रहे थे।

हम लोगो ने बापूजी को प्रणाम किया। फिर उन टोलियो के साथ मिलकर हम फीनिक्स की ओर बढे। पिताजी और मगनकाका बापूजी के साथ बातचीत करने लगे और मैंने फार्म-वासियो पर उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि डाली। उनमें से बहुतो के नाम मैंने सुन रखे थे, परन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं उन्हे नही पहचानता था।

अधकार के साथ ठडक भी बढती जा रही थी। औरो के मुका-बले बापूजी का बदन ज्यादा खुला हुआ था। स्वागत के लिए आनेवालो मे

किसी के पास एक शाल थी और उसने वह बापूजी को ओढने के लिए दी, किन्तु उन्होंने उसे लौटा दिया और कहा,"नही, कोई खास ठडी नही है, ओढने की मुझे जरा भी जरूरत नही है। प्रभु-दास को इसे ओढा दो।" मुझे ठड लग रही थी, बापू के प्रेम के कारण मुझे शाल मिल गई और मै ठडक से बच गया।

बापूजी के मकान पर, जो 'बडा घर' कहलाता था, पहुचते-पहुचते काफी अधेरा हो गया, थके-थकाये सब लोगो ने जब वहा पर पडाव डाला तब सचमुच वह घर 'बडा घर' बन गया। वास्तव मे उस घर मे केवल इतनी जगह थी कि बापूजी का केवल निज का परिवार सुविधा से रह सके, किन्तु अब उस घर मे दस-बारह गुने आदमी बढ गए थे। कोठी या बगला तो वह था नही। टीन की चादरो से बनी हुई एक बडी-सी कुटिया ही उसे कहना चाहिए। भीड के बढ जाने के बाद पूज्य बा और बापू के लिए अलग कोठरी तो दरकिनार, अलग कोना भी नही बच पाया था।

दूसरे दिन सुबह मै नवीन फीनिक्स का दर्शन करने के लिए निकल पडा। हमारे रहने के मकान के पूर्व मे श्री पुरुषोत्तमदास देसाई का और पश्चिम की ओर कुछ दूरी पर श्री आणदलाल गाधी का मकान था। महीनो से ये दोनो मकान खाली पडे थे। अब इन दोनो मकानो मे जहा देखो आदमी-ही-आदमी नजर आ रहे थे। नए आनेवालो मे से कई के लिए सोने-रहने की व्यवस्था इन मकानो मे की गई थी, परन्तु फार्म से आये हुए सभी फार्मवासियो के लिए भोजन की व्यवस्था 'बडे घर' मे ही निश्चित की गई थी। इस कारण अब 'बडे-घर' का नाम रसोईघर पड गया।

दोपहर को जब मै खा-पीकर बडे घर पहुचा तो देखा कि उस घर के बीच के खड मे मेज लगी हुई थी और उसके चारो ओर बेंच व कुर्सिया डाल-कर बहुत से आदमी सटकर बैठे थे और भोजन कर रहे थे। अनुमान से तीस से भी ज्यादा व्यक्ति होगे। बापूजी खडे-खडे सारी मेज की प्रदक्षिणा करते हुए परोसने का काम कर रहे थे। भोजन का ढग देखकर मै और भी चकित रह गया। प्रत्येक व्यक्ति के पास तामचीनी का केवल एक-एक तसला और एक-एक चम्मच थी। दाल-भात, शाक, रोटी सब कुछ बापूजी उस एक ही तसले मे परोसते थे। मेरी समझ मे यह नही आया कि बापूजी एक ही तसले मे इतनी सारी चीजे क्यो परोस रहे है और थाली-कटोरो का प्रयोग क्यो नही कर रहे है। भोजन पानेवाले सभी व्यक्ति तसले की हरेक चीज का अलग-अलग स्वाद लेने की भरसक कोशिश करते थे और बापूजी भी प्रत्येक व्यक्ति को हर चीज तसले के उसी कोने में

परोसते थे जहा वह इशारा करता था। फिर क्या कारण था कि सब कुछ एक ही बरतन मे परोसा जाय ? परन्तु किमी मे यह प्रश्न पूछने का मुझे साहस नही हुआ।

भोजन से निवृत्त होने पर मव लोग फार्म से आये हुए सामान को खोलने-सजाने मे जुट गए। बापूजी हथौटी, कीले और आरी लेकर पुस्तको के लिए खुली अलमारी (बुक स्टैड) बनाने मे लग गये। वहा पर बातचीत क्वचित ही होती थी। बापूजी ने अपने कमरे की फर्श मे लेकर छत तक पहुचने वाली सोलह-अठारह फुट ऊची एक खुली अल्मारी सूरज छिपने तक ठीक-ठाक करके खडी कर दी। उसकी सीढिया और तख्ते पहले मे तैयार ही थे।

रात के समय उसी मेज के चारो ओर जिस पर भोजन किया गया था, सभा जुटी। दो-एक भजन होने के बाद बापूजी का प्रवचन हुआ। अपनी स्मृति के आधार पर उस प्रवचन का सार यहा देता हू

"मान लो जेल मे जाने का प्रसग नही आया और हिन्दुस्तान जाना पडा तो भी हमे सादगी और कडे व्रतो का पालन करना होगा। वहा जाकर हम लोगो को यहा से भी अधिक काम करना है, इसलिए यहा पर फीनिक्स मे कई ऐसे नियम अमल मे आयगे जो टाल्स्टाय-फार्म पर नही थे। इन नियमो को जो तोडेगा वह फीनिक्स मे रहने योग्य नही रहेगा।

"पहला नियम तो यही कि फार्म की तरह यहा भी जब चाहो तब वृक्ष से फल तोडकर खाय नही जा सकते। बाग के वृक्ष से ही नही, जगल के फल भी कोई इस तरह न खाय। भोजन पर बैठकर दिन मे तीन बार जो खाना मिलता है उसके अलावा किसीको फल की एक फाक तक अपने मुह मे नही डालनी चाहिए। भोजन के लिए बैठे तब भर पेट खा ले। बाग के फल भी भोजन के समय पर्याप्त मिल जायगे। लेकिन इसके बाहर लालच-वश कोई छोटा-सा फल भी तोडेगा तो उसे चोरी समझनी चाहिए।

"दूसरा नियम यह है कि अपने से बडे के प्रति हरेक को विनय से रहना चाहिए और अदब रखना चाहिए। बडो के प्रति उद्दडता शोभा नही देती। ऐसा नही होना चाहिए कि जब तक मै न कहू, तब तक किसी की बात पर कान ही न दिया जाय।

"यह सब अमल मे लाने के लिए तुम लोग तरोताजा हो जाओ, इसलिए मै तुम लोगो को सात दिन की छुट्टी देता हू। अगले सोमवार से हमारी पाठशाला शुरू होगी। आगामी इतवार की सध्या तक तुम लोग जी-भर कर खेल लो, जितना आलस करना हो कर लो और जो मौज करनी
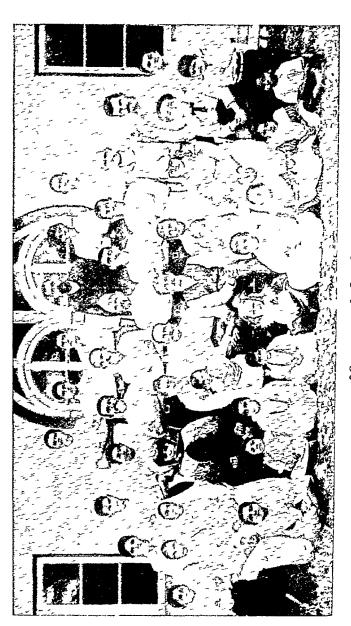
फीनिक्स-आश्रम के निवासी
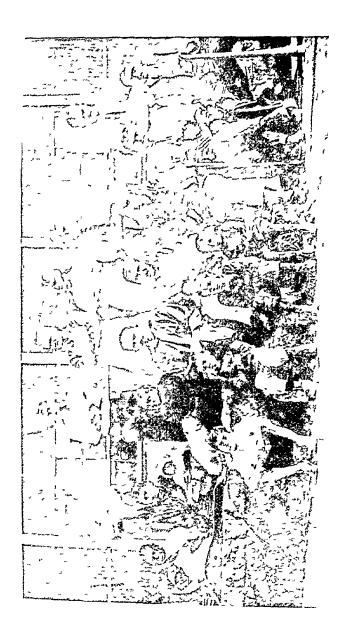
टाल्स्टाय-वाडी के निवासी

हो कर लो। फिर यह मत कहना कि बापूजी खेलने नही दे रहे है, काम-ही-काम करवा रहे है। पहले खेल लो, बाद मे हम कस कर काम करेगे।"

छुट्टी के सप्ताह मे बापूजी स्वय बहुत व्यस्त रहे। वह दिन भर टाल्स्टाय-वाडी मे आया हुआ सामान व्यवस्थित करने और नई पाठशाला की तैयारियो मे लगे रहे।

विद्यार्थियो में बडे और छोटे लडको की दो टोलिया-सी बन गई थी। बडे विद्यार्थियो ने सात दिन की छुट्टिया नहाने-धोने, बिस्तरो को धूप मे फैलाने और सारी दुपहरी तानकर सोने मे बिताई। छोटे लडको ने अपना समय बागीचे मे घूमने, खेलने और छोटे-बडे लडको की अच्छाई-बुराई की बाते करने मे बिता दिया।

सातवें दिन रविवार था। झरने पर आनद से सब लडके नहाने-धोने में मस्त थे। अचानक बापूजी बिना किसी सूचना के वहा आ पहुचे। उनके हाथ में बाल काटने की मशीन थी। आते ही उन्होने एक के बाद दूसरा और फिर तीसरा—इस प्रकार लगभग सवा घटे में सभी लडको के बाल काट दिए। फिर बहुत सक्षेप मे बोले, "जिनको अब भी बाल प्यारे है, शान-शौकत की इच्छा है, वे फीनिक्स से लौटकर जा सकते है। यह सभी को समझ लेना चाहिए कि पुराना ढग अब नही चलेगा। अब नए सिरे से सारा जीवन बिताना होगा, फैशन और चैन का अब कोई मौका नही है।"

बापूजी फीनिक्स में साधारणतया रात को तीन बजे और कई बार दो बजे उठकर लिखने-पढने के काम मे लग जाते थे। बापूजी के टाल्स्टाय-वाडी से आने के बाद के कई दिन मुझे याद है जब मेरी माताजी ने मुझे पौ फटने पर जगाया और कहा कि "देख, बापूजी दो बजे से उठकर लिख रहे थे, अब उन्होने दतौन ले ली है और देवदासकाका को जगा रहे है। तू भी अब उठ जा।"

हमारा घर बापूजी के घर से दूर था पर बापूजी बरामदे में ही सोते थे, इसलिए हमारे घर की खिडकी और बरामदे से वहा की सारी हल-चल दीख पडती थी। नीद मे मै बापूजी की आवाज सुनता था, "देवा! उठो, देवा! देवा उठो!" और फीनिक्स की सारी दिशाए गूज उठती थी। बापूजी जब पुकारा लगाते थे तब उनकी आवाज धीमी नही होती थी।

चूकि अलग-अलग तीन मकानो मे सब छात्र बटे हुए थे, बापू जी को अपने पास सोए हुए लडको को उठाने के बाद दूसरे दो मकानो मे भी सबको जगाने के लिए जाना पडता था।

उठ जाने के बाद सब विद्यार्थी बापूजी के बरामदे के पास जमा हो जाते थे। वहा आगन के एक सिरे पर बालिश्त भर चौडी, फुटभर गहरी और आठ-दस फुट लम्बी खाई खुदी रहती थी। उस खाई के किनारे पक्तिबद्ध बैठकर सभी लोग एक साथ दतौन करते थे। बापूजी हमारे बीच मे बराबर उपस्थित रहते थे और कोई खाई से बाहर थूक नही सकता था। तेज ठड के मौसम मे या भारी वर्षा के दिन छात्रावास के एक बडे कमरे में ही दतौन की यह प्रातर्विधि सपन्न की जाती थी। एक या दो बडी पराते और तामचीनी का थूकदान बीच मे रखकर उसके आसपास हम सब बैठ जाते थे और दतौन की क्रिया पूरी होने पर एक लडका उस थूक को खाद के गड्ढे में पहुचा देता था और उसे मिट्टी मे ढक देता था।

दतौन की विधि बापूजी के विचार मे बहुत महत्व की थी। वह अक्सर कहा करते थे कि प्रात काल दतौन करने के साथ-साथ हमें आध्यात्मिक दतौन भी करनी चाहिए, मुह का मैल ज्यो-ज्यो साफ करते जाय, त्यो-त्यो मन का मैल भी निकालना चाहिए। उन्होने अपनी यह आदत बना ली थी कि दतौन के साथ-साथ गभीर चिन्तन भी किया करते थे। जब हम लोग दतौन के लिए बैठते थे तब बापूजी की उपस्थिति के कारण गप-शप नही कर पाते थे। वातावण शात और गभीर रहता था और बापूजी अत्यन्त गहराई से आत्मचिन्तन मे लगे हुए दिखाई देते थे। किसी से कुछ कहना भी आवश्यक हो तो इशारा भर करते थे, और यथासभव मौन ही रखते थे उन दिनो प्रात काल की प्रार्थना का प्रारम्भ नही हुआ था। एक प्रकार से यह दतौन-विधि ही प्रार्थना-विधि का कुछ काम दे जाती थी।

जब दतौन का यह सिलसिला पूरा होता था, फीनिक्स का ज़ोरदार घटा बज उठता था। घटे के बजते ही फीनिक्स के सभी कार्यकर्त्ता, छोटे-बडे विद्यार्थी और बापूजी भी अपनी-अपनी कुदाल, फावडा आदि लेकर निकल पडते थे और बागीचे मे पहुच जाते थे।

बागीचे में अधिकतर खोदने या घास साफ करने का काम रहता था। किसने अपने काम का कितना हिस्सा पूरा किया इसकी पूछताछ कोई नही करता था। अपने-अपने उत्साह से अपने बल के अनुसार जो जितना भी काम करे उससे सतोष कर लिया जाता था। काम करने वाले विद्यार्थी और बडे भी काम का समय पूरा होने पर बताया करते थे कि परिश्रम के कारण किसके हाथ मे अधिक बढिया फफोले तैयार हुए है और किसके हाथ के निशान अधिक पक्के है।

मेरे छोटे भाई कृष्णदास के गले मे एक गाठ हो गई थी। उसकी पीडा

के कारण वह बोल नही सकता था। डाक्टर के अभाव में बापूजी ने खुद ही उस गाठ को चीरने का निश्चय किया। गाठ को पूर्णरूप से पकाने के लिए उन्होने उसपर रात को आटे की पुलटिस बधवाई और सूचना दे गए कि सवेरे गरम पानी, अस्तुरा आदि तैयार करके उनको बुलवा लिया जाय। दूसरे दिन सब तैयारी करके मेरी माताजी ने मुझे बापूजी को बुलाने के लिए भेजा।

बापूजी एक खेत मे घुटने तक ऊची घास को फावडे से साफ करने में व्यस्त थे। उनकी सारी टोली भी यही काम कर रही थी। वह सबसे आगे की जगह पर झुके हुए अपना फावडा ताल-बद्ध रूप से चला रहे थे। घास खोदने के सिवा दुनिया में उनका और कोई लक्ष्य था ही नही, ऐसा प्रतीत होता था। कई मिनट तक मैं बापूजी की बगल मे खडा रहा, परन्तु खोदने के काम मे वह इतने तल्लीन थे कि उन्होने मुझे देरतक देखा ही नही। कुछ देर बाद उन्होने देखा और पूछा, "कृष्ण के लिए बुलाने आये हो न ? चलो, मैं आया।" कहकर अपने हाथ का फावडा उन्होने अलग रखा, पतलून पर लगी हुई मिट्टी झाड दी और मुझे आगे करके हमारे घर की ओर चले। वहा से निकलते समय लडको से उन्होने कहा, "देखो, अब तुम लोगो की बाते बन्द होनी चाहिए। मेरी मौजूदगी मे तुम लोग काफी खेले और गपशप करते रहे। अब मेरी अनुपस्थिति में तुम्हे आलस नही करनी चाहिए। मेरे लौटने तक पूरी तरह काम करो। बडो के सामने आलस करो, वह निभा लिया जा सकता है, परन्तु बडो की पीठ के पीछे आलस करके उनको धोखा कदापि नही देना चाहिए।"

हमारे घर पहुचने तक माताजी ने कृष्णदास की पट्टी खोल दी थी। जिस गाठ को चीरने का निश्चय रात के समय किया गया था, वह सवेरा होने पर घुलकर बैठ गई थी। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। बापूजी ने कृष्णदास से विनोद किया, "वाह रे बहादुर, उस्तरे से इतना डर गए कि गाठ को ही छिपा दिया! यह कोई बहादुरी की बात नही है!" पाच-सात मिनट कृष्णदास से मजाक करके बापूजी बडी तेज चाल से खेत मे काम पर लौट गए। मुश्किल से आधा घटा बीता होगा, किन्तु इतने थोडे समय में लडको ने इतना काम कर डाला कि सवेरे से काम के बदले खेल में जो अधिक समय बिताया था उसका बदला चुक गया। वह सारा खेत प्राय साफ हो चुका था और लडके पसीने से तर हो गए थे।

"शाबाश!" बापूजी ने बधाई दी और कहा कि "सदैव इसी प्रकार

हर एक को सच्चा बनना चाहिए। अब तुम लोग थोडा-सा विश्राम कर लो, बाकी जो थोडा रहा है वह मै पूरा करता हू।" ऐसा कहकर फिर से बापूजी खोदने मे तल्लीन हो गए। किन्तु लडको ने विश्राम नही किया और बाकी का टुकडा साफ करने मे उन्होने बापूजी को अन्त तक मदद दी। आठ बजे की घटी होने तक वह सारा काम पूरा हो गया।

आठ की घटी पर सब बापूजी के घर अर्थात् रसोई-घर में नाश्ते के लिए जाते थे। दो घटे के कडे परिश्रम के बाद भूख बहुत तेज हो जाती थी और बापूजी ने नाश्ते मे काफी चीजे देने की व्यवस्था की थी। घर में बनाई गई पाव-रोटी, दूध, तरकारी, मुरब्बा और ताजे फल भरपेट नाश्ते में मिलते थे। काम जितना परिश्रम का था, आहार उतना ही सरस था। उस समय बाते होती थी, हास्य-विनोद होता था और परोसते-परोसते बापूजी भी काफी व्यग और विनोद कर लेते थे।

नौ बजे फिर घटी बजती थी। उसपर हम सब बालक पढने के लिए पाठशाला मे पहुचते थे और बडे लोग फावडा लेकर फीनिक्स से बागीचे के काम पर पहुच जाते थे।

: ४३ :

बापूजी का विद्यालय

प्रात काल दो घटे तक खोदने का श्रम करने के बाद दो घटे हमारी पढाई चलती थी। खेतो के बीच, दो झोपडो मे हमारी पाठशाला थी। एक मिट्टी की कच्ची दीवारो से बना था और ऊपर फूस का छप्पर था। दूसरा नालीदार टीन की चद्दरो से बना था। आध-आध, पौन-पौन घटे मे घटिया होती थी। शिक्षक बारी-बारी से हमारे वर्ग मे आते थे। उनके आने पर खडे होने की, हाथ जोडने की, या उनके लिए रास्ता बना देने की तहज़ीब से हम अनजान न थे। पढाने का काम पूरा करके जब एक शिक्षक वर्ग से चला जाता था तब हम लोग तुरन्त ही दूसरा सबक उठा लेते थे और एक-दूसरे से पूछकर अपनी पढाई आगे बढाते थे। शिक्षक आता तो एक बडा पूछनेवाला और बतानेवाला बनकर हम लोगो मे घुल-मिल जाता था। कई बार हमारे शिक्षक के पैर खेत के गारे से सने होते थे। उनकी आस्तीनें कोहनी तक मुडी हुई रहती थी और अधबीच सिर पर आये हुए इस काम को निबटाकर खेत मे अपने काम पर लौट जाने की

जल्दी उनकी मुख-मुद्रा पर झलकती रहती थी ।

गणित, गुजराती, गीता और व्याकरण हमारी पढाई के मुख्य विषय थे। अग्रेजी भी सब सीखते थे, किन्तु उसके लिए सवेरे का अनमोल समय खर्च नही किया जाता था। तमिल और हिन्दी बालको को गुजराती के बदले अपनी-अपनी भाषा सीखने की सुविधा थी ।

गणित के शिक्षक मेरे पिताजी थे, गुजराती के मगनलालकाका और जेकी बहन तथा गीता के मगनभाई और बापूजी थे। बहुधा विषय और विद्यार्थी वही रहते थे, परन्तु शिक्षक बदलते रहते थे। मुख्य अध्यापक बापूजी स्वय ही थे।

ऐसी पाठशाला शायद ही देखने में आती होगी, जहा पढाई के समय प्रधान अध्यापक के पास पहुचने पर उनके हाथ बेलन, करछुल आदि से शोभित दिखलाई पडे । पाठशाला के उन दोनो घटो मे अधिकतर बापूजी रसोई के काम मे व्यस्त रहते थे। अपने २५-३० बालको में से किसी को कच्ची या जली हुई रोटी न मिले, इसकी उनको बहुत चिन्ता रहती थी। भोजन की घटी होने पर रसोई आधी ही रह गई हो, ऐसा मौका न आने देने के लिए वह स्वय रसोई मे लग जाते थे। इस प्रकार प्रधान रसोइया और प्रधान अध्यापक का दोहरा उत्तरदायित्व निभाना और डरबन आदि अन्य स्थलो से आनेवाले मुलाकातियो का स्वागत करना तथा उनके प्रश्नो का उत्तर देना यह सब साथ-साथ चलता था ।

किसको क्या पढाया जाय, किस-किस को एक साथ पढाया जाय, सस्था के जरूरी काम से यदि कोई शिक्षक समय पर पढाने न जा सके तो उसके बदले कौन पढावे इत्यादि निर्णय प्रतिदिन बापूजी ही करते थे। गणित के वर्ग मे किस विद्यार्थी के कितने सवाल सही रहे, कितने गलत, इसका ब्यौरा भी वर्ग पूरा होते ही उनके पास पहुच जाता था। भोजन के समय परोसते-परोसते वह गणित मे गलती करनेवाले लडके की कई बार मीठी चुटकी भी लिया करते थे। गुजराती मे जो श्रुतलेखन होता था उसको जाच कर कापियो मे नम्बर देने और हम जैसे अबोध बच्चो को रसभरी रीति से गीता का बोध देने का काम भी वही करते थे। मगनभाई मास्टर हम लोगो को सस्कृत श्लोको का उच्चारण सिखाते और हमसे उन्हे याद करवाते थे। बापूजी हमें, उस समय प्रचलित श्री गट्टुलालजी कवि के लिखे हुए गीता के समश्लोकी पद्यानुवाद का अर्थ समझाते थे। उनके पढाने से ऐसा मालूम होता था, मानो साक्षात ज्ञान और प्रकाश की मूर्त्ति हमारे सामने खडी है। गीता का अर्थ हम लोग एकाग्र मन से सुने, इस पर बापू

का वडा जोर था।

हर शनिवार को हमारी परीक्षा ली जाती थी। एक सप्ताह मे गणित की, दूसरे मे गुजराती की, तीसरे मे गीता की और चौथे मे अंग्रेजी की। इस प्रकार हर महीने प्रत्येक विषय की परीक्षा हो जाती थी। परीक्षा के उत्तर-पत्र बापूजी ही जाचते थे और उसी दिन सध्या-प्रार्थना में उसका परिणाम सुना देते थे। साथ-साथ भूले भी वताते और समझाते जाते थे। हम लोग शनिवार की प्रतीक्षा उत्सुकता से करते थे। वापूजी या मगनभाई हमारे हाथ मे प्रश्न-पत्र देकर चले जाते थे। कोई हमारी चौकसी-पहरा करता हो,ऐसा मुझे याद नही। हम लोगो मे से किसी के मन मे यह इच्छा ही पैदा नही होती थी कि स्वय जितने दक्ष है उससे अधिक दक्षता वताये। इसलिए लुक-छिप कर दूसरे की नकल करने की वात ही नही उठती थी। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी बुद्धि के अनुसार धैर्य रख कर, जो कुछ वन पडता था, स्पष्टता से लिखता था। यदि समझ मे नही आता था तो उसके दिल मे क्षोभ या घवराहट पैदा नही होती थी। प्रत्येक के मन में तसल्ली रहती थी कि जो कमी होगी, वापूजी सिखा देगे। असफल होते थे तो दूसरे महीने अधिक कोशिश करके ज्यादा अच्छा परिणाम लाने का सकल्प करते थे और परीक्षा का दिन जल्दी आ जाय ऐसा मनाते थे।

परीक्षा मे नम्बर देने का वापूजी का तरीका मुझे कई वार अन्यायपूर्ण प्रतीत होता था। एक ही प्रश्न का उत्तर एक ही वर्ग के विद्यार्थी दे तो दो विद्यार्थियो मे जो अधिक अच्छा उत्तर देता था, उसको वापूजी कम नम्वर देते थे और जिसका उत्तर कम अच्छा होता था उसको अधिक नम्वर देते थे। मुझे लगता था कि सुलेख के अक्षरो पर नम्वर देने मे वापूजी अवश्य पक्षपात करते है। जब हम पूछते थे कि इतने अच्छे अक्षरो के भी आपने कम नम्वर क्यो दिये तव वापूजी वताते थे कि किसी लडके के मुकावले कोई लडका ज्यादा होशियार है ऐसा हिसाव मुझे नही लगाना है। मुझे तो यह देखना है कि प्रत्येक लडका जहा पर था,वहा से कितना आगे वढा है। उसने अपना काम कितना सुधारा है। होशियार लडका मद-वुद्धिवाले लडके के साथ ही अपने काम की तुलना करता रहेगा तो उसमें अभिमान आ जायगा और उसकी वुद्धि और मद हो जायगी। वह पढने मे परिश्रम कम करेगा और कायदा यह है जो आगे नही वढता वह पीछे हटता ही है। जो लडका अधिक परिश्रम करके पूरी सावधानी से अपना काम करेगा उसीको मै अधिक नम्वर दूगा।

इन साप्ताहिक परीक्षाओ के द्वारा वापूजी ने हम लोगो को तेजी से

आगे बढाया। जो कुछ हम सीखते थे वह पक्का हो जाता था। यदि हम फिर भी कच्चे रहते तो हमारी बुद्धि को तेज करने के लिए बापूजी विशेष कोशिश करते थे।

हमारी यह पाठशाला मुश्किल से एक वर्ष तक चली होगी, लेकिन इतने समय में मेरी प्रगति इतनी अधिक हुई कि जो पिछले तीन वर्षों में भी नहीं हो पाई थी। गणित में जहा जोड-गुणा करना भी मेरे लिए कठिन था वहा अब दशमलव, भिन्न और त्रिराशि के सवाल करने लगा। गीता मे प्रथम अध्याय के १५-२० श्लोक याद थे, वह चौथे अध्याय तक याद हो गई। गुजराती लेखन आदि में दूसरी कक्षा मे भी कच्चा था, पर इस एक वर्ष में पाचवी कक्षा तक पहुच गया। मुझे विश्वास है कि अपनी आयु के दसवे वर्ष मे बापूजी की उस पाठशाला में मैंने जो पाया वही और भी दस वर्ष तक उन्ही के प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन में पा सकता तो विद्वानो के गढ मे बापूजी ने मुझे प्रवेश करा दिया होता, ऐसा मुझे विश्वास है। किन्तु बापूजी के विद्यालय का आदर्श विद्वान पैदा करना नही था, सत्याग्रही पैदा करना था। वह रम्य, शात और ओजस्वी विद्या-सत्र खडित होने के बाद दुबारा चलाने का अवसर बापूजी को नही मिला। उस पाठशाला का स्मरण ही मुझ जैसे विद्यार्थी के लिए पूरे जीवन का विद्यालय बन गया।

हमारी पाठशाला मे पढाई का काम सवेरे नौ से ग्यारह बजे तक चलता था। उसके बाद ग्यारह से साढे ग्यारह बजे तक हम लोगो को फावडा लेकर खेत में काम के लिए जाना पडता था। पाठशाला की शीतल छाया से निकलकर चिलचिलाती दुपहरी में कधे पर फावडा रख कर खोदने जाने के लिए हमारा जी नहीं करता था।

वह आधा घटा इधर-उधर चक्कर काटकर बिता देने की नीयत रहती थी, परन्तु बापूजी हमारी एक नही सुनते थे। ग्यारह बजते ही हमारी पुस्तकें बन्द करवा कर हमे खेतो पर ले ही जाते थे। इस समय मे हम लोग अपना-अपना कुदाल-फावडा परखने और उठाने मे दो मिनट भी नष्ट करे, यह उनको गवारा नही होता था। काम की निश्चित मात्रा बापूजी बता दिया करते थे और कह देते थे कि उतना काम पूरा करने के बाद ही छुट्टी मिलेगी। उस आधे घटे मे प्राय एक घटे का काम हो जाता था। तेजी से आध घटे तक लगातार कसी चलाने से सब लोग पसीने से तर हो जाते थे और जब बापूजी से छुट्टी मिलती तो एक विजय-भावना के साथ स्नान के लिए चल पडते थे।

एक बार हमारी पढाई हो चुकने पर ग्यारह बजने मे दस मिनट बाकी

रह गए थे। बापूजी प्रसन्न-चित्त थे और हम लोगो से विनोदवार्ता कर रहे थे। इस मौके का लाभ लेकर हमम से एक बडे विद्यार्थी ने साहस के साथ बापूजी मे कहा, "बापूजी, हम लोगो को यह आधे घटे वाली खेती अच्छी नही लगती, खेत पर जाने-आने म ही कुछ समय कट जाता है। आप सवेरे ही हम लोगो से आधा घटा अधिक श्रम करवा लिया करे।"

बापूजी ने जवाब दिया, "इम आधे घटे को बदलने के लिए मैं जरा भी तैयार नही हू। भरी दुपहर मे, कडी धूप मे, फावडा चलाने की आदत तुम्हे डालनी ही चाहिए। आज यहा पर पढ रहे हो, कल यदि लडाई छिड गई और जेल जाना पडा तो वहा शीतल छाया मे बैठने को थोडे ही मिलेगा। वहा पर तो बहादुर मजदूर की तरह अपनी कमर तोडकर दिन भर ऐमी कडाके की धूप मे ही तुम लोगो को फावडा चलाना पडेगा। अगर वहा तुम हार जाओ, थक जाओ, रोनी सूरतवाले बन जाओ, तो मेरी और तुम्हारी दोनो की नाक कट जायगी। इमसे तो बेहतर है कि तुम इस पाठशाला को ही छोडकर घर लौट जाओ। ऐसा करने म मेरी और तुम्हारी शोभा अधिक रहेगी। फिर इम तरह निपट स्वार्थी बनना भी हम लोगा को शोभा नही देता। तुम मब यहा मजे मे बैठे पढ रहे हो और बडे लोग प्रात काल से लगातार अपनी हड्डियो को गलाकर परिश्रम कर रहे है, उन लोगो को क्यो भुला देते हो ? हमे उनका साथ देना चाहिए। काम की पूर्णाहुति के समय हमारी सारी पाठशाला यदि उनकी मदद मे पहुच जाय तो उनको बहुत सतोष होगा। उनकी थकान भी दूर हो जायगी।"

साढे ग्यारह बजे थके-थकाए हम लोग अपने फावडे और औजारो को कोठरी मे फेंककर नहाने के लिए चले जाते थे। छापाखाने के कुए पर एक भारी पम्प था। उसे दो आदमी मुश्किल से खीच पाते थे। उससे तीन इच मोटा प्रवाह निकलता था। बारी-बारी से दो-दो आदमी पम्प चलाते थे, और दूसरे सब स्नान करते थे। सवेरे से खेती के काम के कारण शरीर पर जमा हुआ मैल, पसीना और मिट्टी आदि पानी से धोकर और हाथ से मल कर चद मिनट मे साफ कर दिया जाता था। साबुन का उपयोग स्नान के लिए नही होता था। कपडे बदलने की झझट कम रहती थी। एक ही कपडे अधिक दिन बरतते थे। उन्हे धोने का अवसर रविवार को ही मिलता था। बाकी दिनो मे चटपट स्नान से निबट कर भोजन के लिए ठीक समय पर पहुच जाना पडता था।

भोजन के बाद ठीक एक बजे दुपहर का कार्यक्रम शुरू हो जाता था। एक बजे से पाच बजे तक सब बडे व्यक्ति छापाखाने मे साप्ताहिक

के लिए लिखने, कम्पोज करने आदि का अपना-अपना काम करते थे और हम लोग तीन बजे तक पाठशाला मे बैठकर स्वाध्याय करते थे। उस समय हम लोगो की गपशप भी बहुत चलती थी। यदि कोई अतिथि-शिक्षक आ जाता तो उससे गुजराती के प्राचीन कवियो के लिखे हुए रसपूर्ण और वोधपूर्ण आख्यान सुनते थे। लेकिन वास्तव मे हमारे लिए यह समय विना शिक्षक की पाठशाला का था।

वापूजी का "इडियन ओपीनियन" साप्ताहिक के मुख्य लेख लिखने का समय भी यही होता था। भोजन के वाद वह सीधे छापाखाने के कार्यालय मे पहुच जाते थे और एकाग्र चित्त से सम्पादकीय और पत्र-व्यवहार का काम पूरा करते थे। इतने थोडे समय से भी आधा घटा वचाकर वडे विद्यार्थियो को अग्रेजी सिखाने के लिए वह ढाई वजे से तीन वजे तक पाठशाला मे आया करते थे।

एक दिन की वात है। पाठशाला मे वैठे हम लोग गप्पे लडाने मे मशगूल थे। देवदासकाका, डाह्याभाई मोची, रामदासकाका, मै और दूसरे भी आपस में अपने गणित के वर्ग की नुक्ताचीनी कर रहे थे। एक लडका वोला, "भाई, गणित वापूजीही पढावे तो अच्छा, छगनलालभाई अच्छी तरह समझा नही पाते। कठिन-मे-कठिन सवाल को भी वापूजी वहुत अच्छी तरह समझाते है।" दरवाजे के वाहर खडे-खडे वापूजी हमारी वात सुन रहे थे। चौखट की आड में दो-एक मिनट तक वह खडे रहे और फिर धीरे से हमारे सामने आ गए। उनको देखते ही हम सव सहम गए। वापूजी ने उस रोज पढाना छोड कर हमे जो वाते सुनाई वे अव तक स्पष्टत याद है

उन्होने कहा, "तुम लोगो की यह कैसी उद्दडता है ? मेरे मुकावले आज तुमको छगनलालभाई अयोग्य शिक्षक लगते है, तो कल गोखले महाराज की तुलना मे मै अयोग्य लगूगा। तुमको अपनी पढाई से मतलव है कि अपने शिक्षक को योग्यता के नम्बर देने मे ? जो विद्यार्थी अपने शिक्षक की निन्दा करता है वह चाहे कितना ही वुद्धिमान क्यो न हो, उसकी सारी पढाई शून्य ही रह जायगी। शिक्षक चाहे कितना भी दे, जिस विद्यार्थी मे विनम्रता नही है वह कुछ भी ग्रहण नही कर सकता। उलटे, यदि शिक्षक थोडा-सा भी दे तो नम्र विद्यार्थी उसे वहुत वनाकर ग्रहण कर लेगा और तेजस्वी वनेगा। तुम लोग शिक्षको का दोप देखो, यह विलकुल असह्य है। दोप देखना ही हो तो तुम अपने दोपो को देखो। गणित के शिक्षक छगनलाल ही रहेगे। मेरे पास जिस तरह चित्त लगाकर तुम सवाल करते हो, उसी तरह छगनलाल के पास भी पूरे ध्यान से करना चाहिए। मन मे उनके

प्रति आदर भी रखना चाहिए।"

वापूजी की इस टीका का यह असर हुआ कि इसके वाद हम लोगों की चर्चा मे फिर कभी भी शिक्षको की टीका-टिप्पणी नही हुई।

ठीक तीन बजे हम पाठशाला से छापाखाने मे पहुचते थे। वहा पर हमे उद्योग-शिक्षण मिलता था। तमिल, हिन्दी और गुजराती भाषी लडके अपनी-अपनी भाषा मे, और वडे विद्यार्थी अग्रेजी मे कम्पोज करना सीखते थे। साप्ताहिक को प्रकाशित करने के दिन वडो के साथ सव विद्यार्थियो को भी चटपट काम पूरा करने की चिंता लगी रहती थी। कागजों को इधर-से-उधर मोड कर तह वनाना, अखवारो के वडल तैयार करना आदि हम लोग भरसक तेजी से करते थे। अखवार के इस उद्योग मे जो लडका मद सावित होता था, उसकी लगाम वापूजी अपने हाथ मे लेते थे। आगे चलकर ऐसे भी सप्ताह आये, जव छापने और प्रकाशित करने का, सारा-का-सारा काम विद्यार्थियो ने हाथ मे ले लिया।

ठीक पाच वजे हम लोग फिर से खेतो पर पहुच जाते थे। क्षितिज पर अस्त होने वाले सूर्य की लालिमा से सुशोभित आकाश के नीचे, पक्षियो के गीतो की विविध ताने सुनते हुए हम लोगो को खेत के काम का वह घटा वहुत सुखद मालूम होता था। इस समय कडा परिश्रम क्वचित् ही होता था। खोदने का भारी काम सवेरे हो जाता था और शाम को दिन छिपने तक हम लोग कोमल पौधो को पानी देने और उनकी क्यारिया वनाने मे तथा वागीचे के फल-फूलो की अभिवृद्धि का निरीक्षण करने में लगे रहते थे। छापाखाने का वडा घटा छ वजने की सूचना देता था। घटा सुनते ही हम लोग घर पहुच जाते थे और हाथ-मुह धोकर शीघ्रता से भोजन करने के लिए पक्ति मे जा वैठते थे।

शाम की व्यालू के वाद हम लोग तरह-तरह के खेल खेलते थे और इतनी हस होती थी कि दिन भर की थकान दूर हो जाती थी।

: ४४ :

मेरा शिक्षण

तीसरे पहर तीन से पाच तक छापाखाने मे उद्योग सीखते समय वापूजी के कठोर अनुशासन मे रहना पडता था। छापाखाने मे ज़रा भी वात करने की गुजाइश नही थी। वापूजी की वैठक ऐसे कोने मे थी कि थोडी-सी

फुसफुसाहट भी उनके कानो तक पहुच जाती थी और अपनी बैठक के पर्दे की ओट से वह आवाज लगाते थे, "काम चल रहा है या बाते ? काम और बातो का साथ कैसा ? हाथ में काम लेते ही ओठो पर ताला पड जाना चाहिए।" और सब चुपचाप अपने काम पर जुट जाते। इस पर भी यदि कही से बोलने का शब्द सुनाई पडता तो उस लडके को बापूजी अपने पास बुलवा लेते। कभी-कभी बापूजी चुपचाप अपनी बैठक से उठ कर छापाखाने में चक्कर लगाते और सुस्त तथा धीमे विद्यार्थी को सावधान करते।

पढाई में मैं कभी तेज था ही नही, और उद्योग मे भी मैं बहुत ही मद-बुद्धि था। अन्य सभी विद्यार्थियो की अपेक्षा मैं बेहद सुस्त था। काम करने का मेरा वेग बढता ही नही था। छापाखाने में कम्पोजिग सिखाने वाले मुझे बार-बार टोक दिया करते थे। प्रतिदिन जब बापूजी प्रत्येक विद्यार्थी के काम का हिसाब पूछते तब मेरे सबध में उनके पास बात आती कि प्रभुदास को दस मिनट का काम पूरा करने मे डेढ-दो घटे लग जाते है।

छापाखाने के काम मे मेरा इस कदर ढीलापन उन्हे पसद न था। उन्होने मुझे सख्ती से कहा, "काम करते-करते ऊघना हो तो बेहतर है कि घर ही जाकर सो जाया करो। काम करने मे सुस्ती नही करनी चाहिए।" तीन दिन तक सबके बीच मे मुझे इस तरह झेपना पडा। मैंने बार-बार कोशिश की कि मैं भी औरो की तरह तेजी से अपने हाथ चलाने लगू और काम को तुरन्त निपटा दू, परन्तु मैं सफल न हो पाया। पढाई मे मैं देवदास-काका का साथी था। उन्हीके वर्ग में था, पर छापाखानेके काम मे देवदास-काका जब बडे-बडे आदमी के बराबर तेजी से काम करते थे मैं सबकी हसी का पात्र बना रहता था।

एक अशुभ दिन मेरी दुर्बुद्धि ने जोर मारा और अपनी बेइज्जती से मैं बच निकला। बात यह थी कि वहा के क्रम के हिसाब से लबी-लबी दस-पद्रह गेलियो के टाइपो को डिस्ट्रीब्यूट करने के बाद ही नव-सिखियो को नया लेख कपोज करने को मिलता था। मैं बहुत चाहता था कि मुझे डिस्ट्रीब्यूट करने के काम से छुट्टी मिले और "कपोजिग" करने दिया जाय, परतु हमारे उद्योग-शिक्षक यह बात स्वीकार करते ही नही थे। तब मैंने एक तरकीब निकाली। टाइपो को मुट्ठी मे भर-भर कर अपनी पतलून की दोनो जेबो मे चुपचाप डाल लेता। सभी लोग अपने-अपने काम में तल्लीन रहते थे। इसलिए सबकी नजर बचा कर जेब मे टाइप भर लेना मेरे लिए कठिन बात न थी। फिर लघुशका के बहाने मै छापाखाने से बाहर निकल जाता और प्रेस के पीछे झरने के गहरे गड्ढे मे उन टाइपो को फेंक

आता। पहले दिन चार-पाच पक्तिया, फिर दस और वाद मे प्रतिदिन २५-३० पक्तिया फेंकते रहने का मेरा सिलसिला चलता रहा। किसीको मेरी इस हरकत का पता नही लगा। सवने यही माना कि अब काम करने में मेरी गति वढ गई है और इस पर मुझे वधाई भी मिली।

डिस्ट्रीव्यूट करने के लिए निश्चित गेलियो को जब मैंने साफ कर दिया तब कपोज करने का काम मुझे दिया गया। मुझ जैसे मद विद्यार्थी को छापाखाने के रोज के काम में कौन हाथ लगाने देता। इसलिए ऐसा काम ढूढा गया, जिससे नित्य के काम मे वाधा न आवे। वापूजी ने सोच-विचार कर मुझे उन भजनो को कपोज करने का काम दिया, जो फीनिक्स मे शाम की प्रार्थना के समय गाये जाते थे। छोटे-छोटे शब्दो वाले विना मिले-जुले अक्षरो के सादे भजन वापूजी चुन कर देते थे। पिताजी उन्हे अलग कागज पर लिख देते थे और मै रोज दो घटे के वर्ग मे दो-तीन लाइन कपोज कर लेता था।

आठ-दस दिन वाद जव एक भजन पूरा कपोज हो जाता और उसका प्रूफ उठा कर वापूजी के हाथ मे मै देता तव आनन्द के वदले भारी दुख मुझे उठाना पडता। चोरी का जो अपराध मैंने किया था वह अपने साथी और शिक्षको से तो मै छिपा पाया था, परन्तु उसका कुपरिणाम मुझे तुरत ही भुगतना पडा। डिस्ट्रीव्यूट मे आलस्य के कारण ठीक खाने में ठीक अक्षर मैंने नही डाले थे। हरेक खाने मे अक्षरो की खिचडी वन गई। अत मेरे कपोज की हर पक्ति मे दस-वारह गलतिया निकल आती थी। 'अ' के वदले 'त', 'त' के वदले 'य', ऐसा होता था। मेरे इस भूल-भरे प्रूफ को वापूजी साय प्रार्थना के वाद सवके सामने सुधारते थे और मेरी गलती पर सवके सामने मुझ से प्रश्न पूछते थे कि ये गलतिया क्यो हुई ? मै शरम के मारे जमीन मे गड जाता था और आखो से आसू टपकने लगते थे।

महीनो तक यही क्रम चला और मेरी गलतियो मे कमी नही हुई, परतु वापूजी ने धैर्य नही छोडा। न मुझे कभी कटु वचन कहे। न मुझसे वह काम ही छीना। कई महीनो वाद मेरे द्वारा कपोज किये गए भजनो को पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। उसीके प्रारम्भ मे वापूजी ने एक-दो विशेष कठिन भजन छपवाये। अपनी ओर से छोटी प्रस्तावना भी लिखी और एक दिन वह आया कि 'नीतिना काव्य' फीनिक्स मे और दक्षिण अफ्रीका भर मे लोकप्रिय पुस्तिका वन गई। एक मूढ और अकुशल वालक अपने ढीले काम का ऐसा सुन्दर फल देखे तो उसके हृदय मे उमग और आनद किस प्रकार उमड उठता है, यह शब्दो मे वताना कठिन है। आज भी जव

वह लघु पुस्तिका अपने पिताजी के पुराने सग्रह मे हाथ आती है तो ध्यान में आता है कि मुझे सिखाने मे बापूजी ने कितना अधिक धैर्य और समय खर्च किया था ।

आमतौर से छापाखाने में विद्यार्थियो के काम के दो घटे रहते थे, परतु शुक्रवार को सारी दोपहर और आवश्यक हो तो शाम को देर तक काम करना पडता था, क्योकि शनि के प्रात काल अखबार समय पर डाक में पहुचाया जा सके । छापाखाने के बडे लोग और हम सब लडके उस दिन बहुत खुश होते, मानो कोई उत्सव हो । अलग-अलग टोलियो की आपस में होड लगती थी । देखे कौन पहले छपे अखबारो को मोड लेता है ! कटाई-वाले जीतते है या लोहे के तार से टाके लगाने की मशीनवाले या बडल बाधनेवाले ? इस होड को बापूजी प्रोत्साहन देते थे और कई बार सारा काम डेढ-दो घटे पहले पूरा हो जाता था ।

एक बार शुक्रवार को जिस टोली में मै था, उसकी हार हुई । जोरो की तालिया बजी । हम खिसिया गए । अपना काम हमने बहुत ही वेग से किया था । मैंने भी उस दिन अपने धीमेपन को भुला दिया था । फिर भी हम पर तालिया बज गईं, यह मुझ से सहा नही गया । थोडी देर मे पता चला कि हमारी टोली के साथ छल किया गया था । अखबारो की एक बडी गड्डी हमसे छिपाकर अलग रख दी गई थी और अन्त मे हम पिछड गए, यह दिखाने के लिए वह अधूरा काम हमारे सामने रख दिया गया । मुझे बडा गुस्सा आया और रोया भी । मै सीधा दौडकर बापूजी के पास गया और सारा किस्सा सुना दिया । शाम की प्रार्थना के बाद बापूजी ने इस बात पर लडको को डाटा और खेल मे या होड मे भी असत्याचरण से बचने के लिए सबको सचेत किया । मुझे सान्त्वना मिली । परन्तु कुछ दिन बाद बापूजी ने मुझे भी टोक दिया । नियमानुसार प्रार्थना के बाद तुलसी-रामायण का अर्थ बापूजी सुना रहे थे । उसी सिलसिले मे निन्दा-चुगली न करने पर समझा रहे थे । इसमे मेरा उदाहरण बापूजी ने दे दिया और कहा, "लडको के आपस के खेल मे कही गडबड हो जाय तो चुगलखोर उसी तरह दौड कर शिकायत करने आयगा, जैसे उस शुक्रवार को प्रभुदास आया था ।"

उस दिन से फिर कभी शिकायत लेकर बापूजी के पास जाने का मुझे साहस नही हुआ ।

: ४५ :

उपवास-गंगा का उद्गम

"आज दोपहर मे तो मैने खाना खा लिया, लेकिन शाम को कुछ नही खाया। पानी भी जहर-सा कडवा मालूम देता था। वेटा वाप को इस हद तक धोखा दे सकता है, यह जानकर मेरा अतर छिद रहा है, लेकिन मै शात रहा हू। मुझसे जव रहा ही नही गया तव मैने अपने गाल पर पाच तमाचे लगा लिये। किसी और को मै मारू, इससे तो वेहतर है कि मै अपने ही को मार लू। तभी तो पता चलेगा कि इस प्रकार का आचरण मुझे कितना दुख दे रहा है। देवा (देवदास)ने तो मेरे पास सारी वात कवूल कर ली है और वह कहता है कि उसे वहुत पछतावा है। दुवारा ऐसी भूल न करने का उसने मुझे भरोसा दिलाया है। लेकिन अव भी मुझसे खाना नही खाया जा सकता। अभी तक लडको ने मेरे सामने सत्य छिपाया है। लडके एक वात कहते है और दूसरी। दोनो एक दूसरे की वात उलट देते है, इसलिए कौन सच्चा है और कौन झूठा, इसका पता नही चलता। मैने सवके वडे निहोरे किये, पर कोई सच वोलना चाहता ही नही है। असत्य मेरे पास वना रहे तो मेरा जीवन तो मिटटी मे मिल जाय। इसलिए जवतक सत्य हाथ नही आता, मेरे लिए जीवित रहने की चेष्टा करना व्यर्थ है। मैने आज दिन भर इस वात पर वहुत विचार किया और अन्त मे इस निश्चय पर आया कि मेरे लिए अन्न-जल का त्याग ही उचित है। जवतक लडके खुद आकर सही-सही वात मुझे नही वतायगे तवतक मै अपने मुह मे न अन्न का दाना रखूगा न पानी की वूद।"

वापू के इन वचनो को सुनकर प्रार्थना-सभा मे विजली-सी कौध गई। सव निस्तब्ध रह गए। सभा की नीरवता भग करने का साहस किसी को नही हुआ।

वापू फिर वोले, "मुझ पर जिसे दया आ रही हो वह मुझे खाने के लिए समझाने को न आये। सत्य की खोज मे अगर मेरी मौत हो जायगी तो उसके वरावर सोने की-सी मृत्यु और क्या हो सकती है? जिस पर ईश्वर के अनेक आशीर्वाद हो, जिसके अनेक जन्म के पुण्य जुडे हुए हो उसीको ऐसी मृत्यु मिलेगी। तुम सवको तो ऐसे दिन उत्सव मनाना चाहिए, जिस दिन सत्य की खातिर मेरी देह गिरे। इसलिए मुझसे विनती करने का कोई प्रयत्न न करे। अगर विनती करनी ही हो तो लडको से करे और सत्य को खोज

निकालने में मुझे सहायता दे।"

वापूजी के हृदय-परिवर्तनकारी और जीवन-शोधक उपवासो से आज केवल भारतवासी ही नही सारे ससार के लोग भली-भाति परिचित है। वापू के उपवास की वात सुनकर लोगो मे एक लहर फैल जाती थी। लोग सोचने को विवश हो जाते थे। इस पीढी के लोगो को दिल्ली के हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए किये गए २१ दिन के उपवास, यरवडा जेल में तथा वाहर हरिजनो के लिए किये गए उपवास, आगाखा महल मे सर्वशक्तिमान से न्याय की प्रार्थना के लिए किया गया २१ दिन का उपवास तथा स्वतन्त्रता के वाद कलकत्ता और दिल्ली मे शान्ति-स्थापना के लिए किये गए उपवास तो ताजी वाते मालूम होती है। उनके विश्व-व्यापी, हृदय-शोधक एव क्रान्तिकारी परिणामो को आज सारा ससार जानता है। गगा का उद्गम जैसे पतली-सी धारा के रूप मे दिखाई देता है, पर सागर मे मिलने जाती हुई गगा द्वितीय सागर-सी विशाल हो जाती है। कुछ वैसी ही वापूजी की इस उपवास-गगा की कथा है। इसका प्रारम्भ फीनिक्स के आश्रम के वालको एव अध्यापक की साधारण-सी मानी जानेवाली त्रुटियो को लेकर हुआ। पर वापूजी के लिए तो छोटी-सी वात ही नीव की वात होती थी।

वात यह हुई कि फीनिक्स आश्रम मे एक रोज एक वालक को एक शिलिंग कही पडा हुआ मिला। विद्यार्थी आपस मे चर्चा करने लगे कि इसका क्या उपयोग किया जाय? एक दल कहता था कि यह वापूजी को दे देना चाहिए। एक का मत यह था कि स्टेशन या डरवन से कुछ वढिया खाने की चीज मगाई जाय। इस षड्यन्त्र मे एक अध्यापिका वहन भी शामिल हुई। इसी वीच एक विद्यार्थी को चौथाई शिलिंग का एक सिक्का और मिल गया। वह भी इसी कोष मे मिला लिया गया। वहुमत खाने की चीज मगाने की ओर हुआ और खाने की चीज मगाने की व्यवस्था की गई। इस वात की पूरी साव-धानी रखी गई कि वात फूटने न पावे।

वापूजी किसी काम से जोहान्सवर्ग गये। उनके जाने के वाद एक रोज डरवन से एक शिलिंग की पकौडिया और चौथाई शिलिंग के कुछ चित्र मगाये गए। क्लास मे से सव लडको के चले जाने के वाद अध्यापिका ने मुझे वुलाया और दराज मे से चुपके से पकौडिया निकाल कर मुझे देते हुए कहा कि यह लो, ये तुम्हारे हिस्से की पकौडिया है। चुपचाप खा लो और खेलने चले जाओ। मै झिझका, मगनकाका की मार और वापूजी के उलहने से डरा भी। मैने कहा, "पकौडिया मै नही लूगा। मुझे तो चित्र दे दें। मुझे वे अच्छे भी लगते है।"

शिक्षिका ने डाटते हुए कहा, "चटपट खा लो। तुम्हारे हिस्से की ही तो बची है। नही लोगे तो क्या होगा इनका ? देर मत करो, नही तो ठीक नही होगा।"

मैं डरता जाता था और पकौडियो की वास भी मन को ललचा रही थी। अलोने का व्रत वापूजी के सामने ले रखा था। उसके टूट जाने का भय था और वापूजी को धोखा देने की भी वात इसमें है, ऐसा मन को लग रहा था। भावना यह भी थी कि यह सब ठीक नही हो रहा है। यह सब वापूजी से छिपाना ठीक नही है। ये विचार मेरे मन मे आ रहे थे। इसी उलझन मे देर होती देखकर शिक्षिका ने फिर जोर से अपनी वात कही। मैंने चुपचाप पकौडिया उनके हाथ से ले ली। मुह मे डालने से पहले सूघा। सुगधि अच्छी लगी। कुछ देर सूघता रहा, पर खा नही सका। पकौडिया एक लडकी को दे दी और खेलने को भाग गया। वात आई-गई हो गई।

कुछ दिन वाद पकौडियो की दावत खाने वाले लडको के दो दल हो गए। दोनो एक-दूसरे को दोप देने लगे। मैं दोनो दलो मे मिल जाता और इधर की वात उधर और उधर की वात इधर किया करता। ऐसा कुछ दिन चलता रहा।

एक दिन एकाएक आश्रम का सारा वातावरण गभीर और क्षुब्ध हो गया। वापूजी जोहान्सवर्ग से आ चुके थे। मैंने देखा कि वापूजी का चेहरा वडा गभीर है। उन्होने उन शिक्षिका वहन से घटे-सवा-घटे वाते की। फिर दूसरे व्यक्ति से अपने घर ले जाकर वाते की। मैंने देखा कि प्रेस और अपने घर के वीच के रास्ते घूमते हुए वापूजी ने कई लोगो से वाते की। वापूजी के घर के वरामदे मे मगनकाका, रावजीभाई आदि वडे लोग और हमारी वाल-मडली विपादपूर्ण मुद्रा मे चिंतित भाव से खडी थी। थोडी देर वाद वापूजी आये और देवदासकाका को अपने साथ ले गए। उनसे अकेले मे वडी देर वात की और ऐसा लगा मानो वापू किसी को चाटे लगा रहे है। मुझे लगा कि वापूजी ने देवदासकाका को पीटा है। तुरन्त मेरे मन मे खयाल आया कि दौडकर वापूजी के पास चला जाऊ और सचसच वातें वता दू और देवदासकाका को वचा लू। पर फिर रुक गया कि कही चुगली खाने का दोप मुझे न लगाया जाय। कुछ देर वाद ही पता चला कि वापूजी को सारी वाते पता चल गईं, लेकिन कुछ लोगो ने सच वात नहीं वताई, इससे वापूजी को वहुत दुख हुआ और उन्होने देवदासकाका को नही, वल्कि अपने ही गाल पर चार-पाच चाटे जोर-जोर से लगा लिये।

दोपहर हो गई थी। सव लोग विखर गए और अपने-अपने काम में

लग गए। लेकिन आश्रम के सारे वातावरण मे वडी उदासी और खिन्नता छा गई।

शाम को वडे मकान मे मव लोग प्रार्थना के लिए इकट्ठे हुए। प्रार्थना हुई। भजन हुए। उसके वाद स्तब्धता छा गई। सवकी आखे वापूजी की ओर लग गई। वहुत धीमी और शान्त आवाज मे वापूजी ने वोलना शुरु किया।

इस अध्याय के शुरु मे जो उद्धरण दिया गया है वह इमी प्रवचन का अग है। इम प्रकार वापूजी ने अपने मन की वेदना प्रकट की और असत्याचरण करनेवालो के हृदय मे शुभ-भावना जागृत करने के विचार से अन्न-जल-त्याग का कष्ट अपने ऊपर ले लिया।

उसके वाद कोई वोला नही। सव उठ-उठ कर अपने-अपने निवासस्थान को चले गए।

दूसरे दिन दोपहर की गाडी से वापूजी को जोहान्सवर्ग जाना था। सुवह मै पिताजी के साथ वापूजी के घर गया। देखा कि वापूजी दतौन कर रहे है और रावजीभाई और वह अध्यापिका वहन वहाँ वैठी है। कुछ वातें करके पिताजी घर लौट आये।

समय होने पर वापूजी स्टेशन जाने को निकल पडे। अनशन होने पर भी वह पैदल ही जा रहे थे। दो दिन से अन्न-जल नही लिया था, फिर भी वापूजी अडिग चाल से चले जा रहे थे। चलते हुए भी कभी रावजीभाई से, कभी उन अध्यापिका वहन से, कभी किमी और भाई मे अकेले या मिलकर वाते करते जाते थे। हम सव वालक भी मूक होकर यह सव देखते-देखते पीछे चले जा रहे थे।

स्टेशन पर पहुचे। वापूजी की वाते जारी ही थी। उनके और उनसे वात करनेवालो के चेहरो के वदलते भावो को मै वारीकी से देख रहा था। गाडी आ गई। वापूजी वैठ गए। वापूजी के चेहरे पर कुछ शान्ति, समाधान और प्रसन्नता की झलक देखी। गाडी चलते-चलते मेरे पिताजी ने वापूजी से कहा, "अव तो आप रुस्तमजी सेठ के यहा पहुच कर भोजन करके फिर आगे की यात्रा शुरु कीजिएगा।"

लेकिन वापूजी ने कहा, "ऐसी कोई वात नही है। मेरे लिए भोजन से जरुरी सत्य की प्राप्ति है। मुझे वह प्राप्त हो गया। यही मेरी असली खुराक है। आज तो उपवास ही रखूगा और कल भोजन करुगा। पत्र लिखना। वहन भी लिखे।"

गाडी चल दी। सव वापस आश्रम लौट आये।

जोहान्सबर्ग पहुच कर दूसरे ही दिन बापूजी ने जो पत्र भेजा उसके कुछ अश इस प्रकार है

"तुम्हारे साथ किसी पिछले जन्म की लेनदेन निकलती है। इतने प्रेम का मुझे तुमसे क्या अधिकार हो सकता है ? फिर भी जब मैं ऐसे सकट मे पड गया तब तुमने जो प्रीति बताई है उसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके द्वारा तुम दोनो की आत्मा अधिक तेजस्वी बने, ऐसा मैं चाहता हू और उस प्रीति का अनुभव पाकर आत्मा की शान्ति पर मेरा विश्वास अधिक दृढ हो, यह कामना तुम करना। एक मामूली प्रतिष्ठा अर्थात् तपश्चर्या का आरम्भ इतना कर सकता है तो की हुई तपस्या कितना कर सकती है इस बात की थाह ही नही मिल सकती है। यह सीधा-सा त्रैराशिक लगाने पर हमे मालूम होता है। प्रतिज्ञा न ली जाती तो मैं शुद्ध प्रेम का अनुभव नही पा सकता था और जितनी जल्दी सत्य बाहर आ गया तथा बालक निर्दोष साबित हुए, वैसा नही हो पाता।"

"   को मैंने जिस ऊची सतह पर माना था वहा से उसे नीचे आना पडा है। फिर भी मेरे मन मे आता है कि वह पुण्यात्मा तो है ही। उसमे कई सद्गुण हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम उसका विकास करे। उसका पाप और कार्य तो बहुत भारी था। उसकी याद उसे न दिलाई जाय। ऐसा रुख उसके प्रति हम रखे यह आवश्यक है। उसको घर के काम-काज मे प्रवीण बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। लडको में से कोई उसका अपमान न करे, इसका ध्यान रखना। रात की कथा का सिलसिला जारी रखना। लडको को जगाने का उत्तरदायित्व रावजीभाई पर है ही। मगनभाई (मास्टर) के स्वास्थ्य की खबर नियमपूर्वक मुझे मिलनी चाहिए।"

उस दिन तीसरे पहर मे जब भूखे-प्यासे बापूजी को लेकर फीनिक्स स्टेशन से गाडी चल दी तब हम लोगो को घर लौटते हुए बडी बेचैनी और मायूसी रही। घर पहुच कर दूसरे दिन भी हमारे मन की व्याकुलता घटी नही, बढी ही। लेकिन कारण कुछ समझ मे नही आ रहा था।

ऐसी मन स्थिति मे मुश्किल से आठ-दस दिन बीते होगे कि बापूजी जोहान्सबर्ग से लौट आए और हम सब लोग सदा की भाति उन्हें लिवाने के लिए फीनिक्स स्टेशन पर गये।

स्टेशन पर गाडी के रुकते ही बापूजी डिब्बे से बाहर आये, पर उनके मुख पर मुस्कराहट का सर्वथा अभाव था। उनके बाद कैलनबैक रेल से उतरे। उनका चेहरा भी बहुत ही मायूस था। एक-आध मिनट बाद सब लोग

स्टेशन से आश्रम को चल पडे। बापूजी जरा देर रुके रहे। जब सब लोग काफी आगे बढ गए तब केवल कैलनबैल और को अपने साथ लेकर बापूजी चले।

मैंने अनुमान किया कि फिर कोई बडी गम्भीर बात हो गई है। घर पहुचते ही बहन उदास मुह लेकर बापूजी के पास आई और बापूजी बिलकुल अकेले मे उनसे बाते करने लगे। मैंने मान लिया कि झूठ और चोरी का जो प्रकरण चला था वह अब भी समाप्त नही हुआ है। परन्तु वास्तव मे चर्चा उससे भी भारी अपराध की थी, जिससे मै अनभिज्ञ था।

शाम की प्रार्थना मे भजन के बाद बापूजी बोले, "बहुतो को पता चल गया होगा कि मै आज से सात दिन का उपवास कर रहा हू। कुछ दिन पहले मैने जो प्रतिज्ञा की थी, उसकी जैसी डरा देने वाली प्रतिज्ञा यह नही है। तब तो अन्न के एक दाने या पानी की एक बूद को भी ग्रहण नही किया जा सकता था, पर इस बार मैने पानी लेने की छूट रखी है और साथ-ही-साथ सात दिन की अवधि भी है ही। इसलिए इसमे मुझ पर कोई बडी भारी विपदा आ पडेगी ऐसी बात नही है। हमारे देश मे तो आज भी ऐसे कई साधु मिलेगे जो चालीस-चालीस दिन के उपवास करते है।

"कोई ऐसा न माने कि मै यह उपवास अपराधी व्यक्तियो को सजा देने के लिए कर रहा हू। अपना निज का कच्चापन मिटाने के लिए ही मै यह कर रहा हू। हमारे ऋषि-मुनियो का तप ऐसा होता था कि शेर और गाय दोनो मिल-जुलकर उनके सामने खेलते थे। उनका तप इतना प्रखर होता था कि चाहे कैसा ही कुटिल मनोवृत्तिवाला आदमी क्यो न हो, उनके निकट पहुचने पर वह शुद्ध हृदय बन जाता था और उसके पेट का सचझूठ तत्काल अलग छट जाता था। जबतक हम ऐसे तपस्वी नही बनेगे तबतक हमे मोक्ष नही मिल सकता। लेकिन उस पद से तो हम मजिलो दूर है। वहा पहुचते-पहुचते तो हमारे अनेक जीवन बीत जायगे।

"जो व्यक्ति दूसरो को अच्छा बनाने के लिए अपने पास रखता है, गलत रास्ते मे सही रास्ते पर ले जाने के लिए अपनी चारो ओर छोटे-बडे लोगो की मडली जमा करता है, उसे स्वय अत्यधिक सच्चा रहना ही चाहिए। उसके पास तो तपश्चर्या का भडार भरपूर होना चाहिए। मेरे पास ऐसा कुछ नही है। मैने आज तक कुछ भी तपस्या नही की है। बहुत-सी झझटो मे घिरा हुआ रहता हू। कही किसी जगल मे पहुचकर तपस्या करने लगू ऐसा सुयोग मुझे मिला ही नही। अगर ऐसा अवसर मिले भी तो वह इस देश मे नही

मिल सकता । अपने देश मे सब कुछ हो सकता है । लेकिन यदि उमा के समान महातप करने का मोका न मिले तो भी यहा रहते हुए जो कुछ किया जा सके वह तो मै कर लू ! काम करना तो हमारे खाने-पीने, सास लेने आदि के जैसी बात होती है, उसमे कोई भारी सकट नही उठाना पडता । शरीर को काम करना ही होता है और उसे वह किया करता है । वास्तव मे मनुष्य-जन्म पाकर यदि हमें कुछ विशेष करना है तो वह केवल तपश्चर्या ही है । ऐसी तपश्चर्या का मुझे यह जो सर्वप्रथम अनुभव मिल रहा है उसे देखकर तुम सबको खुश होना चाहिए, दुख मानकर और व्याकुल होकर मेरे दुख मे वृद्धि नही करनी चाहिए ।

"बा, रामदास और दूसरे भी मेरे साथ सात दिन तक उपवास करना चाहते है परन्तु मैंने सभी को बिलकुल मना किया है । कैलनबैक का तो मेरे प्रत्येक व्रत मे साथ देना धर्म बन गया है । उनके अतिरिक्त केवल को अपने साथ उपवास करने की इजाजत मैंने दी है । इसके बिना उसके हृदय को शाति मिल ही नही सकती । उसके लिए अपनी देह को टिकाना अब तभी सभव हो सकता है जब उसकी काया पश्चात्ताप की अग्नि मे तपकर शुद्ध हो जाय । इन उपवासो को सहन तो वह कर ही लेगा, लेकिन कदाचित् उसने सहन नही किया और उसकी देह गिर गई तो मुझे उस कारण दुख होने वाला नही है । मै तब शोक नही मनाऊगा । अपनी शुद्धि करते हुए अगर कोई मनुष्य मौत को गले लगा लेता है तो उसके जैसा शुभ अवसर और कौन-सा हो सकता है ? लेकिन ऐसा कुछ होने ही वाला नही है । वह तो इन उपवासो को मुझसे भी अच्छी तर बर्दाश्त कर सकेगा ।

"अब प्रश्न यह उठ सकता है कि जब मैंने को और कैलनबैक को प्रायश्चित्त करने की स्वीकृति दी तो को क्यो नही दी ? उसके बस का वह नही है । यदि उसे प्रायश्चित्त करना है तो और ढग से भी कर सकती है । फिर उसके अन्तर मे क्या-क्या चल रहा है इसका अभी तक मुझे सही-सही अनुमान नही हो सका है । यदि उसे प्रायश्चित्त करना ही हो तो वह अपने सारे बाल कटवा डाले, रग-बिरगे कपडे पहनना छोडकर केवल सफेद साडी ही पहने । पाठशाला मे पढाने का काम पन्द्रह दिन के लिए छोड दे, बाते करना और इधर-उधर फिरना बन्द कर दे और देवी बहन (श्री वेस्ट की बहन) के साथ अपना समय बिताए । यही उसका प्रायश्चित्त है । मैंने उसे यह सब करने के लिए कह दिया है । इसलिए कल सवेरे ही पहला काम मै उसके बाल काटने का करनेवाला हू ।

"रामदास, बा या किसी और को उपवास करने की आवश्यकता है ही

नहीं। उन्हें यदि किसी बात का प्रायश्चित्त करना ही है तो मैं अपना उपवास समाप्त कर लूं, तबतक वे प्रतीक्षा करें। बाद में चाहें तो कर सकते हैं। मैं उपवास करूंगा, इसलिए रसोई, खेती और मोची के काम में, हर जगह, मेरे हिस्से के काम की कमी रहेगी। उन सारे कामों को पूरा करना तुम सबका कर्तव्य है। मेरे उपवास के दिनों में तुम लोगों को दुगने उत्साह से काम करना चाहिए। ये सब बातें बा और रामदास भी मान लें तो अच्छा है।

"एक और बात जो मुझे सभी के लिए और विशेषकर लड़कों के लिए कहनी है, वह यह है कि कोई आपस में काना-फूसी न करे। अपराध करने वालों का मजाक उड़ाना और उनकी निन्दा करना बहुत बुरी बात है। हम सभी लोग एकसे ही अपराधी हैं। यदि न हों तो हमारे बीच ऐसी भूलें होने ही न पायं। कोई आदमी जो अपराध करता है, उसकी नींव में सभी का पाप होता है। जब किसी को ठोकर लगे तब हमें सावधान हो जाना चाहिए। यदि हम उसपर हंस दें और ऊंचा देखकर चलें तो हमें भी वैसी ही ठोकर खानी पड़ेगी। समझदारी इसीमें है कि दूसरों को ठोकर खाते देखकर हम विनम्र बन जायं और संभल जायं। ठोकर खानेवाले के प्रति दयाभाव रखने और उसकी सहायता के लिए दौड़ जाने में जैसे शिष्टता है वैसे ही जब हमारा साथी भूल कर बैठे और उसका अन्तर उसे नोचने लगे तब हमें उससे बड़ी मिठास और सहानुभूति से बरतना चाहिए।

"मेरा काम केवल इन उपवासों से ही निबटनेवाला नहीं है। सात दिन के उपवास पूरे होते ही मेरा चार महीने का एकाशन व्रत शुरू हो जायगा। यदि दुबारा इन्हीं व्यक्तियों की भूल के लिए मुझे फिर प्रायश्चित्त करना आवश्यक हुआ तो १४ दिन का उपवास और बरस भर का एकाशन करना पड़ेगा। यदि तिबारा वैसा करना पड़े तो इक्कीस दिन के उपवास के बिना मेरे लिए यह प्रायश्चित्त कहलायगा ही नहीं। एक बार प्रायश्चित्त कर डाला, इसका अर्थ यह नहीं होता कि फिर निडर होकर सब बातों से छुट्टी पा जाऊं। प्रायश्चित्त निपटा देने के बाद यदि दूध के धुलेसे बनकर हम हलके मन से बरतना शुरू कर दें तो वह प्रायश्चित्त व्यर्थ है। अपने तनपर लगी हुई धूल को जिस प्रकार हम झाड़ डालते हैं उसी प्रकार से पापों को नहीं झाड़ा जा सकता। प्रायश्चित्त के बाद हमारा उत्तरदायित्व अत्यधिक बढ़ जाता है। जिसने एक बार प्रायश्चित्त किया हो उसके लिए दुबारा प्रायश्चित्त करने का अवसर यदि उपस्थित हो जाय तो उसे पहले से दुगुना प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

बापूजी ने अपना प्रवचन समाप्त किया तब ऐसा मालूम हुआ मानो हम अपने को भूल गए हैं। रामदासकाका फिर से उनके पास पहुंचे और

उनके साथ उपवास मे शामिल होने की स्वीकृति पाने के लिए आग्रह करने लगे। तब बापूजी ने सोच-विचार कर यह घोषित किया कि जिनकी इच्छा हो वे सब उनके उपवास के पहले और आखिरी दिन उपवास कर सकते है। यह स्वीकृति मिलने पर छोटे-बडे सभी के मुख पर छाई हुई विषाद की छाया कुछ कम हो गई।

: ४६

फिर उपवास

महात्मा टाल्स्टाय, महान विचारक रस्किन और राजयोगी श्रीमद् राजचन्द्र, इन तीन मानव-विभूतियो ने बापूजी के हृदय को अभिभूत कर लिया था और इन तीनो के उच्चतम आदर्शो का अनुशीलन करके बापूजी उनके अनुसार आचरण करने का सतत प्रयत्न करते थे।

उनकी आराधना फीनिक्स मे चोटी तक पहुच गई थी। "मजदूर और वकील, सम्पादक और चपरासी को दिन भर की मजदूरी का मेहनताना एक-सा ही मिले, क्योकि सबका पेट एक-सा ही होता है," रस्किन का यह सिद्धान्त वहा अच्छी तरह अमल मे लाया जाता था। बापूजी, उनके प्रथम सहायक और निम्न सेवको के रहन-सहन का स्तर अलग-अलग नही था। सर्वोदय समाज का वहा स्पष्ट दर्शन होता था। "कस कर मजदूरी की जाय और नित्यप्रति पसीना बहाने के बाद ही भोजन किया जाय"—यह टाल्स्टाय की धुन बापूजी ने फीनिक्स के बच्चे-बच्चे मे भर दी थी। जो व्यक्ति उत्पादक शरीर श्रम करने मे आगे निकल जाता था वह अपने को धन्य समझता था। अनशन-व्रत का श्रीगणेश करके बापूजी ने राजचन्द्रजी की वाणी मे प्रदर्शित जैन-दर्शन की इस महत्वाकाक्षा को भी फीनिक्स के वायुमडल मे भर दिया कि "मनुष्य-देह हर तरह से एक बोझा है। उससे मोक्ष पाना सबका कर्तव्य है। कठोर से-कठोर व्रत धारण करके देह तथा इन्द्रियो का जितना बने अधिक दमन करने तथा हृदय मे सभी प्राणियो के प्रति अहिसा की भावना को निखारते रहने मे ही मानव-जीवन की सफलता है।"

सात दिन का ही वह पहला अनशन कितना भयावह था, इसकी कल्पना अब नही की जा सकती। उन दिनो ऐसा प्रतीत होता था, मानो साक्षात मृत्यु हमारे सामने मूर्तिमत खडी हो। मृत्यु का स्वागत परम-मित्र के रूप मे करने की बापूजी की चर्चा हृदय को और भी व्यथित करती थी। दूसरी

और उपवास की भारी कमजोरी के होते हुए भी प्रत्येक सध्या को प्रार्थना के समय बापूजी ज्ञान का जो गभीर स्रोत बहाते थे, उनके कारण हमारा उद्वेग और भी बढ जाता था। समझ मे नही आता था कि उस भव्य ऊचाई तक पहुचने के लिए बापूजी क्या-क्या कर बैठेंगे और यदि वह सचमुच ही चल बसेंगे तो हम किस मुह से दुनिया मे रह पायगे।

बापूजी ने अपना नित्यक्रम पूर्ववत् चालू रखा मानो कोई विशेष बात ही न हुई हो। हम लोगो के वर्ग लेने मे कमी नही आने दी। खुद उपवास कर रहे थे और हमे भोजन परोसते थे। भोजन के समय प्रसन्नता भी बनाये रखने मे सावधान रहते थे। घूमने-फिरने का काम कुछ घटा दिया था, किन्तु आखिरी दिन तक चलते-फिरते थे, लेटे नही रहे। हमारे गीता के वर्ग मे उन दिनो जो प्रवचन होते थे उनमे हमारा चित्त असाधारण रूप मे एकाग्र रहता था। बापूजी को लेशमात्र भी परेशानी न हो इस खयाल से सभी विद्यार्थी बहुत सीधे बन गए थे। आखिरी और सातवे दिन बापूजी कुर्सी पर बैठे-बैठे हमारी साप्ताहिक परीक्षा के उत्तर-पत्र जाच रहे थे। उस समय दो मिनट के लिए अकस्मात उनका सिर झुक गया। सबने समझा कि उन्हे मूर्छा आ गई है। क्या किया जाय ? इस सोच-विचार मे ही हम लोग थे कि बापूजी ने आखे खोल दी। वह तनकर बैठ गए और हमारी कापियो को जाचने का काम फिर शुरु कर दिया। मध्याह्न का सारा काम भी नियम-पूर्वक पूरा किया।

उपवास के सातो दिन तक श्रीमद् राजचन्द्र के एक मननीय गुजराती भजन का पारायण किया गया, जिसमे पन्द्रह कडिया थी और उन्हे गुजराती लोक-गीत की तर्ज मे गाने में काफी समय लगता था। 'आरगन' (हारमोनियम जैसा एक अग्रेजी वाद्य) पर मणिलालकाका ज्योही उसकी स्वर-लहरिया बजाते थे, सारा वातावरण भावार्द्र हो जाता था। मगनकाका अपने गभीर कण्ठ मे उस पद्य की शब्दावली गाते और मेरी माताजी और दूसरी बहने तथा विद्यार्थी एक साथ गद्गद् कण्ठ से उसको दोहराते थे। भजन हो जाने के बाद बापूजी उसका अर्थ समझाते थे और फिर अपनी भावना का प्रवाह वाणी द्वारा बहाते थे। उस भजन की कुछ पक्तिया निम्न लिखित है

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे, क्यारे थईशु बाह्यान्तर निर्ग्रथ जो ?

ऐसा अपूर्व अवसर कब प्राप्त होगा जब कि हम अन्तर-बाह्य की ग्रथियो से नि शेष हो जायगे ?

सर्व सबधनु बधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरीशु कव महत्पुरुषने पथ जो ?

सब प्रकार के सबधो का तीक्ष्ण वचन काटकर महापुरुषो के पथ पर हम कब विचरण करेगे ।

बहु उपसर्ग कर्त्ता प्रत्ये पण क्रोध नही वदे चक्री तोपण न मळे मान जो।

जो हमारा अतिशय उत्पीडन करता हो—जो हमे बेहद सताता हो—उसके प्रति भी हमारे दिल मे क्रोध पैदा न हो, और चक्रवारी महाराजाधिराज भी यदि हमारे पैर छुए, तब भी हमारे मन मे अभिमान का पता तक न हो।

देह जाय पण माया थाय न रोम मा लोभ नही छो प्रबल सिद्धि निदान जो ।

भले ही शरीर गिर जाय, लेकिन माया का कुस्पर्श हमारे रोम मे भी न हो ओर चाहे बडी-से-बडी सिद्धि निश्चित रूप से हाथ आनेवाली हो फिर भी उसके लोभ मे हम न फसे ।

जीवित के मरणे नही न्यूनाधिकना भव मोक्षे पण वर्ते शुद्ध स्वभाव जो।

चाहे जीवन बना रहे, चाहे मरण सिर पर आ जाय, दो मे से किसी को भी हम न्यूनाधिक न समझे । ससार मे हो या मोक्ष-स्थिति मे पहुच जाय दोनो परिस्थितियो मे हमारा स्वभाव विशुद्ध बना रहे ।

मोह स्वयभू-रमण समुद्र तरी करो बळीपीदरीवत् आकृति मात्र जो ।

अपने-आप ही अन्तर मे लहराता हुआ मोह का जो समुद्र है उसको पार करके जली हुई नारियल की रस्सी की तरह केवल आकृति रूप ही हमारी स्थिति कब बन जायगी ? अर्थात् जिस प्रकार नारियल की रस्सी सारी जल जाने के बाद भी देखने मे बटी हुई तैयार रस्सी जैसी ही दीख पडती है, पर वास्तव मे वह रस्सी नही राख ही होती हे, उसी प्रकार हमारे शरीर का अहकार, मोह आदि पूर्णतया जलकर समाप्त हो जाय और मृत्यु के दिन तक शरीर बना रहे तो केवल आकृतिमात्र ही रहे, उसमे आसक्ति की ताकत कुछ भी न रहे। ऐसी स्थिति कब आयगी ?

एह परम पद प्राप्तिनु धर्यु ध्यान मे गजा वगरनो हाल मनोरथ रूप जो ।

उस परम-पद की प्राप्ति पर मैंने अपना ध्यान लगाया है, यद्यपि उसे पाने मे मै असमर्थ हू और इस समय तो वह केवल मेरे मनोरथ के रूप मे ही है ।

तो पण निश्चय राजचर्न्द्र मनने रह्यो प्रभु आज्ञाए थाशु तेज स्वरूप जो।

फिर भी राजचन्द्र के मन मे यह पक्का निश्चय है कि ईश्वर की आज्ञा से मै वह उच्च स्वरूपमय बन ही जाऊगा।

सातवी रात को इस भजन की अन्तिम पक्तियो की व्याख्या वापूजी ने की और जो निश्चय राजचन्द्र ने किया था, वही वापूजी ने अपने लिए भी जोरदार शब्दो मे दोहराया । कवि ने तो उस आदर्श तक पहुचने के लिए कोई दूर का समय सूचित किया है, परन्तु वापू को उसमे विलम्ब और प्रतीक्षा असह्य प्रतीत हो रही थी । उनके मुख पर इतना दृढ सकल्प प्रकट हो रहा था, मानो वह उस अपूर्व अवसर को अपनी मुट्ठी में शीघ्र ही वाघ लेगे ।

प्रवचन की समाप्ति पर वापू ने अपना प्रिय भजन 'वैष्णवजन' गाने को कहा । सभवत भक्त प्रह्लाद और उसके पिता हिरण्यकश्यप के बीच के सवादवाला गुजराती भजन भी उस समय गाया गया था । सातो दिन निर्विघ्न बीत जाने के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए हम लोग रात्रि के विश्राम के लिए चले गए ।

दूसरे दिन वापूजी ने अपना उपवास खोल दिया । कैलनवैक और के उपवास भी समाप्त हुए । कैलनवैक सात दिन की अवधि मे अधिक दुर्वल हो गए थे, पर उनके मुख पर शान्ति झलक रही थी । . ने भी धैर्य और वहादुरी के साथ उपवास पार किया ।

उपवास की पारणा होने के दिन से ही वापूजी ने दिन मे एक ही वार खाने का अपना ४॥ मास का व्रत शुरू कर दिया । कमजोरी दूर होने तक भी नही रुके । जिस उद्देश्य से अनशन किया गया था, उसकी फल-प्राप्ति मुझ वालक की समझ मे आनी कठिन थी, लेकिन उसके वाद मे फीनिक्स में उपवासो का सिलसिला वढ गया । मुझे ऐसा स्मरण है कि वहन ने वापूजी के वाद चार-पाच दिन का उपवास किया था, और कई दिनो तक उन्होने मौन धारण कर रक्खा था । दूसरे लडको ने भी एक-एक, दो-दो दिन के उपवास किये थ और एक दिन का उपवास मैने भी किया था ऐसा याद है ।

: ४७ :

बुनियादी शिक्षा

श्री वेस्ट को अपना मकान वहुत छोटा पडता था । उसमे सुधार करने और कमरे वढाने का काम कई महीनो से थोडा-थोडा होता था । परन्तु वेस्ट साहव की वहुत-सी परेशानियो को देखकर वापूजी ने एक सप्ताह मे ही उस काम को पूरा करने का निश्चय किया । सवके साथ विचार-विनिमय करके पूरे सप्ताह भर पाठशाला वन्द रखने की योजना

बनाई गई। साप्ताहिक पत्र तो बन्द रह नही सकता था, इसलिए यह सोचा गया कि छापाखाने मे काम करनेवाले सभी बडे व्यक्ति उस काम से मुक्त किये जाय ओर केवल लडके ही अपना सगठन करके 'इडियन ओपीनियन' का उस सप्ताह का अक प्रकाशित करे।

लडको ने उत्साहपूर्वक यह बीडा उठा लिया और वेस्ट साहब का घर बाधने के लिए छापाखाने के प्रत्येक बडे आदमी को मुक्त कर दिया गया। पकी उम्र वाले श्री काबाभाई का शरीर धूप मे कडा काम करने योग्य नही था ओर उनके बिना वेस्ट साहब का घर बाधने मे ढील होती ऐसी बात भी नही थी। फिर भी गुजराती कम्पोजिग का एक-तिहाई हिस्सा अकेले ही कर लेने वाले उस वृद्ध को भी छापाखाने से लडको ने छुट्टी दे दी ताकि लडको के यश मे कमी न आवे। बापूजी से हमारी मडली ने यह वादा ले लिया कि चाहे कितनी ही उलझन पैदा हो, शुक्रवार से पहले एक भी बडा व्यक्ति हमारे काम मे दखल नही देगा।

इस प्रकार छापाखाने का पूरा राज्य लडको के सिपुर्द करके बापूजी ने मिस्त्री का काम अपने हाथ मे ले लिया। बापूजी, मगनकाका, श्री वेस्ट आदि को बढई के काम का कुछ मुहावरा हो गया था, दूसरो को परिश्रम करने मे आपत्ति नही थी, इसलिए अलादीन के चिराग वाले मकान की फुर्त्ती से वेस्ट साहब का घर बनने लगा। बापूजी को उस काम मे लगे हुए देखते ही बनता था। वह उस काम के लिए उस देश मे प्रचलित नीले रग का पतलून पहनते थे, जिसमे दस-बारह जेबे होती थी—दो-दो जेबे जाघ के ऊपर, दो-तीन कमर पर, दो अगल-बगल मे, इसके अलावा चमडे का एक-दो जेबो वाला और पीतल की कई कडियो वाला कमर बद भी था। इन विविध जेबो मे बापूजी छोटी-मोटी कीले, स्क्रू, वाशर, हथौडी, जम्बूर, पेचकस आदि लगा लेते थे। वह पतलून क्या, बढई का एक थैला ही था। उस थैले से सुसज्जित होकर बापूजी छप्पर के ऊचे-से-ऊचे स्थान मे पहुच जाते थे और वहा कडी धूप मे, अभ्यस्त बढई की तरह एकाग्रता से घटो टीन की नालीदार चद्दरो को कीलो से जडने का काम करते रहते थे। बापूजी के साथ ही मगनकाका भी रहते थे जो काम मे उनसे सवाए थे। दूसरे भी सभी लोग पूरे जोर से अलग-अलग काम मे लगे रहते थे। फीनिक्स की चारो दिशाओ मे दिन भर कील आदि के ठोकने की प्रतिध्वनि गूजती रहती थी। उसे सुनकर हम लोगो को अपना काम करने मे और भी जोश आता था।

बापूजी ने विद्यार्थियो को अकेले ही साप्ताहिक छापने का काम दिया।

उसका और भी कारण था। हम लोगों में जो अधिक सयाने थे उन्होंने काना-फूसी शुरू की कि अब पन्द्रह-बीस दिन में ही शायद सत्याग्रह-संग्राम छिड़ जायगा और हमारा भारत जाना रुक जायगा। अगर सभी बड़े व्यक्ति जेल चले जायं तो विद्यार्थीगण 'इंडियन ओपीनियन' का प्रकाशन बन्द न होने दें, इसी हेतु बापूजी ने हमारी यह कसौटी की है। इसमें हमें अपना जौहर बता ही देना चाहिए।

सप्ताह में अनेक बार किसी-न-किसी बड़े आदमी ने हम लोगों को व्यंग वाक्य सुनाये कि अब के शुक्रवार को हमें दुगना काम करना पड़ेगा। रात भर जाग कर भी मुश्किल से डाक पहुंचा पायगे। परन्तु शुक्र की सन्ध्या होने से पहले ही हमने अखबार के सारे पार्सल बांध लिये और डाक के थैले बाकायदा भर कर तैयार कर दिये थे। सन्ध्या के पांच बजे जब मकान के काम से छुट्टी पाकर बड़े लोग हमारा काम जांचने आये, तब हम में से कई तो अपना काम पूरा करके खेलने के लिए चले गए थे और दूसरे जाने की तैयारी में थे। हमारे काम का परीक्षण करके उन बड़ों ने बापूजी को बधाई दी कि लड़के तो हमसे सवाए साबित हुए। बापूजी ने लड़कों को शाबाशी देते हुए कहा, "मुझे यकीन था कि तुम लोग हमें हरा दोगे।" बापूजी के इन शब्दों ने सब लड़कों को खुश कर दिया।

आमतौर से शनिवार को एक पहर बीतने के बाद मुश्किल से अखबार के बंडल डाक के लिए रवाना किये जा सकते थे, लेकिन हमने दिन निकलते ही उन्हें स्टेशन पर पहुंचा दिया।

लड़कों की इस सफलता के पुरस्कार स्वरूप बापूजी ने सन्ध्या के समय खेल में हमारे साथ अपना कुछ समय देना स्वीकार किया।

शिवपूजन सहाय—हममें सबसे बड़ा विद्यार्थी और कुप्पुस्वामी के बीच लंबी दौड़ लगाने की शर्त हुई थी। शिवपूजन ने दावा किया था कि आश्रम से स्टेशन तक कोई भी लड़का मुझसे दस मिनट पहले दौड़ना शुरू करे तो भी मैं बाद में चल कर उससे पहले लौट आऊंगा। दो लड़कों ने इस चुनौती को स्वीकार किया। छापाखाने के द्वार पर बापूजी स्वयं घड़ी लेकर खड़े रहे। स्टेशन पर श्री मगनभाई मास्टर को घड़ी के साथ पहले ही भेज दिया गया। कुप्पुस्वामी और गोविन्द को बापूजी ने दस मिनट पहले रवाना किया और ठीक समय पर शिवपूजन को। हम लोग तमाशा देखने के लिए स्टेशन के रास्ते के अध बीच तक गये। कुप्पु-गोविन्द करीब स्टेशन तक पहुंचे होंगे तब हमारे सामने से—आश्रम से कोई डेढ़ मील की दूरी पर—हिरन की तरह चौकड़ी भरता हुआ शिवपूजन दौड़ता

हुआ निकल गया। घोडे की तरह उसके नथुने फूल रहे थे। कुप्पु-गोविन्द भी कम तेजी से नही दौडे थे। परन्तु लौट कर ठीक १॥ मिनट पहले शिवपूजन बापूजी जहा घडी लिये खडे थे, पहुच गया। उसकी जय-जयकार से आकाश गूज उठा। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि उन्तीस मिनट मे शिवपूजन ने पाच मील की दौड उस ऊबड-खाबड पगडडी पर पूरी की थी।

: ४८ :

सत्याग्रह की तैयारी

कुछ दिन बाद दक्षिण अफ्रीका के एक न्यायालय ने भारतीय महिला के सम्बन्ध मे ऐसा एक फैसला दिया जिससे भारत मे हिंदू-मुस्लिम विधि से विवाहित पत्नी दक्षिण-अफ्रीका मे अनधिकृत पत्नी बन जाती थी। दक्षिण अफ्रीका मे बापूजी की सत्याग्रह की लडाई को उस समय तक छ-सात वर्ष हो चुके थे, लेकिन तब तक उसमे किसी स्त्री सत्याग्रही का प्रवेश नही हुआ था। अब, जब कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने भारतीय लग्न-विधि को गैरकानूनी घोषित करके भारतीयो की—और विशेषत भारतीय स्त्रियो की—धार्मिक भावना पर अनपेक्षित आक्रमण किया, तो उसके विरोध मे बहनो का भी सत्यागह करके जेल जाना आवश्यक हो गया। बापूजी ने अपनी रीति के अनुसार महिला-सत्याग्रही को जेल भेजने का श्रीगणेश अपने ही घर से करना आवश्यक समझा। परन्तु अपनी ओर से पूज्य बा के सामने यह प्रस्ताव रख कर उनको वह असमजस मे नही डालना चाहते थे। इसलिए उन्होने बहनो के जेल जाने की प्रथम चर्चा मेरी माताजी और काकी से की। बापूजी ने दोनो से यह वादा ले लिया कि दक्षिण अफ्रीका मे और कोई स्त्री जेल के लिए तैयार न हो, तो भी उनको सत्याग्रह मे कूदना होगा। जब पूज्य कस्तूर बा को बापूजी के इस आह्वान का पता चला तब वह खुद ही जेल जाने के लिए तत्पर हो गई। पूज्य बा के लिए जेल जाना साधारण बात नही थी, क्योकि तब वह बीमार थी और केवल फलाहार करने का ही उनका व्रत था। इस व्रत के कारण जेल मे अत्यधिक कष्ट भोगने पडे और प्राणो की बाजी लगा देनी पडे, ऐसा स्पष्ट भय था। परन्तु इस भय को समझते हुए भी पूज्य बा ने अपना नाम महिला-सत्याग्रहियो मे सर्वप्रथम रखने का आग्रह किया तथा बापूजी ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार फीनिक्स से कुल मिला कर ४ महिलाए जेल जाने के लिए तैयार हो गई। ये थी—पूज्य बा, मेरी माताजी, मेरी चाची और

वापूजी के परम मित्र डा० प्राणजीवनदास मेहता की पुत्री जयकुवर वहन।

तीन-चार दिन वाद निश्चित रूप से पता चल गया कि हमारे घर मे तीन व्यक्ति जेल जायगे—पिताजी, माताजी और काकी। मगनकाका 'इडियन ओपीनियन' के काम तथा आश्रम के सब बच्चो की देखभाल के लिए रुक जायगे।

पाठशाला मे बैठकर पढने मे अब हमारा जी नही लगता था। वापूजी से हमने कहा भी कि चाहे देश के लिए चलना हो चाहे जेल के लिए, हमें भी तब तक की छुट्टिया दे दी जाय। परन्तु वापूजी ने साफ इनकार कर दिया और कहा

"इस तरह पढाई बन्द करना गलत होगा। यदि सब लडके जेल चले जाय तो भी पाठशाला का थोडा बहुत क्रम तो जारी रखना ही चाहिए। पढाने वाला शिक्षक न रहे तो लडके आपस मे एक-दूसरे की सहायता करके पढे। और कुछ नही तो नित्य नियम मे थोडा समय गणित का अध्ययन ही किया जाय। छुटपन मे गणित सीख लिया जाय तो वाकी बाते वडेपन मे भी सीखी जा सकेंगी। इसलिए गणित के स्वाध्याय में एक दिन का भी प्रमाद उचित नही है।

इस प्रकार फीनिक्स का नित्यक्रम चलता रहता था पर दिन भर बाते प्रयाण की ही होती थी और नजीर की प्रसिद्ध गजल की निम्नलिखित पक्तिया मानो हमारे श्वासोच्छ्वास का अग वन गई थी

है वहारे वाग दुनिया चद रोज।
देख लो इसका तमाशा चद रोज॥
ऐ मुसाफिर कूच का सामान कर।
इस जहा में है वसेरा चद रोज॥
तुम कहा औ' मैं कहा ऐ दोस्तो!
साथ है मेरा तुम्हारा चद रोज॥

जेल जाने की चर्चा के साथ ही लडको मे फीनिक्स के वाहर की चर्चाए भी होने लगी। इन चर्चाओ का सार यह था कि फीनिक्स तथा जोहान्सवर्ग से जो मुट्ठी भर सत्याग्रही तैयार हो रहे है, उन्हे वडा कठिन मोर्चा लेना होगा। वापूजी वडा भीषण युद्ध ठान रहे है। इस वार की जेल-यात्रा कोई खिलवाड न होगी। इसीलिए वापूजी चुन-चुन कर कच्चे व्यक्तियो को फीनिक्स से घर लौट जाने के लिए कह रहे है।

× × ×

एक दिन जब मै स्टेशन पहुचा और स्टेशन मास्टर के हाथ मे मैंने 'इडियन ओपीनियन' की डाक दी तो वह बोले, "मिस्टर गाधी से कहना कि केपटाउन से जनरल स्मट्स का तीन सौ शब्दो का तार आया है। डरबन वालो ने यहा खटखटाया पर मुझे लेने की फुरसत नही थी, इसलिए वह शाम की ट्रेन से पाच बजे यहा आ जायगा।"

पाच बजने मे मुश्किल से डेढ घटा बाकी था। पर इतनी देर स्टेशन रुका रहना मैंने ठीक नही समझा। चार दिन से जिस तार की बडी आतुरता से प्रतीक्षा की जा रही थी उसके आने का समाचार मैंने दौडकर आश्रम में बापूजी के पास पहुचाया। सारे आश्रम मे विद्युद्वेग से तीन सौ शब्दो के तार की चर्चा फैल गई। और यह पक्का अनुमान हो गया कि तार मे समझौते की बात नही होगी। सत्याग्रह छिड कर ही रहेगा।

सध्या की प्रार्थना से पहले तार बापूजी के हाथ मे आ गया। प्रार्थना मे उन्होंने मेरी माताजी से वह गुजराती भजन गाने को कहा, जिसमें भट्ट प्रेमानन्द ने बडी करुणापूर्ण वाणी मे नल राजा के परित्याग के बाद दमयन्ती की विपदा दरसाई है

"वैदरभी वनमा वलवले अधारी छे रात" वाला वह भजन समाप्त होने पर बापूजी का यह प्रवचन हुआ

"अब जेल जाने का दिन आ पहुचा है। जेल जाना कोई खेल नही है, दिन भर पत्थर फोडने पडेगे, सूखी और कडी जमीन को खोदना पडेगा। हाथ बहुत दुखने लगेगे और खाने का महाकष्ट होगा। स्वाद का नाम नही, उबला हुआ दाल-चावल भी स्वच्छ मिले तो गनीमत। उपवास के मौके भी आयगे और उपवास के समय भी काम पूरा करना होगा। बेहोश होकर शरीर के गिर जाने तक काम करने से इनकार नही करना होगा। इसलिए इन कष्टो के बारे मे अब भी तुम सब जितना चाहो सोच लो। जेल मे जाने के बाद दुख सहन हो सके, आख से आसू बहने लगे, इससे बेहतर है कि जेल न जाय। इस समय सोलह व्यक्ति यहा से जाने के लिए तैयार है उनमे से दस ही जायगे, शेष एक जायगे तो मै जरा भी बुरा नही मानूगा, किन्तु एक बार जेल मे जाने के बाद चाहे कितने ही वर्ष तक यह सघर्ष जारी रहे, कोई जेल जाने से मुकर जाय यह नही चलेगा। रणक्षेत्र मे जाकर पीछे कदम हटाने से न जाना अच्छा है।"

बापूजी के इन वचनो को बडी गम्भीरता से सबने सुना और पाच-दस मिनट तक कोई कुछ बोला नही। तब बापूजी एक-एक से व्यक्तिगत प्रश्न करने लगे। बाहर रहने के लिए कई लालच भी उन्होने बताए और

सबको काफी हसाया, लेकिन सोलह मे से एक भी अपना नाम लौटाने के लिए तैयार नही हुआ। अन्त मे बापूजी ने माताओ को दुबारा चुनौती देते हुए कहा

"एक बार जेल जाकर छूटने के बाद यदि तुम देखोगे कि तुम्हारे बच्चे निराधार हो गए है तो भी दुबारा जेल जाने से रुकना नही होगा। बच्चो को सभालने वाला ईश्वर बैठा ही है। वह समर्थ है, चाहेगा तो तुम्हारे हाथ मे रहते हुए भी बच्चो को बीमार कर देगा और चाहेगा तो तुम्हारी अनुपस्थिति मे भी उनका हजार गुना भला करेगा। इसलिए बच्चो के मोह मे पडकर तुम कर्त्तव्य मे चूक जाओ यह ठीक न होगा। इस बात पर पुन -पुन सात बार विचार करने के बाद तुम लोग जेल के लिए प्रयाण करना। गलत जोश मे, मत चल देना।"

: ४९ :

सत्याग्रही टोली का प्रयाण

दिन सोमवार का था और तारीख १६ दिसम्बर, सन् १९१३। पूर्व क्षितिज मे सूर्य के ऊपर आने के साथ-साथ आज सारे फीनिक्स का दृश्य ही बदल गया था। पाठशाला और खेत का काम बिलकुल बन्द था। सब लोग सत्याग्रहियो की टोली के प्रयाण की तैयारियो मे व्यस्त थे। जो लोग जाने वाले नही थे वे सस्था के काम का बोझ अपने कधो पर लेने को तैयार हो रहे थे।

रसोई-घर मे बापूजी रसोई की मेज पर बडी फुर्ती से काम मे जुटे हुए थे। वहा पर पूज्य कस्तूर बा और मेरी माताजी का उपस्थित न होना एक नई बात थी। माताओ के बिना रसोई-घर खाली-सा दीखता था। परन्तु महिलाओ के सहयोग के अभाव मे रसोई का काम शिथिल न होने देने के लिए बापूजी कटिबद्ध थे। मगनलालकाका बापूजी की सहायता कर रहे थे और दोनो ने मिल कर चपातियो का ऊचा ढेर बना दिया था। पाव रोटी के लिए बहुत कडा आटा मलना था और वह मजबूत हाथो से करने का काम था। उसे करने मे देवदासकाका अपनी सारी ताकत लगा रहे थे। मुझपर साग बनाने का काम था।

रसोई का काम करते हुए बापूजी उन सभी को स्वस्थ चित्त मे उत्तर दे रहे थे, जो यात्रा मे अपने साथ ले जाने के सामान के बारे मे पूछने आते थे।

यह विदाई का दिन था और रणसग्राम मे झूझने वालो के लिए घर का यह अन्तिम भोजन था। भोजन की घटी बजनेतक बापूजी ने अनेक-विध रसोई तैयार कर दी। चपाती, खीर, सब्जी, टमाटर आदि की चटनी, खजूर भिगो कर तैयार किया गया मधुर रस, और कढी-भात आदि चीजे तैयार की गई थी। सार यह कि किसी त्योहार या उत्सव के दिन फीनिक्स मे हम लोगो को जो भोजन मिला करता था उससे भी श्रेष्ठ भोजन आज का था। बापूजी ने स्वय बडे प्रेम से और कुछ आग्रह से भी सभी को भोजन परोसा।

शाम के चार बजे रेलगाडी छूटने वाली थी। स्टेशन जाने के लिए अभी तीन घटे का समय था। जेल जाने की बाते तो महीनो से चलती थी पर अब प्रयाण सन्निकट आ गया तो सभी के सामने आगे आनेवाली भीषण परिस्थिति का सारा चित्र उपस्थित हो गया। बापूजी ने बीसियो बार दोहरा कर जिन कठिनाइयो की सम्भावना दर्शाई थी, वे सब मानो एक साथ फीनिक्स-वासियो के स्मृति-पट पर मडराने लगी। उन बातो का निचोड इस प्रकार था

१ प्रवासी भारतवासियो के खून को चूस लेनेवाले कानून जबतक हटाए न जाय तबतक सत्याग्रह लगातार चालू रखना होगा चाहे कितना ही सकट क्यो न भुगतना पडे।

२ जबतक तीन पौड का विनाशकारी कर उठा न लिया जाय, जेल जाने का सिलसिला कायम रखा जायगा।

३ उस कर का बोझा जिन गरीब गिरमिटिये भाइयो पर पडता है, वे खुद इस सघर्ष मे सहायता देगे या नही, देगे तो कितनी देगे, यह शकास्पद होने पर भी हमे अन्त तक झूझना ही होगा।

४ यदि हमारे सहयोगी और भारतवासी भाई इस सत्याग्रह से ऊब जाय, उन्हे यह सत्याग्रह व्यर्थ मालूम देने लगे और वे सत्याग्रह के युद्ध मे साथ देना छोड दे तो भी आज के दिन प्रयाण करनेवाले सोलहो व्यक्तियो को अपनी निन्दा सहन करके भी आगे बढना ही है, दम लेना है ही नही।

५ जबतक फीनिक्स का नाम-निशान भी है, तबतक हार मान कर बैठने का अवसर नही है। यह निश्चय करके ही आज के प्रयाण का श्रीगणेश होना चाहिए।

बापूजी की इन बातो को याद करके प्रत्येक फीनिक्सवासी अपने आपमें डूब-सा गया था, उद्विग्न और चिंतित हो उठा था, कि जाने कब हम फिर

मिलेंगे ! कहा जा कर फसेंगे !

दो बजने पर सब के बिस्तर आदि एक ठेले म लाद कर स्टेशन भेज दिये गए और सब लोग प्रार्थना के कमरे में एकत्रित हुए। सब के आ जाने पर बापूजी ने अपनी धीर-गम्भीर वाणी मे इस आशय की बाते कही

"देखो, लाज रखना। इस समय जैसे उत्साह में और आनन्द मे हो उसी प्रकार के उत्साह और आनद में रहना, चाहे कितना ही दुख क्यो न सिर पर आ जाय ! मृत्यु की घडी आ पहुची हो तब भी हमारा उत्साह तिल मात्र ढीला नही होना चाहिए। तीन महीने की कैद तो कुछ बात है ही नही। उसमे तो चैन है, आराम है। वहा पर पहनने के लिए वस्त्र, लेटने के लिए बिस्तर और भोजन के लिए अन्न नियमपूर्वक मिलता रहेगा। मजदूरी करनी पडेगी सही, परन्तु वह किसी को अखरनी नही चाहिए। हा, आत्मसिद्धि के लिए वह मुश्किल बात रहेगी परन्तु हम लोग यहा मजदूरी नहीं करते क्या ? वास्तव मे हम तो अधिक मजदूरी करते है। यदि सच्ची नीयत से, जरा-सा भी आलस्य न करके, मजदूरी करोगे, अपनी परिश्रम शक्ति को तिल भर भी नही चुराओगे, तो फिर वार्डर को तुम पर पहरा ही क्यो देना पडेगा ?

"मुझे पता है कि तुम नौजवान हो और जेल के कच्चे-पक्के वार्डरो का जरा-सा भी कडुआ शब्द सह नही पाओगे। तुम लोगो का खून खौल उठेगा, लेकिन तब भी मैं कहूगा कि तुम लोगों को सब सहन करना ही चाहिए। यही हमारी तपश्चर्या है। क्रोध हमें जरा भी नही करना चाहिए। तपस्वी यदि क्रोध करे तो उसका तपोबल वृथा हो जाता है। हमें तो सपूर्ण रूप से निर्दोष बना रहना है। यदि तुम लोग अपनी निर्दोषिता बनाए रखोगे तो जेल के सार्जेट-वार्डर के अनुचित शब्द तुमको नही चुभेंगे, आसानी से उनकी बातें अनसुनी कर पाओगे। भोजन के लिए या अन्य लालच के कारण किसी को घूस देने या कोई चीज चुराने के मोह में भूलकर भी नही पडोगे, ऐसी मैं आशा करता हू। ऐसी टुच्ची बातो मे जी छोटा करने वाले पर यह भरोसा कैसे किया जा सकता है कि जब फासी पर झूलने की बात आयगी तब वह कमजोर नही पड जायगा।

"नौजवान बालको के लिए मैं अपनी बात कह चुका। जो इनमे बडे है उनके लिए तो कहने की कौनसी बात हो सकती है। सत्य ही हमारा राजमार्ग है। इस राजमार्ग मे हम कही लुढक न जाय, यह सम्हाले। यह सम्हालने में दुख-सुख की आधिया उठेंगी और साफ होती रहेंगी। जिस प्रकार सुख सदा के लिए नही टिकता, उसी प्रकार दुख भी नित्य का नहीं होता। बात यह है कि दुख से व्याकुल हो उठनेवाले के लिए दुख के दिन

अति दीर्घ बन जाते है। यदि अपने मन को बाकायदा लगाम में रखे और सत्य के राजमार्ग मे चूके नही तो हमारी जीत निश्चय ही है। बहुत दूर तक निगाह दौडाकर मायूस होने से बेहतर है कि दूर तक निगाह दौडावे ही नही। हमारा कदम सच्चा और अडिग होगा तो चाहे कितना ही लम्बा रास्ता क्यो न हो, अवश्य पार हो जायगा।

"दूसरी बात यह है कि दुखो से दब जाने पर, जेल में न्याय प्राप्त करने के लिए पाच-पाच सात-सात दिन तक जब अनशन करना पडेगा और जब मन डावाडोल होगे तब तुम्हारे दिल मे यह बात उठेगी कि हम औरों के लिए क्यो दुख भोगते रहे। जेल से बाहर हमे किस बात की कमी है, जो हम इस झझट को मोल लेते फिरे। तीन पौंड का कर हमारे सिर पर कहा है? हमे कहा ट्रासवाल में घुसना है? चैन से नेटाल मे रह रहे थे, वहा से यहा कहा आ फसे? इस प्रकार की अनेक तरगे उठेगी। परन्तु ऐसे विचार क्षण भर के लिए भी शोभा नही देते।

"हम लोग नरसिंह मेहता का जो पद अनेक बार गाते है उसमें सर्वप्रथम बात यही तो बताई गई है कि 'पर दु खे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे।' अर्थात दूसरे के दुख में उसकी सहायता करने पर भी जो अपने मन मे अभिमान न लावे वही वैष्णवजन है। हममे कई ऐसे है जिनके गले में तुलसी की माला है। हम लोग वैष्णव जन्मे हुए है। हमारा धर्म है कि औरो के दुख में हम दुखी हो। औरो के दुख से दुखी होने के अतिरिक्त हम और कुछ भी नही कर सकते। गैरो का क्या अपने सगे भाई का दुख भी दूर करना हमारे हाथ की बात नही होती। दुख तो ईश्वर ही दूर करता है। जो बात ईश्वर करता है, जिसमे हम तिलमात्र भी कमीवेशी नही कर पाते उसके बारे मे हम अभिमान से क्यो फूले? भरतजी जाकर नदीग्राम मे क्यो रहे थे? अयोध्या मे उनके लिए क्या कष्ट था? वहा सब प्रकार से आराम ही तो था। फिर भी जब राम वनवास के दुखो को भोग रहे हो तब भरत से किस प्रकार सुख की सेज पर सोया जा सकता था? हमारे मन में जरा-सी भी शका पैदा हो, दुख से भागने की तरगें उठ खडी हो, तो यह सारी बाते जो नित्यप्रति हम लोग रामायण मे पढते रहे है, और भजनो में अलापते रहे है उनपर गौर करना चाहिए। उन वचनो में क्या उद्देश्य छिपा है यह खोजते रहना चाहिए। ऐसा करने पर राम हमारी सहायता के लिए दौड आयगा और हमारे हृदय में बस जायगा। अन्तर मे अत्यधिक बल प्राप्त होगा और उसी शक्ति के सहारे गैरो के दुखो के लिए प्रसन्न-वदन से मरने में भी तुम अपने कदम को पीछे नही हटाओगे।"

इसके बाद बापूजी ने पूज्य बा और मेरी माताजी आदि को सबोधित करते हुए कहा

"तुम बालको को छोडकर जा रही हो, उनकी सभाल ईश्वर करेगा। तुम उनकी कुछ भी चिन्ता न करना। वहा जेल मे बैठे-बैठे रामनाम का जाप करते रहना और प्रसन्न रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना बस होगा। बच्चे यहा पर खुश रहेगे। बस अब पहले 'वैष्णव जन' और बाद में 'सुख दु ख मनमा न आणीए' वाला भजन हम सब मिलकर गा ले और फिर चले।"

मेरी माताजी ने भजन का प्रारम्भ किया। उनका अनुसरण पच्चीस-तीस लोगो ने किया, परतु किसी की कठ-ध्वनि खुल कर नही निकल रही थी। सब गद्-गद् हो उठे थे। प्रार्थना-खड का सारा वातावरण करुण-गभीर कपन से भर गया। दोनो भजन समाप्त होने पर बापूजी ने अतिम आदेश दिया

"इन दोनो भजनो को अपने पाथेय के रूप में अपने साथ रख लो, इनका स्मरण करते रहना और इनके अर्थ को समझकर उसके अनुसार चलना।"

कुछ क्षणो के लिए सर्वत्र शाति फैल गई। कोई एक-दूसरे की ओर आख उठा कर देखता तक नही था, मानो सभी व्यक्ति अपने अतस्तल की गहराई मे गोता लगा रहे थे। कई वीरो की—योद्धाओ की—आखो मे आसू दिखाई दिये। मुझ जैसा बालक ऐसे समय माताओ की मडली की ओर देखे यह स्वाभाविक था। मैने देखा कि पूज्य कस्तूर बा और अन्य माताए बडी कठिनाई से अपने आसुओ को रोक रही थी।

थोडी देर मे सब उठ खडे हुए और चद मिनटो के बाद सब 'सत्याग्रही योद्धा' और फीनिक्स मे रुकने वाले व्यक्ति भी स्टेशन के लिए रवाना हो गए। रुकने वालो मे उल्लेखनीय दो ही व्यक्ति थ—बापूजी और मगन-काका। सत्याग्रहियो की पहली टोली मे सोलह वीरो के नाम ये थे

महिलाए—१ पूज्य कस्तूर बा, २ श्री काशीबहन गाधी (लेखक की माता), ३ श्री सतोक बहन गाधी (लेखक की काकी), ४ श्री जयकुवर बहन।

पुरुष—१ श्री पारसी रुस्तमजी सेठ (डरबन शहर के प्रसिद्ध व्यापारी और बापूजी के घनिष्ठ मित्र व सहयोगी), २ श्री छगनलाल खुशहालचंद गाधी (लेखक के पिता), ३ श्री रावजी भाई मणिभाई पटेल, ४ श्री मगन-भाई हरिभाई पटेल, ५ श्री सोलोमन, ६ श्री गोविंद स्वामी राजूजी।

कुमार—१ श्री शिवपूजन सहाय बद्री, २ श्री राजू गोविन्दु।

अठारह वर्ष से कम आयु के किशोर—१ श्री रामदास गांधी (बापूजी के तृतीय पुत्र), २ श्री रेवाशंकर रतनशी सोढा, ३ श्री कुप्पूस्वामी मुदलियार, ४ श्री गोकुलदास हंसराज।

सोलह वीरों की इस टोलीके बाद फीनिक्स से सत्याग्रह के लिए और भी एक-दो टोलियों के जाने की योजना थी। परंतु उस दिन अनुमान यह था कि फीनिक्स में ही नहीं, दक्षिण अफ्रीका भर में सत्याग्रहियों का यही जत्था सबसे बड़ा होगा और सत्याग्रह के तीसरे बार के संघर्ष का मुख्य उत्तरदायित्व इन्ही वीरों के सिर रहेगा। हममें से किसी को कल्पना नहीं थी कि इस प्रयाण द्वारा किसी विशाल और भव्य युद्ध का सूत्रपात हो रहा है।

: ५० :

प्रथम टोली की गिरफ्तारी

दक्षिण अफ्रीका में 'कानूनभंग' शब्द के पहले 'सविनय' विशेषण जोड़ने की प्रथा नहीं चली थी, फिर भी बापूजी ने जोर दिया था कि सत्याग्रहियों की ओर से कोई ऐसा आचरण न हो, जिससे नैतिक दृष्टि से वहां की गोरी जनता के दिल को ठेस लगे। वह चाहते थे कि सत्याग्रहियों की सज्जनता व शालीनता तनिक भी कम न हो और फिर भी विरोधभावना का प्रदर्शन इतना जोरदार हो कि सरकार चैन न ले सके।

दूसरी ओर, स्मट्स सरकार नहीं चाहती थी कि सत्याग्रह के मामले को लेकर भारत में, इंग्लैंड में और संसार में शोर मचे। स्मट्स-सरकार स्वयं महसूस करती थी कि भारतीयों के साथ उसका व्यवहार न्यायोचित नहीं है, लेकिन उसके मन में आशा बची हुई थी कि चतुराई से वह अपनी मनमानी कर सकेगी।

सत्याग्रहियों के उत्साह को कुचलने के लिए स्मट्स-सरकार ने एक नई नीति का अवलम्बन किया। बिना विशेष अनुमति-पत्र के कोई भारतीय नेटाल से ट्रान्सवाल में प्रवेश करे तो वह कानून का भंग माना जाता था और उस अपराध के लिए तीन से छः महीने तक का कारावास दण्ड दिया जाता था। अब उसने बापूजी, रुस्तमजी सेठ आदि नेता और धनीमानी व्यक्तियों को इस अपराध पर गिरफ्तार न करने की नीति अपनाई, ताकि बड़े लोगों को जेल से बाहर रखकर दूसरे लोगों का उत्साह ठंडा किया

जा सके। इस हालत में फीनिक्स से चले हुए सत्याग्रहियो के सामने प्रश्न था कि जब वे नटाल से ट्रान्सवाल में प्रवेश करेंगे तब यदि सरकार पकडेगी ही नही तो फिर सत्याग्रह आगे कैसे चलेगा ?

बापूजी इस प्रथम मोर्चे को इतना पवित्र और सुदृढ बनाना चाहते थे कि उन्होने कार्यारम्भ से पूर्व ही अखबारो मे उसकी प्रसिद्धि नही होने दी। फीनिक्सवासियो के अतिरिक्त डरबन और जोहान्सबर्ग के कुछ सजे हुए सत्याग्रहियो को ही उन्होने सत्याग्रह के लिए तत्पर रहने की सूचना दी थी। सत्याग्रह का श्रीगणेश पुन कब और कैसे होगा इसका पता फीनिक्स से बाहर मुश्किल से दो-चार उन व्यक्तियो को दिया गया था जो आश्रम-जीवन से अत्यधिक घुले-मिले हुए थे।

ट्रान्सवाल की सरहद पर सरकारी अफसर फीनिक्स के इन सत्याग्रहियो के साथ विशेष रूप से पेश न आवें, साधारण भारतीय के समान ही उन सबसे व्यवहार करें इस हेतु से बापूजी ने फीनिक्सवासियो को ट्रान्सवाल में प्रवेश करते समय अपना पूरा परिचय न देने की सूचना दी थी। यहा तक कि अपना प्रचलित नाम बदल देने के लिए भी कहा था। इसके अनुसार पूज्य बा को अपना नाम 'श्रीमती गाधी' न बताकर 'कस्तूर बहन', 'पारसी रुस्तमजी' को केवल 'रुस्तम' और मेरे पिता को 'सी० के० गाधी' के बदले केवल 'छगनलाल' बताना था। रामदासकाका को पिता का नाम न बताने तथा 'गाधी' शब्द का प्रयोग न करने और मेरी माता व काकी को भी केवल अपना नाम देकर मौन रहने तथा 'गाधी' के साथ अपना रिश्ता प्रकट न करने का निर्देश दिया गया था। किशोर सत्याग्रहियो में रेवाशकर सोढा नाम का जो लडका इस टोली में जा रहा था, उसको भी बापूजीने आदेश दिया कि वह 'सोढा' नाम का प्रयोग न करे क्योंकि उसके पिता श्रीरतनसी सोढा ट्रान्सवाल के ख्यातनामा सत्याग्रही थे और उसकी माता ने भी देश-सेवाके काम में प्रसिद्धि पाई थी। सार यह कि गिरफ्तारी और जेल की सजा हो जाने तक फीनिक्सवासियो को अज्ञात रहने की पूरी-पूरी कोशिश करनी थी।

फीनिक्स आश्रम से जब मडली स्टेशन के लिए चली और रास्ते में बातचीत में किसी ने कहा कि "इस तरह अपना नाम छिपाना असत्य नही कहलाएगा ? सत्याग्रही को इस प्रकार झूठ बोलना चाहिए ? और बापूजी स्वय इस प्रकार झूठ बोलने के लिए किस प्रकार कह रहे है ?"

जब बापूजी के कानो तक यह बात पहुची तो उन्होने समझाया :

"वह झूठ नही है। झूठ का मतलब है, 'जो नही है वह कहना'। जो है सो

न कहना कोई झूठ नही है। यदि मैं अमुक बात को जानता हू या बताना नही चाहता, तो मैं हरगिज नही बताऊगा। चाहे कोई मुझे डराए, धमकाए, या मार डाले। मैं यह नही कहूगा कि मैं 'जानता नही हू', परन्तु यह कहूगा कि 'मैं जानता तो हू, पर बताऊगा नही'। अगर वह भी कहना मैं उचित नही समझूंगा तो कह दूंगा 'मैं यह बताने को तैयार नही कि मैं जानता हू या नही जानता।'

"अत यदि हम अपना आधा ही नाम बताए तो उसमे जरा भी झूठ नही है।"

स्टेशन पहुचने मे थोडा-सा रास्ता बाकी रहा तब पूज्य कस्तूर बा और मेरी मा ने देवदासकाका को और मुझे अपने पास बुलाकर बडी वत्सलता से सीख दी। उन्होने हमे अपने से छोटे बच्चो को माताओ के बिना दुखी न होने देने के लिए हमारा कर्त्तव्य समझाया। देवदास काका से मेरी माता ने विशेष रूप से कहा "प्रभु को अपना छोटा भाई बनाकर रखना और जब-जब उसकी भूल हो, उसे नसीहत देना।" माताओ की सीख हम दोनो ने चुपचाप अपने कानो मे भर ली और फिर दौडकर आगे निकल गए।

कोई घटे-डेढ-घटे मे सब स्टेशन पहुचे। बापूजी सबसे बाद पहुचे। स्टेशन पर पहुच कर वह पूज्य बा के साथ बातचीत करने लगे। पद्रह बीस मिनट के बाद रेलगाडी आ गई। उसकी आवाज के साथ मेरे दिल मे धडकन-सी पैदा हुई। अपनी टोली से अलग होकर जल्दी से मैं अपनी माताजी और पिताजी के पास पहुचा, दोनो को नजर भर के देखने लगा और पल भर के लिए मन-ही-मन काप उठा। बिजली की तरह मन मे विचार दौड गया कि "माता-पिता दोनो ही जेल जा रहे है, दुबारा शायद इनसे मिलना भी न हो। क्या मैं अकेला हो जाऊगा? ऐसी हालत मे छोटे भाई कृष्णदास का क्या होगा?" पर यह विचार क्षणिक ही रहा। ट्रेन रुकने वाली नही थी। चटपट मैंने अपने माता-पिता के पैर छुए, दूसरे बडो के भी पैर छुए और जाकर बापूजी की बगल में खडा हो गया।

दक्षिण अफ्रीका की रेलगाडी मे गोरे लोगो के लिए अलग और काले लोगो के लिए तीसरे दर्जे मे भी अलग डिब्बे रहते थे। काले लोगो के डिब्बो मे बहुत भीड थी। फिर भी सोलह सत्याग्रहियो मे से जितने सवार हो सकते थे उन्ही डिब्बो मे सवार हो गए। प्लेटफार्म पर बहुत-सा सामान पडा रहा और तीन-चार लोगो को जगह मिली ही नही। तब रेवाशकर सोलोमन और कुप्पू स्वामी ने मिलकर साहस के साथ गोरो के लिए सुरक्षित रखे गए एक डिब्बे को खोल लिया और वे उसमे सवार हो गए।

यह डिब्बा इजन से सटा हुआ था, इस कारण ड्राइवर का ध्यान एकदम उस ओर गया और उसके पुकारने पर गार्ड भी वहा आ पहुचा। दोनो ने मिलकर हमारी टोली के लोगो को डाटना-डपटना शुरू किया। उन्होने रेवाशकर आदि को हाथ पकड कर डिब्बे से नीचे उतारने की कोशिश की, परन्तु फीनिक्स के विद्यार्थी कमजोर शरीर के नही थे। वे डटे रहे। सामान बाहर फेकने का और जो सामान नीचे से ऊपर दिया जा रहा था उसे रोकने का भी उन्होने प्रयत्न किया। गरजकर उन्होने कहा, "देखते नही, यह डिब्बा तुम्हारे लिए नही है?" ड्राइवर और गार्ड को क्या पता था कि ये साधारण काले कुली लोग नही है, मौत के साथ झझने के लिए प्रयाण करने वाले सत्याग्रही है। हमारे वीरो ने बहुत शाति से उस डिब्ब मे जमकर स्थान ले लिया और अन्दर से दरवाजा बन्द करके गार्ड से कह दिया कि "और कही जगह नही है, इसलिए हम यहा पर सवार हुए है, अब तुम चाहे कुछ भी करो, हम उतरनेवाले नही है।" देर तक गाडी रोकी नही जा सकती थी। इसलिए ड्राइवर व गार्ड ने गाडी छोड दी पर रेवाशकर आदि से कहा, "अगले स्टेशन पर उन्हे देख लेगे।"

बा आदि के प्रस्थान के समाचार दो दिन बाद बापूजी ने मणिलाल-काका को पत्र द्वारा जोहान्सबर्ग लिख भेजे। मणिलालकाका भी जेल जाने के लिए अधीर हो रहे थे। योजना यह थी कि फीनिक्स का पहला जत्था गिरफ्तार हो उसके बाद तुरन्त ही जोहासबर्ग से एक दूसरा जत्था ट्रासवाल की सरहद पर सत्याग्रह के लिए पहुच जाय। पूज्य बा को विदा देने के बाद बापूजी ने मणिलालकाका के नाम जो पत्र भेजे थे, उनमें से दो पत्रो के कुछ अश इस प्रकार है

— १ —

बुधवार, १८ सितम्बर, १९१३

चि० मणिलाल,

बा आदि सब सोमवार के दिन बडी हिम्मत के साथ चढे है।

तमोगुण के अतिरिक्त रजोगुण और सत्वगुण। तमोगुण से मनुष्य अध अज्ञान और अहदी रहता है। रजोगुण से मनुष्य अविचारी और दु सा-हसी तथा सासारिक कार्यों मे उत्साही रहता है। यूरोप की प्रजा मे रजोगुण की प्रधानता है। हम लोगो की भी बहुत-सी प्रवृत्तिया रजोगुणवाली है। सत्वगुण वाले शात, धीर और विचारवान होते है। वे दुनिया की झझटो में पडते नही है, और हर समय अपने मन को ईश्वर मे लगाये रहते है। इस

सात्विक वृत्ति को Soothfastness कहा गया, यह ठीक ही है। 'सूदफास्ट' का मतलब है शात। ness लगने पर वह सज्ञा बन गया याने शाति। शात वृत्ति मे ही आत्मदर्शन हो सकता है। और जिस वृत्ति के द्वारा आत्मदर्शन होने की सभावना हो, वह है सात्विक वृत्ति। परमात्मा त्रिगुणातीत के रूप मे तो कुछ भी प्रवृत्ति—बुरी या भली—करता नही है। किन्तु माया चैतन्यरूप से रहती है। उसने तीनो गुणो को अतीत कर रखा है। परन्तु जब अर्जुन को ज्ञान देने की प्रवृत्ति का काम करे तब वह सात्विक वृत्ति है और प्रवृत्तिमात्र झझट ह। इसलिए उसे सत्वगुण की झझटवाला स्वरूप कहा गया।

— २ —

गुरुवार, १९ सितम्बर १९१३

चि० मणिलाल,

वा आदि वाक्सरस मे गिरफ्तार हो गए है। कल वे लोग अदालत मे पेश होने वाले थे। परन्तु क्या हुआ, मै इस बात के तार की प्रतीक्षा मे हू। तुमको वह समाचार देना था, पर आया नही है।

तुम ज्यो निराश होओगे, मै अधिक दुखी होऊगा। तुमको जो वचन दिया है उससे मै हटा नही हू। मैने महत्व का परिवर्तन नही किया है। मै आत्मा को प्रसन्न करके दुखी नही होऊगा, व्रतो से मै दुखी नही होता, सुखी होता हू। इसमे तुम दुख मानो यह अज्ञान है। मुझे दुख तो तुम्हारे दुर्वर्तन से ही होगा। मेरे सुख-दुख का आधार तुम्हारे आचरण पर ही है मै क्या करता हू इसको सोचते रहने से तुम मेरा दुख नही हरोगे। तुमको क्या करना चाहिए इसका विचार करने से तुम मुझे सुखी बना सकोगे।

: ५१ :

जन्म-भूमिव्रत

दुखियानो विसामयो रे, माडी तारी झूपडी,
रण वगडानो छायो रे, माडी तारी झूपडी।
नन्दनवन शी वहाली रे, अमने तारी झूपडी,
जन्मभूमि व्रत पाळी रे, शाणगारीशु झूपडी।

(हे मा, तेरी झोपडी दुखीजनो को आसरा देनेवाली है, ऊजड प्रदेश मे तेरी झोपडी छाया देनेवाली है। हम लोगो को तेरी यह झोपडी नन्दनवन जैसी प्यारी लगती है। हम जन्मभूमि-व्रत का पालन करके तेरी

झोपडी की शोभा वढायगे।)

'वन्देमातरम्' गीत हम लोग फीनिक्स में किसी खास मौके पर गाते थे। हरेक सभा मे वह अवश्य गाया जाय ऐसा आग्रह तवी नही था। प्रतिदिन की प्रार्थना के भजन प्राय धार्मिक ही हुआ करते थे। एक-दो गीत ऐसे थे जिनके द्वारा अपनी मातृभूमि के प्रति हमारे दिलो मे ममता और सेवा के भाव जगते थे। फीनिक्स मे गुजरातियो की सख्या अधिक थी इसलिए स्वभावत गुजराती गीत अधिक रहते थे। ऐसे गीतो में 'दुखियानो विसामयो' हम लोगो को अनेक बार गद्‌गद् कर देता था। इसका रचयिता एक होनहार युवक था जो अपने देश-सेवा के अरमान अधूरे छोडकर भरी जवानी मे ही चल वसा था। वापूजी कहा करते थे कि उसकी इच्छा पूरी करने का कर्त्तव्य अव उस गीत को गानेवालो पर है।

सत्याग्रह का श्रीगणेश घर के आगन मे यानी फीनिक्स स्टेशन से ही हुआ, यह देखकर हम लोग खुश होते हुए घर लौटे। शाम की प्रार्थना के समय वापूजी के चारो ओर हम सब वालक बैठ गए। प्रार्थना पूरी होने पर वापूजी की सूचना से मगनकाका, देवदासकाका और मैने मिलकर ऊपर वाला भजन गाया। जैसे-जैसे गाना आगे वढता गया, हमारे मन के भाव अधिक आर्द्र होते गए। भजन की समाप्ति पर वापूजी ने दीर्घ नि श्वास छोडा और धीरे से वोले

"नन्दनवन शी वहाली रे,
अमने तारी झूपडी।
जन्मभूमि व्रत पाळो रे,
शाणगारीशु झूपडी॥"

और फिर उन्होने देवदासकाका से और मुझसे इन पक्तियो का शब्दश अर्थ करवाया। अन्त में पूछा, "वोलो, जन्मभूमि व्रत का अर्थ जानते हो न?"

हम कुछ नही वोल सके, तव वापूजी का प्रवचन शुरू हुआ

"उस व्रत के पालन करने का मतलव है, अपने दुखी भाई-वहनो की सेवा करना—जो दुखी हो, उनके लिए कुछ-न-कुछ दुख हमे खुद उठाना। क्यो यह ठीक समझ मे आती है न?"

हमने हा भरी, तो वापूजी ने कहा

"तव कहो, जो जेल गये है उनके लिए तुम क्या करोगे? मा-वाप, भाई-वहन जेल में जाय तव हम मौज उडाय यह उचित है क्या? उन लोगो को जेल मे जव उवला हुआ और कूडे का-सा खाना मिले, घी न मिले, दूध न मिले, तव हम लोग यहा पर मिष्ठान्न तो खा ही नही सकते है न? मै तो

तुम सब से इतना चाहता हू कि तुम सभी बालक अलोना शुरू करो। हमारे बागीचो मे ढेर-के-ढेर फल होते है। इसके अलावा हम रोटी ले, यह बहुत काफी समझना चाहिए। जेल मे तो उन लोगो को इतना भी नसीब न होगा। बोलो, मेरी बात मजूर है ?"

बापूजी की यह बडी अजीब बात थी कि अलोने का व्रत वह चार-पाच वर्ष की आयु के बच्चो से भी लिवाना चाहते थे और फिर उसे कोरे अनुशासन के रूप मे बच्चो पर लादना नही चाहते थे, उन्हे समझा-बुझा कर और उनका हार्दिक सकल्प पक्का कराकर सामूहिक रूप से अमल मे लाना चाहते थे। इसलिए उन्होने केशू, कृष्ण, नवीन, शाति, छोटम आदि प्रत्येक बच्चे से व्यक्तिगत रूप मे चर्चा की। तरह-तरह के फलो, मुरब्बो आदि का नाम ले-लेकर बच्चो को ललचाया और जब देखा कि बच्चे नमक छोडने मे सकोच करते है तब कहा कि "मिर्च-मसालेदार चटपटा शाक, कढी, खिचडी आदि नमकीन भोजन हर रविवार को मिल जाया करेगा और सप्ताह मे छ, दिन ही अलोना रहेगा। फिर तो शुरू करोगे अलोना ?"

रविवार को अपवाद मिल जाने पर सभी बच्चे उत्साह मे आ गए। प्राय आध घटे तक उस दिन बापूजी ने बच्चो के साथ मनोविनोद किया और हसी-खुशी का ऐसा प्रवाह बहाया कि प्रत्येक बालक ने अलोने आहार की उनकी बात कबूल कर ली। छोटे बच्चो के बाद बापूजी ने मुझसे और देवदासकाका से भी अलोने के लिए पूछा। हम तो तैयार थे ही। फौरन वह नियम हम दोनो ने स्वीकार कर लिया। परतु अलोने की बात निश्चित होते ही बापूजी ने हमारे सामने एक नया और कठिन प्रस्ताव रख दिया

"क्यो देवा (देवदास) ! कल सुबह से चार बजे उठा दू न ? अब हमे कठोर जीवन बिताने का आरभ कर देना चाहिए।"

इस वाक्य को सुनते ही हम डर गए। चार बजे उठने के नियम का पालन करना किसी भी तरह हमारे बूते का नही था। चार बजे उठने के बदले चाहे कितना ही कठिन काम बापूजी बताए, हम करने को तैयार थे। देवदासकाका ने बात टाल देने की बडी कोशिश की, परतु बापूजी मानने वाले कहा थे ? जब देवदासकाका ने हा भरने मे विलब किया तो बापूजी ने मुझ पर जोर डाला।

मेरे लिए चार बजे उठना कठिन नही था। परतु रोज सवेरे नियमपूर्वक चार बजे बिस्तर छोड देना मुझे मुश्किल मालूम दिया। इसलिए मैने उत्तर दिया "उठूगा तो सही, परतु नियम-पूर्वक नही उठ पाऊगा।"

बापूजी ने देखा कि हमारे मन की कायरता दूर हो ही नही रही है, तो उन्होंने दुबारा हमे समझाना शुरू किया "अगर तुम लोग चार बजे उठना भी स्वीकार नही कर पाते तो फिर सबके साथ जेल जाने के लिए किस तरह तैयार होगए थे ? जेल मे चार बजे उठने के मुकाबले कही अधिक कठिनाइया उठानी पडती।"

इस अन्तिम वाक्य ने हमें मजबूर कर दिया। चार बजे उठने की बात स्वीकार किये बिना कोई चारा ही हमारे लिए नही रहा, क्योंकि अपने बडे सहपाठियो के साथ जेल जाने के लिए हम भी तत्पर हो गए थे। तेरह वर्ष से भी छोटी आयु के कारण ही देवदासकाका को और मुझको जेल-यात्रा का लाभ नही दिया गया था।

दूसरे दिन जब बापूजी ने मुझे चार बजे उठाया तब मै उठ तो गया परन्तु उठने के बाद घटो तक आखो मे नींद भरी रही। शरीर की सुस्ती के साथ मन भी उदास हो गया था। माता-पिता और सहपाठियो को विदा करके जब हम घर लौटे थे तब हमारा मन उत्साह मे था, सत्याग्रह का रग अच्छा जमेगा यह धुन हम बालको के सिर पर भी सवार थी। परन्तु दूसरे दिन जाने कहासे मन मे उदासी छा गई। फीनिक्स का रीतापन महसूस होने लगा। माता-पिता की अनुपस्थिति अखरने लगी। पाठशाला के निकट से गुजरने पर अपने जेलयात्री सहपाठियो की उछल-कूद और चहल-पहल नजर के सामने तादृश हो जाती थी और पाठ रटने की कठ-ध्वनि मानो सतत सुनाई पडती थी।

फीनिक्स मे आबादी थी ही क्या ? सोलह व्यक्तियो ने विदा ली, तो मानो तीन-चौथाई से भी ज्यादा फीनिक्स रीता हो गया ! फीनिक्स भर में अब पाच-सात ही वयस्क रह गए थे, जो सब छापाखाने मे दिन भर काम के लिए चले जाते थे। तब हमारे निवासस्थान के प्राय चौथाई मील के घेरे में चारो ओर इतना सूना रहने लगा कि छोटी चिडिया की आहट भी चौंका देनेवाली लगती थी।

पहला काम बापूजी ने यह किया कि दूसरे सब घरो पर ताला डाल कर सभी बालको को अपने घर मे इकट्ठा रखा। फिर हम सबको इस तरह काम मे लगा दिया कि माता-पिता आदि के वियोग की याद करने का हमें अवकाश ही न मिले। कुछ ही दिन बाद बापूजी को स्वय भी फीनिक्स छोडकर जाना था। उनके पीछे भी हम लोग खिन्न न रहे और उत्साहपूर्वक अपना दिन गुजारें इसके लिए उन्होंने बच्चो को परस्परावलबन सिखाने पर जोर दिया।

छापाखाने के काम पर तो बापूजी ने दो-तीन वैतनिक कारीगरो को रखा था, परन्तु घरेलू काम के लिए एक भी वैतनिक कर्मचारी नही था। हम बालको मे मैं और देवदासकाका ग्यारह और तेरह वर्ष की आयु मे कम के थे और दूसरे आठ बालक सात से चार और तीन वर्ष के थे। इन सबकी परवरिश—खाना-पीना, स्नान, कपडे आदि का काम करना छोटी बात नही थी। इस पर भी बापूजी ने नौकर या रसोइया रखने का विचार नही किया। बच्चो की सारी आवश्यकता बच्चे आप ही पूरी करे यही लक्ष्य उन्होने दृढतापूर्वक रखा।

बच्चो की शारीरिक शक्ति और बाल-मनोवृत्ति का विचार करके बापूजी ने बच्चो की दो टोलिया बना दी। एक टोली का नायक देवदासकाका को बनाया और दूसरी का मुझे। शरीर मे अधिक मजबूत और रूठने-झगडने में कम ऐसे बालक मेरी टोली मे और तेज मिजाज तथा अधिक छोटे बच्चे देवदासकाका की टोली मे। इस प्रकार हर टोली में चार-चार के हिसाब से आये। कुल पाच-पाच बालको की इन दोनो टोलियो मे एक-एक तो इतना छोटा बच्चा था जो बोलना और चलना भी अभी मुश्किल से सीखा था। एक तश्तरी, दो चम्मच उठाकर एक कमरे से दूसरे कमरे मे पहुचा दे तो वह भी उसके हिसाब से काम की गिनती मे आता था। दोनो टोलियो को एक-एक दिन की बारी मे काम करना होता था। इसलिए रोज एक ही काम न होने के कारण हमारा उत्साह कायम रहता था।

बापूजी ने हमे कई काम बताये। बागीचे से फल और शाक-सब्जी उतारकर ले आना, उन्हे छील-छीलकर तैयार करना, भोजन के समय से पहले मेज और कुर्सियो को बाकायदा लगाना, चीनी मिट्टी की तश्तरिया, काच के गिलास आदि सजाना, कोई बडा व्यक्ति उपस्थित न हो तो सावधानी से परोसना, बुहारना, कपडे धोना, क्यारियो में पानी देना, भोजन के बाद काच के बर्तनो को साबुन मे धोकर और पोछकर व्यवस्थित रख देना, इत्यादि।

कहा जाता है कि बापूजी की अनेक बाते परस्पर-विरोधी हुआ करती थी। वह दया के सागर थे,पर भिक्षुक के लिए चुटकी भर आटा देने नही देते थे, अहिंसा के आचार्य थे, फिर भी गावो की गलियो मे मारे-मारे फिरनेवाले कुत्तो को और खेती उजाडने वाले बन्दरो को जान से मार डालने के लिए तत्पर हो जाते थे, भगी के घर का बच्चा भी बेपढा और बुद्धिहीन रहे यह उनके लिए बहुत दु खद था, लेकिन वह लिखने-पढने के काम को बहुत गौण वस्तु मानते थे। भय और लालच दिखाकर किसी से काम लिया

जाय इनके वह बड़े विरोधी थे। इस बात में भी वह कम विश्वास नहीं रखते थे कि बच्चों को औरों के सामने अपमानित या तिरस्कृत न किया जाय, न उनसे कोई बात बना-बनाकर कही जाय। लेकिन यह सब होते हुए भी स्वस्थ स्पर्धा की वृत्ति को वह पूरा-पूरा पोषण देते थे। तैरने, दौड़ने आदि के मर्दाने खेलों में स्पर्धा को वह बड़ा प्रोत्साहन देते थे। इसी प्रकार काम-काज करने में स्पर्धा—होड़ का वातावरण पैदा करके बापूजी ने छोटे-छोटे बच्चों से भी भरपूर काम लिया। जो काम घंटे-पौन-घंटे में पूरा होने वाला हो स्पर्धा की रचना करके वह पन्द्रह-बीस मिनटों में ही पूरा करा देते थे। बालकों का भोजन समाप्त होने के बाद वह स्वयं भोजन के लिए बैठते थे। उनका भोजन आधा भी पूरा न हो पाता कि हम लोग चौका-बरतन तथा झाड़ू-पानी पूरा करके उनके सामने उपस्थित हो जाते थे। उनसे प्राप्त होने वाला शाबाशी का एक शब्द या, उनकी जरा-सी मुस्कान ही हमें उत्साह से भर देती थी।

हमारे बीच में उनकी उपस्थिति का उनके प्रोत्साहन का और पग-पग पर उनके विनोद का ऐसा जादू भरा असर होता था कि अपने काम में पीछे और सदैव शिथिल रहने वाला बच्चा भी उमंग में भर कर अपनी कर्त्तव्य-शक्ति को आप ही बढ़ाने पर तुल जाता था। और, जो आगे निकल जाता था, वह अपने कमजोर साथी को चुपचाप सहारा देने लग जाता था। यदि कोई टोली अपना काम पहले पूरा कर लेती तो वह दूसरी टोली का काम पूरा कराने में हाथ बटाती थी और फिर सब मिल कर बापूजी के पास खेलने के लिए पहुंच जाते थे।

गृहकार्य के लिए यदि बापूजी नौकर की व्यवस्था कर देते तो अवश्य ही हम बच्चों को अपने माता-पिता आदि का बिछोह बहुत अखरता।

इस प्रकार पूरा एक सप्ताह भी नहीं बीता होगा कि बापूजी ने फीनिक्स की सारी प्रवृत्तियों का पुनस्संगठन कर दिया। वैसे फीनिक्स खाली-सा हो गया था, लेकिन उन्होंने उसमें पर्याप्त ऊष्मा पैदा कर दी। हमारे दिन उत्साह से बीतने लगे।

: ५२ :

सत्याग्रहियों की तपस्या और बापू का चिंतन

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते न शक्यते धैर्य गुणप्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने नाधः शिखा याति कदाचिदेव ।।

(धैर्य को जिसने अपनाया है उसको चाहे कितना ही उत्पीडित क्यो न किया जाय, उसका धैर्य मिटाया नही जा सकता । अग्नि को उठाकर उलटे मुह कर दिया जाय तो भी उसकी लपटे नीचे की ओर हरगिज नही जायगी ।)

ट्रान्सवाल की सरहद पर फीनिक्स-सत्याग्रहियो की टोली के गिरफ्तार होने के बाद उन पर क्या-क्या बीती, इसके समाचार पाच-सात दिन बाद आए ।

वालक्रस्ट के स्टेशन पर सबको रेलगाडी से नीचे उतार लिया गया । वहा के गोरे अफसरो को इस टोली के बारे मे कुतूहल पैदा हो गया था । सब सत्याग्रही एक ही ढग से पेश आते थे यह उनके लिए अचम्भे की बात थी । ट्रान्सवाल मे प्रवेश पाने के वास्ते अनुमति-पत्र प्राप्त करने के लिए समझाने पर भी अधिकारी लोग एक भी व्यक्ति को तैयार नही कर पाए । तब उन्हे पुलिस के द्वारा वालक्रस्ट कस्बे से कुछ आध-पौन मील दूर, वालनदी की पुलियाके उस पार उन लोगो को भिजवा दिया गया । वे सब निर्विरोध चले भी गए । ट्रान्सवाल की हद से नेटाल की हद मे इन सत्याग्रहियो को पहुचाने के बाद ज्यो ही पुलिस ट्रान्सवाल की हद मे लौटी, ये सत्याग्रही भी वाल नदी की पुलिया पार करके दुबारा वहा दाखिल हो गए । तब पुलिस ने उन सबको गिरफ्तार कर लिया, हवालात मे रखा और यथासमय अदालत मे पेश किया । मैजिस्ट्रेट ने सबके नाम पूछे तो मेरे पिताजी ने दुभापिए का काम किया, सबके नाम लिखवाये और सबकी ओर से अपराध स्वीकार किया । साथ-साथ यह भी बता दिया कि हम लोग अपना बचाव करना नही चाहते । मैजिस्ट्रेट ने सबको तीन-तीन महीने की कडी कैद की सजा सुना दी । इस प्रकार सोलहो सत्याग्रही सरकारी अतिथि बन गए ।

जेल मे पहुचने पर वहा के अधिकारियो ने जब पूज्य बा आदि को शिनाख्त लिखने के लिए बुलाया तब बडी विनोदपूर्ण बात हुई । महिलाओ मे जय कुवर बहन ग्रेजुएट थी और भलीभाति अग्रेजी बोल सकती थी, परन्तु

सभी ने अपनी मातृभाषा गुजराती और राष्ट्रभाषा हिन्दी के अतिरिक्त किसी भाषा में न बोलने का आग्रह रखा। तब हारकर जेलवालो ने मेरे पिताजी को दुभाषिए के काम के लिए बुलवाया।

जेल के क्लर्क ने पूज्य बा की ओर इशारा करके पिताजी से कहा—यह जो पहले खडी है, उनसे नाम पूछो।

पिताजी (पूज्य बा से गुजराती में)—कृष्ण-भवन की पहली रात कैसी बीती ?

बा—अधेरा होने पर भजन करके हम लोग आराम से सो गईं।

पिताजी (क्लर्क से अग्रेजी मे)—इनका नाम कस्तूर बाई है।

बेचारा क्लर्क इस नाम के हिज्जे न कर सका, तब आखिर पिताजी ने ही वह नाम लिख दिया।

क्लर्क—क्या वह विवाहित है ?

पिताजी (पूज्य बा से)—रात को व्यालू की थी ?

बा—मुझे तो फल चाहिए। इन सबने साग-रोटी सूघ कर रख दी। बरतन भी तो गन्दे और घिनौने थे !

पिताजी (क्लर्क से)—वह विवाहित है और उनके पति का नाम मोहनदास करमचन्द है।

इसके बाद आयु, जाति, वेतन आदि के सवाल एक-एक करके चारो महिलाओ से पूछे गए और पिताजी ने उसका लाभ लेकर अन्दर की सारी जानकारी प्राप्त की तथा बाहर की जानकारी बता दी। पिताजी ने पूज्य बा को बता दिया कि फलाहार के लिए हनुमानजी (कैलनबैक) वालक्रस्ट में आ पहुचे है और जेलर से मिलकर फल पहुचाने की तजवीज में लगे है। उन्होंने यह सूचित किया कि प्रार्थना के भजन जोरो से गाने की माग रुस्तमजीकाका ने की है, क्योकि केवल एक ही दीवार सत्याग्रही भाई-बहनो के बीच थी।

वालक्रस्ट जेल की सुविधा चार-पाच दिन तक ही रही। फिर सबको नेटाल प्रान्त की राजधानी मारित्सबर्ग की जेल मे भेज दिया गया। वाल-क्रस्ट से तो श्री कैलनबैक के पत्रो से समाचार फीनिक्स पहुच जाते थे, परन्तु मारित्सबर्ग से कई दिन बाद जेलवासियो के अधूरे समाचार मिले।

मुख्य खबर यह थी कि मारित्सबर्ग जेल मे पूज्य बा को फल नही दिये गए। फीनिक्स से चलते समय बापूजी के परामर्श से पूज्य बा ने यह प्रतिज्ञा

ले रखी थी कि जेल मे विशुद्ध फलाहार ही करना है चाहे भूखा रहना पडे या मृत्यु हो जाय। लेकिन जेल के अधिकारी प्रतिज्ञा के गौरवको क्या समझे ? उन्होंने तो उद्दडता से कहा कि "ऐसे नखरे करने थे तो जेल मे क्यो आई ?" पूज्य वा ने धैर्य रखा और शान्तिपूर्वक अनशन करती रही। जब दूसरा और तीसरा दिन भी बीत गया तब 'मेट्रन' कुछ ढीली पडी और बोली, "अगर हम लोगो को तीसरे पहर की चाय न मिले तो हमारे हाथ-पाव शिथिल पड जाते है, और दिमाग काम नही देता। तुम इतनी दुबली-पतली होने पर भी तीन-तीन दिन बिना खाय कैसे रह सकती हो? साथ ही यह भी समझाता कि जेल मे जो मागो, वह तो खाने को मिल नही सकता। कृपा करके जो मिलता है, वही ले लो।" परन्तु मुसकरा देने भर के अतिरिक्त बा और क्या उत्तर देती ?

पाचवे दिन सरकार झुकी और बा को फलो की सुविधा दी गई। लेकिन वह सुविधा इतनी मर्यादित थी कि पूरे तीन महीने तक बा को प्राय उपवासी ही रहना पडा। मेरी माताजी ने जेल से लौटकर बताया कि पूज्य बा को केवल पाच या छ केले, आध पाव अमरीकी सूखे आलूबुखारे और चार कागजी नीबू ही प्रतिदिन के भोजन के लिए मिलते थे। मूगफली या और कोई गिरी अथवा घी-तेल आदि कुछ भी नही दिया जाता था। दूध की तो बात ही क्या! यह पूज्य बा का ही साहस था जो मारित्सबर्ग मे, जहा का हवा-पानी बहुत ही आरोग्यवर्धक और सुपाच्य था, इतने कम आहार मे पूरी शान्ति से दिन काटती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन महीने तक पूज्य बा को दिन-रात भूख के दावानल मे अपनी देहयष्टि को झुलसाना पडा और तीन महीने बाद जब वह जेल के फाटक से बाहर आई तो उनका शरीर ककाल-मात्र रह गया था। उस समय उनके दर्शन करनेवालो की आखो मे पानी आए बिना न रहा।

माताजी ने दूसरी बात यह बताई कि "जेल के अन्य छोटे-मोटे कष्टो की तुलना मे हमे कपडो का कष्ट अत्यधिक दुखदायक प्रतीत हुआ था। अफ्रीका की आदिवासी जुलू कैदियो को दिये जाने वाले फ्राक पहनने मे हमे बडा सकोच हुआ। पाच-सात दिन तक वहा का खाना भी घिनौना लगा और जरा-जरा चखकर भोजन को हम सब अलग से सरका देती थी। परन्तु बाद मे सबकी भूख इतनी तेज हो गई कि मकई के पुप्पु (दलिया) मे बडा स्वाद आने लगा। यही नही, पूज्य बा के लिए आने वाले केले और नीबू के छिलके भी हमारी भूख की ज्वाला मे कई बार स्वाहा हो जाते थे।

तीन सप्ताह मुश्किल से बीते होगे कि फीनिक्स मे खबर पहुची कि पूज्य

बा के जेल जाने से जोहान्सबर्ग के सत्याग्रही बहुत ही जोश मे आ गए है। विशेषत मद्रासी बहने अलग-अलग टोलियो मे निकल पडी है तथा वे सब जेल जाने के लिए बारम्बार प्रयत्न कर रही है। स्थान-स्थान पर जाकर सामूहिक रूप मे कानून तोड रही है। परन्तु सरकार अब और महिलाओ को गिरफ्तार नही करती। एक तो पूज्य बा की गिरफ्तारी से ट्रान्सवाल मे ही सत्याग्रह की ज्वाला भडक उठी थी और दूसरे भारत के अखबारो मे बा के जेल जाने का प्रतिवाद बहुत जोर से हुआ था। गोखलेजी महाराज ने पूरे भारत की सहानुभूति बापूजी के सत्याग्रह आन्दोलन की ओर जगा दी थी। उधर इग्लैंड मे भी स्मट्स सरकार के इस काम को नापसन्द किया जा रहा था।

जोहान्सबर्ग से दूसरी खबर आई कि बापूजी के घनिष्ठ सपर्क मे रहने वाले जोहान्सबर्ग के सत्याग्रहियो ने भी वाक्सरस्ट की चौकी पर अपने को गिरफ्तार करवा दिया है। उनमे बापूजी के द्वितीय पुत्र श्री मणिलाल-गाधी और श्री प्रागजी देसाई तथा श्री सुरेन्द्रनाथ मेढ मुख्य थे। उन लोगो को भी मारित्सबर्ग की जेल मे फीनिक्सवाली टोली के साथ रख दिया गया था।

एक दिन मगनकाका ने खुशखबरी सुनाई कि मेरे छोटे काका जमना-दास गाधी राजकोट से रवाना होगए है तथा उनका कार्यक्रम पहले स्टीमर द्वारा पूर्वी अफ्रीका के बैरा बदरगाह मे उतर कर रेल के रास्ते दक्षिण अफ्रीका पहुचने का है। वह दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह का नया मोर्चा केप कालोनी की सरहद पर खोलेगे।

थोडे दिन बाद हमे खबर मिल गई कि जमनादासकाका ने शानदार सत्याग्रह किया है। उन्होने केप कालोनी और आरेज फ्रीस्टेट कालोनी के प्रान्तो से पाच-सात साथी जमा कर लिये है और अब वे सब आरेज-कालोनी की सुन्दर नगरी किबर्ली की, जो हीरे की खान के लिए प्रख्यात है, जेल मे रखे गए है। बाद मे यह पता चला कि जमनादासकाका आदि पाच-छ नवयुवको को किबर्ली से क्रिश्चियाना नाम के सुदूरवर्ती गाव की जेल मे भेज दिया गया है।

अन्य कई सत्याग्रहियो ने भी ट्रान्सवाल मे चलकर वाक्सरस्ट मे अपने को गिरफ्तार करवा लिया और कारावास प्राप्त किया।

इधर फीनिक्स मे बापूजी सत्याग्रह का अध्ययन, चिट्ठी-पत्री एव अपने 'इण्डियन ओपीनियन' के द्वारा उसका सचालन करते रहे। साथ-साथ, भारत मे गोखलेजी महाराज के पास भी प्रतिदिन के समाचार विस्तार-पूर्वक तार और चिट्ठी द्वारा भेजते रहे। इतना काम होने पर भी फीनिक्स

के छोटे-छोटे कामो मे से किसी के प्रति उदासीन नही हुए। कुछ-न-कुछ मजदूरी का—शरीर-श्रम का काम नित्यप्रति कर ही लेते थे। जब तक वह फीनिक्स मे रहे हम बच्चो को समय से भोजन परोसने का काम उन्होने ही किया।

परन्तु अब धीरे-धीरे वह बच्चो के साथ बातचीत मे कम समय देने लगे। उनका विनोद भी कम हो गया। हम लोग अपनी छोटी-छोटी बात लेकर उनके पास पहुच जाया करते थे। वह स्थिति अब बदलने लगी। अब उनके बदले मगनकाका हमारे दैनिक कार्यक्रम पर विशेष ध्यान देने लगे। मगन-काका के पास जाने पर ही जब हमारा काम बन जाता था तब हमे बापूजी को घेरने की आवश्यकता नही रहती थी। बापूजी और मगनकाका आपस मे बहुत कम बाते करते दिखाई देते थे। वैसे फीनिक्स मे बापूजी ने कभी मौन व्रत लिया हो ऐसा मुझे याद नही पडता, परन्तु बिना मौनव्रत के ही इन दिनो वह प्राय मौन रहते थे।

महादेवभाई का जैसा कोई मन्त्री तब बापूजी के पास था नही, जो उनके मनोमथन की बातो पर प्रकाश डाले। मै अनुमान करता हू कि ज्यो-ज्यो सत्याग्रह का यह दौर जोर पकडता गया, बापूजी अपने उत्तरदायित्व को अधिकाधिक महसूस करते गए ओर सत्याग्रह की व्यापकता के साथ उसकी पवित्रता बनी रहे इसके लिए भारी चिंतन करते रहे।

इन्ही दिनो बापू ने इडियन ओपीनियन मे एक लेख लिखा था, जिससे उस समय की उनकी मनोदशा का परिचय मिलता है। उस लेख की कुछ पक्तिया ये है

"जो धर्म पर सच्ची आस्था वाला हो वही सत्याग्रही बन सकता है, 'मुख मे राम बगल मे छुरी' वाली आस्था नही। धर्म का नाम लेकर धर्म से उलटा काम किया जाय तो वह धर्म नही है। किन्तु जो धर्म, दीन और ईमान को सचाई से पालने वाला है वह ईश्वर पर ही सारी बात छोड देता है। उसके लिए ससार मे हार जैसी चीज होती ही नही। यदि लोग उसे हार बताए तो वह हार नही कहलायगी ओर यदि लोग उसे जीत कहे तो वह जीत भी न होगी। इस रहस्य को जो जानता है सो ही जानता है।

"सत्याग्रह शब्द का अर्थ विचारने पर हम देखते है कि उसमे प्रथम बात सत्य के आग्रह की—सत्य के बल की होनी चाहिए। 'एक पग दही मे और दूसरा दूध मे' वाली बात इसमे नही चल सकती। वैसा आदमी दो पाटो के बीच कुचल ही जायगा। सत्याग्रह कोई गाजर की पिपिहरी नही है जो बजेगी नही, तो चबा ली जायगी, उसे ऐसा समझने वाला न घर का रहेगा न

घाट का। शरीरबल की कमी होने के कारण अथवा शरीरबल के लिए मौका नही है यह देखकर इन्हे सत्याग्रही बनने के लिए मजबूर होना पडा है, ऐसा जो कहते है वे बिलकुल बेकार की बात कहते है।

"सत्याग्रही को मौत का डर छोडकर अन्त तक जूझना होता है। उसमे शरीर-बल से भी अधिक साहस होना आवश्यक है। अर्थात् सत्याग्रही मे सर्वप्रथम सत्य का सेवन और सत्य पर आस्था होना लाजिमी है।"

फलाहार के लिए पूज्य बा का और कस्ती के लिए रुस्तमजीकाका का उपवास तो शीघ्र ही निबट गया था, परन्तु जब सत्याग्रहियो ने शुद्ध घी प्राप्त करने के लिए अनशन आरम्भ किया तब जेल मे बाहर वालो की चिन्ता और मन की अशाति बहुत बढ गई। यद्यपि डरबन नगरी सम्पूर्ण दक्षिण अफ्रीका की श्वेतनगरी कही जाती थी और नेटाल प्रात की राजधानी मारिसबर्ग मानो मोतीनगर ही था, किन्तु उन दोनो स्थलो के कारागृह कालिमा और घोर उत्पीडन के केन्द्र बने हुए थे। इनमे डरबन का कारागार और भी कुख्यात था। वहा पर विशेष रूप से कत्ल के जुर्म की सजा पाये हुए खतरनाक हब्शी कैदियो को रखा जाता था। जब सत्याग्रह सघर्ष ने बहुत जोर पकडा, जेले भर गई और मारिस्सबर्ग की जेल मे जगह नही रही तब वहा से चुन-चुन कर अधिक जोशीले सत्याग्रहियो को डरबन की जेल में लाया गया।

पूज्य बा की तरह रुस्तमजीकाका को भी अनशन करना पडा था। मारित्सबर्ग की जेल के फाटक मे प्रवेश करते ही उनका 'कस्ती-सदरा' जब्त कर लिया गया। जेल के अधिकारियो को समझाने की बडी कोशिश की गई कि बिना 'कस्ती-सदरा' के पारसी लोग अपनी पूजा नही कर सकते और बिना पूजा के वे खाना नही खा सकते, परन्तु जेलवाले नही माने। इसलिए रुस्तमजी सेठ को अनशन के लिए मजबूर होना पडा। दूसरे सभी सत्याग्रहियो ने भी उनका साथ दिया। एक कर्मकाडी ब्राह्मण के लिए जो महत्त्व यज्ञोपवीत का होता है, वैसे ही रुस्तमजीकाका के लिए 'कस्ती-सदरा' अनिवार्य था। उनका 'कस्ती' यज्ञोपवीत के धागे जैसी ही थी और वह कन्धे पर न डाल कर कमर मे बाध लिया करते थे। भोजन से पूर्व, सूर्य के सामने खडे होकर अपना जाप करते हुए वह उस कस्ती को, अपनी अजलि मे, सूर्य के सामने ऊची उठाया करते थे और धीरे-धीरे कमर की चारो ओर सरकाते जाते थे। 'सदरा' उनके पहनने का विशिष्ट कुर्ता था। किसी सिख से कच्छ-कडा आदि छीन लिया जाय, किसी मुसलमान से वजू और नमाज का सामान ले लिया जाय, तो उसकी

जैसी हालत होगी, वैसी ही एक पारसी से 'कस्ती सदरा' ले लेने पर होती है। फीनिक्स की सारी टोली मे केवल रुस्तमजी सेठ ही पारसी थे, परन्तु उनका कष्ट सब के लिए अपना कष्ट ही महसूस हुआ, मानो एक ही शरीर के वे अभिन्न अग थे। परन्तु जेल वालो को सत्याग्रहियो की यह माग, बेकार की बावली प्रतीत हुई और उन्होंने कडाई से काम लेने का निर्णय किया।

नतीजा यह हुआ कि मेरे पिताजी और सेठजी को मारित्सबर्ग से बदल कर डरबन की जेल मे भेज दिया गया, जो बहुत बदनाम जेल थी। उधर मारित्सबग मे भी रावजीभाई, मगनभाई आदि बडो को छोटे नवयुवको से अलग कर दिया गया। परन्तु सभी जवान अनशन पर डटे रहे। जब डरबन से काकाजी को 'सदरा-कस्ती' मिल जाने की विश्वसनीय खबर उनको दी गई तब उनका अनशन समाप्त हुआ और इस प्रकार जेल मे उन सबकी पहली कसौटी पूरी हुई।

इसके पहले जो सत्याग्रह ट्रान्सवाल मे दो बार किया गया था उसमें गोरे लोगो की जेब पर सीधी मार नही होती थी। परन्तु इस बार के सत्याग्रह से नेटाल के पूजीपतियो का बडा भारी आर्थिक नुकसान हो रहा था, इसलिए उनकी हमदर्दी मे सरकारी गोरे हाकिम तिलमिला उठे थे।

दक्षिण अफ्रीका मे जेल के सुपरिटेंडेट को जेल का गवर्नर कहा जाता था। डरबन का जेल-गवर्नर उन दिनो बडा कठोर बताया जाता था। भारतीय कैदियो को सीधा करने और उनका जोश ठडा करने का मानो उसने सकल्प कर रखा था।

दक्षिण अफ्रीका की जेलो मे मास खाने वालो को सप्ताह मे दो बार मास दिया जाता था। जो भारतीय सत्याग्रही मास लेना निषिद्ध मानते थे, उन्होने ट्रान्सवाल की जेल मे अनशन करके मास के स्थान पर सप्ताह मे दो दिन छटाक-छटाक भर घी पाने की व्यवस्था जेल के कानून मे पक्की कराई, किंतु ट्रान्सवाल की सरकार ने जो देना स्वीकार किया था वह नेटाल की सरकार ने देने से इन्कार कर दिया। जब जेलवालो ने सत्याग्रही कैदियो की माग पर कान नही दिया तब फीनिक्स और जोहान्सबर्ग के वे सत्याग्रही, जो बापूजी के घनिष्ठ सम्पर्क मे आये थे, घी के मसले पर अनशन करने के लिए कटिबद्ध हो गए। दूसरे सत्याग्रही भी बडी सख्या मे अनशन मे शामिल हुए। घी का मसला मुख्य था, पर साथ-साथ जेल-जीवन की और भी कई शिकायते उन लोगो को थी—जैसे, जूओ से भरे हुए कम्बल, मास की जूठन से सने हुए बरतनो मे परोसा जाने वाला भोजन, अकारण गालिया और डाट-डपट तथा सप्ताह मे केवल एक बार नहाने की इजाजत और

उनमें भी भारी असुविधा।

उपवास करने वालों में दो तो बापूजी के पुत्र श्री मणिलाल गांधी और श्री रामदास गांधी थे। तीन-चार दिन तक जेल के बाहर वाले हम लोगों ने धैर्य से समझौते की प्रतीक्षा की, किन्तु बात को बढ़ते हुए देख कर सब बेचैन हो उठे। इस बीच 'इंडियन ओपीनियन' में छपने के लिए रेवाशंकर सोढा और मैजिस्ट्रेट के बीच का एक संवाद आया। उसे अपनी स्मृति के आधार पर नीचे दे रहा हूं

मैजिस्ट्रेट—तुम लोगों ने यह क्या शरारत कर रखी है? खाते क्यों नहीं?

सोढा—जानबूझ कर थोड़े ही हम शरारत कर रहे हैं। हमें घी चाहिए। वह दिलवा दीजिए, फिर खाने लगेंगे।

मैजिस्ट्रेट—घी नहीं मिलेगा। जानते हो कैद में आये हो? जो मांगो सो कैदखाने में थोड़े ही मिल सकता है?

सोढा—आप घी न देने में मजबूर हैं तो हम अपना उपवास छोड़ने में मजबूर हैं।

मैजिस्ट्रेट—घी नहीं मिलेगा तो कब तक उपवास करते रहोगे?

सोढा—मर जायंगे तब तक।

मैजिस्ट्रेट—मर जाओगे तो कोई टोटा नहीं आयगा। हमारे पास दफनाने की जगह काफी है।

सोढा—तो, घी नहीं मिलेगा तब तक मरने वालों का भी टोटा नहीं पड़ेगा।

जेलखानों में पहुंचे हुए सत्याग्रहियों में उस समय सबसे छोटी आयु-वाले रामदासकाका और रेवाशंकर सोढा थे। इन दोनों को उपवासी दल से फोड़ लेने के लिए सरकारी अधिकारियों ने अपनी सारी कारगुजारी कर डाली। रेवाशंकर ने जेलवालों को ऐसे-ऐसे मुंह-तोड़ जवाब दिये कि उनके दांत खट्टे हो गए। उधर, रामदासकाका ने अपनी नम्रता, सरलता और दृढ़ता से जेल वालों की हर कोशिश को विफल कर दिया।

घी वाले अनशन के समय रामदासकाका की शिष्टता, साधुता और दृढ़ता का जेलवासियों पर असाधारण प्रभाव पड़ा था। लेकिन इससे भी अधिक उनके प्रति सबका आदर इस बात से बढ़ गया था, कि जेल के प्रत्येक नियम का उन्होंने बड़ी प्रामाणिकता से पालन किया था। जेल से छूटने पर उनके जेल के साथी कहते थे कि सचमुच रामदास तो राम-

दास ही थे। मानो स्वय बापू के ही प्रतिरूप हो। काम के समय सतत काम करते रहते थे। जेल-जमादार हम लोगो को काम के लिए टोकता था, परन्तु रामदास के पास वह जाता तक नही था, क्योकि थक जाने पर कुदाल छोड कर रामदास कभी बैठ नही जाते थे। खडे-खडे ही अपनी थकान थोडी-सी उतार कर फिर से खोदने लग जाते थे। बागीचे में से हम लोग गाजर, मूली लेकर रामदास के सामने भी रखते थे। परन्तु वह उन्हे हाथ नही लगाते थे और हम से स्पष्ट कह देते थे—'मुझ से कुछ मत कहो'। काम करते समय जिस तरह वह लगे रहते थे, उसी तरह कमरे मे भी अपने समय का पूरा उपयोग करते थे। स्वस्थता मे बैठ कर पढा करते थे और किसीको अपनी ओर से असुविधा न हो, इसकी सावधानी रखते थे। फीनिक्स की सारी टोली मे सब से छोटे होने पर भी रामदासजी के सामने और सब बौने मालूम पडते थे। उनका विनय और उनकी टेक इतनी तेजस्वी थी।

घी के लिए किये गए उपवासो मे आरम्भ मे सत्याग्रहियो की बडी सख्या सम्मिलित हुई थी। परन्तु बाद मे वह धीरे-धीरे घटती गई। चाय-बीडी की आदत वाले अधिक समय नही टिक पाए। अनशन पर दृढ रहने वालो मे रेवाशकर और मगनभाई पटेल बागीचे मे काम करते-करते सर्व-प्रथम मूर्छित हुए। परतु रामदासजी उपवासो को भली-भाति सहन करते रहे।

जेल के उपवास मे साधारण कैदी को आराम, स्नान, मनोविनोद आदि की कुछ भी सुविधा नही मिलती। हमारे सहाध्यायी जब जेल मे छूट कर आये तो उन्होंने डरबन जेल के अनशन की जो कहानी सुनाई उसका सक्षेप यह है—उपवासो का पता चलते ही जेलर और जमादार की धाक-धमकी बहुत बढ गई। उपवास होते हुए भी रोज हमे बागीचे मे खोदने के लिए नियमपूर्वक ले जाया जाता था। सध्या को बद होने से पूर्व हमे अपने पूरे शरीर की तलाशी देनी पडती थी। इस तलाशी मे सभी कैदियो को दिगम्बर होकर तबतक कतार मे शातिपूर्वक खडा रहना पडता था जबतक दरोगा तलाशी पूरी न कर ले। अनशन के दिनो मे इन परेडो मे जेल के अधिकारी सत्याग्रही कैदियो को और भी परेशान तथा अपमानित करते थे। किसी ने अपने शरीर मे कोई चीज छिपा तो नही रखी, यह जाचने के लिए उनको कूदने, हाथ फैलाने और मुह खोलने के लिए विवश किया जाता था। भूखे कैदियो को इस तरह जलील करके जेल वाले उनको झुकाना चाहते थे। जेल वालो की इस तरह की हिमाकत से सत्याग्रहियो का खून खौल उठता था लेकिन अपना सारा गुस्सा वे मन-ही-मन पी जाते

थे । मध्याह्न मे भोजन के समय जो डेढ घटा दिया जाता था केवल उसी समय मे वे परिश्रम मे छुट्टी पाकर सो लिया करते थे । इसमे बिलकुल गिर पडने से बच जाते थे । मूर्छित होकर गिर पडना और जेल के अस्पताल मे भरती होना, सत्याग्रही अपनी शान के खिलाफ समझते थे । भूख हडताल को तुडवाने के लिए उनके बिस्तर के पास भोजन परोसा तसला रख दिया जाता था लेकिन वह रात भर ज्यो-का-त्यो पडा रहता था । सत्याग्रही उसे सूघते तक नही थे ।

चार-पाच दिन के बाद जब कडी धूप मे काम करते-करते भूख के मारे चक्कर खा कर रेवाशकर गिर पडा तब जेलवाले घबराए और उन्होने धूप मे सत्याग्रही से कडाई से काम लेना कुछ कम कर दिया । रेवाशकर को जेल के अस्पताल मे पहुचाया गया और वहा चार-पाच आदमियो ने मिल कर जबरन उसके गले मे दूध डाल दिया । रेवाशकर इस तरह दबने-वाला व्यक्ति नही था, उसने उल्टी करके दूध निकाल दिया । जेल वाले और भी खीझ उठे । अब उन्होने रबर की नली गले मे डाल कर दूध को पम्प करके सीधे आतो मे ही पहुचा दिया । दूध के रग को देखकर रेवाशकर को सदेह हुआ कि शायद उसमे अडा भी मिलाया गया है । वह निरामिश भोजी था । इस कारण बहुत दुखी हुआ ।

तनहाई मे प्रागजीभाई देसाई पर हब्शी जमादार टूट पडा । उसने उनको लाते लगाई और टाग पकड कर पीठ के बल दस-बारह फुट तक घसीटा । अन्य सत्याग्रहियो की भी इसी तरह की हालत की गई, परन्तु बापूजी के परखे हुए वीर अपने प्रण पर दृढ रहे । पूरा एक सप्ताह अनशन-सघर्ष चलने के बाद सरकार ने उन्हे घी देना तथा उनकी दूसरी शिकायतो को भी दूर करना स्वीकार कर लिया । सत्याग्रह-सग्राम का अत अभी तक कही नजर नही आ रहा था । इस बीच कारावास मे होने वाली इस जीत ने सभी भारतीयो के दिल मे काफी उत्साह बढा दिया ।

जेल के अनशन की समाप्ति की कथा जो हमारेस हपाठी कुप्पुस्वामी ने सुनाई थी वह भी बडी रोचक है । उसने बताया कि छ -सात दिन तक तो हम जोश-ही-जोश मे भूख को सहार गए । फिर दिल मे धडकन पैदा हुई कि जाने कब तक यह कष्ट भुगतना पडेगा । बडे लोग तो अलग थे हम तीन किशोर एक साथ थे । रामदासजी, जो हमारे साथ थे, वह मन से भी खिन्न नही हुए थे । हम लोग सोच-विचार मे परेशान थे कि एक सध्या के समय जेलर, गवर्नर और मैजिस्ट्रेट सामने आ धमके । आते ही

उन्होंने हम लोगो को जोरो से डाटना शुरू कर दिया, "तुम, अपने मन मे क्या समझते हो ? ऐसी शैतानी करोगे तो बर्बाद हो जाओगे। भले है सरकार चुप है, याद रखना, जब वह आखे लाल करेगी, तुम्हारी मिट्टी पलीद कर दी जायगी।" गोरे अफसरो की बात समझाने के लिए एक दुभापिया (इन्टर प्रेटर) भी उनके साथ कायदे से आया था। जेल मे हम लोग उसे 'इन्द्रापट' कहा करते थे, उसने साहब से भी दुगने जोर से उनकी अग्रेजी का अनुवाद हमें सुनाया और बोला, "सुनो! साहब बोलता है, तुम नही खायेगा तो तुम को सजा होगा। तुम खाओ, नहीं तो सरकार तुम को बहुत सजा देगी।" इस तरह धमकाने के साथ-साथ धीरे से वह यह भी कह देता था कि घी का परवाना तो आ गया है। फिर ऊचे से कह देता था कि तुम को खाना ही पडेगा। साहब को कह दो कि हम खायगे। मान जाओ। अन्त मे धीरे से पाद-पूर्ति करता था कि घी का परवाना मिल गया है। फिकर मत करो।" इस प्रकार धमकी और घी की खबर एक साथ हमे मिली। हमारे मन जो ढीले होने जा रहे थे, वे फिर तन गए और साहब को हमने रोज की तरह 'इन्कार' ही सुनाया।

जब हम लोग सोने की तैयारी मे थे कि दुबारा जेलर हमारे पास आया और बहुत ही भलेमानस की तरह बोला कि हमने तुम्हारी सारी बाते सरकार मे भेजी थी। तुम लोगो की कुछ माग तो ठीक थी लेकिन इस तरह दगा मचाना उचित नही है। खैर, मिस्टर चिमनी (एशियाई दफ्तर का अफसर) की मजूरी आ गई है। बोलो, क्या खाओगे ? तुम जानते हो कि रसोई-घर तो इस समय बन्द है। हमने उनको धन्यवाद दिया और दूसरे दिन सवेरे सबके साथ ही उपवास खोलने का निर्णय करके शाति से सोये।

हमे घी मिला और रसोई-घर मे हमारे प्रतिनिधि के स्वरूप श्री मेढ को भिजवाया। इसके बाद हम लोगो की थोडी-सी तिकडम भी चली। जेल के बाहर के समाचार हम लोग प्राप्त करने लगे। विशेषत तब, जब नहाने के लिए हम एक जगह इकट्ठे होते थे। नहाते-नहाते श्लोक बोलने का हमारा धर्म है इस बात पर हम अकड जाते थे और फिर बीच-बीच मे तुक बन्दी गाते थे

"बाहर से खबर आई। बापू-कूच बढ चली॥
हडताली तीन हजार। घुस गये ट्रासवाल॥"

इन समाचारो से स्वाभाविक ही हमारा उत्साह बढना था।

एक रविवार के दिन फीनिक्स मे डरबन की जेल का एक बोर (डच)

जमादार साप्ताहिक छुट्टी मनाने आया था। वह पूरा छ-साढे छ फुट ऊचा और तगडा था। जेल मे मेरे पिताजी पर पहरा देने का उसका काम था। हम लोगो ने उसे अपने साथ भोजन कराया। बडे चाव से उसने हमारी हिन्दुस्तानी रसोई खाई और फिर पुचकार कर मुझसे कहा कि तेरे पिता जेल मे मजे मे है। तू, कुछ उनके लिए कहना चाहता है ? मुझे उस आदमी से बोलने की इच्छा ही नही होती थी। उसके गोरे और गम्भीर मुह को मै ताकता ही रहा। तथा मन मे सोचता रहा कि यह कैसा अजीब आदमी है, जो यहा पर तो भला और मीठा बन रहा है और जेल मे सत्याग्रहियो को अनशन करना पडे, इस हद तक सताता होगा। खैर, मैने सक्षेप मे कहा, 'कह देना, हम मजे मे है'। जाते-जाते उसने हमारे बागीचे के फल भी भर-पेट खाये और फीनिक्स के प्रति अपना आदर और स्नेह व्यक्त करके वह डरबन जेल के लिए लौट गया। जेल का जमादार भी एक प्रकार से अच्छा आदमी हो सकता है यह देख कर उस दिन से मेरे मन मे यह बात बस गई कि खराब कहे जाने वाले आदमी मे भी कुछ-न-कुछ अच्छाई होती ही है।

: ५३ :

सत्याग्रह की प्रगति

जब जनरल स्मट्स ने तीन पाउड का कर रद्द करने के वचन का भग किया तब सत्याग्रह सग्राम पुन आरम्भ करने के विषय मे बापूजी ने गोखले-जी को लिखा था। वह पूरे राजनीतिज्ञ पुरुष थे। दोनो ओर के बलाबल का अनुमान किये बिना कैसे बापूजी को झुकने की सलाह दे देते ? अत उन्होने प्रश्न किया, "भैया, लडाई लेने की बात सोच रहे हो तो यह तो बताओ कि तुम्हारे सग लडने वाले वीर अधिक-से-अधिक और कम-से-कम कितने है, जो तुम्हारे साथ अत तक टिकने वाले हो?" 'दक्षिण अफ्रीका का इतिहास' नामक पुस्तक मे 'वचन-भग' शीर्षक प्रकरण मे बापूजी ने लिखा है "मैने गोखले-जी के पास अधिक-से-अधिक ६५ या ६६ और कम-से-कम १६ नामो की गिनती लिख भेजी थी। साथ मे यह भी लिखा था कि इतने कम मनुष्यो के वास्ते मै हिंदुस्तान मे पैसे की सहायता की अपेक्षा न करूँगा। इसके बारे मे आप निश्चित रहे और अपने स्वास्थ्य पर—जो काफी कमजोर हो गया है—अधिक बोझ न डालने की कृपा करे।"

इसी पुस्तक मे बापूजी ने एक ओर स्थल पर लिखा है "जो अतिम

उपाय सोच रखा था उसे करने का निश्चय किया। वह कदम बहुत तेजस्वी साबित हुआ। मैंने सोच रखा था कि अंतिम अवसर आ जाने पर उन सबको बलि चढा देना होगा जो मेरे साथ फीनिक्स में रह रहे हैं। मेरे लिए वह अंतिम त्याग था। फीनिक्स में रहने वाले मेरे निजी साथी और रिश्तेदार थे। अखबार चालू रखने के लिए आवश्यक आदमियों को और सोलह वर्ष से कम आयु वाले छोटे बालकों को छोड कर अन्य सभी को जेल-यात्रा के लिए भेज देने की मेरी धारणा थी। इससे अधिक त्याग करने का मेरे पास और कोई साधन-सामान था ही नहीं। गोखले को लिखते समय आखिरी सोलह व्यक्ति, जो मैंने अपने मन में रखे थे, यही थे।"

फीनिक्स वाले सत्याग्रही जेल में जा डटे, तो बापूजी ने ट्रान्सवाल की उन ग्यारह वीरांगनाओं का जत्था मोर्चे पर भेजा जिनको टाल्स्टाय-वाडी में अपने साथ रखकर उन्होंने तालीम दी थी। उनकी योग्यता बताते हुए उन्होंने लिखा है

"बहनों को जेल में भेजने का काम बहुत ही खतरनाक था, यह मैं जानता था। फीनिक्स में रहने वाली बहनें गुजराती थीं, अर्थात् ट्रांसवाल-वाली बहनों के समान अनुभवी और कष्ट उठाने की अभ्यस्त नहीं थीं। वे अधिकतर मेरे परिवार की थीं और केवल मेरे लिहाज के कारण ही जेल जाने को तैयार हो जाय और बाद में एक मौके पर हौलदिल हो जाय या जेल में पहुंच कर माफी माग ले, तो मुझे भारी आघात पहुंचने का और लडाई कमजोर पड जाने का डर था। किन्तु जो बहनें टाल्स्टाय-फार्म में मेरे साथ रही थीं वे इस सत्याग्रह में शामिल होने के लिए व्याकुल हो रही थीं। उन सबको मैंने इस लडाई के कष्टों के बारे में सचेत किया, परन्तु वे डरी नहीं। सब-की-सब बहादुर थीं, मेरे कहने पर भी किसी कदर रुकने-वाली नहीं थीं। ये सभी (श्रीमती भवानीदयाल को छोडकर) तमिल प्रदेश की थीं। उनमें छ बहनों की गोद में दूध पीने वाले बच्चे थे।"

महिलाओं की उस सारी टोली का नेतृत्व श्रीमती थम्बी नायडू कर रही थीं। उनके पति एक वीर सत्याग्रही थे और ट्रान्सवाल में बापूजी के साथियों में प्रथम वीर माने जाते थे। मीर आलम ने जब बापूजी पर घातक प्रहार किया था तब उन प्रहारों को अपने ऊपर झेल कर बापूजी की रक्षा करने वालों में श्री थम्बी नायडू का नाम ही मुख्य था। परंतु उनकी पत्नी का शौर्य उनसे भी दुगना माना जाता था, जो इस मोर्चे पर स्पष्ट प्रमाणित हो गया। इन तमिल बहनों के साथ श्रीमती भवानीदयाल भी थीं, जो कई महीने फीनिक्स में रह चुकी थीं। बापूजी ने उनकी चिकित्सा अपने

मिट्टी-पानी के तरीको मे की थी। वह देखने मे दुबली-पतली और कोमल थी और बाल्टी भर पानी ढोना तक उनके लिए कठिन हो जाता था। श्री भवानीदयालजी को, जो बाद मे सन्यासी भवानीदयाल कहलाये, हिंदी-जगत् भूल नही सकता। उनके व्यक्तित्व के प्रति हमे आदर था और जब श्रीमती भवानीदयालजी ने अन्य महिलाओ के साथ जेल-यात्रा के लिए प्रयाण किया तब उन दोनो के प्रति हमारे मन का आदर बहुत बढ गया।

ये महिलाए ट्रान्सवाल के दो-दो, तीन-तीन सीमा-स्थानो पर गई और बिना परमिट के सीमोल्लघन करके फिर से ट्रान्सवाल मे आई। परन्तु पूज्य बा को पकडने मे ही दक्षिण अफ्रीका की सरकार पर देश-विदेश मे लानत बरसने लगी थी, तब और भी बहनो पर हाथ डालने का साहस उसने नही किया। ज्यो-ज्यो सरकार ने उन्हे गिरफ्तार न करने की साव-धानी बरती, श्रीमती थम्बी नायडू की टोली नये-नये कानून तोडती गई। अत में बापूजी की सूचना से वे सब बहने कोयले की खान के मजदूरो के पास चली गईं और जबतक सरकार तीन पौंड का कर हटा न ले तब तक हडताल करने के लिए उन्हे समझाने लगी।

इधर स्मट्स सरकार ने बहनो को गिरफ्तार न करके तग कर डाला। उधर ट्रान्सवाल मे अनेक पुराने और मजे हुए सत्याग्रही उन्ही कानूनो को तोड कर जेल पहुच गए। मुश्किल से एक महीना पूरा हुआ होगा कि सत्या-ग्रह की लडाई का मोर्चा रग में आ गया। बापूजी को इस प्रगति से सतोप हुआ और वह अपने प्रहार को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के उपाय करने लगे।

फीनिक्स मे निकलने वाले साप्ताहिक का काम बहुत कम आदमियो से ठीक तरह चलता रहे ऐसा परिवर्तन करना बापूजी ने आवश्यक समझा। पहले वह शनिवार को प्रकाशित होता था, अब उसे बुध को प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इस सबधी व्यवस्था का उल्लेख करते हुए बापूजी ने नीचे लिखे आशय का लेख 'इडियन ओपिनियन' के इस अक मे लिखा

"अब से बुधवार के दिन यह अखबार प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। इस अक को तैयार करने के लिए तीन ही दिन का समय था। इस वजह से इस अक के चार ही पृष्ठ है। शनिवार के दिन प्रकाशित करने से यह डरबन आदि नेटाल के स्थलो मे उसी दिन पहुच जाता है। परतु जोहान्सबर्ग और ट्रान्सवाल मे सोम या मगल के दिन पहुचता है। 'इडियन ओपीनियन' के अधिकतर पाठक काम-धधे मे इतने व्यस्त रहते है कि अगली शनि-रवि की छुट्टी आने से पहले उन्हे यह साप्ताहिक पढने का अवकाश

नही मिलता। यह नई व्यवस्था उनकी सुविधा के लिए की गई है, ताकि शनिवार के दिन ही उनको यह साप्ताहिक मिल जाया करे।

"हिन्दवासियो की वर्तमान परिस्थिति के सबंध में सही-सही जानकारी पहुचाने के लिए यह साप्ताहिक चालू रहना चाहता है। यदि लोगो को इसकी आवश्यकता नही है और वे इसके खर्च का बोझ उठाना नही चाहते तो भले-बुरे विज्ञापन आदि की भरमार करके जैसे-तैसे इसके छापते रहने मे और इसके द्वारा पैसे बटोरने मे मुद्रक-प्रकाशक जनता के प्रति तथा देश के प्रति गभीर अपराध करते प्रतीत होते है। इस समय इसके नौ-सौ ग्राहक है। यह ग्राहक सख्या यदि गिर जायगी तो यह पत्र चलाना सभव नही होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि कोई इसकी घटी हुई पृष्ठ सख्या को देखकर हैरान न हो। असल में जो पन्ने कम किये गये है, उनमे केवल विज्ञापन और बेकार की चीजे ही छाटी गई है। पढने की जो सामग्री बाकी रह जाती है वह कोई पोली या थोथी नही है। हमे आशा है कि हम थोडी पढाई मे ज्यादा-से-ज्यादा उपयोगी बाते देगे। एक शब्द भी बेकार नही होगा। इस कम पन्नेवाले अखबार को प्रकाशित करने के श्रम और खर्च मे अधिक पन्ने वाले अखबार के मुकाबले विशेष अतर नही पडता। अत इसका वार्षिक चन्दा कम नही किया जा सकता। प्रत्येक पाठक का कर्तव्य है कि वह इसमे प्रकाशित होने वाले विवरण और विचारो को अपनी जान-पहचानवाले सभी हिन्दियो मे प्रसारित करे और जो लोग पैसे से 'इडियन ओपीनियन' की सहायता करने मे समर्थ हो, ऐसे अपने-अपने मित्रो को इसके ग्राहक बना दे।"

अखबार प्रकाशित करने का दिन बदलने के साथ बापूजी ने एक बडा परिवर्तन और भी किया। सोलह पृष्ठ छापने वाला बडा यत्र तेल के इजन से चलता था। बापूजी ने तेल के इजन का प्रयोग सर्वथा वर्जित कर दिया। मिट्टी का तेल प्राशन करने वाला वह दैत्य जब रूठता था, किसी के बस का नही रहता था। उसके मुख्य चक्र—फ्लाई व्हील को चालू करने मे तगडे-तगडे जवानो का दम भी फूल जाता था। छपाई के दिन मुद्रण-यत्र पर काम चढने से पूर्व पाच-पाच छ-छ घटो तक हमारे हब्शी जवान चार्ली और श्री गोविन्दसामी जैसे पहलवानो को उसकी आराधना करनी पडती थी।

बापूजी ने उस तेलिये-भूत के बदले अपना बाहु-बल काम मे लाना पसन्द किया। साढे चार या पाच फुट ऊचा एक बहुत बडा लोहे का चक्र—हाथ से चलने का—वहा रखा गया था। इजन के बिगड जाने पर उस पर पट्टा चढाकर मुद्रण-यत्र चालू किया जाता था और चार आदमी मिल कर

उसे चलाया करते थे। बापूजी ने इसी पहिये से नियमित रूप से काम लेने का निश्चय किया। हर आध घटे बाद चारो आदमियो की बारी बदली जाती थी, इसलिए मुद्रण यत्र उसी वेग से काम समाप्त कर देता था जिस वेग से इजन के द्वारा होना था। उसे चलाने के लिए स्थानीय हब्शी-मजदूरो को लगाया गया था, फिर भी बापूजी ने स्वय अपने लिए भी चलाने की बारी रखी थी। और अखबार छपने के दिन उसे चलाने के लिए वह बिला नागा उपस्थित हो जाते थे। उन दिनो बापूजी फलाहार ही करते थे। लेख लिखने, गोखलेजी के साथ पत्र-व्यवहार करने तथा सत्याग्रह-सचालन सबधी सूचनाए भेजने का भारी काम घटो तक मेज पर बैठ कर उन्हें करना पडता था। फिर भी शरीर-श्रम करने का आग्रह इतना उग्र था कि दो-दो, तीन-तीन बारी बदल जाने तक वह पहिये पर से हटते नही थे।

पहले बुधवार को जब बापूजी लोहे का वह भारी पहिया घुमाने गये तब उन्होंने अपनी जोडी मे मुझे चुना। मै छोटा बालक था, और पहिया ऊचा था इसलिए उसे घुमाने मे मेरा जोर कम लगता था। परतु मेरी कमी बापूजी सवाया जोर लगा कर पूरी कर रहे थे। इतनी निकटता से बापूजी के साथ काम करने का अवसर मुझे कई दिनो बाद मिला था। शीघ्र ही बापूजी जेल चले जाने वाले थे और कब यह अवसर फिर मिलेगा इसका पता नहीं था इसलिए बापूजी से बाते करने के इस मौके का लाभ उठाने का मैने प्रयत्न किया। बहुत सोच-विचार कर मैने कई प्रश्न बापूजी से पूछे। बापूजी भरसक मौन रहकर चिंतन करते हुए पहिया चलाते थे। फिर भी मेरे प्रश्नो का उत्तर उन्होने धीरज से पहिया घुमाते-घुमाते दिया। उनमे से दो-तीन उत्तरो का सार इस प्रकार है

मैने पूछा था कि साप्ताहिक मे लेख आप अकेले लिखते है फिर भी "हमारी यह राय है", "हम यह कहते है" ऐसा बहुवचन का प्रयोग क्यो करते है? इसके उत्तर में बापूजी ने कहा, कि सम्पादक जो लिखता है वह उसके अकेले का ही विचार नही होता। उसके अनेक साथियो के विचार भी उसके विचार मे मिले हुए होते हैं इसलिए वह अपने लेख मे अपने लिए एक वचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग करता है।

इसके बाद विज्ञापन हटाने के सबध मे मेरे प्रश्न के उत्तर मे बापूजी ने कहा, "दूकानदार लोग अपनी चीजो का बहुत चढा-बढा कर बखान छपवाते है। हमारे छापने से उनके ग्राहक बढते है लेकिन हम पैसे के लालच से आजतक जो विज्ञापन छापते थे वह गलत काम करते थे। दूकानदार अपना माल अच्छा न होने पर भी अच्छा बतावे अथवा जैसा हो

उससे कई गुना श्रेष्ठ बतावे, यह झूठ ही तो हुआ। सच्चा आदमी ऐसी झूठी बाते क्यो कर छाप सकता है। फिर जो चीज हम अपने उपयोग मे लाते नही और लाना गलत समझते है उन चीजो को लेने का, हमारा अखबार पढ कर, लोगो का मन करे तो वह हमारी ही भूल कही जायगी न ?"

एक और प्रश्न के उत्तर मे बापूजी ने मुझे समझाया कि जब तू टोली-नायक है तब अपनी टोली के करने का काम अधूरा न रह जाय, यह देखना तेरा कर्तव्य है। तेरे साथी लडको मे से कोई आलस करे तो उस दिन तू दुगना काम कर लेकिन काम बाकी मत रहने दे।

: ५४ :

वह चिरजीवी इतिहास !

सत्याग्रह के इस इतिहास को औरो की दृष्टि से देखने के बदले उसके प्रणेता के शब्दो मे पढना ही अच्छा होगा। तीन पौंड के कर को हटाने मे विजयी होने के तुरत बाद स्वय बापूजी ने 'इडियन ओपीनियन' के विशेषाक मे गुजराती मे एक लेख लिखा था। उसका कुछ अश लेकर उस इतिहास का दर्शन कराना जरूरी समझता हू। बापूजी ने लिखा था—

"फीनिक्स की टोली के जेल जाने के बाद जोहान्सबर्ग मे नही रहा गया। वहा की औरते अधीर हो गई और उनको जेल जाने का बहुत उत्साह हुआ। श्री कैलनबैक उनको लेकर फ्रीनिखन गये। वहा जाने मे उम्मीद यह थी कि वे फ्री स्टेट (औरेंज कॉलोनी) की सरहद पर जा कर लौटते समय गिरफ्तार हो जायगी। उनकी उम्मीद पूरी नही हुई। कुछ दिन उन्होंने फ्रीनिखन मे ही सुख-दुख मे बिताये। वहा पर डालिया सिर पर ले-ले कर फेरी लगाई। परन्तु किसी ने उनको पकडा नही। इस निराशा मे अमर आशा छिपी हुई थी। सरकार ने महिलाओ को फ्रीनिखन मे ही पकड लिया होता तो कदाचित् हडताल न होती। यह तो निश्चित बात है कि वह जम कर जिस पैमाने पर हुई उस पैमाने पर नही हो सकती थी। किन्तु कौम पर ईश्वर का हाथ था।

"सदैव भगवान् सत्य का रक्षक है। महिलाए पकडी न गई तब तय किया गया कि वे नेटाल की सीमा पार करे। यदि उनको पकडा न जाय तो श्री

थम्बी नायडू के साथ वे न्यूकेसल मे अपनी छावनी डाले। निश्चय यह किया गया था कि सत्याग्रही महिलाए न्यूकेसल मे गिरमिटियो तथा उनकी स्त्रियो मे मिले। उनकी दुर्दशा का उनको खयाल कराये और तीन पौड के कर के बारे मे उनको हडताल करने के लिए समझाये। जब मै न्यूकेसल पहुच जाऊ तब हडताल की जाय। किन्तु महिलाओ की उपस्थिति ने मूखे ईधन पर दियासलाई का काम किया। सेज-पलग के बिना न सोने वाली और मुश्किल मे अपना मुह खोलने वाली इन महिलाओ ने गिरमिटियो की आम सभा मे भाषण दिये। वे जाग उठे और उन्होने मेरे पहुचने से पहले ही हडताल करने का आग्रह किया। यह बहुत खतरनाक काम था। मुझको श्री नायडू का तार मिला। श्री कैलनबैक न्यूकेसल गये और हडताल शुरू हो गई। मेरे पहुचने तक कोयले की दो खानो के भारतीयो ने काम बन्द कर दिया था।

"मिस्टर होस्केन की अध्यक्षता में यूरोपियनो की सहायक समिति ने मुझे बुलाया। मै उनसे मिला। उन्होने हमारे आन्दोलन को पसन्द किया और प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव किया। एक दिन जोहान्सबर्ग मे रुक कर मै न्यूकेसल पहुचा और वहा रुक गया। मैने देखा कि लोगो मे बेहद उत्साह था। सरकार महिलाओ की उपस्थिति को सह नही सकी और उसने अन्त मे उनको आवारागर्दी का जुर्म लगाकर जेल भेज दिया।

"श्री लेझरस का मकान अब सत्याग्रहियो की धर्मशाला बन गया। वहा सैकडो गिरमिटियो के लिए खाना पकाना जरूरी हो गया। फिर भी श्री लेझरस ने निरुत्साह को अपने पास फटकने नही दिया। न्यूकेसल के भारतीयो ने एक समिति नियुक्त की। श्री मीदात प्रमुख नियुक्त हुए। जोरो से काम चल पडा। दूसरी खानो के भारतीयो ने भी काम छोड दिया।

"इस प्रकार, खानो के मजदूर काम बन्द करते चले तब कोयला-खानो के मालिको के मडल की सभा हुई। वहा बहुत बातचीत हुई, पर कोई फैसला नही हुआ। उनकी माग यह थी कि यदि हमारी ओर से हडताल रोक दी जाय तो वे लोग सरकार से तीन पौड के कर के बारे मे लिखा-पढी करेगे। सत्याग्रही यह स्वीकार नही कर सकता। हमे मालिको से कोई वैर नही था। हडताल का उद्देश्य मालिको को दुख पहुचाने का नही था, केवल हम दु ख उठाए, यही था। इसलिए कोयला-खानो के मालिको की सलाह को स्वीकार किया जा सके, ऐसा नही था। मै फिर न्यूकेसल लौट गया। उस सभा का नतीजा मैने सुनाया तो उत्साह बढ गया। और भी खानो में काम बन्द हो गया।

"अब तक मजदूर लोग अपनी-अपनी खानो पर ही रहे थे। न्यूकेसल की कार्यवाही समिति ने सोचा कि जब तक गिरमिटिये लोग अपने सेठ की जमीन पर रहेंगे तब तक हडताल का पूरा प्रभाव पडने वाला नही है। वे लोग लालच मे आकर या डर कर काम शुरू कर दे, यह खतरा ही था। और सेठ का काम न करने पर भी उसके घर में बसना अथवा उसका नमक खाना अनीति कही जायगी। अर्थात् गिरमिटिए का खान पर रहना दोष-युक्त था। यह दोष सत्याग्रह के शुद्ध प्रयास को मलिन करने वाला मालूम दिया। दूसरी ओर, हजारो भारतीयो को कहा पर रखा जाय, उनको किस तरह भोजन कराया जाय, ये सब विकट समस्याए थी। श्री लेझरस का मकान जब छोटा महसूस हुआ। फिर भी चाहे जैसा खतरा उठा कर भी खानो को खाली ही करने का निश्चय किया गया। गिरमिटियो को अपनी खाने छोड कर न्यूकेसल चले आने का सदेशा पहुचाया गया।

"खबर मिलते ही खानो से कूच शुरू हो गई। बेलगी की खान के भारतीय पहले आ गए। न्यूकेसल में ऐसा दृश्य बन गया मानो हर रोज यात्रियो का सघ ही आ रहा हो। जवान, बूढे, औरते—कोई अकेली तो कोई गोद मे बच्चे वाली, सभी स्त्रिया अपने-अपने सिर पर गठरिया लिये हुए चल दी, मर्दों के सर पर पेटिया नजर आती थी। कोई दिन मे आ पहुचते थे, तो कोई रात मे। उनके लिए भोजन का इन्तजाम करना पडता था। इन गरीब लोगो की सतोष-वृत्ति का मै क्या बयान करू। जो कुछ थोडा-सा मिल गया उसे वे सुख समझते थे। कोई रोता हुआ शायद ही नजर आता था। सब के मुख पर स्मित दमक रहा था। मेरे मतमे तो वे तेतीस कोटि देवताओ मे से थे। स्त्रिया देवी रूप थी। उन सब के लिए छत की व्यवस्था कैसे सभव हो सकती थी? सोने के लिए 'तृणशय्या' थी, छत के स्थान पर आकाश था। उनका रक्षक ईश्वर था। किसीने बीडी की माग की। मैने उसको समझाया कि उन्होने गिरमिटियो के रूप मे यात्रा नही की है, भारत के सेवको के नाते निकले हुए है। धार्मिक लडाई मे शामिल हुए है, और ऐसे अवसर पर तम्बाकू आदि व्यसनो को उन्हे त्याग देना चाहिए। इन साधु पुरुषो ने ऊपर वाली सलाह स्वीकार कर ली और इसके बाद किसीने बीडी के लिए पैसा खर्च करने की माग मेरे पास नही की। इस प्रकार खानो मे से पात-की-पात लोगो की चल पडी। उनमे एक गर्भवती स्त्री को चलते-चलते रास्ते मे गर्भपात हो गया। ऐसे अनेक दुख उठाने पर भी कोई थका नही, पीछे हटा नही।

"न्यूकेसल मे भारतीयो की सख्या बहुत बढ गई। वहाके भारतीयो

के स्थान भर गये। उनके पास से जितने मकान मिले सके उनमें स्त्रियो और बूढो का समावेश किया जा सका। यहा पर कहना होगा कि न्यूकेसल में बसने वाली गोरी जनता ने बहुत विनय का बर्ताव रखा था। उन्होने अपनी सहानुभूति भी दरसाई थी। एक भी भारतीय को उन्होने सताया नही। एक भली महिला ने अपना मकान मुफ्त मे ही उपयोग के लिए दे दिया था। और भी बहुत-सी छोटी-छोटी सहायता गोरो के पास से मिलती रहती थी।

"परन्तु न्यूकेसल मे हजारो भारतीयो को सदा के लिए रखा जा सके ऐसी हालत नही थी। 'मेयर' घबरा गए थे। साधारणता न्यूकेसल की आबादी तीन हजार मानी जाती थी। ऐसे देहात मे दूसरे दस हजार मनुष्य समा ही नही सकते थे। अन्य खानो के मजदूर भी काम बन्द करने लगे, तब यह प्रश्न उठा कि क्या किया जाय। हडताल करने का उद्देश्य जेल जाने का था। सरकार चाहे तो वह मजदूरो को गिरफ्तार कर सकती थी। किन्तु हजारो के लिए उसके पास जेले भी नही थी। इसलिए उसने मजदूरो पर हाथ नही डाला। इस हालत मे जब ट्रासवाल की सरहद को पार करके गिरफ्तार होने का सरल उपाय हमारे पास था यह भी खयाल किया गया कि ऐसा करने पर न्यूकेसल की भीड कम होगी और हडताल करनेवालो की अधिक कसौटी भी होगी।

"न्यूकेसल मे खान-मालिको के जासूस लोग हडताल वालो को ललचा रहे थे। एक भी मजदूर गिरा नही फिर भी उस लालच से उनको दूर रखना कार्यवाहक मडली का कर्त्तव्य था। इन कारणो से न्यूकेसल से चार्ल्सटाउन कूच करके जाना उचित मालूम हुआ। मार्ग करीब पेंतीस मील का था। हजारो मनुष्यो के लिए रेलभाडा नही खर्च किया जा सकता था। जो स्त्रिया चल न सके उनको रेल मे ले जाने का निश्चय हुआ। रास्ते मे गिरफ्तारिया होने की सभावना थी। और फिर यह पहला ही अनुभव होने वाला था। इसलिए निश्चय हुआ कि पहली टुकडी को मै ले जाऊ। पहली टोली मे लगभग पाच सौ व्यक्ति थे, जिनमे लगभग साठ स्त्रिया अपने बच्चो के साथ थी। इस टुकडी का दृश्य मै कभी भूल नही सकता। यह टुकडी 'द्वारका-नाथ की जय, रामचन्द्र की जय, वन्देमातरम्' के नारे लगाती हुई चलती थी। दो दिन के लिए आवश्यक मात्रा मे पका-पकाया दाल-चावल सबके साथ बधवा दिया था। सब अपने-अपने बोझ को बाध कर चल पडे। उनको नीचे लिखी शर्ते सुना दी गई थी

"१ मै गिरफ्तार कर लिया जाऊ, ऐसा सभव था। यदि ऐसा हो

तो भी टुकडी अपना कूच जारी रखे और जब तक खुद नही पकड लिये जाय, तबतक वे चलते रहे। रास्ते मे खाने के लिए और पीने के पानी के लिए व्यवस्था करने का सब प्रयत्न किया जायगा, फिर भी यदि किसी दिन खाना न मिले तो सतोप रखें। २ लडाई मे जबतक रहे, शराब आदि का दुर्व्यसन छोड दे। ३ मौत आने पर भी पीछे कदम न करे। ४ मार्ग में रात हो जाय तो टिकने के लिए मकानो की आशा न करके घास पर ही पडे रहने को तैयार रहे। ५ रास्ते में आने वाले पेड-पौधो को जरा भी नुकसान न पहुचाया जाय और पराई वस्तुओं को बिल्कुल छुआ न जाय। ६ पुलिस जब गिरफ्तार करने आय तब अपने को पकडवा लिया जाय। ७ पुलिस से या और किसी से मुकाबला न किया जाय, किन्तु जो मार पडे वह सहन कर ली जाय तथा प्रहार के सामने प्रहार करके अपना रक्षण न किया जाय। ८ जेल मे जिन कष्टो को भुगतना पडे उन्हे भुगत लिया जाय और जेल को महल समझकर वहा पर दिन बिताए जाय।

"इस सघ मे सभी वर्ण वाले थे—हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। कलकतिये थे, तमिल थे। कुछ पठानो और उत्तर की ओर के सिंधियो को मार खाकर भी अपना बचाव न करने वाली शर्त कठिन महसूस हुई थी, किन्तु उन्होने उसे खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। यही नही, कसौटी का मौका आने पर उन्होने अपने बचाव मे भी अपना हाथ नही उठाया।

"ऐसी परिस्थिति मे पहली टुकडी का कूच शुरू हुआ। पहली रात को ही जगल मे घास पर सोने का अनुभव मिला। रास्ते मे करीब एक सौ पचास आदमियो के लिए वारट आए। वे लोग खुशी से गिरफ्तार हो गए। उनको पकडने के लिए केवल एक ही पुलिस अफसर आया था। उसकी सहायता के लिए और कोई नही था। जो पकडे गए उनको कैसे ले जाय, यह प्रश्न सामने आया। हम लोग चार्ल्सटाउन से केवल छ मील दूर थे, इसलिए मैंने अफसर से कहा कि यदि वह चाहे तो पकडे गए आदमियो को मेरे साथ कूच करने दे और चार्ल्सटाउन मे उनका कब्जा ले ले, अथवा अपने अधिकारी से पूछकर जैसा हुक्म मिले, करे। अफसर ने मेरी सलाह स्वीकार की और वह लौट गया। हम लोग चार्ल्सटाउन पहुचे। चार्ल्सटाउन बहुत छोटा देहात है। मुश्किल से उसकी आबादी एक हजार की होगी। उसमे एक ही आम सडक है। बहुत कम भारतीय वहा बसते है। इसलिए हमारे सघ को देखकर गोरे लोग आश्चर्यचकित हुए। इतने भारतीय चार्ल्सटाउन मे कभी दाखिल नही हुए थे। पकडे गए लोगो को न्यूकेसल ले जाने

के लिए रेलगाडी तैयार नही थी। पुलिस उन्हे कहा रखे, यह सवाल था। थाने में भी इतने कैदियो को रखने की गुजायश नही थी। इसलिए गिरफ्तार किये गए लोगो को पुलिस ने मेरे हवाले किया और उनके भोजन का बिल चुका देना स्वीकार किया। सत्याग्रह के प्रति यह कोई थोडे मान की बात नही थी। उनमे से कोई लापता हो जाय तो हमारी जिम्मेदारी नही थी। लेकिन सत्याग्रही का काम पकडे जाने का ही होता है, ऐसा सबने समझ लिया था और इसलिए उन्हे विश्वास बैठ गया था। इस प्रकार ये पकडे गए लोग चार दिन तक हमारे साथ ही रहे। पुलिस उनको ले जाने के लिए तैयार हुई तब वे खुशी से उसके अधीन हो गए।

"टुकडियो की भरती होती चली गई। किसी दिन चार सौ तो किसी दिन उनसे भी अधिक लोग आते रहे। बहुत-से लोग पैदल आते थे और स्त्रिया प्राय गाडी से आती थी। चार्ल्सटाउन के भारतीय व्यापारियो के मकानो मे जहा पर जगह थी वहा सुविधा की गई। वहा के कोर्पोरेशन ने भी मकान दिये। गोरे लोग बिल्कुल सताते नही थे, बल्कि सहायता भी देते थे। वहा के डाक्टर ने मुफ्त में चिकित्सा व शुश्रूषा का काम करने अपने ऊपर ले लिया। हम लोग जब चार्ल्सटाउन से आगे बढे तब उन्होने मूल्यवान दवाइया और कुछ आवश्यक औजार नि शुल्क दे दिये। रसोई मसजिद के मकान मे होती थी और चूल्हा चौबीसो घटे जलता रखना पडता था। रसोई का काम करने वाले हडतालियो मे से ही तैयार हुए थे। अन्तिम दिनो मे तो चार से पाच हजार आदमियो को भोजन कराना पडता था। फिर भी काम करने वाले हारे नही। सवेरे-सवेरे मकाई के आटे की मीठी लपसी दी जाती थी और मक्की की रोटी भी। शाम को चावल और दाल तथा शाक दिया जाता था। दक्षिण अफ्रीका मे सब लोग प्राय तीन बार खाने वाले होते है। परन्तु उन हडतालियो ने सत्याग्रह-सग्राम के समय दो बार भोजन करके सतोष माना। वे लोग स्वाद का आनन्द लेने वाले होते है, पर वहा वह स्वाद भी उन्होने छोड दिया।

"चार्ल्सटाउन मे इतने मनुष्यो को लम्बे अरसे तक सुविधा-असुविधा मे रखने पर लोगो का उपद्रव फैल जाने का खतरा था। ये हजारो व्यक्ति, जो सदैव काम करने वाले ही होते है, बेकार बैठे रहे यह उचित भी नही था। यहा पर यह बता देना आवश्यक है कि इतने गरीब आदमी वहा इकट्ठे हो गए थे, फिर भी चार्ल्सटाउन मे एक भी व्यक्ति ने चोरी नही की। किसी भी समय पुलिस की आवश्यकता पैदा नही हुई, और न पुलिस को किसी भी समय अधिक काम ही करना पडा। इस पर भी अब चार्ल्सटाउन

में ही न बैठा रहा जाय, यही उत्तम मार्ग जान पडा। इसलिए ट्रासवाल मे प्रवेश करने का और यदि पकडे न जाय तो टाल्स्टाय-फार्म पहुचने का निश्चय हुआ। कूच करने से पहले सरकार को खबर दी गई कि गिरफ्तार होने के लिए हम लोग ट्रासवाल में प्रवेश करने वाले है। हम लोगो को वहा पर रहना नही है, वहा पर बसने के अधिकारो की हमें अपेक्षा नही है, परन्तु जबतक सरकार नही पकडेगी, हम टाल्स्टाय-फार्म में जाकर डेरा डालेगे। सरकार यदि तीन पौंड का कर हटा देने का वचन दे देगी तो हम लौट जाने के लिए तत्पर रहेगे।

"इस नोटिस पर कुछ भी गौर करने की मनोवृत्ति सरकार की नही थी। उसके जासूस उसको चक्कर मे डाल कर उकसा रहे थे। लोग थक जायगे ऐसा आश्वासन वे अधिकारियो को देते थे। सरकार ने सभी भाषाओ मे चुनौतिया छपवा कर हडतालियो के बीच बटवा दी।

"अन्त मे चार्ल्सटाउन से आगे बढने का समय आ गया। तारीख छ नवम्बर (१९१३) को तीन हजार के सघ ने प्रभातवेला मे प्रयाण किया। सारी पक्ति एक मील से भी ज्यादा लम्बी थी। श्री कैलनबैक तथा मै पीछे के हिस्से मे थे। सघ सरहद पर पहुच गया। वहा पुलिस की टुकडी मौजूद थी। हम दोनो वहा पहुचे, तब पुलिस से बातचीत हुई। उसने हम लोगो को गिरफ्तार करने से इन्कार कर दिया। तब सारा जलूस अनुशासन के साथ शातिपूर्वक वालक्रस्ट के मध्य से गुजरा। शहर के बाहर स्टार्टर्टन रोड पर जाकर सभी ने पडाव डाला। सबने खाना खाया। स्त्रिया कूच मे शामिल न हो ऐसी व्यवस्था की गई थी, परन्तु उनके जोश की बाढ को रोकना कठिन हो गया और कुछ स्त्रिया शामिल हुई। फिर भी कुछ स्त्रिया तथा बालक अब भी चार्ल्सटाउन मे रह गए थे। उनकी सार-सम्हाल के लिए वालक्रस्ट की सरहद से पार होने के बाद, मैने श्री कैलन-बैक को भेज दिया।"

: ५५ :

सत्याग्रह का प्रवाह : बापू की कठोर साधना

पाठक पीछे के अध्याय मे पढ चुके है कि श्रीमती थबी नायडू के नेतृत्व में जोहान्सबर्ग की महिला सत्याग्रहियो के कारण न्यूकेसल की कोयले की खानो में में हडताल प्रारम्भ होगई थी। यह भी पाठक बापूजी के लेख में पढ चुके है

कि वह हडताल जोर पकड गई और वापू ने उसका सचालन स्वय अपने हाथो मे ले लिया था। पाठक यह भी जानते है कि वापूजी ने सात दिन के उपवास के वाद साढे चार मास के एकासने (एक समय भोजन) का व्रत लिया था, जो इन दिनो भी चल रहा था। इस कारण उनका शरीर पहले का-सा मजबूत नही रह गया था। उस पर सत्याग्रह और हडताल की यह भारी जिम्मेदारी! यह सव देख-सुनकर हम फीनिक्सवासी लोग और खासकर मगनकाका वडे चिंतित रहने लगे। मगनकाका तो वार-वार यह कहा करते कि अच्छा हो वापू जल्दी ही गिरफ्तार हो जाय। समय-समय पर कोई-न-कोई न्यूकेसल से फीनिक्स वापू का सदेसा लेकर आता। उससे वापू की हालत का पता चलता रहता। इससे भी हम सव फीनिक्सवासी चिंतित रहने लगे क्योकि वापू अपने व्रतो के पालन मे वडे कठोर थे। दूध-घी आदि का त्याग वह वहुत पहले कर चुके थे। एक वार के भोजन मे भी वापू केवल फल लेते थे। और जव हडताल करने वाले गिरमिटिये मजदूरो का नेतृत्व उन्होने अपने ऊपर ले लिया तो उन भूखे और निराधार स्त्री-पुरुषो के साथ रह कर महगे फल और मेवे वह अपने लिए कैसे मगा सकते थे! दूसरी ओर अपने काम करने का वेग और परिश्रम दुगना-चौगुना कर दिया। उन दिनो वापू की दिनचर्या निम्न प्रकार थी

प्रात चार वजे से पहले ही अपने नित्य-कर्म से निवृत्त होकर ठीक चार वजे से वापूजी अपनी देखभाल मे रसोई का काम प्रारभ करा देते थे और दिन निकलते ही हडताली मजदूरो की प्रथम टोली को भोजन के लिए वैठा देते थे। वापूजी स्वय अपने ही हाथो उन सवको खाना परोसते थे। इस प्रकार वारी-वारी से उन साढे चार हजार मजदूर स्त्री-पुरुषो और वच्चो को खाना खिलाने का सिलसिला लगातार रात के दस वजे तक चलता था। एक वार की रसोई परोस चुकने के वाद दूसरी रसोई तैयार होने तक जो समय मिलता था उसमे नये-नये आने वाले हडताली दलो की व्यवस्था करने मे उनका समय जाता था। वह यह देखते थे कि कोई भूखा, प्यासा न रह जाय। औरतो, वच्चो व वूढो को भरसक सुविधा मिले।

परोसने का तरीका यह था कि एक मेज पर खाना रख दिया जाता था। मेज के सामने से होकर हडतालियो की कतार हाथ मे अपने वर्तन लिये आगे वढती जाती थी और वापूजी प्रत्येक की थाली मे खाना परोसते थे। राशन 'क्यू' और इस 'क्यू' मे अन्तर यह था कि पका-पकाया अन्न परो-सने मे वापूजी हजारो लोगो के साथ अपना व्यक्तिगत सपर्क साध लेते थे और उनके मुख के भाव पर से सवके सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्साह-

भीरुता आदि को भरसक जान लिया करते थे। इतना ज्यादा भोजन बनाने मे खाना कच्चा या जला-अधजला रह ही जाता था। सख्या के हिसाब से कई बार आधा पेट खाना परोसना पडता था और थोडा सतोष रखने के लिए कहना पडता था। इस प्रकार हजारो व्यक्तियो को स्वय परोसने मे सुबह से लेकर आधी रात तक एक पल के लिए भी बापूजी कुर्सी पर या जमीन पर बैठ नही पाते थे। रात को दस बजे रसोई उठा देने के बाद भी वह हडतालियो के बीच चक्कर लगाने के लिए निकल पडते थे। और सारी व्यवस्था देखने के बाद सबके साथ ही घास मे पड जाते थे। वह प्राय रात के बारह बजे सो पाते थे और ब्रह्म मुहूर्त मे दो-ढाई बजे फिर उठ बैठते थे।

उठकर दातौन आदि से निबटने के बाद बापूजी तुरत ही अपना चौबीस घटो मे एक बार का फलाहार भी कर लिया करते थे, क्योकि दिन भर मे फिर फलाहार करने के लिए उनको पूरा समय नही मिल पाता था। मूगफली के दाने चबाने की फुरसत न होने के कारण उन्होने अपने आहार मे मूगफली की मात्रा भी घटा दी थी।

सवेरे भी समय की कमी का कारण यह था कि ऊषा का आलोक होने से पहले ही बापूजी को यह देखना पडता था कि कोई अधेरे मे गलत जगह पर पाखाना-पेशाब तो नही करता? तथा जहा भी टट्टी-पेशाब किया जाता है वहा ठीक तरह से उस पर सूखी मिट्टी डाली जाती है या नही? यदि इस बारे मे पूरी चुस्ती से काम न लिया जाता, गदगी को शुरू मे ही न रोक दिया जाता, तो इतनी भीड के जमा होने पर किसी भी समय भयावह बीमारी फैल सकती थी। अगर ऐसा होता तो गोरो की आबादी वाले उस शहर में भारतीयो की प्रतिष्ठा को बडा भारी धक्का लगता, और सत्याग्रह के सघर्ष को हानि पहुचती।

इस प्रकार एक ओर तो दारुण परिश्रम व अल्पाहार से बापूजी अपने शरीर को सुखा रहे थे और दूसरी ओर एक दूसरा सकट भी उनके सिर पर मडरा रहा था। गिरमिटिया लोगो की इस हडताल के कारण सारे नेटाल प्रान्त के वातावरण मे ऐसी गरमी छा गई थी और निहितस्वार्थ वाले गोरे-प्रभुओ की मनोवृत्ति इतनी आपे से बाहर हो रही थी कि किस समय वे क्या कर बैठेगें इसका कोई अन्दाजा नही था। हर समय यह डर लगा रहता था कि बहकावे मे आकर कोई भी हडताली बापूजी पर हमला न कर बैठे! ऐसे वातावरण मे उस परदेस मे गोरे मालिको की नौकरी छोडते ही उनको कही से एक कण भी अन्न प्राप्त होना कठिन था। इस हालत मे भूख की ज्वाला से पीडित होकर और हडताल के कष्टो से तग आकर यदि

किमी हडताली का दिमाग फिर जाय और वह वापू को ही अपना जानी दुश्मन मान वैठे तो भी आश्चर्य की वात न थी।

ऐसे वातावरण में एक दिन जव वापूजी मेज पर रसोई के वरतन लगवा रहे थे और परोसने की तैयारी हो रही थी तव एकाएक लोगो की भीड मे खलवली मच गई। कुछ लोग दूसरो को धक्के देकर आगे वढे और उन्होने परोसने की मेज पर धावा वोलना चाहा। लेकिन वापूजी ने उन्हे आगे वढने से रोक दिया और समझा-वुझाकर शान्त कर दिया। वे वोले, "धीरज खोने का कोई कारण नही है। यकीन रखिए कि आप लोगो मे से एक को भी मै भूखा नही रहने दूगा। एक वच्चा भी भूखा नही रहेगा। लेकिन आप लोगो ने हुल्लड किया और छिना-झपटी की तो पहले मुझ पर वार करना होगा।"

वापूजी के इन शब्दो ने उफनते हुए दूध में पानी की बूद की तरह काम किया। सारी भीड शान्त हो गई और वे वाकायदा कतार मे रहकर वारी-वारी मे अपनी थाली परोसवाने लगे।

इस प्रकार वापूजी एक ओर तप से अपने शरीर को कस रहे थे तो दूसरी ओर सत्याग्रह को पवित्र और जोरदार वना रहे थे।

: ५६ :

वह चिरजीवी इतिहास—२

तीन हजार भारतीय गिरमिटियो के सघ को लेकर वापूजी ट्रान्सवाल की सीमा में आगे वढे तव अधिक देर तक सरकार चुप नही रह सकी। उनको गिरफ्तार करने के लिए वह मजबूर हो गई। इसके वाद का विवरण वापूजी के शब्दो में निम्न प्रकार है, जो पिछले (वह चिरजीवी इतिहास १) प्रकरण मे उद्धृत किये गए 'इडियन ओपीनियन' के लेख का शेष अश है।

"अगले दिन सवेरे पामफर्ड के पास पुलिस ने मुझे गिरफ्तार कर लिया। मुझपर अनधिकारी लोगो को ट्रान्सवाल मे प्रविष्ट कराने का अपराध लगाया गया था। औरो को गिरफ्तार करने का हुक्म नही था। इसलिए वालक्रस्ट पहुचने पर सरकार को निम्न प्रकार तार दिया 'सत्याग्रही की लडाई के मुख्य प्रचारक को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया है इससे मै खुश हुआ हू, लेकिन साथ-साथ यह भी कहे विना मुझसे नही रहा जाता

कि गिरफ्तारी के लिए जो मौका साधा गया है वह दया की दृष्टि से अत्यंत नाजुक और खतरनाक है। सरकार को शायद पता होगा कि इस कूच में १२२ स्त्रिया और ५० वालक है। सब लोग, जबतक अपने-अपने स्थान पर नही पहुचते, केवल जिन्दगी टिकाने भर के लिए थोडे से आहार पर गुजर कर रहे है। सर्दी-गर्मी से रक्षण की कुछ भी सुविधा उन लोगो के लिए नहीं है। ऐसी परिस्थिति मे मुझको उन लोगो से अलग करना अतिशय हानिकर होगा। जब कल रात को मुझको गिरफ्तार किया गया, मै अपने साथ के लोगों को पता दिये विना ही, उनको छोड कर आ गया। वे लोग कदाचित क्रोध से वेहद पागल हो उठेगे। इसलिए मै यह माग करता हू कि या तो सरकार उनके साथ मुझे कूच करने की स्वीकृति दे या वह उन लोगो को रेलगाडी से टाल्सटाय-फार्म पहुचा दे और उनके लिए भोजन की भी व्यवस्था करे। जिस पर उनका विश्वास है उससे उनको पृथक कर देना, साथ-ही-साथ उनके लिए खाने-पीने का कुछ भी इन्तजाम न करना अनुचित होगा। मुझे उम्मीद है कि पुर्नविचार करने के वाद सरकार अपना निर्णय वदलेगी। यदि कूच के वीच मे ही कोई आकस्मिक घटना घटेगी और विशेषत यदि किसी दुधमुहे वच्चे वाली स्त्री की मृत्यु होगी तो उसका उत्तरदायित्व सरकार पर रहेगा।' "

"संघ आगे वढा। मुझको वालक्रस्ट के न्यायाधीश के सम्मुख पेश किया गया। अपना वचाव तो मुझे करना ही नही था, लेकिन जो लोग पामफर्ड से आगे निकल गए थे, और जो अभी चार्ल्सटाउन मे पडे थे, उनके लिए कुछ व्यवस्था करनी वाकी थी। इसलिए मैने मियाद मागी। सरकारी वकील ने इसके खिलाफ वहस की, लेकिन न्यायाधीश ने कहा कि जमानत की नामजूरी केवल खून के मुकदमे मे ही की जा सकती है। इसलिए उसने मुझसे पचास पाउड की जमानत माग ली और एक सप्ताह की मियाद दी। मै छूटकर सीधा कूच करनेवालो से जा मिला। उनका उत्साह दुगना हो गया। इस वीच प्रिटोरिया से तार आ गया कि सरकार का इरादा मेरे साथ वाले भारतीयो को पकडने का नही है, नेताओ को ही पकडा जायगा। इसका अर्थ यह नही था कि अन्य सव को छूट दे दी जायगी, लेकिन सवको पकड कर हमारे काम को सरल वनाने का अथवा भारत में खलवली मचाने का सरकार का इरादा नही था।

"हमारे पीछे-पीछे श्री कैलनवैक एक वडी टोली लेकर आ रहे थे। जब हमारा दो हजार लोगो का सघ स्टैन्डर्टन तक पहुचा तव मुझको दुवारा गिरफ्तार किया गया, और मुकदमे की तारीख ११वी डाल दी गई।

हम तो आगे चले, किन्तु अव सरकार से यह सव वर्दाश्त नही किया जा सकता था। इसलिए उसने इन सवसे पहले मुझको तत्काल पृथक् कर देने का कदम उठाया। इस समय श्री पोलकको डेपुटेशन लेकर हिन्दुस्तान भेजने की तैयारी चल रही थी। विदा होने से पहले वह मुझसे मिलने आये। किन्तु अपना किया आरभ अधवीच मे ही रह गया और 'हरि करे सो होय' के अनुसार रविवार के दिन मुझे तिवारा ग्रेलीगस्टाड के पास पकड लिया गया। इस वार वारण्ट डडी से निकाला था और मुझपर गिरमिटियो मे काम छुडाने का अपराध लगाया गया था। मुझे वहा से वहुत ही लुकाछिपा कर डडी ले जाया गया। मै वता चुका हू कि श्री पोलक कूच मे हमारे साथ थे। उन्होने यह काम सम्भाल लिया। मगल के दिन डडी मे मुझपर मुकदमा चला। मुझपर लगाये गए तीनो अपराध मुझको पढकर सुना दिये गए। मैने उनको स्वीकार किया और कोर्ट की अनुमति लेकर मैने कहा—

" 'न अपने प्रति और सारी जनता के प्रति न्याय के लिए मुझे वताना चाहिए कि जो अपराव मुझपर लगाये गए है उनका सारा उत्तरदायित्व एक वकील के नाते और नेटाल के पुराने निवासी के नाते मै अपने ऊपर ले रहा हू। इन लोगो को नेटाल कालोनी से वाहर ले जाने के कारण जनता के दिल पर जो प्रभाव पडा है उसका उद्देश्य उत्तम था। खान के मालिको के साथ कोई झगडा नही है। इस लडाई से उन लोगो को गम्भीर नुकसान पहुचता है, इसके लिए मुझे खेद है। भारतीय मजदूरो को अपने यहा रखने वालो से भी मै निवेदन करता हू कि ३ पौड का कर मेरे देशवासी वधुओ पर भाररूप है और वह हटा दिया जाना चाहिए। मै मानता हू कि माननीय श्री गोखले और जनरल स्मट्स के वीच जो वात पैदा हो गई है उसे देखते हुए मेरा कर्तव्य था कि जिस पर अत्यन्त ध्यान आकर्षित हो ऐसी लडाई मै चलाऊ। स्त्रियो को और गोद के वच्चो को जो सकट सहन करने पडे है उनको मै महसूस करता हू, फिर भी मै मानता हू कि लोगो को सलाह देने का मेरा कर्तव्य था और मैने उसका पालन किया है। जव तक वह कानून रद्द नही किया जाता तव तक अपने देशवासियो को काम न करने व भीख माग कर पेट भर लेने की वार-वार सलाह देना मै अपना कर्तव्य समझूगा। मुझे विश्वास है कि दुख उठाये विना उनपर होने वाले जुल्मो का अन्त नही होगा।'

"मै तो जेल में स्थिरता से वैठ गया। वाद मे मुझपर वालक्रस्ट में मुकदमा चलाया गया और डडी मे मुझे जो नौ महीने की सजा हुई थी उसके अतिरिक्त तीन महीने का कारावास और दे दिया गया।

"इस बीच मुझे पता चला कि श्री पोलक गिरफ्तार कर लिये गए है और वह हिन्दुस्तान जाने के बदले जेल मे जाकर बैठ गए है। मै तो खुश ही हुआ। मेरे मन से उस डेपुटेशन के मुकाबले यह डेपुटेशन बडा था। इसके बाद तुरन्त ही श्री कैलनबैक भी गिरफ्तार हो गए और वह भी पोलक की भाति तीन महीने को जेल मे जा बैठे। नेताओ को पकड लेने के बाद लोग झुक जायगे ऐसा मानने मे सरकार ने गलती ही की। सभी हडतालियो को करीब चार विशेष ट्रेनो मे भर कर डडी और न्यूकेसल की खानो पर लौटा दिया गया। वहा उन पर बेहद जुल्म ढाये गए। उनको बहुत कष्ट सहन करना पडा। लेकिन वे सब सहन करने के लिए निकले हुए थे ही। सभी नेता थे। कथित नेताओ के बिना उनको अपना बल बताना था, जो उन्होने बता दिया। किस प्रकार बताया यह ससार को विदित है। कवि दयाराम ने ठीक ही गाया है कि 'कष्ट पाम्या विना कृष्ण कोने मळया, चारे जुगना जुओ साधु शोधी'—(कष्ट पाए बिना कृष्ण किसे मिल है ! चारो युग के साधुओ को जाच कर देखो।)"

जिस दिन प्रथम बार बापूजी के गिरफ्तार होने की खबर फीनिक्स मे आई उस दिन मगनकाका ने प्रसन्नता के साथ हम बालको को सुनाया कि "वालक्रस्ट की हद तो वह पार कर गए, परन्तु रात को जब सब लोग सो रहे थे, सरकारी आदमी इस प्रकार चुपचाप उन्हे पकड ले गए जिससे किसीको पता न चल पाए।"

इसके बाद प्रत्येक डाक से नई-नई खबरे आती गई। सारी परिस्थिति इतनी तेजी से बदलती जा रही थी कि एक बात पूरी तरह से समझ लेने से पहले ही दूसरी नई बात उपस्थित हो जाती थी। अधेरे-अधेरे मे गिरफ्तारी, फिर छूट जाना, दुबारा हडताली-सघ के बीच जा पहुचना और कूच का नेतृत्व करना आदि बातो की तह मे पहुचने की हम कोशिश कर रहे थे। एक दिन बुधवार होने के कारण रात के नौ-दस बजे तक छापाखाने मे कामकाज चल रहा था कि मगनकाका के पास बापूजी का पत्र आया। उसका सार कुछ इस प्रकार था

"आज यहा पर मुकदमा चला। छूटने के लिए काफी गुजाइश थी। परन्तु सत्याग्रही इस तरह कैसे छूट सकता है ? अपने बचाव मे मैने एक शब्द भी नही कहा। सारा आरोप अपने ऊपर ओढ लिया है। यहा के व्यापारी जमानत पर छुडाने के लिए और पैसे भर देने के लिए व्याकुल हो रहे है। जमानत पर निश्चित समय के लिए छूटा जा सकता था, परन्तु ऐसा करना आवश्यक नही है। मै जेल से बाहर रहूगा तभी हमारी लडाई ठीक तरह से

चलेगी, यह मानना अभिमान है। इसमे ईश्वर का हाथ है। वह मव कुछ ठीक तरह से पार उतारेगा।"

इसके वाद जेलसे उनका दूसरा पत्र आया। वह इस प्रकार है '

१९१३
जेल मे, मगल

चि० मगनलाल,

नौ महीने की सज़ा हुई है। दूमरी दो जगहो में छ-छ महीने की और मिल जाय तो २१ महीने की होगी और मैं सबसे अधिक भाग्यशाली वन जाऊगा। वेश वदले विना ही जेल मिल सकी, यह एक झझट से वचना ही हुआ। हडताल के आरम्भ के वाद आज प्रथम वार मुझे फुरमत मिली है।

जेल हमारे लिए सहल वात वन गई है। फिर भी अव जेल जाने से मुझे सकोच नही करना चाहिए, ऐमा मुझे प्रतीत हुआ। आज के मुकदमे मे कानून को युक्ति-प्रत्युक्तियो से भरपूर अवकाश था। किंतु उसका लाभ कैसे लिया जाय ? वह तो मोह होता ! मै वाहर रहूगा तो अधिक काम कर सकूगा यह अभिमान उसमे होता। इसलिए मै चुप्त रहा।"

इस पत्र के आने के दो-चार दिन वाद पता चला कि वालक्रस्ट की जेल मे वापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनवैक तीनो पर एक साथ मुकदमा चलाया गया है और तीनो को तीन-तीन महीने की कैद सुना दी गई है। इसके वाद पूरा सप्ताह भी नही वीता होगा कि वापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनवैक वालक्रस्ट की जेल से कही दूमरी जगह ले जाये गए। हम लोगो को पता नही चला कि उन्हे कहा ले जाया गया है। हमारा खयाल था ही कि तीनो को सरकार साथ मे नही रखेगी, इमलिए जहा-जहा उनके होने की सम्भावना थी वहा के व्यापारियो को तार देकर मगनकाका ने ममाचार मगाए, परन्तु नेटाल और ट्रान्मवाल की किसी भी जेल मे वापूजी के वहा नही पहुचने के समाचार से अधिक जानकारी हमे नही मिली। चार-छ दिन वाद समाचार मिला कि वापूजी को सुदूर आरेंज फ्रीस्टेट की राजधानी व्लुमफोटीन की जेल मे रखा गया है और श्री कैलनवैक तथा श्री पोलक को क्रमश प्रिटोरिया व डिप्लुफ की जेलो मे रखा गया है।

वापूजी के जेल जीवन के वारे मे पता चला कि उनको पू० कस्तूरवा की तरह फल देने मे सरकार ने सताया नही। कैद भी सादी है। उनको एक दर्जन केले, चार टमाटर, दो चम्मच ओलिव आइल और मूगफली दी जा रही है। उनकी दुर्वलता को देखकर जेल के डाक्टर ने उन्हे दूध-मक्खन लेने के लिए वहुत कहा, पर उन्होने वह नही माना। डाक्टर के आग्रह

के वश वह अब बादाम व अखरोट ले रहे है। उनको वहा पर हर तरह से आराम है। पढने के लिए पुस्तके मिलती है और उन्होने पुस्तकें मगवाई भी है। साथ-साथ सादी कैद होने पर भी जेल वालो से उन्होने काम मागा है।

बापूजी के जेल जाने पर सब लोगो को एक प्रकार से सतोष हुआ। परन्तु हमको, जो बच्चे थे, इस विचार से बडी ग्लानि होने लगी कि हमे एक वर्ष तक उनके दर्शन नही हो सकेंगे। माता-पिता आदि की तीन महीने की सजा ही हमारी बालदृष्टि में बहुत बडी मियाद थी, फिर यह पूरा वर्ष कैसे गुजरेगा इसकी कल्पना स्वभावत ही हमारे लिए बडी दुखदायी हुई।

: ५७ :

गांधीराजा के नाम पर....

बापूजी की गिरफ्तारी और कडी सजा के बाद स्मट्स-सरकार ने सोचा होगा कि भारतीयो का सत्याग्रह-आन्दोलन ठडा पड जायगा। परन्तु सरकार की मन्शा पूरी नही हुई। उसके लिए तो यही मिसाल सही साबित हुई कि 'मर्ज़ बढता गया ज्यो-ज्यो दवा की।' जब गाधीजी, पोलक व कैलनबैक की त्रिपुटी जेल मे पहुची तोफिनिक्स मे समाचारो का ताता बध गया। 'फला स्टेशन से ६०० आदमियो को ट्रेन मे भरकर वाल-क्रस्ट ले जाया गया है', 'इतने सौ व्यक्तियो को जेल दी गई है', 'ट्रेन भर कर हडतालियो को खानो मे लौटा लाया गया है', 'खानो को ही जेल बना दिया गया है' 'खानो के चारो ओर पुलिस का घेरा डाल दिया गया है', 'जेल में कपडे की कमी पड गई है', 'गिरजाघरो में भी कैदियो को भर दिया गया है', इत्यादि समाचार हमे उठते-बैठते सतत मिलने लगे। मानो हम प्रत्यक्ष रणक्षेत्र के मोर्चे पर ही हो।

गिरमिट मजदूरो के पराक्रम सुन-सुनकर हमारे जैसे छोटे बच्चो का मन भी वीरता से भर जाता था। कोयले की खान के मालिको का गुस्सा दिन-दिन बढता जा रहा था। जब समझाकर, मनाकर और धमकाकर वे मजदूरो को दुबारा काम पर नही बुला पाए तब उन लोगो ने छाट-छाटकर तगडे मजदूरो पर चमडे के कोडो की मार शुरू कर दी। हमने सुना कि कोडो की मार से पीठ की सारी चमडी उधड जाने पर भी हमारे भारतीय वीरो ने काम पर जाना स्वीकार नही किया। तब और भी आग-बबूला होकर उन गोरे प्रभुओ ने उन वीर-मजदूरो की स्त्रियो के भी कोडे लगाए।

अगुवाओ को कोठरियो में अलग-अलग बन्द करके ताले लगा दिये गए। परन्तु इस आतक से वे मजदूर जरा भी दवे नही, वल्कि हडताल की आग जहा नही पहुची थी उन खानो मे भी पहुच गई। सुबह से शाम दुगने और शाम से सुवह चौगुने मजदूर हडताल में शामिल होने लगे।

खान के मालिको के दिमाग का पारा अव वहुत ऊचा चढ गया। जव खानो की गहराई मे पानी को फेकते रहने वाले पपो को चलाने का काम बन्द हो जाने की नौवत पहुची तव तो उनकी वेचैनी का कोई ठिकाना ही न रहा। भारतीय मजदूरो की जगह उन्होने नेटाल प्रान्त के आदिवासी जूलुओ को पप चलाने के काम पर लगाया। यद्यपि शरीर मे जूलू लोग भारतीयो के मुकावले ड्योटे-दुगने तगडे होते है, उनके हाथ पैर के स्नायु शेर के स्नायु जैसे सुगठित दीखते है, फिर भी वे सतत परिश्रम करने मे भारतीय मजदूरो का मुकावला नही कर पाते थे। थोडी ही देर मे वे थक जाते। देर तक एक काम पर जुटे रहने की उनकी आदत ही नही होती। अधिक मजदूरी देने पर भी शाम मे पहले वे उस काम को छोड जाते थे। इस प्रकार भारतीय मजदूरो के बिना कोयले की खानो मे हानि वढती गई। तव गोरे मालिक क्रोधाध होकर हडतालियो पर और भी सितम ढाने लगे। परन्तु ज्यो-ज्यो उनका कहर वढता गया त्यो-त्यो हडताल का दावानल भी अधिकाधिक दूर तक फैलता गया। यहा तक कि चार्ल्सटाउन व न्यूकेसल के आस-पास की वह हडताल पचासो मील आगे वढती हुई हमारे फीनिक्स की चौहद्दी पर आ पहुची। और इस तरह हम लोगो को, यानी फीनिक्स के नावालिगो को, सत्याग्रह के उस अपूर्व युद्ध-मोर्चे पर उपस्थित होने का जो सौभाग्य प्राप्त नही हो रहा था, वह प्राप्त हो गया। हम मोर्चे पर नही जा पाये तो वह मोर्चा खुद हमारे आगन मे ही आ गया।

फीनिक्स के चारो ओर चीनी की वहुत-सी मिले थी। उनके गिरमिटिए मजदूर अपने-आप हडताल मे शामिल हुए। विना किसी के कहे-सुने, विना किसी के निमन्त्रण के फीनिक्स में आसरा लेने आ गए। गाधी-वावा का वहा घर था इतना उनको मालूम था। पाच-पन्द्रह आदमियो की आवादी वाले हमारे फीनिक्स आश्रम मे अव हजारो आदमियो की रौनक हो गई। सुवह से शाम तक नये-नये दल आते ही गए। पूछने पर वे कहते थे "हमारे राजा को सरकार ने कैद किया है, उसकी रानी और वच्चो को भी कैद किया है, तो फिर हम क्यो काम करें ?"

उन भोले लोगो को 'नेता', 'अगुआ' आदि शब्दो का भी ज्ञान नही था। उन्होने वापूजी को, जो उनके सुख-दुख के साथी थे, 'राजा' की सज्ञा दे दी थी।

भारत के प्राचीन इतिहास मे जहा कही भी शस्त्रयुद्ध की कहानी पढने को मिलती है, बहुधा यह विवरण मिलता है कि ज्यो ही राजा कैद कर लिया जाता था या वह घायल हो जाता था तो उसके दल के सैनिको मे तत्काल भगदड मच जाया करती थी और विरोधी पक्ष अकस्मात विजयी हो बैठता था। यह प्राचीन परम्परा दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह सघर्ष मे जड-मूल से बदल गई। गिरमिटिया मजदूरो मे न तो कोई तालीम पाये हुए सैनिक थे, न जन्मजात क्षत्रिय, अधिकतर लोग शूद्र थे। उन्हे हम छोटे बच्चे भी गया-गुजरा समझते थे। हब्शी पडोसियो से जान-पहचान करने मे हमे आनन्द आता था, परन्तु गन्ने के खेतो मे गोरे मालिको की मजदूरी मे अपमानित होकर दिन-रात जुटे रहनेवाले अपने भाइयो को देखकर हल मे जुते हुए बैलो के प्रति होनेवाला भाव हमारे मन मे पैदा होता था।

ऐसे दीन और श्रीहीन गिरमिटियो मे, बापूजी के अहिंसामय सत्याग्रह आन्दोलन ने बिजली की-सी शक्ति पैदा कर दी थी। बडे बडे सुसस्कारी और पढे-लिखे शिष्टजनो को मात कर देने वाले महान सदगुण और पराक्रम की झलक उन गिरमिटिया मजदूरो ने बताई। नेटाल मे प्राय पौन लाख भारतीय मजदूर गोरो की गुलामी मे थे। अमरीका के हब्शी गुलामो और दक्षिण अफ्रीका के इन भारतीय अर्धगुलामो के दुख-दैन्य की कहानी करीब एक-सी ही अकथनीय थी।

न्यूकेसल के कोयले के क्षेत्र मे, जो अधिक विस्तृत नही था, श्रीमती थम्बी नायडू की टोली ने हडताल की आग फैलाने मे तेल छिडकने तथा दियासलाई देने का काम किया था। परन्तु फीनिक्स के आस-पास गन्ने के खेतिहर मजदूरो मे हडताल का प्रचार करने के लिए शायद ही कोई गया हो। वहा प्रचार करना आसान भी नही था। डरबन से उत्तर मे पचास मील से भी अधिक दूरी तक गन्ने की खेती के क्षेत्र फैले हुए थे। चीनी की मिलो के माउटेजकम्ब, वेरुलम, टोंगाट, स्टेंगर, अमजीन्टो आदि बडे केन्द्र फीनिक्स आश्रम से दस, बीस और पचास मील तक दूर थे। वहा के गिरमिट मजदूरो को बापूजी के सपर्क मे आने का प्रसग कभी आया ही नही था। तब बापूजी महात्मा नही बने थे, न 'गाधी' शब्द मे तब कोई जादू ही समाया था।

इस पर भी अज्ञान के दलदल मे फसे हुए इन हतभागे भारतीयो के अन्तर मे न्याय को प्राप्त करने और अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए ज्वाला भडक उठी। बापूजी के विशुद्धतम और अति उग्र तप का यह परिणाम था, भारतीय महिलाओ के अहिंसक आक्रमण का यह सुफल था और निष्ठावान सत्याग्रहियो के 'मर जायगे पर झुकेंगे नही,' इस अटल सकल्प

का यह परिणाम था।

नेटाल प्रान्त का शायद ही कोई कोना ऐसा बचा होगा जहा पर भारतीय गिरमिटिए गोरे मालिको की नौकरी मे बाधे गये हो और वहा पर हडताल की आग न पहुची हो । आश्चर्य की बात यह थी कि बापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनबैक जैसे प्रभावशाली नेता ही नही, छोटे-मोटे प्राय सभी प्रचारक कारागार के गहन गह्वर मे छिपा दिये गए थे। बाहर की प्रवृत्ति मे जेल मे बैठे हुए नेताओ का सपर्क पूरा-पूरा कटा हुआ था। न कोई प्रचारक थे, न भाषण प्रवीण दूत थे, न दैनिक पत्रिकाओ की बाढ थी, न किसी प्रकार के गुप्त व साकेतिक सदेशो का सिलसिला था। रेल, मोटर, तार-टेलीफोन, घोडे-साइकिल से या पैदल ही रोज-रोज के कार्यक्रम को स्थल-स्थल पर पहुचाने का आयोजन या प्रयास भी नही किया गया था। उन अबूझ लोगो की आत्मा अपने-आप जग उठी थी और कष्ट-ही-कष्ट भुगतने वाले इस सघर्ष मे वे लोग स्वय प्रेरित होकर अपने-आप कूद पडे थे। प्रति दिन दक्षिण अफ्रीका की सरकार के विरुद्ध वह अहिंसक आक्रमण दुगने मे चौगुना होता चला जा रहा था। मानो किसी दैवी शक्ति द्वारा उन सहस्रो श्रमिको का सचालन, सगठन और सर्वार्पण कराया जा रहा हो! बापूजी ने अपने हृदय मे जिस पुनीत ज्योति को जगाया था वह गूढ तरीके से अपने देश-भाइयो की अन्तर्ज्योति को, 'दीप-से-दीप' के न्याय से जगा रही थी।

रावजीभाई को, जो सोलह सत्याग्रहियो की प्रथम टोली मे गिरफ्तार होकर उस समय जेल मे थे, नेटाल के उन परगनो का अधिक परिचय था, जहा चीनी की मिले और गन्ने की खेती करानेवाले गोरे जमीदारो की कोठिया थी। जेल से छूटने के बाद उन्होने वहा के अपने परिचित मित्रो से उन हडतालियो की वीरता और सस्कारिता की कहानिया सुनी थी। उसका वर्णन उन्होने अपनी पुस्तक "गाधीजी की साधना" मे इस प्रकार किया है

"गाधीजी को ऐसी एकान्त जेल मे बन्द किया गया था कि उनके विचारो का सक्रामक रोग भूलकर भी अन्य भारतीयो तक न पहुच जाय। इस बार सरकार ने अपनी ओर से पूरी खबरदारी से काम लिया था। परन्तु उनकी गिरफ्तारी के बाद जिन्होने गाधीजी का नाम तक सुना न होगा या वे कैसे आदमी है इसकी झाकी तक न देखी होगी उन हजारो भारतीय गिरमिटियो के हृदय उमड पडे, जो अज्ञान थे, एक प्रकार के जगली वातावरण में ही पडे हुए थे। उन्होने हडताल कर दी। और वही पर वे रुके नही, कुछ कोठियो से दो-दो सौ मजदूरो के यूथ हडताल करके

सीधे अपने परगने के हाकिम की कचहरी मे पहुचे। वहा पुलिस और मैजिस्ट्रेट के सामने उन्होने ऐलान किया 'हमे सजा दो, हम लोगो को जेल भेज दो, हमने गिरमिट का कानून तोडा है, गिरमिटये मजदूर होते हुए हम लोगो ने हडताल की है और अपने-अपने मालिक की आज्ञा के विना ही भाग कर हम यहा आये है। हम पर मुकदमा चलाओ और हमे जेल भेज दो।'

"उनकी यह निर्भय पुकारे सुन-सुनकर पुलिस हाथ मे कोडे लेकर उनको डराने-धमकाने लगी। मैजिस्ट्रेट कहता, 'भाई! तुम लोगो ने कोई कसूर नही किया, लौट जाओ अपने काम पर।' तव वे भोले गिरमिटिये मैजिस्ट्रेट से पूछते थे 'हमारे गाधीराजा ने और उनकी रानी ने तथा उनके कुअरो ने क्या कसूर किया था? हमे भी उनके साथ जेल भेज दो। या उनको छोड दो।' अन्त मे मैजिस्ट्रेट कहता, 'चलो, तुम लोगो को आठ दिन की कैद दे दी गई।' गिरमिटिये पुकारते, 'नही, तीन-तीन महीने की कैद से कम नही लेंगे।' तव हार मानकर मैजिस्ट्रेट उनको एक महीने की सजा दे देता और सवके नाम लिखकर उन लोगो को पुलिस के हवाले कर देता।

"ये लोग जेलो के फाटक मे प्रवेश करते समय 'गाधी राजाकी जय!' और 'वन्देमातरम' के नारे लगाते और सारी जेल मे वे नारे गूज उठते थे।

"दूसरी ओर जो छुट-पुट मजदूर भिन्न-भिन्न गोरो की दुकानो मे—कपनियो मे—नौकरी करते थे उनमे से भी प्रत्येक ने काम छोडने का सिलसिला अपनाया। ये तो अपना स्वतन्त्र जीवन विताने मे समर्थ थे परन्तु गिरमिटिय मजदूर विलकुल लाचार थे। डरवन के चारो ओर पचास-साठ मील के क्षेत्र मे हडताल फैल चुकी थी। उनकी सेवा और सहायता के लिए, उनको अनाज पहुचाने के लिए, डरवन के व्यापारियो ने अपनी दूकानो से व्यवस्था की। भूख का कष्ट किसीको उठाना न पडे ऐसी कोशिश उन वहादुरो ने की।

"उन मजदूरो को मार्ग दर्शन कराने वाला कोई समर्थ या नामी, नायक नही था, फिर भी सत्याग्रह के नियमो पर वे लोग समझवूझ कर कायम रहे। डरवन शहर मे उन घरो पर शान्त धरने वैठाये गए, जहा भारतीय मजदूर काम पर थे। साथ-साथ स्वय मजदूरो ने ही यह आदेश अपने मजदूर भाइयो को दिया कि जो लोग अस्पतालो मे और म्युनिसिपैलिटी के स्वच्छता-विभाग मे हो, वे काम न छोडे। अर्थात् उस निरकुश हडताल मे भी नैतिक नियमन कायम रहा।

"सरकार से यह सहन नही हो सकता था। उसने अपना पूरा वल लगा दिया। हडताली लोग अशाति और ऊधम मचावे ऐसे सुयोजित प्रयत्न सरकार की ओर से किये गए। हडताली लोग दगा-फिसाद पर उतारू हो कि फौरन

ही उन पर गोली आदि की बौछारे करके हजारो को मटियामेट कर देने की बाकायदा व्यवस्था की गई। परन्तु सरकारी अफसरो की मुराद पूरी न हुई। भारतीयो ने शाति-व्रत का पूरा-पूरा पालन किया। फिर भी 'पत्थर फेंके गए' का बहाना बनाकर पुलिस ने छुट-पुट गोलिया चला ही दी और चार निर्दोष गरीबो की हत्या कर डाली।"

अशिक्षित, व्यसनी, अज्ञानी और चरित्रहीन माने जानेवाले उन भारतीय मजदूरो ने क्या-क्या सहन किया, इसकी कल्पना उस एक प्रसग से मिलेगी जिसकी आखो देखी बात एक सुप्रतिष्ठित अफ्रीकी मूल-निवासी, पढे-लिखे सज्जन श्री जान डुबे ने मि० पियर्सन और श्री रावजी-भाई को सुनाई थी

"मै भारतीय मजदूरो को जगली मानता था और उन्हे घृणा से देखता था। पर अब प्रत्येक भारतीय के प्रति मेरे दिल मे बडा आदर-भाव पैदा हो गया है। हम हब्शी लोगो मे भारतीयो की वह दिव्य शक्ति नही है। अपनी आखो से जो मैने देखा, उससे चकित रह गया हू। सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। एक दिन मै डरबन से आ रहा था। फीनिक्स स्टेशन पर उतर कर अपने यहा जा रहा था। कुछ दूर जाने पर रास्ते के एक छोटे से मैदान मे प्राय पाच सौ भारतीय जमा होकर बैठे थे। अपनी कोठी मे हडताल करके वे वहा पर आये थे। गोरा मैनेजर, उसके आदमी और गोरी पुलिस उनके चारो ओर घेरा डालकर खडी थी। मै आधे घटे तक यह देखने के लिए वहा रुका रहा कि क्या अन्जाम होता है। बैठे हुए भारतीयो की पीठ पर कोडो की मार पडने लगी। गोरे लोग बेत और लाठी से उन्हे पीटते जाते थे और चीखते जाते थे, 'चलो उठो, काम करो, काम पर चलते हो या नही ?' लेकिन कोई उठा नही। किसी भारतीय ने अगुली तक नही उठाई और ठडे दिमाग से जवाब देते रहे, 'जबतक गाधीराजा जेल मे है तबतक हम काम करने वाले नही है।'

"जब कोडो और लाठियो की मार से मामला सुलझा नही तब बन्दूक के कुन्दो का प्रयोग शुरू हुआ। पुरुषो के साथ-साथ स्त्रियो और बच्चो पर भी चोटे पडने लगी। कुछ तो 'हाय-हाय' करके रो पडते थे, किन्तु अपनी जगह से हटते नही थे। अन्त मे घुडसवार आये और उन पर घोडे दौडाये गए। कुछ आदमियो के पैर और पीठ के ऊपर घोडो की टापे पडी। उनकी चमडी छिल गई। घोडो की लातो की चोट भी पडी। लेकिन वे लोग वहा से हटे नही।

"इस बीच एक मुकादम को पकड करके वहा लाया गया। वह इन लोगो

का अगुवा माना जाता था। उसने तो और भी साहस के साथ गोरो को उत्तर दिया। उस निर्भीक उत्तर के इनाम के रूप मे उस पर बेहद जुल्म किया गया। इस अत्याचार को देखकर मेरे रोगटे खडे हो गए। मारपीट से भी जब वह मुकादम झुका नही तब पुलिस अफसर ने हब्शी पुलिस से डपटकर कहा, 'देखते क्या हो? बेध डालो इसे अपने भाले से, इसी बदमाश का यह सब षड्यत्र है।' उस हब्शी पुलिस ने तत्काल आज्ञा का पालन किया और मजदूरो के उस नेता को भाले मे बेध डाला। इस घटना से भारतीयो मे जोश आ गया। इस बहाने गोली चलाकर और भी दो को भून डाला गया। वह नेता तो स्वर्ग पहुच गया, दूसरे आहत हुए, फिर भी भारतीय लोग ज्यो-के-त्यो वही बैठे रहे। उनमे से एक भी भागा नही, हटा नही।"

अपनी कथा समाप्त करते हुए श्री डूबे ने कहा "मै गोरे लोगो की इस क्रूरता से कापता हुआ और भारतीय भीड की सहनशीलता और दृढता से आश्चर्य-चकित होता हुआ घर लौट आया।"

: ५८ :

तपोधन मगनकाका

गोस्वामी तुलसीदास ने पार्वती के तप का मार्मिक वर्णन करते हुए रामायण मे लिखा है, 'बिसरि देह तपहि मनु लागा'। कुछ इसी प्रकार का तप बापूजी के जेल जाने के बाद मगनकाका फीनिक्स मे रहकर करते रहे।

जो लोग कारागृह मे डाल दिये गए थे वे सत्याग्रह सग्राम के सचालन के प्रत्यक्ष बोझ से निवृत्त हो गए थे। किन्तु जो बाहर रह कर उस भारी भार का वहन कर रहे थे उनमे मगनकाका, कुमारी श्लेशिन और श्री वेस्ट के नाम अग्रगण्य थे। बापूजी के सत्याग्रह के तरीके को समझने की अदम्य शक्ति के स्रोत को जानने के लिए मगनकाका के काम तथा तप का परिचय देना आवश्यक है।

जैसा कष्टमय जीवन मगनकाका घर मे रह कर फीनिक्स मे बिता रहे थे उसकी तुलना मे कारागार के कष्ट अल्प ही कहे जायगे। सबसे बडी बात यह थी कि उस समय फीनिक्स मे वह अकेले भारतीय थे, जिनको सत्याग्रह-युद्ध की गतिविधि पर स्वय मनन-चिंतन करके ध्येय-पूर्ति के लिए सत्य और अहिंसामय सघर्ष पर प्रेरणात्मक विचार 'इडियन ओपीनियन' पत्र मे प्रति सप्ताह प्रकाशित करने पडते थे। भारतीयो के भीषण अपमान

और उत्पीड़न की गाथाएं नेटाल-ट्रान्सवाल के हर क्षेत्र से दिन-रात आया करती थी। उन आघातों को पीकर उन्हें दक्षिण अफ्रीका के भारतीय भाइयों में शान्ति और धैर्य कायम रखना था। इस भारी संपादकीय काम के साथ-साथ साप्ताहिक का मुद्रण और प्रकाशन तथा हम सब बच्चों का संगोपन और शिक्षण आदि मे उनका सारा समय भरा हुआ था। अब उन पर हड़तालियों के स्वागत का काम और आ गया। शरीर से मगनकाका मजबूत और गठे हुए बदन के थे। लेकिन काम के बोझ से उनकी देह सूखती गई। उस समय यह अनुमान नहीं था कि यह भारी संघर्ष कब तक चलाना पड़ेगा, परन्तु तीन महीने बाद जब समझौता हुआ और सब जेलवासी फीनिक्स में आ गए तब बा-बापू की तरह ही, शायद उनसे कुछ अधिक, मगनकाका दुर्बल हो गए थे। उनका शरीर आधा भी नही रह गया था। लेकिन तपोमय जीवन के कारण उनके स्वभाव की उग्रता धुल-सी गई थी और उनमें शान्ति तथा प्रसन्नता का बड़ा विकास हुआ था।

मगनकाका की दिनचर्या उस समय एक पक्के तपस्वी की दिनचर्या थी। ब्राह्म-मुहूर्त्त मे पूर्व रात में दो या ढाई बजे उठकर वह 'इंडियन ओपीनियन' के लिए लिखने बैठ जाते थे। अरुणोदय होने तक उनके बिस्तर पर उनके लिखने के कागजों का ढेर लग जाता था। लिखने मे काटछांट मुश्किल से कही नजर आती थी और उनका प्रत्येक अक्षर एक-सा सुन्दर व छपा हुआ-सा प्रतीत होता था। आठ-साढे-आठ बजने से पहले ही दतौन आदि से निबट कर जलपान किये बिना वह छापाखाना मे पहुच जाते थे। फीनिक्स में प्रातःकाल जलपान करने का चलन था, परन्तु इस अवधि मे मगनकाका ने जलपान का त्याग कर रखा था। ब्राह्म-मुहूर्त्त मे उठने पर भी चित्त की एकाग्रता मे विक्षेप न हो इस हेतु से लिखने की समाप्ति तक वह कुल्ला-दतौन भी नही करते थे। छापाखाना मे कम्पोज करना, प्रूफ पढ़कर सुधारना, डाक के ढेर का निपटारा करना इत्यादि कामों की सदैव भरमार रहती थी। मध्यान्ह में मुश्किल से हम लोगों के साथ भोजन के लिए वह पौन घंटा निकाल पाते थे। इसके सिवा सन्ध्या के समय एक घंटा बागीचे में खुदाई करने के लिए प्रेस से बाहर आते थे। फिर रात को प्रायः नौ बजे तक छापाखाना का काम करके घर लौटते थे। सोने से पहले प्रायः घंटा भर तक लिखने का काम करते थे।

जो काम बालकों के जिम्मे किये गए थे उनमें बार-बार मगनकाका के पास पूछने और मार्गदर्शन के लिए हमें जाना पड़ता था। एक-न-एक बालक हर आध-पौन घंटे बाद अपनी समस्या लेकर उनके पास पहुच जाता

था। स्वभाव के बडे उग्र होने पर भी वह प्रत्येक बालक को प्रत्येक बार शान्ति-पूर्वक ही नही उत्साहपूर्वक उत्तर देते थे और बारीक-से-बारीक बात समझाने से चूकते नही थे। यदि कभी नियत समय पर नियत स्थान मे वह नजर नही आते थे, कुछ विशेष कारण होगा ऐसा समझकर, मैं उनकी तलाश में निकल पडता था। एक-दो बार मध्यान्ह मे दो-तीन बजे के समय जब मै उनको खोजने के लिए गया तो छापाखाना के सामने ऊची, हरी दूब पर उनको लेट लगाते हुए मैंने पाया था। मेरे पहुचते ही वह उठ बैठे थे और स्नेहवत्सल स्वर मे पूछते थे "क्या काम है?" फिर स्वय ही बताते थे, छापाखाना मे काम करते-करते आखे भारी हो गई, बदन काम नही दे रहा था तब मैंने यहा आकर दस-पन्द्रह मिनट लेट लगा ली। बिस्तर पर सोने की अपेक्षा खुली जमीन पर लेटने से बडा लाभ होता है। यह मिट्टी हमारे शरीर की थकावट को बहुत जल्दी चूस लेती है। सचमुच धरती माता का हम पर अगाध उपकार है। केवल दस मिनट लेट लगाने से शरीर मे ताजगी आ जाती है।" सक्षेप मे काम के बोझ को पूरा करने के लिए अल्पाहार, फलाहार और अत्यल्प निद्रा की साधना मे मगनकाका ने अपने को बडी कडाई से बाध रखा था।

अपनी काया से कठोरतापूर्वक काम लेने के साथ-साथ अपने चित्त को उत्तेजित और क्रोधित न होने देने के लिए भी वह अत्यधिक सावधान रहते थे, इस बात का नीचे के प्रसग मे पता चलेगा।

साधारणतया फीनिक्स का जलवायु आरोग्यदायी और श्रेष्ठ था। वहा पर बीमारी का दर्शन क्वचित ही होता था। परन्तु मानो, मगनकाका की कसौटी के लिए ही उन दिनो शीत-ज्वर ने वहा अपना प्रताप दिखाया। दस बालकों मे से पाच-छ बालक शीत-ज्वर के शिकजे मे जकड गए। और अन्त मे खुद मगनकाका को भी मलेरिया ने बिस्तर पर पटक दिया। कुनीन या अन्य चूर्ण आदि का प्रयोग बापूजी ने फीनिक्स मे निषिद्ध कर रखा था। हर बीमारी का मुकाबला प्राकृतिक चिकित्सा से ही किया जाता था। यह चिकित्सा वैसे बहुत अच्छी है, परन्तु उसमे रोगी की सेवा करने मे बहुत श्रम उठाना पडता है और चिकित्सक को इस विधि मे अपना बहुत समय देना पडता है। काम का भारी बोझ होते हुए भी मगनकाका ने प्रत्येक रोगी बालक के लिए समय दिया और बिना प्रमाद के पूरी शुश्रूषा की।

प्रथम तो रोगी के आहार मे आवश्यक परिवर्तन किया, फिर जिनको बुखार आया था उनको दिन मे दो-तीन बार वाष्प-स्नान कराया। वाष्प-

स्नान के लिए पानी खौलाना, रोगी को भाप देना, उसके कपडे बदल देना और विधिवत सुला देना ये सभी काम विना थके करते। रोगी बालक को जेल मे गई हुई माता का स्मरण दुखी न करे, इस वत्सलता से मगनकाका उन पर अपना प्रेम बरसाते थे। लेकिन जब वह स्वय पीडित हुए तब उन्होने हम लोगो से कम-से-कम सेवा ली।

एक दिन ज्वर कुछ कम हो जाने पर मगनकाका विस्तर से उठकर प्रेस में काम करने चले गए थे। वहा पर उनका शरीर ढीला पड गया और ज्वर का आक्रमण फिर से होने की आशका पैदा हुई। इससे बचने के लिए उन्होने भाप-स्नान करना चाहा और मुझसे कहा, "घर जाकर चूल्हा जला दो और उस पर पानी चढा दो, तब तक मै आता हू फिर भाप ले लूगा।" परन्तु मै घर आकर उस कर्त्तव्य को भूल गया और घर आकर खेल मे लग गया। मै काम मे काफी धीमा हू इस बात का हिसाब लगाकर मगनकाका करीब डेढ घटे बाद प्रेस से आये। पर घर मे आने पर उन्होने मुझे खिडकी मे मस्ती से बैठा हुआ और खेल करता हुआ पाया। मैने पानी गरम करने की कोई तैयारी नही की थी। मगनकाका ने आकर चुपके से मेरे कन्धे पर अपने कमजोर हाथ रखे तो मै सकपका गया। लगा कि अभी एक थप्पड मुह पर पड जायगा। परन्तु उन्होने तो मेरे सिर पर अपना वत्सल हाथ फेरा और मधुरता से बोले "अभी तक तूने चूल्हा भी नही जलाया? चल, अब और देर मत कर। आ मै तुझे जल्दी से चूल्हा जलाना सिखाता हू।"

यह कह वह मुझे अपने साथ रसोई घर मे ले गए। चूल्हा सुलगाया, चटपट पानी गरम किया और मुझसे छोटी-मोटी सहायता लेकर वाष्प-स्नान करके सो गए। उस दिन की क्षमा का मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पडा कि मगनकाका का इशारा भी मुझे महान आज्ञा के रूप मे प्रतीत होने लगा।

अहिंसा की उपासना मे मगनकाका कितना आगे बढते जाते थे उसका एक दूसरा प्रसग यहा देना अनुचित न होगा।

एक बार कृष्णपक्ष की अधेरी रात मे लगभग दस बजे जब सब बालक सो रहे थे मै शौच-निवृत्ति के लिए अपने बागीचे के शौचालय मे गया। जब लौटकर आया तो घर के दरवाजे पर मैने एक सुन्दर चित्तीदार तीन पहलूवाली अजीब लकडी पडी देखी। आश्चर्यचकित होने पर मैने अपने हाथ की लालटेन का प्रकाश उसपर डाला और तत्काल समझ गया कि यह तो साप है। मैने कूदकर देहलीज पार कर ली और सीधा मगनकाका के पास पहुचा। वह अपने विस्तर पर बैठे लिख रहे थे। मैने उनको साप की सूचना दी। तीन-चार दिनो से उनके पैर मे एक भारी फोडा निकल आया था। इस

कारण उनको अपनी जगह पर बैठे ही रहना पडता था। फोडे पर मिट्टी की भारी पट्टी रखी हुई थी। साप की बात सुनकर वह लगडाते हुए उठे और देहलीज के पास आये। तब तक साप किवाड और चोखट के बीच की दरार से घर मे आधा घुस आया था। समय सूचकता से मगनकाका ने किवाड को दबाया और साप पकड मे आ गया। फिर उन्होने मुझसे साप को फासने की डोरी और लाठी मगाई, जो हम लोग सदैव तैयार रखते थे। लाठी लाकर मैने मगनकाका को दी। उन्होने मुझको वह किवाड मजबूती से दबाकर रखने के लिए कहा, जिसमे साप का आधा शरीर दबा हुआ था। फिर उन्होने चतुराई से लकडी और रस्सी के बीच साप की गरदन को पकड लिया। साप की जाति का परीक्षण करके उन्होने बताया कि यह अत्यन्त जहरीला है। तुमने इसे देख लिया यह हमारा सदभाग्य। यदि बालको के बिस्तर तक पहुच जाता तो बडी बुरी बात होती। ईश्वर ने ही सबकी रक्षा की है। इसके बाद किसी सग्रहालय या चिडिया-घर मे भी मैने वैसा साप दुबारा नही देखा।

उस समय उस साप को मगनकाका मार डाले, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय मेरी समझ मे नही आ रहा था। मुझमे वह बल या साहस नही था कि मै उस साप को उठाकर ले जाऊ। मगनकाका से चला नही जाता था। परन्तु उन्होने साप को मार डालने के बजाय स्वय दुख उठाना ही पसन्द किया। लालटेन लेकर आगे-आगे रास्ता दिखाने का उन्होने मुझे आदेश दिया और खुद उस बोझ को लेकर लगडाते हुए जगल की ओर चल पडे। फीनिक्स आश्रम की जमीन पार करने के बाद विलायती बबूलो के घने जगल मे पहुचने पर, सापो के रहने के लिए अनुकूल और मनुष्य के लिए कम खतरे वाली जगह देखकर, उन्होने साप को जमीन पर रखा और रस्सी का फदा ढीला करके उसे मुक्त कर दिया। धीरे-धीरे रेगता हुआ दो मिनट मे वह साप घनी घास मे चला गया। मगनकाका उसे तब तक एकटक देखते रहे, जब तक वह अदृश्य नही हो गया। मानो इतना भी कष्ट देने के लिए वह उससे मन-ही-मन क्षमा माग रहे थे। फिर अपने पैर के फोडे की पीडा को सहन करते हुए, लगडाते-लगडाते वह घर लौटे। मुझे ईश्वर की अगाध दया और महिमा के दो शब्द सुनाये और ढाढस देकर तथा निर्भय बनाकर सुला दिया। इसके बाद भी वह जागते रहे और लिखते रहे। सवेरे उठने के बाद ही देवदास-काका को और दूसरो को रात की साप की कहानी बताई गई।

यह सारी कहानी तब की है जब फीनिक्स खाली और सूना था। जब हड-ताल वाले गिरमिटिये मजदूरो की बाढ फीनिक्स मे आनी शुरू हुई तब मगनकाका के परिश्रम की पराकाष्ठा हो गई। एक-एक रात मे कभी छ

सौ तो कभी आठ सौ व्यक्ति आ पहुचते थे। जो दल आता था उसे दो शब्द आश्वासन और स्वागत के कहने होते थे और ठहरने-लेटने की जगह वतानी होती थी। दिन का समय हो तो उनके भोजन आदि का प्रवन्ध भी करा देना पडता था। रात मे एक दल को जगह देकर आध-पौन घटा की नीद ले उसने पहले ही नए हडतालियो के आ पहुचने पर उन्हे उठना पडता था। दिन भर के काम के वाद रात का यह काम वहुत ही थका देने वाला होता था। परन्तु मगनकाका एक दिन भी उत्तेजित नही हुए और और सभी काम पूर्णता मे निभाते रहे।

वापूजी ने जिस उच्च ध्येय से अहिसा के युद्ध का आरम्भ किया था उसी उच्च भूमिका तक उठकर मगनकाका ने उस युद्ध मे अपनेको खपा रखा था। यह सही वात है कि मगनकाका सत्याग्रह-युद्ध के अग्रणी या नेता नही थे। फिर भी कुशल और वहादुर योद्धा तो थे ही। उनकी यह विशेपता थी कि इतिहास लेखको की कलमसे अपनेको सर्वथा मुक्त रखने मे उन्होने सफलता पाई थी। मूक तप उनके जीवन का सूत्र था। तुलसी रामायण की जिम चौपाई का वह वारवार रटन करते थे उसे उन्होने अपने आचरण मे भी उतारा था। वह चौपाई थी

अति सुकुमार न तनु तप जोगू
पतिपथ सुमिरि तजेउ सव भोगू।

नित नव चरन उपज अनुरागा
विसरी देह तपहि मनु लागा॥

: ५९ :

वापू के वाल-स्वयंसेवक

अमंत्रमक्षर नास्ति नास्त्य मूल मनौषधम्।
अविद्य पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभ॥

"एक भी अक्षर ऐमा नही जो मत्र का काम न दे, कोई भी वनस्पति ऐसी नही जो औपधि के काम न आवे और ऐमा एक भी मनुप्य नही जो थोडा भी विद्यावान या जानकार न हो, कमी है सवको परख कर ठीक काम मे लगाने वाले की।"

वापूजी एक ऐसे विरल योजक थे जो हरेक मनुप्य की शक्ति को

परख लेते थे और उस शक्ति को ऊचे काम मे लगा देते थे। फिर वह पुरुप हो, स्त्री हो, वृद्ध हो या छोटा वालक ही क्यो न हो। प्रत्येक को भरसक काम मे लगाना और उसकी वुद्धि तथा कर्त्तव्य-भावना को वढाना वापूजी की शिक्षा-विधि का उद्देश्य था।

वच्चो से भी कितना अच्छा काम हो सकता है इसका उल्लेख वापूजी ने दक्षिण अफ्रीका के इतिहास की अपनी पुस्तक मे दिया है "अव फीनिक्स, न्यूकेसल की तरह वायव्य दिशा के हडतालियो का केन्द्र वन गया। सैकडो ने वहा पहुचकर सलाह और आश्रय लेना आरम्भ किया। इस वजह से सरकार की दृष्टि फीनिक्स की ओर गये विना कैसे रहती? आसपास रहने वाले गोरो की आख भी लाल हुई। फीनिक्स मे रहना अशत खतरनाक वन गया, लेकिन छोटे-छोटे वालक भी हिम्मत के साथ खतरे से भरे हुए कामो को करने लगे।"

दूसरी जगह 'इडियन ओपीनियन, मे वापूजी ने सन् १९१४ के एक विलेप लेख मे लिखा है

"फीनिक्स मे जो पीछे रह गए थे उनमे सोलह वर्ष से कम आयु वाले लडके भी थे। उन्होने और कार्यकर्ताओ ने जेल के वाहर होने पर भी जेल मे जाने वालो से अधिक करके दिखाया। उन लोगो ने दिन-रात का भेद मिटा दिया। अपने साथियो और वडो के छूटने तक के लिए उन्होने कठिन व्रत लिये। अलोने आहार पर गुजर की और खतरे वाले कामो को निर्भीक होकर किया। जव विक्टोरिया काउटी मे हडताल हुई, तव सैकडो गिर-मिटियो ने फीनिक्स मे आसरा लिया। उनका आतिथ्य करना एक महत् कार्य था। गिरमिटियो के सठो द्वारा हमला होने का डर होते हुए भी निर्भीकता से काम करते रहना दूसरा महत् कार्य था। पुलिस वहा पहुची, श्री वेस्ट को गिरफ्तार किया। औरो का पकडा जाना भी सभव था, इन सव वातो के लिए तैयारी रखी गई। पर एक आदमी भी फीनिक्स से हटा नही। मै ऊपर वता चुका हू कि इसमे केवल एक ही कुटुव अपवाद रूप था। फीनिक्स के कार्यकर्ताओने इस अवधि मे कौम की जो सेवा की है, उसका अनुमान भारतीय जनता लगा सके यह सभव नही है। वह गुप्त इतिहास अभी तक लिखा नही गया है। इसलिए उसका थोडा-सा अश मै यहा दे रहा हू। यह इस आशा से कि किसी दिन कोई जिज्ञासु अधिक वृत्तात प्राप्त करके फीनिक्स के कार्यकर्ताओ के काम का मूल्याकन कर सके। अधिक लिखने के लिए मुझे लालच हो रहा है, परन्तु फीनिक्स की वात को यहा पर छोडता हू।"

मैं बता चुका हू कि बापूजी आदि के जेल जाने पर मगनकाका के पास हम दस बालक रह गए थे। उनमे ग्यारह वर्ष की आयु का मैं और बारह की आयु के देवदासकाका को छोड कर सभी बालक बहुत छोटे थे।

मगनकाका और देवदासकाका छापाखाना के काम मे ही आकठ डूबे रहते थे। भोजन के लिए आते थे तब भी उनमे बाते छापाखाना की ही चलती रहती थी। उन दोनो को उठने से सोने तक छापाखाना के काम के कारण छोटे बच्चो के कामकाज पर ध्यान देने की बहुत कम फुरसत थी। फलत बच्चो की देखभाल करने और उनकी आवश्यकताए पूरी करने का उत्तरदायित्व मुझ पर था। ये बच्चे खेल-खेल मे जितना काम कर दे इनके अलावा नित्यकर्म को पूरा करना मेरा काम रहता था। बिस्तर समेटना, बुहारना और रसोई का छोटा-मोटा काम करना। यदि वे बच्चे उन कामो को पूरा करने मे मेरा हाथ न बटाते तो मै अकेला शायद ही उस काम को पूरा कर पाता।

काम करने से भी अधिक कठिन बात मेरे लिए यह थी कि मै अपने बाल-साथियो को पूरी तरह अकुश मे नही रख पाता था। भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले बच्चो पर शासन जमाने के लिए आवश्यक कौशल मुझमे नही था, जितना देवदासकाका में था। उनसे मुझे अनेक बार, रुठने-ऐंठने-वाले बच्चो से काम लेने मे सहायता मिलती थी।

हमारी इस नन्ही टोली मे सबसे नटखट बालक था छोटम। उसका गुणगान करते हम थकते नही थे। छ वर्ष की आयु होने पर भी गुजराती, हिन्दी, तमिल और अग्रेजी—इन चारो भाषाओ मे छोटम नि सकोच बातो की झडी लगा देता था। उसके सवाल-जवाब से बडे व्यक्ति को भी मात खानी पडती थी, साहसी इतना था कि मना करने पर भी जगल के अनजाने चित्र-विचित्र फलो को चख कर देखा करता था, कुत्ते पर सवारी किया करता था, ऊची घास मे घुसकर जमीन पर बैठे हुए पक्षी को चुपके से पकड लाता था। एक बार फीनिक्स स्टेशन पर वह गया। स्टेशन-मास्टर की गैर-जानकारी मे सिगनल भी गिरा दिया था। ऐसे महाशय से काम लेना आसान बात नही थी। पर जब मै उससे कह देता कि इतना काम अपने हिस्से का पूरा करने के बाद आपको खेलने-कूदने की इजाजत है तो वह अपना सारा वानरपन भूलकर एकाग्रता से काम पर जुट जाता था, और सबसे पहले काम पूरा करने की कोशिश करता था।

छोटम को यदि उत्तर ध्रुव माना जाय तो भैयन दक्षिण ध्रुव के समान था। अफीमची को भी मात कर दे, ऐसा आलसी! दोनो हाथो से

अपनी तोद पर की पतलून उसे हर समय पकडे रखनी पडती थी। बीच-बीच मे मक्खी आदि को मुह पर से हटाने के लिए एक हाथ मुश्किल से पतलून से ऊचा कर पाता था। उसको बुहारने आदि का काम देना बेकार था। उसे काम पर लगाये रहने के लिए प्राय घास खोदने का काम दिया जाता था। लेकिन अपनी नन्ही फावडी कधे से लगाकर अधिक समय वह अर्धोन्मीलित आख से समाविस्थ खडा रहता था।

आठ वर्ष का शान्ति मेरे और देवदासकाका के लिए सिरदर्द पदा करने वाला था। काम करने का सामर्थ्य उसमे था, पर था वह बडा जिद्दी। कभी-कभी बागीचे मे इधर-उधर निकल जाय तो घटो तक उसका पता न चले। नाश्ते के समय तक मुह भी न धोये और अपने बिस्तर के पास योही आध-पौन घटे तक खडा रहे। जब वह अडियल टट्टू की तरह अपने घुटनो को मिलाकर तिरछे पैर से खडा हो जाता, तब हमे उस पर बडा गुस्सा आता था। देवदासकाका और मै उसे पुचकार कर समझाया करते थे कि जिद्द छोड दो, लेकिन वह अपने नथुने फुलाकर हम लोगो को जोरो से डाट देता था, "तुम चौधरी क्यो बनते हो? हम हरगिज काम नही करेगे। जाओ, कह दो मगन-काका से। हमे किसी का डर नही। चलो, हमे नाश्ता भी नही चाहिये।"

जब इस मूर्ति से मै थक जाता तब देवदासकाका को सौप देता था। देवदासकाका भी उससे हार मानकर उसे मगनकाका के सामने खडा करते थे। अन्त मे मगनकाका भी उकता कर सुना देते थे, "तू जिद नही छोडेगा तो ये दोनो तुझे पीटेगे।" लेकिन वह इस धमकी मे आने वाला नही था।

धीरे-धीरे हम दोनो ने उसे पीटना शुरू किया। आरम्भ मे सकोच हुआ फिर मारने मे रस पैदा हुआ। जब तक उसके मुलायम गाल पर पाचो अगुली के निशान न उठते, और भी जोर से हम उसे तमाचा मारते थे। परिणाम यह हुआ कि उसकी जिद बढती चली और हमने भी मारने का अपना विज्ञान विकसित किया। तमाचे के बाद बेत और बेत के बाद हल्के तख्ते से गाल पर जोर का थप्पड लगाने का क्रूर आनन्द अनेक बार हमने लिया। फिर भी हमारे द्वारा मगनकाका के पास इस सफाई से सारी बात रखी जाती थी कि वर्णन सुनकर मगनकाका समझते थे कि बडी रहमदिली से ये लोग शान्ति को ठीक रास्ते पर लाने का प्रयत्न कर रहे है।

एक बार ऐसा हुआ कि शान्ति को मारते-मारते मेरी आख खुल गई और इसके बाद उसको मारने का मेरा स्वाद सूख गया। इतना ही नही सदा के लिए वह अनुभव मुझे याद रह गया कि मारने से कभी भी किसी के दिमाग मे कोई बात घुसाई नही जा सकती। शान्ति को मारने का आनन्द

लेने के लिए मशविरा करके मैंने और देवदासकाका ने एक योजना बनाई। उस दिन हमने उसको ऐसा काम सौंपा, जो उसे अन्यायपूर्ण प्रतीत हो। समूह मे काम करने के बदले बागीचे के एक कोने मे उसे जमीन खोदने का काम दिया गया। घटे भर के बाद देवदासकाका ने मुझसे कहा कि जाकर उसका काम देखो। शान्ति को जिद मे भर कर घुटने मे घुटना मिला कर स्थिर खडा हुआ पाया। उसके पास जाकर मैंने बुरी तरह उसे डाट दिया, फिर अपने दात पीसकर क्रोध से उसके दोनो कान ऐंठे और जमीन से उसे ऊचा उठा दिया। फिर भी उस बहादुर ने 'उफ' तक नही की। केवल अपनी बिल्ली की-सी आखो से मुझे घूरता रहा। मैंने समझा उसे काफी पीडा नही पहुची है, तब मैंने उसके कान को पकड नाखून से दबाया और जोर-जोर से पूछा, "बोल, जमीन खोदेगा या नही?" पर वह कुछ न बोला। तब मैंने तमाचो की झडी लगाई। काफी तमाचे लगाने के बाद मैंने सोचा, जाने दो। मैंने देवदासकाका के पास जाकर सारी कहानी सुनाई। मुझे याद नही है कि उस दिन देवदासकाका ने उसे और मारा या नही, परन्तु मेरा मोह मारने-पीटने से सदा के लिए जाता रहा, और मैंने निश्चय किया कि उसको प्रसन्न रखकर जितना काम मिले उसी से सतोष करू। ज्योही मारना पीटना बन्द किया उससे काम लेने में मुझे पूरी सफलता मिली, और किसी के पास उसकी शिकायत ले जाने की आवश्यकता नही रही। उसके पूर्व इतिहास की भी मुझे जानकारी थी। उसके पिता एक व्यापारी थे और बडी बेरहमी से उसे पीटा करते थे। इसलिए बचपन से ही वह जिद्दी बन गया था। पर छोटम, भैयन और शान्ति से नवीन का मसला कम नही था।

वह अधिक छोटा नही था। कामचोर भी नही था। लेकिन बडा नाजुक मिजाज, भोदू और जरा-जरा देर मे गुस्से मे भर कर रो देने वाला लडका था। कोने मे जाकर घटा-दो-घटा जी-भर रो लेने के बाद वह स्वय मुस्कराता हुआ हमारे काम मे सहयोग के लिए आ जाता था और अपने रोने की कहानी खुद ही सुनाने लगता था।

फीनिक्स के नन्हे स्वयसेवको मे उक्त चार के अतिरिक्त दो और थे, मेरा चचेरा भाई केशु और मेरा छोटा भाई कृष्ण। दोनो की आयु मे उतना भी अन्तर नही था जितना देवदासकाका की और मेरी आयु मे था। ये दोनो भाई आपस मे सहोदर से भी अधिक घनिष्ठ थे। किसी भी काम में यह जोडी अलग नही होती थी। आपस मे कभी रूठने-झगडते भी नही थे। दूसरो से झगडा हो जाता तो दोनो साथ ही रहते थे। चतुराई में भी दोनो एक-

दूसरे से बढ कर थे। केशु दस्तकारी के काम मे बहुत तेज था और हर काम को फुर्ती से कर डालता था। कृष्ण मे स्थिरता और आकलन शक्ति बहुत गहरी थी। केशु की प्रशसा उसके सफाईदार काम के लिए होती थी और कृष्ण अपनी वाक्पटुता एव सदैव प्रसन्नचित्त रहने के कारण लोगो को मुग्ध कर देता था। केशु बहुत तेज मिजाज था तो कृष्ण मधुर स्वभाव का। दोनो मिलकर जो भी काम हाथ मे लेते थे उसे सुन्दर तरीके से पूरा करके ही छोडते थे। केशु जब काम पर लग जाता था, तब उसे अपने चारो ओर की सुध नही रहती थी। औरो से वह कटा-सा रहा करता था। कृष्ण चाहे किसी भी काम मे हो या कोई भी खेल कर रहा हो उसका ध्यान चारो ओर रहता था। एक बार नजर मे ही परिस्थिति जाचकर लाभ-हानि को कूतने की उसमे शक्ति थी। क्या करना उचित या अनुचित रहेगा इस बात की सूचना वह तुरन्त केशु को देता था। किसी काम मे कृष्ण अगुआ नही बनता था, केशु की सरदारी मे रहकर ही उसके काम मे योग देता था। केशु को अपना बडा भाई मानकर भूल से भी उसका अनादर नही करता था और केशु भी कभी अपने छोटे भाई कृष्ण को अपमानित नही करता था। दोनो की जोडी अभिन्न थी।

ऐसे शक्तिशाली भाइयो को प्राप्त करने से मेरा हृदय उत्साह से भर जाना चाहिये था, परन्तु न जाने कौन-सा मनोविकार मुझे सताता था, जिससे उनके साथ काम करना मेरे लिए कठिन होता था। उनके चातुर्य की तुलना म अपना भोदूपन देखकर मुझे कही भाग कर छिप जाने का जी होता था। किन्तु वहा के समूह-जीवन मे अकेले रहने का अवसर दुष्प्राप्य था। अत मेरी कुढन मन मे ही रह जाती थी।

अलोनाव्रत और विशेषत फलाहार होने के कारण मूगफली छीलना हमारा एक अत्यावश्यक काम होता था। दो या तीन बोरी मूगफली हमे दे दी जाती थी और शनि-रवि की छुट्टी मे घटो तक उसकी मीगी से कनस्तर भरने मे हम लोग व्यस्त रहते थे। काम का हिसाब लगाने के लिए एक कटोरी का नाप निश्चित किया था। दाने निकाल कर कौन पहले उस नाप की कटोरी भर लेता है, इसकी होड लगती थी। केशु तेरह मिनट मे, कृष्ण पन्द्रह मिनट मे और मै मुश्किल से बीस-बाईस मिनट मे अपनी कटोरी भर पाता था। देवदासकाका केशु से आधी मिनट पिछड जाते थे। इस प्रकार अपनी शिथिलता मुझे बेहद चुभती थी और मै बहुत मायूस हो जाता था।

बगीचे के काम में मगनकाका ने एक रविवार के दिन हम लोगो को

गुलाब के पौधे पर दूसरे गुलाब की कलम चढाने का काम सिखाया। एक पौधे पर उन्होने खुद कलम लगाई दूसरे पर केशु से लगवाई और तीसरे पर मुझ से। कलम चढाते समय वह मेरे पास बैठे थे और बहुत कुछ काम उन्होने खुद ही करवाया था। फिर भी आठवे दिन मेरा पौधा सूख गया और केशु ने जिस पर बिना किसी के सहारे कलम लगाई थी, वह मगनकाका के पौधे के समान ही पल्लवित हो उठा।

मैने मान लिया कि दैव ने मुझे बडा भाई बनाने मे भूल की है। बडे भाई होने योग्य तो केशु व कृष्ण है। अपनी इस मान्यता के कारण उनसे काम लेने मे मुझे परेशानी होती थी।

यह एक चमत्कार ही था जो इन छहो विपरीत स्वभाव वाले बालको का नेतृत्व मेरे हाथ मे महीनो तक रहा और उनके सहारे फीनिक्स आश्रम के नित्य-कर्म अबाध रूप से पार होते रहे।

एक विशेष प्रसग से ज्ञात होगा कि छ बच्चो की यह छोटी टोली किस तरह भारी काम किया करती थी।

एक शाम को छापाखाना का काम कुछ जल्दी पूरा हो गया। घटा भर की फुरसत मिल जाय तो मगनकाका सीधे बागीचे मे पहुच जाते थे और खोदने आदि का काम करते थे। देवदासकाका और मै भी उनके साथ खोदने, पानी भरने मे जुट जाया करते थे। उस सध्या को गोभी के पौधे लगाने आदि मे हम जुटे हुए थे। इस बीच अकस्मात आकाश मे काले-काले बादल छा गए और जोरो से गर्जना तथा बिजली का चमकना शुरू हो गया। नित्य की तरह केशु, कृष्ण, नवीन, और छोटम स्टेशन पर डाक लेने गये थे। उनके लौट आने का समय कभी का होचका था और हम लोग प्राय घटे-भर से उनके आने की प्रतीक्षा मे थे। हमारी यह चिन्ता बढ रही थी कि तेज वर्षा होने लगी। स्टेशन के रास्ते मे अनेक उतार-चढाव थे और पानी गिरते ही मिट्टी चिकनी और फिसलन वाली हो जाती थी। लगभग ६-७ दिन पहले ही सवेरे की डाक लाते समय मै वर्षा मे फस गया था। रास्ते मे चार-पाच बार रपट कर गिर पडा था। और घर पहुचते-पहुचते भीग कर बेहद काप रहा था। तीन घटे देर से घर पहुच पाया था। तो फिर इन नन्हे स्वयसेवको की क्या दशा होती!

मगनकाका बोले, "छोडो काम को, तुम दोनो उन बच्चो को लिवाने जाओ!" आज्ञा पाते ही हिरन की तरह हम दोनो स्टेशन की ओर लपके। लगभग पाच मिनट मे पौन मील से अधिक दूर तक निकल गये। जब एक ऊचे टीले पर पहुचे तो देखा कि नन्हे-नन्हे हरकारे एक बडे विलायती बबूल

के वृक्ष के नीचे आराम से बैठे थे। डाक थैली जमीन पर रखी थी और मजे मे थे। हमने पूछा, "क्यो आज इतनी देर क्यो लगादी ?" उन्होने बताया, "आज देश की डाक है। थैला बहुत भारी है। अकेले तो उठता नही, इस वजह से लकडी मे टाग कर हम दो-दो बारी-बारी से थोडी-थोडी दूर तक ला रहे है। बहुत थक जाते है, इसलिए बीच में आराम करना पडता है। यहा पर वर्षा के कम होने की प्रतीक्षा मे बैठे है।" यह सारी बात सुनाते हुए चारो में से किसी बच्चे के मुख पर शिकायत या दुख का भाव जरा भी नही था।

हडताली लोगो ने फीनिक्स आकर जब तक हम पर नया बोझा नही डाला हम लोगो के काम का सिलसिला ऐसा ही चलता रहा।

: ६० :

पाखाना-सफाई का प्रथम प्रयोग

बापूजी के भारत लौटने के बाद का एक किस्सा है। वह मामूली मुसाफिर की हैसियत से रेलगाडी के तीसरे दर्जे मे सफर किया करते थे। एक बार ऐसी यात्रा मे वह शौच के लिए रेल के पाखाने मे गये। देखा, तो सारा डिब्बा मल से सना पडा था। तुरन्त वह अपनी जगह पर लौट आये। उन्होने अपने सामान से एक रद्दी अखबार निकाला, सुराही से अपनी छोटी लुटिया मे पानी लिया, जाकर पहले पाखाने की फर्श पर पटा हुआ मल कागज में समेट कर कदमचे के नीचे डाल दिया और फिर उस स्थान को पानी से धो डाला। इसके बाद ही उन्होने उस पाखाने का उपयोग किया। मुझे यह प्रसग छोटे काका श्री जमनादास गाधी ने सुनाया था। उन्होने मुझसे कहा कि टाल्स्टाय-वाडी और फीनिक्स मे बापूजी के साथ बरसो तक रहने के बाद भी जब मैंने बापूजी का यह काम देखा तो मै चकित रह गया और उस काम को करते समय बापू के चित्त की शान्ति, प्रसन्नता और क्रोध का बिलकुल अभाव देखकर मेरा मन आश्चर्य से भर गया।

पाखानो की स्वच्छता के बारे में बापूजी का इतना तीव्र आग्रह देखते हुए कल्पना की जा सकती है कि उनके आश्रमो मे पाखाना-सफाई के लिए कितना पुरुषार्थ किया जाता होगा। फीनिक्स तो एक साक्षात जगल ही था। चारो ओर ऊची-ऊची घास थी, टीले थे, खदके थी और झरनो के किनारे घने वृक्ष भी थे। परन्तु वहा खुले मे शौच जाने की प्रथा बापूजी ने चलने नही दी। स्नानगृह के लिए वहा विशेष व्यवस्था नही की गई थी।

उस देश में पुरुष-वर्ग का झरने और कुए पर समूह मे मिलकर दिगवर स्नान करना सामान्य बात थी परन्तु पाखाने हर घर मे मौजूद थे।

मेहतर या भगी कोई नही था। भगी के घर मे जन्म लेने के कारण किसी व्यक्ति पर मनुष्य का मल ढोने का बोझ डाला जाय, यह बापूजी को मजर नही था। फिर फीनिक्स मे फलवृक्ष और बागीचो को समृद्ध बनाने के लिए उत्कृष्ट खाद की आवश्यकता थी। अत प्रारम्भ से ही मल को मिट्टी मे गाडकर खाद बनाने के प्रयोग होने लगे थे।

छापाखाना के मकान के पास मैले को खेत मे दबाने की सुविधा नही थी। वह मकान बहुत नीची सतह पर था और उसके दोनो ओर पानी के झरने थे। उसके इर्द-गिर्द खेती के योग्य जमीन नही थी। इसलिए छापाखाना के पास का पाखाना बहुत गहरा, खदकनुमा बनाया गया था।

खदक-टट्टी की रचना इस प्रकार थी—सात आठ फुट गहरे और तीन-साढे तीन फुट चौकोर गड्ढे पर लकडी का ढाचा और कदमचे के स्थान पर तख्ते रख दिये गए थे। गड्ढा एक बाजू मे ढालू रखा गया था और मल इस ढाल पर पडता था। शौच के बाद प्रत्येक व्यक्ति एक लकडी की फावडी से मल को गड्ढे मे नीचे की ओर धकेल देता था। इस टट्टी के लिए मिट्टी या और किसी चीज की आवश्यकता नही थी। बरसात मे भी वह अच्छा काम देती थी। उसे सरकाने या हटाने की भी आवश्यकता नही पडती थी। न उससे बदबू ही उठती थी। मेरा खयाल है कि सारा मैला गहराई में पानी मे जमा होता रहता था और मल के कीडे उसे खाकर जल को शुद्ध बनाये रखते थे। जगल की जगह थी और आसपास पीने के पानी का कोई कुआ नही था, इसलिए वहा यह खदक-टट्टी चल सकती थी।

दूसरी टट्टी थी, जो एक पक्के फर्श की कोठरी मे बनी हुई थी। इसमे तख्तो की बैठक के नीचे कनस्तर के कटे हुए दो डिब्बो को कोलतार पोतकर रखा जाता था। सफाई के समय लोहे की मुडी हुई सलाख से उन डिब्बो को खीच लिया जाता था। फिर किसी बडे वृक्ष के मूल मे, तने से चार पाच फुट दूर गड्ढा खोदकर उसमे मलपात्र को पलट दिया जाता था और वह गड्ढा मिट्टी से पाट दिया जाता था।

इसके बाद सीधे ही खेत मे टट्टी रखने की व्यवस्था की गई। फल-वृक्षो को बोने के लिए जो चौकोर गड्ढे बनाये जाते थे उन्ही पर लकडी की टट्टी रख दी जाती थी। जो भी शौच जाय वह स्वय मिट्टी से अपना मैला ढक देता था। किन्तु इस प्रकार की टट्टी मे दो दिक्कते पैदा हुई। एक तो

यह कि आंधी के समय टट्टी का सारा ढाचा उडकर दूर जा पडता था और दूसरी यह कि वर्षा मे सारा गड्ढा पानी मे ऊपर तक भर जाता था।

कई प्रयोगो और अनेक अनुभवो के बाद पाखाने का ढाचा ऐसा बनाया गया कि कैसी भी आंधी मे वह टिक सके। ऊपर की छत हटा दी गई। पर्दो को कमर से अधिक ऊचा बनाना छोड दिया गया और तख्ते तथा टीन की चद्दरो की जगह बोरिया लटकाई गई। फिर यह टट्टी सरकाते-सरकाते कभी केलो की पक्तियो के बीच, तो कभी सतरो की पक्तियो के बीच रखी जाने लगी। परन्तु वर्षा होने पर पानी भर जाने से ये गड्ढे वाली टट्टिया बेकार हो जाती थी। इसका इलाज न तो फीनिक्स मे हाथ आया, न साबरमती मे ही। इसलिए पक्के फर्शवाली स्थायी टट्टिया बनाना अनिवार्य हो गया।

पक्के फर्श वाली टट्टी से मलपात्र को ढोकर खेत मे ले जाने और टोकरी मे सूखी मिट्टी का सग्रह करने का काम बहुत परिश्रम का होता है। इस परिश्रम को बचाने और सुविधा एव शीघ्रता की दृष्टि से फीनिक्स मे भाति-भाति के प्रयोग चल रहे थे। मलपात्र मे जब मल से दुगुनी मिट्टी पडती तब मल ढका रहता और मक्खी-मच्छरो से बचा रह सकता। परन्तु यदि पाखाने को दस-बीस व्यक्ति बरतते हो तो मलपात्र इतना भारी हो जाता कि उसे अकेला आदमी दूर तक नही ले जा सकता था।

इस सिलसिले मे तरह-तरह की आजमाइशें करते-करते मगनकाका इस निष्कर्ष पर पहुचे कि फर्श वाली स्थायी टट्टी मे मिटटी का उपयोग न किया जाय। उन्होने टीन का एक बहुत उथला, लब-गोल मलपात्र बनवाया था। उसे कदमचो के बीच मे रख दिया जाता था। कोठरी के दूसरे कोने मे एक बडी, ढक्कनदार बाल्टी रखी गई थी। प्रत्येक व्यक्ति मलविसर्जन के बाद उस बडी बाल्टी मे छोटा मलपात्र उलट देता था। और उसे उसी समय धोकर कदमचो के बीच रख देता था। बाल्टी का ढक्कन ऐसा चुस्त होता था कि उसमे मच्छर या भुनगे घुसने नही पाते थे। चौबीस घंटो मे एक बार यह बाल्टी खेत मे ले जाकर खाद के गड्ढे मे साफ कर दी जाती थी। मिट्टी का बोझ न होने से यह काम अपेक्षाकृत जल्दी और आसानी मे हो जाता था।

यद्यपि इस प्रकार की टट्टी से मच्छर, मक्खी, दुर्गन्ध आदि की परेशानिया दूर हो जाती थी, फिर भी समूचे आश्रम मे उसका प्रचार नही हो सका। यह प्रयोग घर वालो तक ही सीमित रहा, क्योकि प्रत्येक व्यक्ति हाथ-के-हाथ शौचपात्र की सफाई कर लेना स्वीकार करे और पूरी सावधानी से वह काम करता रहे, यह कठिन बात थी। परन्तु साबरमती आश्रम मे इस

प्रयोग को अपने लिए मगनकाका ने पूरे उत्साह से अन्त तक चालू रखा था। इस तरीके से खाद का थोडा-सा भी अश बरबाद नही होता था और जहा जितना चाहिए उतना ही पहुचाया जा सकता था।

कौन-सी वस्तु कितने समय म गलकर खाद बन जाती है इसका प्रत्यक्ष अनुभव मगनकाका को था और पाखाने की सफाई के साथ-साथ वह हमे सिखाया करते थे कि कौन-सा मैला और कौन-सा कूडा कहा पर व किस भाति मिट्टी में मिलाना चाहिए। फीनिक्स में हम लोग पशु-पालन नही करते थे इसलिए गोबर की खाद उपलब्ध नही थी। फिर भी खाद की कमी से हमारी शाक-सब्जी और फल-वृक्ष, सूखे और दुर्बल नही रहते थे। केले की पत्तिया, केले के तने, निराई की हुई हरी दूब, फलवृक्ष की काट-छाट के बाद हुई बची हरी टहनिया—जिनमे से ईधन के योग्य लकडी अलग कर ली गई हो—पत्तिया, कपडे व कागज के बेकार टुकडे आदि प्रत्येक चीज को अलग-अलग स्थान पर गाडने की व्यवस्था मगनकाका ने कर रखी थी। इन चीजो को कितने सप्ताह या कितने महीने बाद खाद के लिए काम मे लाया जाय, इन बातो का अपना अनुभव सुबह-शाम की साधारण बातचीत के समय अनेक बार वह हमें सुनाते थे।

अब भारत के बहुत-से आश्रमो और रचनात्मक सस्थाओ मे पाखाना-सफाई नित्य का आवश्यक कर्तव्य बन गया है। नये आश्रमवासी को इस काम का पहला अनुभव कठिन और घृणित-सा मालूम देता है परन्तु बाद में अन्य कार्यो की तरह यह काम भी एक साधारण श्रम-यज्ञ प्रतीत होता है। पाखाना सफाई की विधि अब काफी सरल और साफ-सुथरी बन गई है परन्तु फीनिक्स मे जिस विधि से यह काम किया जाता था वह खाद की दृष्टि से अधिक लाभप्रद परन्तु करने मे कठिन था। इस काम का सर्वप्रथम अनुभव मुझे और देवदासकाका को बहुत कष्टदायी मालूम पडा था।

सोलह सत्याग्रहियो को विदा करने के दिन से पाखाना-सफाई का तथा साग-सब्जी की देखभाल का काम मगनकाका ने अपने ऊपर ले लिया था। परन्तु जब बापूजी भी सत्याग्रह के लिए फीनिक्स गये तब मगनकाका के इस काम के लिए आधा घटा बचाना भी असभव हो गया। तब देवदास-काका और मैं इस भारी काम को करने के लिए आगे बढे। मगनकाका ने बारीकी से हमें उसे करने का ढग बताया।

पक्की फर्श वाली कोठरी मे प्राय १८" या २०" इच की बडी भारी बाल्टी मल और मिट्टी से भरी हुई होती थी। घर के आगन से फुलवाडी मे केले की क्यारी तक पहुचाते-पहुचाते पाच-छ सात बार हमे उसे जमीन पर

रखना पडता था । हम दोनो मिलकर भी बडी कठिनाई से उसे उठा पाते थे। मूत्र वाली बाल्टी उठा कर ले जाने मे इतनी भारी नही थी परन्तु उसकी बदबू बडी तेज होती थी। बाल्टिया अलग रख कर पहले तो हम सख्त काली मिट्टी मे गहरी लबी खाई खोदते। फिर मल वाली बाल्टी मे से हाथ की चुटकी से कागज के उन छोटे-छोटे टुकडो को चुनकर अलग करते जो मलपात्र मे पडे होते थे। अग्रेजो के तरीके के अनुसार फीनिक्स मे कई लोग आबदस्त के लिए पानी न ले जाकर कागज ले जाया करते थे और वे टुकडे मलपात्र मे रिलमिल जाते थे । मगनकाका का कहना था कि मानव-मल पाच-छ सप्ताह मे ही जब मिट्टी से मिलकर सडकर पूर्ण खाद बन जाता है तब कागज के टुकडो को गलने मे दस-पन्द्रह महीने लग जाते है, इसलिए मल के खाद के साथ उसे मिट्टी मे दबाना भारी भूल होगी।

कागज के टुकडे बाल्टी मे चुन लेने के बाद और भी कठिन काम हमें यह करना पडता कि बेलचे से सारे मल को बाल्टी मे ही घोल-घोल कर एक-सा प्रवाही रूप देना पडता। जब उसमे एक भी गाठ न रहती तब सारी बाल्टी को तैयार की गई नाली मे पलट कर मल को बहा दिया जाता और करीब ढाई-तीन फुट की लबाई मे प्रवाही मल को एक-सा बिछा देते। मल के ऊपर मूत्र की बाल्टी को पलट कर बेलचे से सारे प्रवाह को फिर से खाई मे एक सार कर देते और तब इस सावधानी से मिट्टी डालते कि उसके छीटे मुह पर न आवें ।

यह सारा काम करने मे जो बदबू हमे सहन करनी पडती उससे हम लोग तग आ जाते। पहले दिन तो पाखाना सफाई के बाद हम बहुत मलमल कर नहाये, धुले कपडे पहने, पर भोजन के समय भी उस बदबू की याद मन से उतरी नही। मुझे कुछ ऐसा याद है कि इस अनुभव के दस-पन्द्रह दिन बाद तक मुझसे गोभी की तरकारी नही खाई जा सकी, क्योकि उसको देखते ही टट्टी सफाई के समय की दुर्गंधि याद आ जाती थी। जब लगातार टट्टी-सफाई का काम हम करने लगे तब मन की यह घृणा दूर हो गई ।

जब प्रथम बार पाखाना-सफाई का स्वानुभव मुझे हुआ तब मेरे मन में बडा आश्चर्य हुआ कि बापूजी और मगनकाका जैसे बहुत ही स्वच्छ रहने वाले व्यक्ति इस काम को कैसे कर सकते होगे। उस समय सर्वप्रथम मैने देवदासकाका से जाना कि बापूजी की सूघने की शक्ति प्राय है ही नही। गुलाब के फूल की सुगधि भी बापूजी नही ले पाते ।

शौच-सफाई का यह अनुभव कागज पर शब्दाकित करना साहित्यिक दृष्टि से थोडा-सा हेय माना जाय यह सभव है। परन्तु मनुष्य मल को उत्तम-

से-उत्तम खाद के रूप में शीघ्र-से-शीघ्र परिवर्तित करने के अनुभव-सिद्ध प्रयोग छोटी बात नही है। बापूजी ने बडे गहरे अनुभव के बाद इसका सही मूल्याकन किया और उसकी तुलना सुवर्ण से करके उसका नाम सोनखाद रखा ।

: ६१ :

बापू के कुछ अन्य साथी

बापूजी के जेल जाने के कोई बीस-बाईस दिन बाद एक सध्या को मगनकाका के पास एक गौराग युवती आई। उसकी गरदन से नीचे के बाल कटे हुए थे और वह एक सफेद कमीज तथा काले रग का धारीदार कपडे का पेटीकोट पहने थी। वह बहुत प्रभावशाली और तेजस्वी दीखती थी। पहनावे मे वह जितनी सादी थी, उसकी मुखाकृति उतनी ही गभीर जान पडती थी। बहुत ही चिंतित चेहरे से उसने मगनकाका के साथ थोडी-सी बाते धीमे से की। फिर उसने खुल कर बहस शुरू करदी। तब क्षणक्षण मे उसके मुख पर स्मित लहराने लगा। मैने इतनी प्रफुल्लता और हास्य-तरगो का सातत्य क्वचित ही देखा था। मेरी जिज्ञासा बढ गई कि यह कौन है। पूछने पर देवदासकाका ने मुझे बताया कि यही तो है मिस श्लेशिन।

मिस सोजा श्लेशिन के चातुर्य, स्फूर्ति एव कार्यदक्षता के बारे मे मैंने बहुत सुन रखा था। बडी पढी लिखी बताई जाती थी। जब बापूजी बैरिस्टरी करते थे तब घटो तक वह उनसे पत्र लिखवाते रहते थे लेकिन वह जरा भी थकती नही थी। शीघ्र-लेखन विशारदो मे उसका स्थान श्रेष्ठ माना जाता था। जैसी उसकी बुद्धिमत्ता और दक्षता की ख्याति थी वैसी ही उसके विनोदप्रिय स्वभाव और नटखटपन की ख्याति थी। दक्ष, निर्मल और तरल-स्वभाव वाली होने के कारण बापूजी की अन्तेवासिनी बनकर उसने थोडे ही वर्षो मे बहुत प्रगति कर ली थी। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास मे बापूजी ने उसके सबध मे लिखा है

"मेरे पास एक स्काच कुमारिका शार्टहैन्ड लेखिका और टाइपिस्ट के काम के लिए थी। उसकी वफादारी और नीतिमत्ता का अन्त नही था। इस जिन्दगी मे मुझे कटु अनुभव तो कई हुए है, परन्तु मेरे सपर्क मे इतने अधिक सुन्दर चरित्र वाले अग्रेज और भारतीय आये है, कि इसे मै हमेशा अपना सद्-भाग्य मान रहा हू। इस स्काच कुमारिका श्लेशिन को श्री कैलनबैक मेरे

पास ले आये और बोले, 'इस बालिका को इसकी माता ने मुझे सौंपा है। यह चतुर है, प्रामाणिक है, परन्तु इसमे नटखटपन और स्वतन्त्रता बहुत है। कदाचित वह उच्छृखल कहलायगी। अगर तुमको जचे तो इसे अपने पास रखना। वेतन के हेतु मै इसे तुम्हारे हाथ के नीचे नही रख रहा हू।' मै तो किसी अच्छे शार्टहैन्ड टाइपिस्ट को माहवार बीस पौंड देने को तैयार था। कुमारी स्लेशिन की शक्ति का मुझे कुछ पता नही था। श्री कैलनबैक ने मुझसे कहा, 'फिलहाल छ पौंड माहवार देते रहना।' मुझे यह मजूर होता ही।

"कुमारी स्लेशिन के नटखटपन का अनभव मुझे तुरन्त ही हुआ, लेकिन एक महीने के अन्दर उसने मुझे अपने वश मे कर लिया। रात और दिन, जब चाहो, काम के लिए तैयार। उसके लिए कुछ भी अशक्य या दुष्कर तो था ही नही। उस समय उसकी उम्र १६ वर्ष की थी। मुवक्किलो और सत्याग्रहियो के मन भी उसने अपनी सरलता और सेवा-परायणता से हर लिये। आफिस और सत्याग्रह-सचालन की नीति की वह एक चौकीदार और रखवाला बन गई। किसी भी कार्य की नीति के बारे मे यदि उसे थोडी-सी भी शका होती तो वह बहुत ही खुलकर मुझसे बहस करती और जब तक मै उसको यकीन न दिला दू तब तक उसे सन्तोष नही होता था।

"सबके जेल जाने पर, जबकि केवल काछलिया ही बाहर रहे थे, उसने लाखो रुपये का हिसाब सभाला, भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यो से काम लिया। काछलिया भी उसका आसरा लेते थे, सलाह लेते थे। हम लोगो के जेल मे होने के कारण डोक ने 'इडियन ओपीनियन' का काम अपने हाथ मे लिया था। वह सफेद बालोवाला अनुभवी बुजुर्ग 'इडियन ओपीनियन' के लिए लिखे गए लेखो को स्लेशिन से पास कराता था, और उसने मुझे बताया था 'यदि स्लेशिन न होती तो पता नही कि मै स्वय अपने काम से अपने को सन्तुष्ट कर पाता या नही। उसकी सहायता और सूचनाओका मूल्याकन मै कर नही सकता। अनेक बार उसके द्वारा सूचित घट-बढ को उचित ही मानकर मैने स्वीकार कर लिया था। पठान, पटेल गिरमिटिये—सब जातियो के और सब उम्र के भारतीय उसको घेरे रहते थे, उससे सलाह लेते थे और उसका कहा करते थे।'

"दक्षिण अफ्रीका मे अक्सर गोरे लोग भारतीयो के साथ रेलगाडी मे एक ही डिब्बे मे नही बैठते है। ट्रान्सवाल मे तो बैठने की मनाही तक की जाती है। सत्याग्रहियो ने तीसरे दर्जे मे ही प्रवास करने का नियम रखा था। इस पर स्लेशिन जान-बूझकर हिन्दियो के डिब्बे मे ही सवार होती थी और गार्डो से झगडा भी मोल लेती थी। मुझे डर था कि स्लेशिन को किसी-न-

किसी समय खुद गिरफ्तार होने की उत्सुकता थी। परन्तु उसकी शक्ति, सत्याग्रह-सचालन के बारे मे उसका पूरा ज्ञान और सत्याग्रहियो के हृदय पर उसका जमा हुआ साम्राज्य—ये तीनो बाते ट्रान्सवाल की सरकार के लक्ष्य मे होने पर भी उसने उसे गिरफ्तार न करने की नीति और विवेक का त्याग नही किया।

"स्लेशिन ने किसी दिन अपने माहवार ६ पौंड म बढोती की माग नही की, या चाही ही नही। उसकी कुछ आवश्यकताओ को जानने पर मैने उसको १० पौंड देना शुरू किया। मगर उसने वह भी आनाकानी से लिया। किन्तु उससे आगे बढने के लिए उसने साफ इकार ही कर दिया। 'इससे अधिक मेरी आवश्यकता है ही नही, फिर भी यदि मै लेती हू तो जिस निष्ठा से आपके पास आई हू, वह गलत साबित होगी।' इस जवाब से मै चुप रहा। पाठक शायद जानना चाहेगे कि स्लेशिन की तालीम कहा तक की थी ? केप-यूनिवर्सिटी की इटरमीजिएट-परीक्षा उसने पास की थी। शार्ट-हैड आदि मे प्रथम नम्बर के प्रमाण-पत्र उसने प्राप्त किये थे। सत्याग्रह-आन्दोलन से मुक्त होने के बाद वह उस यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट बन गई और अब ट्रान्सवाल के किसी सरकारी कन्याविद्यालय मे प्रधान अध्यापिका है।"

अन्यत्र, कुमारी स्लेशिन के बारे मे बापूजी ने गोखलेजी का अभिप्राय बताते हुए लिखा है कि दक्षिण अफ्रीका के भारतीय एव गोरे अग्रणीयो का पर्याप्त परिचय गोखलेजी ने पा लिया था। उनमे से सभी मुख्य पात्रो का सूक्ष्म विश्लेषण करके उन्होने मुझे सुनाया। मुझे सही-सही याद है कि उन्होने हिन्दी और गोरे सभी मे कुमारी स्लेशिन को सर्वप्रथम पद दिया था। "उसके जैसा निर्मल अन्त करण, काम मे एकाग्रता और दृढता मैने बहुत कम आदमियो मे देखी है। और भारतीयो की लडाई मे लाभ की कुछ भी आशा के बिना इस हद तक सर्वार्पण देखकर मै तो आश्चर्यचकित हो गया हू। फिर इन सब गुणो के साथ उसकी होशियारी व चपलता तुम्हारी इस लडाई मे उसको एक अमूल्य सेविका साबित करती है। मेरे कहने की आवश्यकता नही है, फिर भी कहूगा कि उसे अवश्य अपने पास बनाये रखना।"

मगनकाका के साथ कुमारी स्लेशिन की बातचीत से पता चला कि जब चार्ल्सटाउन से चार हजार हडतालियो को लेकर बापूजी ने कूच का श्रीगणेश किया, तब से लेकर अन्ततक वह उस कूच मे थी। बापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनबैक के पकडे जाने के बाद, जबतक सभी हडतालियो को गिरफ्तार नही कर लिया गया, तबतक वह उनके बीच मे काम करती

रही और फिर वापूजी की ही सूचना के अनुसार अविलम्ब फीनिक्स आ पहुची ।

एक और वहन भी कुमारी स्लेशिन के साथ फीनिक्स आई थी। उसका परिचय देते हुए कुमारी स्लेशिन ने वताया, "यह फातिमा, इमाम अब्दुल कादर वावजीर की वडी वेटी है। इसके पिता जेल गये है, इसलिए वापूजी ने इसे यहा भेजा है। यह घर-काम वहुत अच्छा जानती है। सिलाई-काम में निपुण है। तुम लोगो के साथ पढेगी भी।"

काले-काले कपडो मे लिपटी हुई फातिमा जव हमारे यहा आई, तो उसका वुर्के का दुख देखकर उसके लिए मुझे हमदर्दी हुई। जव फातिमा ने वुर्के का सवध अपने इस्लाम-धर्म के साथ अनिवार्य वताया, तव उसके प्रति दुख-भरी करुणा के अलावा हमारे मन मे और कोई भाव पैदा नही हो सका।

दस वर्ष की फातिमा दो-चार ही दिन मे हमारी वाल-मडली मे घुल-मिल गई। उसकी शक्ल-सूरत करीव-करीव गोरी लडकी की-सी थी। वोलने मे मानो कुमारी स्लेशिन की छोटी वहन ही थी। अग्रेजी मे वडी तेजी से वोला करती थी। थोडी-थोडी हिन्दी उसे आती थी परन्तु अधिकतर वह अग्रेजी मे ही वाते करती थी। डच भाषा के मधुर और मृदु गीत भी उससे हम वार-वार सुनते थे।

जव कभी मौका मिलता, फातिमा अपने पिताजी का गुण-गान करने लगती थी। वह वडी पितृ-भक्त थी। उसने वताया था कि इमाम साहव अपने वाहुवल से नवाव जैसे दौलतमन्द वने है। वग्घी और तागो का रोजगार करते है। अगर कोई सईस या कोचवान घोडो को थोडा भी परेशान करता तो इमाम साहव वहुत दुखी हो जाते। वह वडे स्वाभिमानी है। पहली वार जव वह जेल गये तव उनको अपने रोजगार मे वडा नुकसान हुआ। और इस वार वापूजी की और अपने मित्रो की राय के खिलाफ फिर से वह सत्याग्रह की लडाई मे कूद पडे। अपना सारा रोजगार उन्होने समेट लिया है और जेल से छूटकर वह फिर फीनिक्स मे ही आकर रहने वाले है। फातिमा से यह सव हाल सुनकर उसके पिताजी के प्रति हमारे दिल मे भी आदर पैदा हो गया।

सन् १९३२ मे जव वापूजी यरवदा जेल मे थे तव सावरमती आश्रम के वच्चो को प्रति सप्ताह एक पत्र लिखा करते थे। उन पत्रो मे तीन सप्ताह तक उन्होने स्वर्गस्थ इमाम साहव के सस्मरण लिखे थे। उनमे इमाम साहव के जीवन की वात वताते हुए उन्होने लिखा है "फीनिक्स मे आकर वसने

की उनकी बात सुनकर मैं दिङ्मूढ बन गया। जिसने कभी एक भी दिन अपने हाथ-पैरो को कष्ट नही दिया और मानो पूरी नवाबी से ही रहा है वह एकाएक मजदूर कैसे बन जायगा? स्वय इमाम साहब कदाचित फीनिक्स का जीवन सह ले पर उनकी बीबी हाजी साहेबा का क्या होगा? फातिमा, अमीना का क्या होगा? इन सब बातो का इमाम साहब के पास साफ और छोटा उत्तर था, 'मैने तो खुदा पर भरोसा किया है। हाजी साहेबा को आप नही जानते। जहा मै, वहा वह रहने को तैयार होगी ही। जैसा जीवन मै बिताऊगा वह भी बितायगी। इसलिए मैने फीनिक्स आने का निश्चय कर लिया है। यह सत्याग्रह-सग्राम कब पूरा होगा, कोई नही कह सकता। पर अब मै बग्घी-तागो का या दूसरा कोई भी रोजगार कर नही सकता। मैने आपकी ही तरह देख लिया है कि सत्याग्रही को धन-दौलत आदि का मोह छोड देना चाहिए।'

" फीनिक्स की प्रवृत्ति मे इमाम साहब भाग लेने लगे वह उस समय नाजुक शरीर के थे, लेकिन सवेरे तडके ही बहगी लेकर झरने पर पहुच जाते थे और पानी का बोझ लेकर पचास फुट वाली ऊचाई के टीले पर धीरे-धीरे चढते दिखाई देते थे। छापाखाना की मशीन रुक जाती थी तब वह भारी चक्कर चलाने मे योग देते थे। हर किस्म के छोटे-मोटे काम इमाम साहब, हाजी साहेबा, फातिमा और अमीना—चारो अपने हिस्से का करते थे। उस बुजुर्गी मे भी इमाम साहब ने छापाखाना मे 'कपोजिंग' का काम सीख लिया। वह आश्चर्य की बात थी। इस प्रकार इमाम साहब फीनिक्स मे ओतप्रोत हो गए थे। वह और उनका परिवार रोज ही मास खाने का आदी था परन्तु फीनिक्स मे इमाम साहब ने मास पकाया हो, ऐसा मुझे जरा भी स्मरण नही है। नमाज, रोजा आदि से कभी भी इमाम साहब या उनका परिवार चूकता नही था, बल्कि फीनिक्स-वासियो मे हिलमिलकर और उनके लिए त्याग करके इमाम साहब इस्लाम की सभ्यता का सुन्दर्शन कराते थे।

" .. मेरा दृढ अभिप्राय है कि इमाम साहब दिन-दिन प्रगति कर रहे थे, उनकी वृत्तिया शुद्ध होती जाती थी, उनकी ईश्वरभक्ति बढती जाती थी, और आश्रम के नियमो के प्रति उनकी श्रद्धा बैठती जाती थी।"
—(यरवदा मदिर, २१-३-३२)।

एक और प्रसिद्ध व्यक्ति का परिचय देना आवश्यक है, जिनका आगमन करीब-करीब उन्ही दिनो फीनिक्स मे हुआ था जब मिस श्लेशिन वहा आई थी। उनका नाम था फकीरा भाई। जहा तक मेरा अनुमान है वह सूरत जिले

के निवासी थे और पक्के गुजराती किसान थे। जिन लोगो की सरलता, शान्तिप्रियता और तितिक्षा वृत्ति देखकर गाधीजी ने भारत मे आने के बाद सत्याग्रह का उग्र सघर्ष करने के लिए बारडोली तहसील को चुना था, उन्ही लोगो का श्रेष्ठ प्रतीक, फीनिक्स मे हमे फकीरा भाई मिले थे।

फीनिक्स मे आने से पूर्व फकीरा भाई ग्यारह बार कारावास भुगत आये थे। जोहान्सबर्ग मे बिना परमिट के शाक-फल की फेरी लगाकर उन्होने बरसो तक बार-बार जेल-गमन किया था। और इस प्रकार उस समय के वहा के जेल-यात्रियो मे वह प्राय सर्वप्रथम थे। अब उनको जेल जाने से रोक कर फीनिक्स मे आने वाले हडतालियो की सहायता के लिए फीनिक्स भेजा गया था।

उनकी दो बाते अजीब मालूम देती थी, एक तो सिगरेट से उनकी बहुत ज्यादा मोहब्बत और दूसरी एक ही जगह पर बैठे बैठे-बाते करते रहना, ये दोनो ही फीनिक्स-वासियो के लिए अस्वाभाविक बाते थी। परन्तु जब फकीरा भाई काम करने के लिए उठते थे तब बेहद काम कर डालते थे। भूखे हडतालियो को सीधा तौल देने का उनका काम था। बारह-बारह और कभी पन्द्रह-पन्द्रह घटे तक वह खडे-ही-खडे सीधा तौलते रहते थे। इतने भारी काम मे भी प्रसन्न रहते थे और किसी से भूल कर भी ऊचे शब्दो मे तू-तडाक नही करते थे। कभी-कभी उनको प्रतिदिन आठ सौ से एक हजार लोगो को आटा-दाल तौल कर देना पडता था। मुझे फकीरा भाई का सहायक नियुक्त किया गया था, इसलिए उनके साथ मुझे भी बहुत देर तक जुटा रहना पडता था।

: ६२ :

सत्याग्रहियों की भोजन व निवास-व्यवस्था

एक दिन सुबह अचानक ही भारी शोर गुल सुनकर मै अपने बिस्तर से चौक कर उठ बैठा। पूछने पर मगनकाका ने बताया "हमारे बागीचो मे सब जगह आदमी-ही-आदमी उमडे पडे है। तुम सब लोग तो भर नीद सो रहे थे, और रात भर हडतालियो का सतत-प्रवाह आता रहा है। मुझे तो रात भर जागते ही रहना पडा। जरा-सी झपकी लगते ही नई टोली आ पहुचती थी और उसके लिए मुझे बाहर जाना पडता था। अब हमारा काम बहुत बढ गया है। तुम सब जल्दी निबट कर काम पर लग जाओ। ये हडताली

लोग जहां-तहां गन्दगी न करे इस बात की सावधानी रखनी होगी। रात को जब इतने आदमी आये है तो दिन मे इनसे भी अधिक लोग आयगे। उन सबकी व्यवस्था के लिए हम सब लोगो को तैयार हो जाना है।"

अपना विस्तर समेटकर मैं जल्दी तैयार होकर हडतालियो को देखने के वास्ते निकल पडा। जिधर नजर डाली, उधर आदमी-ही-आदमी देखकर मैं चकित रह गया। फीनिक्स के उस एकान्त मैदान मे एक साथ सौ आदमियो से अधिक पहले कभी मैने नही देखे थे। ऐसे स्थल पर एक ही रात मे जादू की तरह मानो जमीन से आदमी फूट पडे थे। उन लोगो ने हमारे सभी बागीचो को और रास्तो को घेर लिया था और नये लोग चले ही आ रहे थे। किसी टोली मे पाच-सात व्यक्ति होते थे, तो किसी मे चालीस-पचास का झुण्ड होता था।

ग्यारह बार जेल हो आने वाले वीर फकीरा भाई अन्नभडार के काम पर जुट गए। हडताली भाई-वहनो को देने के लिए दो प्रकार के सीधे-सामान की सूचिया मगनकाका ने तैयार की। एक सूची के मुताबिक दाल-चावल तथा नमक-मिर्च और दूसरी सूची के मुताबिक आटा और चीनी देने का नियम बनाया गया। प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब से कितना अन्न दिया जाय यह भी ठहरा दिया गया। जो नये-नये परिवार आते थे उनके लिए टिकने का स्थान निश्चित कर देने के बाद मुख्य व्यक्ति को मैं छापाखाना मे मगनकाका के पास ले जाता। वहा से चिट्ठिया बनवा कर उनको अन्न-भडार मे ले जाता और फकीरा भाई से निश्चित सीधा तुलवा कर उन लोगो को दे देता। फकीरा भाई बडी तेजी से काम करते थे और किसी पर भी नाराज नही होते थे, परन्तु मैं छोटा बच्चा होते हुए भी अकस्मात बडा आदमी बन गया था। इसलिए द्वारपाल का अपना कर्तव्य करते हुए हडतालियो से अनेक बार अकड जाता था। उनमे कई हडताली ऐसे भी थे जिनको दो-दो दिन के फाके हो चुके थे। भूखे पेट से वे लोग दिनरात बीस-चालीस मील का रास्ता चल कर मुश्किल से फीनिक्स तक आ पाए थे। राशन की चिट्ठी के हिसाब से तुले हुए अन्न का कागज मे बधा थैला जब मैं उन लोगो के हाथ मे रखता था तब उनके मुख पर प्रसन्नता झलक उठने के बदले कई बार गहरी निराशा प्रकट होती थी और खिन्न होकर उनमें से कुछ लोग कहते थे, "इतने से क्या होगा। इससे हमारी भूख थोडे ही मिटेगी ? थोडा-सा आटा (या चावल) और दे दो न ?" और इस माग को वे बार-बार दोहराया करते थे तथा भडार के दरवाजे से हटते ही नही थे। ऐसे समय फकीरा भाई दरवाजे पर जाकर उन लोगो को मधुरता से सम-

झाने का प्रयत्न करते थे कि "भैया तुम एक-दो को अधिक कैसे दे दिया जाय ! यह समय ही कष्ट उठाने का है।"

उन लोगो को रसोई के लिए जगह वताने मे मुझे अपना वहुत समय देना पडता था। वार-वार उन्हे समझाना पडता था कि फल के वृक्षो को आग से नुकसान न पहुचे। परन्तु जव तक किसी फल-वृक्ष को भारी नुकसान होने का खतरा न हो तव तक मै किसी को व्यर्थ रोकता-टोकता नही था।

यद्यपि उस समय हडतालियो का कोई वाकायदा सघ बना हुआ नही था, फिर भी जितने लोग आये थे, वडे भाई-चारे से रहते थे। प्रत्येक परिवार अपनी अलग रसोई पकाता था सही, परन्तु उनमे परस्पर मेल वहुत था। अकेला कुटुम्ब कही नजर नही आता था। हर जगह अलग-अलग झुड मे वे लोग डेरा डाले हुए थे। उनके दिलो मे सबसे ज्यादा घवराहट इस वात की रहती थी कि अव यहा पहुच जाने के वाद भी उन्हे आराम मिलेगा या नही ?

जव मै उनके वीच मे घूमने निकलता था तव वे लोग मुझे वुला-वुला कर वाते करने लगते थे। "एई, छोटा वावा ! जरा इधर तो आओ। देखो भैया, चावल तो मिला पर पकाने के लिए वरतन भी जरा मिला दीओ।" मै उत्तर देता, "भाई, यहा तो दाल-चावल मिलता है। इतने वरतन भडार मे कहा है ?" कोई अपने मन की शान्ति के लिए पूछता था " यहा से सोल्जर लोग हमको उठाकर नही ले जायगे न ?" कोई भक्ति गद्‌गद् हो कर पूछता था, "ओ, छोटा वावा ! गाधी महाराज का घर कौन-सा है ? वे कहा रहते है ? उनको कहा से पकड कर ले गए ? गाधी महाराज तुम्हारा क्या लगता है ? तुम्हारे माई-वाप कौन है ? यह वागीचा किसका है ?" आदि।

उनके प्रश्नो का जोर जव कम होता था तव मेरी वारी आती थी। "देखिये, वागीचे को कोई नुकसान न हो यह देखना मेरा काम है। आप लोग मिहरवानी करके एक भी फल न तोडे।" मुझे तुरन्त उत्तर मिलता, "नही, नही, क्या हम इतना भी नही समझते ? देखो हम इन वच्चो पर खास निगरानी रखते है कि वे फलो को हाथ न लगावे। तुम वे-फिकर रहो।" फिर मै उनसे कहता, "वागीचे को नुकसान नही पहुचायगे यह आपकी मेहरवानी है। अव इतना ध्यान रखे कि यहा पास मे कोई टट्टी वैठकर गन्दगी न फैलावे।" वे कहते, "ऐसा कौन मूर्ख होगा जो इतने सारे लोगो के वीच यहा टट्टी जाय। कोई जायगा तो हम उसे पीट न डालेगे।"

वे अपनी वात के इतने पक्के थे, इसका एक किस्सा मुझे याद आ रहा

है। एक बार मै निगरानी के लिए चक्कर काट रहा था । दो जवानो को मैने एक अमरूद के पेड पर हाथ मारते देखा। मै तुरन्त वहा गया और जोर से चिल्लाया, 'ए, क्या तोडते हो !' वे दोनो उलट कर मुझ पर आ-धमके और डाटने लगे, 'तुमने देखा ? हमने कहा कुछ तोडा है ? बच्चे होकर झूठ क्यो बोलते हो ?' लेकिन मै कुछ कहू, उससे पहले उन्ही हडताली भाइयो मे से कई मेरी सहायता को दौड आये। उन्होने उन दोनो को आडे हाथो लिया, 'तुम वहा पर गये ही क्यो ? हम सबकी आबरू मिट्टी में मिलाना चाहते हो ? गाधीराजा के बागीचे मे चोरी करते शर्म नही आती।' वे बेचारे इतने शरमा गए कि मुझे और कुछ कहना नही पडा।

जैसे-जैसे दिन बीतते गए, हडतालियो की बाढ हमे हैरत मे डालती रही। जिस दिन सैकडो नये आदमी न आय हमे अचम्भा होता था। रोज शाम को राशन की चिट्ठियो से मगनकाका अन्दाजा लगाते थे, आज ७०० आदमी बढे, आज १००० बढे और आज १५०० नये आये। फकीरा भाई का और मेरा कार्यक्रम ऐसा नियमित चल रहा था कि इतने आदमियो के स्वागत मे हमे दिक्कत नही होती थी, न कोई धाधली होती थी।

लेकिन एक बडा जटिल प्रश्न यह था कि इतने सारे आदमियो के लिए खाना कैसे पूरा किया जाय ? मगनकाका के सिर पर अपार चिन्ता थी। स्टेशन से दाल-चावल, आटा और चीनी की बोरियाँ रोज़ आती रहती थी, किन्तु कुछ घटे बीतने के बाद ही फकीरा भाई की चेतावनी मगनकाका के पास मुझे पहुचानी पडती थी कि सीधा खत्म है, और नई चिट्ठिया न काटे।

जेल जाने से पहले बापूजी ने दक्षिण-अफ्रीका के भारतवासियो को अपना जो अन्तिम सन्देश दिया था, उसमें उन्होने हिन्दी व्यापारियो से इन हडताली भाइयो को सहायता देने की अपील की थी। उनका वह पत्र 'इडियन-ओपीनियन' मे निम्न प्रकार छपा था .

"इस बार की लडाई दुबारा नही होने वाली है। अब हद हो गई है। गरीब गिरमिटिये भारतीयो की हिम्मत की और उनके दुख की कोई सीमा नही रही है। डेढ रतल (साढे ग्यारह छटाक) डबल रोटी और मुट्ठी भर चीनी पर रह कर प्रति दिन चौबीस मील कितने आदमी चलेगे ? यह काम हमारे गरीब भाइयो ने किया है। उन्होने घोडो की लाते खाई है, गोरो की ठोकरे और उनके मुक्के चुपचाप सहे है। स्त्रिया दो-दो महीनो के बच्चो को गोद मे लेकर, सिर पर गठरी उठाये भरी दोपहर मे चली है। सभी ने सर्दी, धूप और बारिश को सहन किया है। यह सब किसके लिए ? भारत के

लिए। ऐसे वलिदान से तीन पौंड का कर जायगा ही, किन्तु भारत का दर्जा भी वढेगा ।

"ट्रान्सवाल की कूच पूरी फतहमन्द सावित हुई है, ऐसा मै मानता हू । उद्देश्य गिरफ्तार होने का था और सव पकडे गए ।

"किन्तु लडाई का सही रग अव आयगा । इसमे वे सैकडो आदमी भी, जिनको जेल नही जाना है, काम कर सकेंगे । उनको इतना ही प्रण लेना है कि वे स्वय भूखे रह कर भी उनको खाना देंगे, जिन्होने हडताल की है । हिन्दुस्तान से पैसे आये या न आये, हम लोगो को यहा से उनको खाना देना ही चाहिए । हडतालियो को हिम्मत और ऐसी सलाह देनी चाहिए कि यदि उनके ऊपर लातो के प्रहार हो तो भी वे मुकावला या मुठभेड न करें। इतना काम सभी भारतवासियो से हो सकता है । ऐसा अवसर लौट कर आने वाला नही है । प्रत्येक भारतीय व्रत ले सकता है कि स्वय जितनी वार भोजन करते हो, उसमे से एक वार कम खाकर, पैसे वचाकर, भूखो को अन्न देंगे । हर एक गाव के व्यापारियो का कर्त्तव्य है कि वे अपनी यहा आये हुए किसी भी हडताली को खाना और आश्रय दें और फिर जहा वहुतो को खिलाने की सुविधा की गई हो, वहा उन्हे भेज दें । इस महत्कार्य मे जो हिन्दी अपनी शक्ति भर हिस्सा नही लेगा, उसको मै अभागा समझूगा ।

—सत्याग्रही हिन्दियो का सेवक

ता० १९-११-१३ मो० क० गाधी।"

वापूजी की इस अपील का वडा असर हुआ । जव हम फीनिक्स मे लोगो को खिलाने की चिन्ता मे थे, तव खवर आई कि डरवन मे भारतीयो की एक विराट सभा हुई है और मारित्सवर्ग तथा डरवन के हिन्दू-मुस्लिम व्यापारियो ने वहुत-सा अनाज अपनी दूकानो से निकाल कर दिया है । साथ-साथ हमने यह भी सुना कि हडताल की सारी वातें हिन्दुस्तान पहुच गई है और गोखलेजी महाराज ने तार देकर सूचना दी है कि वह अनाज के लिए इन्तजाम कर रहे है ।

डरवन की सभा के समाचार मिलने के तीसरे या चौथे ही दिन एक वडी खच्चर-गाडी अनाज की वोरियो मे लद कर डरवन से हमारे यहा आई। उस गाडी के साथ थे—श्री सोरावजी, रुस्तमजीकाका के छोटे पुत्र । सैकडो हडताली उस गाडी के पास जमा हो गए । श्री सोरावजी ने वहुत-सा अन्न वहा गिरमिटियो को वाट दिया । फिर कई वोरिया फीनिक्स मे छोडकर गाडी आगे वढाई । वह कुछ अनाज शाम से पहले वहा से आठ-नौ मील दूर माउटेजकव के 'घमोले' (चीनी मिल) पर पहुचा देना चाहते

थे, ताकि वहा पडे लोगो को भी भोजन मिल सके। इन्ही सोराबजी के एक दूसरे बडे पराक्रम के बारे मे बापूजी ने दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के इतिहास मे लिखा है

"एक प्रसग अकित रखने जैसा है। वेरूलम मे बहुत-से मजदूर निकल पडे थे। किसी तरह वे लौट नही रहे थे। जनरल यूकिन अपने सिपाहियो के साथ वहा पर मौजूद था। उन लोगो पर गोली चलाने का हुक्म देने को तैयार था। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजी का छोटा बेटा बहादुर सोराबजी, जिसकी उम्र मुश्किल से १८ वर्ष होगी, डरबन से वहा पहुच गया था। वह जनरल के घोडे की लगाम पकड कर बोल उठा, 'आप गोली चलाने का हुक्म नही दे सकते। अपने लोगो को शातिपूर्वक काम पर लौटाने का जिम्मा मै अपने ऊपर ले रहा हू।' जनरल यूकिन इस नौजवान की बहादुरी पर मुग्ध हो गया और उसने उसको अपने प्रेम का बल आजमाने की मोहलत दी। सोराबजी ने लोगो को समझाया। लोग समझे और काम पर लौटे। इस प्रकार एक जवान की समय-सूचकता, निर्भयता और प्रेम से खून-खच्चर होते-होते बच गया।"

: ६३ :

सूझाई का बलिदान

नित्य नियमानुसार एक दिन दोपहर छापाखाना के कार्यालय मे मै डाक की टिकटे लगाने मे व्यस्त था कि छोटम ने दौडते हुए आकर मगनकाका को खबर दी कि हमारे घर मे एक आदमी आ बैठा है। वह चल नही पाता, उसका हाथ अकड गया है, उसकी पत्नी भी साथ है और सहारा दे-देकर उस आदमी को चलाकर लाई है। वह औरत बार-बार रो पडती है, आदमी का मुह बडा भद्दा है, बार-बार कहता है, 'सेठ से मिलना है।' वह दूसरे हडतालियो के साथ रहने से इकार करता है।

मगनकाका ने छोटम और उसके बाल-साथियो को तो विदा कर दिया और उन बच्चो को समझाया कि वे उस बीमार आदमी को तग न करें। सध्या के समय काम समाप्त होने पर देवदासकाका और मुझे साथ लेकर मगनकाका उस व्यक्ति के पास पहुचे। पूछने पर उसने अपना नाम 'सूझाई' बताया और अपना फटा कुर्त्ता उठाकर मगनकाका को अपनी पीठ दिखलाई।

उसकी सारी पीठ पर दो-दो अगुल की दूरी पर मोटी-मोटी लकीरे उछली हुई थी । कई जगह खाल फट गई थी और माम के लोयडे उभर आये थे। हमसे तो यह देखा नही जाता था ।

मगनकाका के पूछने पर सूर्झाई ने वताया "मा'व ने शैम्बक से मारा है ।" "शैम्बक" गेडे के चमडे से बने हुए हटर को कहा जाता था ।

सूर्झाई ने आगे वताया "हमारे लोग बीच-बचाव न करते तो वह और भी मारता।" वह अधिक नही वोला और शेप बात उसने हमारे समझने और महसूस करने के लिए छोड दी । किन्तु उसके अन्तिम शब्द और भी मर्मवेधक थे "उसने मारा, सो तो कुछ नही , पर और दूसरा कोई आदमी जब उसके हाथ नही आया तब मुझ बीमार को ही पीट डाला, इसमें कौन-सी बहादुरी थी ?"

किन्तु सूर्झाई की स्त्री में सूर्झाई की-सी सहनशीलता और दिमाग की ठडक कहा से आती ? वह रोती थी, बिलखती थी मानो उसके हृदय के दो टुकडे हुए जा रहे थे । उसने कहा, "मेरे पति ने कोई अपराध नही किया । उसने जरा भी विरोध नही किया । बीमारी के कारण वह तीन-चार दिन काम पर नहीं जा सका, बस इतने से ही उस पर यह कहर ढाया गया । वह भी खान से पहले ही निकल गया होता, भाग पाता तो इस मार से बच जाता ।"

मगनकाका ने सब देखा, सुना और हृदय को कडा करके सूर्झाई तथा उसकी पत्नी को सात्वना दी । बाद मे उन्होने हमारी पाठशाला वाले छोटे से मकान की एक कोठरी उनके अलग रहने के लिए खाली कर दी । छोटे-छोटे बालक अपनी खेल-कूद छोडकर उन दोनो की सेवा तथा सहायता करने लगे । जब और हडताली फीनिक्स मे लौट गए तब भी सूर्झाई और उसकी पत्नी फीनिक्स मे टिके रहे, यद्यपि सूर्झाई की पत्नी का उद्वेग कई दिन बीत जाने पर भी कम नही हुआ, फिर भी स्वय सूर्झाई मानो मुनि बन गया था। उसके मुह से हमे कभी 'उफ' भी सुनने को नही मिला। अकस्मात् एक दिन एक गोरा सोल्जर सूर्झाई-दपति को फीनिक्स से ले गया । और एक दिन हमने सुना कि वह अब इस ससार मे नही है । सत्याग्रह का अन्त होने पर उसका मामला चर्चा का विशेप विपय रहा । प्लैटर्स (बाग-मालिको) ने अपना बचाव कैसे किया यह मुझे नही मालूम, किन्तु सूर्झाई मरकर सत्याग्रह के इतिहास मे अमर हो गया । वह अपने पीछे शौर्य और धैर्य का स्थायी प्रकाश छोड गया ।

: ६४ :

फीनिक्स में गोरी पल्टन

फीनिक्स में हडतालियो की सख्या जैसे-जैसे बढती जाती थी, उस पर सरकार की कोप-दृष्टि की आशका भी अधिक होती जाती थी। बहुधा ऐसा लगा करता था कि मगनकाका, श्री वेस्ट और श्री देवी बहन को गिरफ्तार कर लिया जायगा।

इन चर्चाओ से हम बालको को आनन्द ही होता था। मैंने एक दिन मगनकाका से पूछा कि आपकी गिरफ्तारी के बाद हम लोग अकेले हो जायगे, फिर अपने छोटे-छोटे भाई-बहनो की हिफाजत कैसे करेंगे? मगनकाका ने हमे समझाया कि उनके गिरफ्तार होने के बाद साप्ताहिक पत्र तो बन्द हो जायगा, इसलिए काम भी कम रहेगा। फिर तुम लोग छोटे भाई-बहनो को सभालना और श्री गोविन्द स्वामी (जो पहले सोलह सत्याग्रहियो मे थे) की धर्मपत्नी—श्रीमती सेम—के यहा जाकर खेला करना।

उन्होने हमसे यह भी कहा, "मेरे पकडे जाने पर डरबन और मारित्स-बर्ग से लोग यहा आयगे, तुम पर दयाभाव दिखायगे और तुम्हे अपने साथ शहर मे ले जाना चाहेंगे, परन्तु तुम्हारा जाना उचित न होगा। कोई आकर 'इडियन ओपीनियन' पत्र निकालने की बात करे तो तुम वह भी न करने देना। पत्र बन्द होने का समाचार भारत पहुचेगा ही, तब गोखलेजी व्यवस्था कर देंगे।"

मगनकाका की गिरफ्तारी की बात बारबार उठती और प्राय रोज ही ऐसा मालूम होता था कि वह गिरफ्तार कर लिये जायगे, बारबार हमें फीनिक्स के आसपास पुलिस घूमती हुई दिखलाई पडती और बारबार मगनकाका के जाने की तैयारी हो जाती, किन्तु लबी प्रतीक्षा के बाद भी वह प्रसग प्रत्यक्ष नही हुआ।

नए हडताली बडी तादाद मे अब भी चले आ रहे थे। किन्तु उनके मुख पर धैर्य और उत्साह के चिह्न दिखलाई नही देते थे, उन्होने अपनी मानसिक दशा से अन्य सभी लोगो को भयभीत कर दिया था।

लोग आपस मे चर्चाए करते थे और यह अफवाह फैली हुई थी कि यदि आगामी सोमवार तक हडताली अपनी-अपनी कोठियो मे लौट नही

जायगे तो उनकी खूब मरम्मत की जायगी । रविवार को सारी रात घटा बजता रहेगा । उसे सुनने के बाद भी जो काम पर नही पहुचेगे उन्हे गिरफ्तार करके ले जाया जायगा । फौजी लोग आकर डडे मार-मारकर उन्हे वापस ले जायगे ।

कुछ लोग उनमे ऐसे थे जो पुलिस की छाया देखकर भी घबडा जाते थे, किन्तु ऐसो की भी कमी नही थी, जो कहते थे "जब आयगे तब देखा जायगा । यह उनका घर थोडे ही है, गाधी महाराज का घर है ।" बारी-बारी मे भय और समाधान की लहर-सी उठती थी ।

एक दिन झरने के वृक्षो के उस पार मैने सात-आठ घोडे देखे । प्रत्येक पर एक-एक ऊचा तगडा, गोरा सैनिक था । सब छापाखाना की ओर आ रहे थे । उनके पीछे नए-नए घुडसवार भी आते हुए दिखलाई पडते थे । मै प्रेस की दो सीढी उतर कर चार-पाच कदम उन गोरे सैनिको की तरफ बढ रहा था कि वे लोग ठीक प्रेस के दरवाजे की ओर मुडे और एक ने बिल्कुल मेरे सामने घोडा खडा कर दिया । उसकी कमर पर और सीने पर चमडे के चौडे पट्टे थे । उनमे कार्तूसे भरी हुई थी और उसके एक हाथ मे बदूक थी । उसके पीछ दूसरा सवार भी कार्तूसो के पट्टे तथा बदूक लगाये हुए था । बाद के सभी सैनिको के हाथ मे मोटे-लबे डडे थे । पहले घुडसवार ने मुझे अपने पास बुलाया और पूछा, "मिस्टर गाधी कहा है ?"

मैने पूछा, "क्यो ?"

उसने कहा, "मुझे उनसे मिलना है ।"

"मि० गाधी यहा नही है । वह तो जेल मे है ।"

इसपर उसके पीछे के सवार ने कुछ आगे बढकर मुझे समझाया—"हम मि० एम० के० गाधी के बारे मे नही पूछते, मि० मगनलाल के० गाधी के बारे में पूछते है । वह तो यही पर है न ?"

"हा, यही है, प्रेस मे काम कर रहे है ।"

"जाओ उनसे जाकर कहो कि लेफ्टिनेट और कैप्टेन आये है, उनसे मिलना चाहते है ।"

वे सीधे प्रेस मे नही घुसे । उनकी यह शिष्टता मुझे अच्छी लगी ।

कुछ आश्चर्य और कुछ आनन्द की भावना से मै छापाखाना के अन्दर दौड गया और मैने मगनकाका से कहा, "सैनिको की एक बडी पल्टन आई है । श्री वेस्ट के घर की ओर से सारा रास्ता घुडसवारो से छाया हुआ

है। आपको बुला रहे है, वारट लेकर आये दीखते है। उनके पास बदूकें कारतूस, सब कुछ है।" मेरी बात सुनते ही मगनकाका, देवदासकाका आदि छापाखाना से बाहर आये।

छापाखाना के द्वार पर सब इकट्ठे हो गए। मगनकाका एक सीढी नीचे उतरे। लेफ्टिनेंट ने अपना घोडा एक कदम आगे बढाया और बडी स्थी-मोटी आवाज मे बात करने लगा। देवदासकाका और मै मगनकाका से बिलकुल सटकर बात सुनने लगे।

"मगनलाल के० गाधी आप ही है?" लेफ्टिनेंट ने पूछा।

"हा" मगनकाका ने उत्तर दिया।

"मैं आपसे कहने आया हू कि आप इन सब आदमियो से कह दीजिए कि वे यहा से अपनी-अपनी जगह पर लौट जाय, वरना इन्हे बहुत तकलीफ भोगनी पडेगी। इनको राशन देना तो आप बन्द कर ही दीजिए।"

"यह नहीं हो सकता, जो लोग यहा आयगे, उनको अन्न और जगह तो हम देगे ही। हमारा यह कर्त्तव्य है।"

"किन्तु आप इन लोगो को मेरी बात समझाइए। इनसे कहिए कि सोमवार से पहले यदि वे काम पर नहीं चले जायगे तो उनकी बडी दुर्दशा होगी।"

"मैं उनको यहा से लौटने की सलाह नही दे सकता।"

"अच्छा, तो आप मेरे हरएक वाक्य का हिन्दी मे अनुवाद तो उनके लिए कर देगे न? मै बोलूगा तो इन लोगो की समझ मे नही आयगा। और मेरे साथ का दुभापिया कहेगा तो यह सारी भीड उत्तेजित हो जायगी। यदि शांति रखनी है तो जो मै बोलू उसका अनुवाद आप सुना दीजिए।"

"यह बात स्वीकार की जा सकती है, पर मै कुछ करू इससे पहले मुझे मि० वेस्ट से मिलना होगा। उनसे मिलने के बाद ही मै कोई कदम उठा सकता हू।"

"मि० वेस्ट से तो आप नही मिल सकेंगे। उनको गिरफ्तार करके मोटर मे रवाना कर दिया गया है। वह तो अब डरबन पहुचने वाले होगे।"

"क्या मि० वेस्ट पकडे गये? क्यो?"

"हा, उनके नाम वारट था। वे गये।"

"मेरे लिए वारट क्यो नही है?"

"सरकार आपको पकडना नही चाहती। आप हडतालियो को समझाकर लौटा दे, उन्हे न रखे। इतना ही सरकार आपसे चाहती है।"

"ठीक वात है, आपका सदेश मै हडतालियो को सुना दूगा । लेकिन जो यहा आयगे और रहेगे , उनको आश्रय हम अवश्य देगे ।"

तीन-चार मिनट मे यह मारी चर्चा हो गई। इसके वाद मगनकाका ने मुझे तुरन्त घर पर जाकर वच्चो को मभालने की आज्ञा दी । मै घर पहुचा तो वहा इमाम साहव की वडी पुत्री फातिमा वहन सब वच्चो को घेरकर वैठी थी । सभी वच्चे आनन्द मे थे । मेरे पहुचते ही वे चिल्लाने लगे, "हमने मोटर देखी ! हमने मोटर देखी ! उसमे मि० वेस्ट वैठे थे ।"

फातिमा वहन वोली, "हमे तुमसे पहले ही पता चल गया। हमने तो उनको गिरफ्तार होते और लेजाते हुए देखा । लाल मोटर थी । तुम इधर कैसे आए ? "

मैंने प्रेस मे आये हुए घुड-सवारो की वात सुनाई और कहा कि मगनकाका ने मुझे वच्चो को सभालने के लिए भेजा है। यह सुनकर फातिमा वहन ने कहा, "तुम, वेफिक्र होकर जा सकते हो । हम सव बहुत मजे मे है । मगनकाका से कहना कि वह चिन्ता न करे। यहा किसीको घवराहट नही है ।"

मै फिर दौडता हुआ प्रेस की ओर चला। मार्ग मे हमारी पाठशाला के पास, जहा वहुत-सी हडताली औरतो को टिकाया गया था, वडी घवराहट फैली हुई थी । कई स्त्रिया रो रही थी। मै उनके वीच पहुचा तो उनमे से एक वुढिया ने मुझसे पूछा, "क्या, गोरी पल्टन आई है ? वह गोली चलाने वाली है ?" मैंने उसको धीरज वधाया और कहा, "नही गोली वगैरा नही चलेगी, मगनकाका उस पल्टन के मुखिया से वातचीत कर रहे है । सभी लोग प्रेस मे ही है । अगर वे इस ओर आयगे तो हम भी उनके साथ-साथ यहा आयगे। काका आप लोगो को अकेला नही छोडेगे। आप लोग विल्कुल न घवराए ।"

उन्हीमे मे दो-तीन अधेड आयु वाली वहनो ने औरो को साहस दिलाते हुए कहा, "यहा, गाधी महाराज के घर मे, कोई हमे नही सता सकता । डरने की कोई वात नही है। गोरे सिपाही आ गए तो क्या हो गया ?" एक वृद्धा ने मेरी ओर सकेत करके सवसे कहा, "ये वच्चे नही डरते तो हम सव तो वडी है ।"

मै दौडता हुआ प्रेस मे पहुचा । वहा गोरे घुडसवारो ने एक घेरा-सा वना रखा था । उसे पार करके पीछे वाले मैदान मे पहुचा, जहा हडतालियो की वहुत वडी सख्या जमा थी और उनके वीच मे मगनकाका खडे थे।

लेफ्टिनेट अपने घोडे पर वैठा हुआ अग्रेजी मे एक के वाद दूसरा

वाक्य बोलता जाता था और मगनकाका उसका हिन्दी अनुवाद सुनाते थे। लोग लेफ्टिनेंट का भाषण ज्यों-ज्यों सुनते और समझते थे, त्यों-त्यों उनके चेहरों पर निराशा और ग्लानि की छाया बढ़ती जाती थी।

हड़ताली भाइयों के चेहरों से साफ मालूम होता था कि वे अपनी-अपनी कोठियों पर लौटने को तैयार नहीं हैं। फीनिक्स में, 'गांधी महाराज के यहां', गोरे लोगों के अत्याचारों और मारपीट का उनको इतना अधिक डर नहीं था, जितना कोठियों में पहुंचने पर था। पर मगनकाका ने हड़तालियों को फीनिक्स से लौट जाने के लिए जो समझाया था, वह सत्याग्रह संग्राम की निश्चित नीति के अनुसार ही किया था।

सत्याग्रह संग्राम में सत्याग्रह करने वाले पक्ष की ओर से थोड़ी-सी भी अशांति पैदा की जाय, हाथा-पाई या मारपीट हो तो दमन करने वालों का काम सोलहों आने बन जाता है। सत्याग्रहियों का सबसे बड़ा मोर्चा यही होता है कि वे अपने धैर्य, शांति और सौजन्य को मरते दम तक न छोड़ें। अव्यवस्था और दंगेबाजी की ओर बढ़ने से हर हालत में लोगों को रोक देना चाहिए।

मुझे तब यह सब ज्ञान नहीं था, पर बाद में, दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास पढ़ने पर मालूम हुआ कि और ज्यादा गिरमिटियों को हड़ताल करने से रोकने की स्पष्ट हिदायत बापूजी जेल जाते समय दे गए थे।

उन्होंने लिखा है "जेल जाते समय मैं तो साथी लोगों को सावधान कर गया था कि अब वे अधिक मजदूरों को हड़ताल करने से रोकें। मुझे उम्मीद थी कि खान के (कोयले की खान के) मजदूरों की सहायता से संग्राम निपट सकेगा। अगर सभी मजदूर अर्थात् साठ हजार मनुष्य हड़ताल करेंगे तो उन सबको खिलाना-पिलाना भारी पड़ जायगा। इतने लोगों को कूच कराते हुए ले जाने का सामान ही हमारे पास नहीं था। इतने नेता नहीं थे और न इतने पैसे थे। फिर इतने आदमियों को जमा करने पर उन्हें दंगा-फिसाद करने से रोकना असंभव हो जाता।

"परन्तु जब बाढ़ फैल जाय तब किसका बस चल सकता है? सब जगहों से मजदूर लोग निकल पड़े। उन सभी जगहों पर अपनी ही सूझ-बूझ से स्वयंसेवक उपस्थित हो गए।

"सरकार अब बन्दूक-नीति पर तुल गई। लोगों को हड़ताल करने से जबरन रोका गया। उनके पीछे घुड़सवार दौड़े और उन्हें अपने स्थान पर लौटाया। लोग थोड़ा-सा भी दंगा करें तो उन पर गोलियां चलाने की आज्ञा

थी। मजदूर लोग लौटने के खिलाफ हुए। किसीने पत्थर भी चलाये। उनपर गोलिया दागी गईं। बहुत घायल हुए। दो-चार मरे। किन्तु लोगो का जोश ठडा नही हुआ। इन जगहो मे बडी मुश्किल से स्वयसेवको ने हडताल होने से रोकी। सब तो काम पर गये नही कुछ लोग भय के मारे छिप गए, जो लौटे ही नही।"

लेफ्टिनेट की बात का प्राय पौन घटे तक उत्या करके मगनकाका हडतालियो को समझाते रहे और फिर सीधे छापाखाना मे जाकर अपने नित्य के काम मे लग गए। थोडी देर बाद लेफ्टिनेट ने दुबारा उन्हे बुलाया और उनसे कहा, "मै जा रहा हू। मेरी पुलिस के थोडे घुडसवार यहा रुकेगे, और इस समय आपकी जमीन मे सब जगह घूम कर सभी हडतालियो को यहा से रवाना करेगे। इसके बाद मेरे तीन-चार सैनिक यहा रहेगे और कोठियो मे भाग कर आनेवाले हडतालियो को लौटा देगे। हमारी छावनी उस विलायती बबूल वाली टेकरी पर रहेगी। आप मेरे सैनिको की सहायता दीजिएगा।"

मगनकाका ने उत्तर दिया, "आपके सैनिक यहा रह सकते है। हमे कोई एतराज नही। लेकिन जो हडताली यहा आयगे और रहेगे उन्हे हम अन्न और जगह देगे। उनको आपके सैनिको के हवाले करना हमसे नही हो सकेगा। यह हमारा काम नही है। हा, हम आपके सैनिको के समझाने-बुझाने के काम मे बाधा नही डालेगे।"

दोनो अफसर अपने सैनिको के साथ घोडे दौडाते हुए स्टेशन की ओर अदृश्य हो गए। लेकिन वहा उनका आतक छा गया और हडताली धीरे-धीरे वापस लौट जाने का उपक्रम करने लगे।

दिन ढल गया। प्रेस बन्द करके भारी मन से हम लोग घर पर लौटे। हमारा घर ऊची टेकरी पर था, वहा से पश्चिम-दिशा की ओर दूर-दूर तक दिखाई देता था। सामान्यत उन टेकरियो पर छुटपुट झोपडिया और ऊची-ऊची घास के अलावा और कुछ नजर नही आता था। लेकिन उस दिन उन सब पर नीचे-ऊपर तक आदमियो का सचार हो रहा था। उस दिन सध्या के समय बाग-काम मे मेरा मन नही लगा। मै एक चबूतरे पर बैठा देर तक लौटते हुए हडतालियो के प्रस्थान को एक टक देखता रहा।

समूचे पश्चिम आकाश मे सध्या की लाली फैलने लगी थी। छोटे-मोटे जो बादल इधर-उधर लहरा रहे थे, लाल-लाल हो उठे थे, मानो हडतालियो के मन का क्रोध और उनके दिल का उद्वेग उन बादलो मे प्रतिबिंबित हो रहा हो। पक्ति बाध कर आकाश मे सुदूर यात्रा के लिए जाने वाले पक्षियो

की तरह क्षितिज में लुप्त होती हुई, मानव-पंक्तियों को मैं देखता ही रहा। धीरे-धीरे बादल स्याह पड़ने लगे। आकाश में अंधेरे ने अड्डा जमाना शुरू कर दिया। फिर भी हमारे आश्रम में लेकर टेकड़ियों की चोटियों तक सारी पगडंडियों पर आदमियों की कतारें चली ही जा रही थीं। उस दिन भर मेरे में विषाद और ग्लानि का जो अनुभव हुआ था वह आज भी मैं नहीं भूला हूं। मैं सोचता रहा कि "क्या ये लोग इसी नतीजे के लिए इतना दुःख उठा कर यहां आये थे? फिर अपने मन में मैंने आशा रखी कि ऐसे बहादुर लोग कुछ सोच-समझकर ही लौट गए होंगे। आज यहां मारकाट न हो, गोली न चले इसलिए वे सोमवार के दिन की हाजरी लगवाने गये होंगे। हाजरी देकर फिर से यहां आने की तरकीब उन्होंने सोची होगी।" परन्तु यह तो बच्चे की एक कोरी कल्पना ही थी। हड़ताली लोग गये सो गये ही। ऐसे शांत और निर्दोष लोगों का दर्शन मेरे लिए पुनीत स्मृति बनी रही।

: ६५ :

अंग्रेज मित्र और शत्रु

बापू के पास अनेक गोरे मित्र आते-जाते थे, परन्तु फीनिक्स-निवासी कहे जा सके, ऐसे दो ही गोरे वहां पर थे और दोनों ही पक्के अंग्रेज थे। एक थे मि० वेस्ट और दूसरे मि० टोड। मि० वेस्ट फीनिक्स आश्रम के स्वजन बने हुए थे और उनका पूरा परिवार हम लोगों में घुल-मिल गया था, लेकिन मि० टोड हमारे आश्रम के रूखे पड़ोसी ही थे। जब कभी टोड दिखलाई पड़ते तब अकेले ही नजर आते थे। हाथ में लम्बा 'शैम्बक' (गेंडे की खाल का कोड़ा) लिये हुए वह घोड़े पर अपनी प्लैन्टेशन का चक्कर काटते रहते थे। मीलों तक फैली हुई लंबी-चौड़ी भूमि पर खेती करनेवाला किसान भला धरती पर पैर कैसे रख सकता है? वह तो दूसरों के कंधों पर सवार होकर, अपने कर्मचारी और मजदूरों का मलीदा बनाकर ही महा-कृषि को जोत-बो सकता है और उससे धन प्राप्त कर सकता है।

अपरिमित धन-पिपासा में झुलसा हुआ मनुष्य, मानवता को भूलकर किस प्रकार मनुष्येतर प्राणी बन जाता है, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण मि० टोड थे।

इधर श्री वेस्ट ने बापूजी से दीक्षा प्राप्त की थी। धन-लिप्सा का त्याग

करके अपने निर्वाह भर के लिए इतना सीमित वेतन लेते थे जो एक अग्रेज परिवार को क्या, वहा बसनेवाले भारतीय परिवार को भी पूरा नही पड सकता था। स्वेच्छा से त्याग, सतोप-वृत्ति और सतत परिश्रम तथा घर मे खेती के अध्यवसाय के कारण श्री वेस्ट वापूजी जैसे महामानव के श्रेष्ठ अतेवासी बन गए थे। उनमे साधुता का विकास हो रहा था। ठीक इसके विपरीत धन के अति लोभ के कारण श्री टोड मानो अग्रेज जाति के नाम को बदनाम करने पर तुले हुए थे। हमारे गिरमिटिये, भारतवासी भाइयो के लिए तो श्री टोड मानव न रहकर दानव से बन गए थे। उनके नाम से ही हडतालियो का हृदय काप उठता था। जब अग्रेज सैनिको की पल्टन फीनिक्स आकर हडतालियो को वापस ले गई, तबसे श्री टोड का फीनिक्स मे चक्कर काटना बडी चिन्ता की बात बन गई थी। बच्चो को उनकी लपेट मे आने से बचाने के लिए बहुत सावधानी रखनी पडती थी।

हडताली भाइयो के चले जाने के बाद मगनलालकाका उद्विग्न मन से कहने लगे, "वेस्ट पहले पकड लिये जायगे, इस बात की मुझे स्वप्न मे भी कल्पना नही थी। रोज की घटनाओ का हाल वेस्ट ही गोखलेजी के पास भेजते थे। जान पडता है, सरकार से यह बर्दाश्त नही हुआ।"

बात चल ही रही थी कि श्रीमती वेस्ट वहा आ गई। अत्यन्त गद्गद् स्वर मे उन्होने सारी बाते मगनकाका से कह डाली। उन्हे और उनकी वृद्धा माता को श्री टोड के बर्ताव की बहुत शिकायत थी। उन्होने बताया कि श्री वेस्ट को पकडाने का सारा षड्यत्र टोड का था। शाम को घर आकर ज्यो ही श्री वेस्ट चाय के लिए मेज पर बैठे, एक लाल मोटर घर के सामने आकर खडी हो गई। उसमे बदूक आदि से लैस तीन सैनिक बैठे थे। मोटर के पीछे चार घुडसवार थे, जिनमे एक खुद टोड थे। टोड तुरन्त दो कदम आगे आये और उन्होने श्री वेस्ट को अपने पास बुलाया। वेस्ट मोटर के पास पहुचे तो उनको वारट दिखाया गया। वारट पर दस्तखत करके वह कपडे पहनने के लिए घर मे लौटे, उनके पीछे-पीछे एक सोल्जर भी घर मे घुस आया। पूरे पाच मिनट का मौका भी नही दिया गया। 'वारट है, डरबन जाना है'—इन शब्दो के अलावा वेस्ट घर वालो से कुछ बात नही कर सके। चाय और नाश्ता मेज पर रखा का रखा रह गया। और वह लाल मोटर श्री वेस्ट का अपहरण करके चोर की तरह डरबन की दिशा मे अदृश्य हो गई।

श्री वेस्ट को गिरफ्तार करवाकर टोड का यह साहस नही हुआ कि

वह हडतालियो के वीच मे से होकर छापाखाना तक घुडसवारो की पल्टन के साथ जाय। वह तो मोटर को विदा कराकर फौरन ही अपना घोडा दौडाता हुआ भाग गया।

इस वात को सुनाते-सुनाते श्रीमती वेस्ट सिसक-सिसक कर रोने लगी। उनका दु ख सकारण था। फीनिक्सवासी भारतीय महिलाए तो वरसो से जेल जाने के गीत गाती थी और अपने स्वामी, भाई तथा पुत्रो को राष्ट्रीय गीत गा-गाकर जेल के लिए विदा करती रहती थी। परन्तु श्रीमती वेस्ट जैसी निर्दोष महिला पर, उनके निर्दोष पति की गिरफ्तारी का प्रसग निरभ्र आकाश मे वज्रपात-सा था। सत्याग्रह सग्राम भारतीय लोग कर रहे थे। सरकार गोरो की थी। वह अपनी जाति के अग्रेज गृहस्थ पर हाथ डालेगी, ऐसी विशेष कल्पना नही थी। ऐसी हालत मे पति की गिरफ्तारी उनके लिए असह्य हो जाय, यह स्वाभाविक था।

मगनकाका ने श्रीमती वेस्ट को भरसक तसल्ली दी और यह निर्णय किया गया कि देवी वहन अर्थात् श्रीमती वेस्ट की वडी वहन उनको डरवन ले जाय, श्री वेस्ट से मुलाकात करने की कोशिश करे और जैसा श्री वेस्ट वताए, आगे के लिए घर की व्यवस्था करें। इस प्रकार हम वाल-गोपालो की पालिका देवी वहन भी फीनिक्स मे चली गई और हमारा रसोई आदि का काम भी वढ गया। श्री वेस्ट के पकडे जाने के वाद दो दिन तक उनके वारे मे कोई समाचार नही मिलो। दो दिन वीतने के वाद रात को खवर आई कि जिस दिन उनकी गिरफ्तारी हुई हवालात मे सारी रात उनको भूखा रखा गया। दूसरे दिन अदालत मे पेश किया गया और सात दिन की जमानत पर छोडा गया। वहा के सत्याग्रह सग्राम मे जमानत पर छूटने का चलन नही था। परन्तु श्री वेस्ट के अग्रेज होने के कारण वह अनुचित नही माना गया।

तीसरे दिन सध्या के समय फकीरा भाई वदहवास दौडते हुए आये और वोले, "चलो, चलो, श्री वेस्ट वहुत ही खतरे मे है। टोड ने हटर लेकर उनका रास्ता रोक लिया है।" तुरन्त ही मगनकाका और देवदास-काका दौडे। प्राय आध घटे वाद मैने देखा कि लाल घोडे पर एक सुसज्ज, घुडसवार, मगनकाका, देवदासकाका और वेस्ट-दम्पति आ रहे है। मगनकाका और देवदासकाका के मुख पर स्मित था और श्रीमती वेस्ट के मुख पर वडी घवराहट।

किस्सा यह था कि जमानत पर रिहा होने के वाद जव श्री वेस्ट सपरिवार फीनिक्स लौटे तव स्टेशन के सामने टोड हटर लेकर खडा हो

गया और हवा मे हटर घुमा कर उसने वेस्ट मे कहा कि जरा रेल की हद से वाहर तो आओ, चमडी उधेड डालूगा। हमारे आश्रम का रास्ता मीलो तक टोड के प्लेन्टेशन मे से होकर गुजरता था, इसलिए टोड साहव की धमकी मे श्री वेस्ट स्तब्ध हो गए। वे लौटकर स्टेशन जा बैठे। स्टेशन-मास्टर एक भला अग्रेज था और हमारे आश्रम का काम वडी हमदर्दी मे करता था। उसने टेलीफोन करके अगले स्टेशन माउन्टेजकम्ब मे एक सैनिक को वुलाकर, उसकी सुरक्षा मे श्री वेस्ट के आश्रम जाने की व्यवस्था कर दी।

माउन्टेजकम्ब मे चीनी का जो वडा कारखाना था, उसका मालिक टोड साहव मे कही वडा जमीदार था। उसका नाम था कैम्पवेल। उसकी ख्याति थी कि वह वडा भला है और तीन पौंड के कर को हटा देने के पक्ष मे है। हडताल तो उसके यहा भी हुई थी। किसी वहाने गोली भी चली थी और एक हडताली मारा भी गया था। फिर भी कैम्पवेल ने अपना सतुलन नही खोया था। उसने अपने यहा शाति वनाए रखने के लिए सरकार मे एक फौजी टुकडी मगा रखी थी। उसी टुकडी के घुडसवार ने वेस्ट-परिवार को हिफाजत मे फीनिक्स पहुचाया था।

अगले दिन सवेरे ही अपने घर पर ताला डालकर श्री वेस्ट मय परिवार के डरवन चले गए। देवीवहन उन सवको पहुचाकर फिर से फीनिक्स लौट आई तथा उन्होने हमारे लिए मातृत्व का अपना काम जारी रखा।

जव से हडताली लोग गये, फीनिक्स मे तीन-चार सैनिक अड्डा जमाए ही रहे। एक तगडा डच जवान छापाखाना के दरवाजे पर कागज की गठरी पर आसन लगाकर दिन-भर वैठा रहता था। कोई दो सप्ताह के भीतर फीनिक्स मे एक भी हडताली वाकी न रहा। फिर से फीनिक्स विलकुल निर्जन और सूना वन गया।

एक दिन मगनकाका ने एक आनन्द का समाचार सुनाया "गोखले महाराज ने एक वहुत भले और विद्वान् पादरी को और उनके साथ उनके एक घनिष्ठ मित्र को, जो वेस्ट साहव के स्थान पर फीनिक्स मे काम करेंगे, हिन्दुस्तान से रवाना कर दिया है। थोडे ही दिनो मे वे लोग यहा आ जायगे। अव मै पकड लिया जाऊगा तो भी तुम लोग अकेले नही रहोगे।"

हम वालको ने रेवरड सी० एफ० एन्ड्र्यूज़ तथा उनके साथी मि० डब्ल्यू० डब्ल्यू० पियर्सन के नाम रटने शुरू कर दिए।

: ६६ :

सादगी का कठोर संकल्प

वापूजी को अपने वीच पुन पाकर हम लोग सत्याग्रह-सग्राम और अपने जेलवासी वधुओ को घडी भर के लिए भूल कर आनन्द मे मग्न हो गए। लेकिन वापूजी जेल से छूट कर विना एक क्षण का भी विलम्व किये सत्याग्रह के काम मे जुट गए। हडतालियो के कूच के समय उनकी दुवली-पतली काया योगाग्नि मे समिधा की तरह जल रही थी। उनके मुख की हड्डिया वाहर निकल आई थी। उनके हाथ-पैर इतने पतले पड गए थे मानो ये उनके थे ही नही। फिर भी रिहा होते ही उन्होने काम मे दिन-रात एक कर दिए।

जेल से निकल कर वापूजी ने देखा कि अवोध गिरमिटियो ने अकल्पनीय और अनुपम वलिदान दिए थे और सरकार ने अकथनीय और निर्मम अत्याचार किया था। ज्यो-ज्यो यह कहानी वापूजी सुनते गए उनकी देह मे आग-सी लगती गई। किंतु क्रोध किया जाय तो किस पर? सारी मुसीवत की जड तो एक प्रकार से वह खुद ही थे। अहिंसा के युद्ध और भीषण-से-भीषण कष्ट को चुपचाप सहन करने का पाठ भी तो उन्हीने पढाया था!

रिहाई के वाद जव वह वा सहित केपटाउन चले गए तो फीनिक्स-आश्रम के विद्यार्थियो के लिए सूचनाए देते थे और जमनादासकाका के पत्रो द्वारा हम लोगो को उनकी साधना एव तप का भान होता रहता था।

जमनादासकाका ने केपटाउन से मगनकाका के नाम कई पत्र भेजे थे। उन पत्रो का सार, जो कुछ मुझे याद रह गया है, अपने शब्दो मे यहा दे रहा हू

वापू का तप वडा भारी है। फलाहार तो है ही और वह भी एक ही जून। फिर वा की सेवा मे हर समय खडे रहते है और दोपहर की कडी धूप मे केपटाउन की कोलतार की वनी हुई पक्की सडको पर कई मील नगे पैर चलते है। उनके पैरो के तलुवे नाजुक है, सडको का कोलतार मध्यान्ह मे वहुत गर्म हो जाता है। जहा जाते है, पैदल ही चलने का आग्रह रखते है। समझौते के सिलसिले मे वातचीत करने के लिए उनको कई जगह जाना पडता है। इस पर भी पैरो मे जूते न पहनने का व्रत जरा भी ढीला नही करते, मानो शरीर के ऊपर होने वाले कष्टो की ओर उनका कुछ ध्यान ही नही जाता। वापू के इस भारी तप का प्रभाव केपटाउन के कई गोरो के ऊपर काफी

पड रहा है। उनके हृदय पिघल जाते है और बडे-बडे घराने के गोरे स्मट्स के पास जाकर कहते है, 'अब इन भारतीयो की समस्या का निबटारा शीघ्र ही करदे तो अच्छा। हमारे कारण गाधी को और भी कष्ट उठाना पडे, यह ठीक नही है।'

अब सत्याग्रह की बलिवेदी पर अपने जीवन की आहुति चढाने वाले उन गरीबो के साथ और उनके परिवार वालो के टूटे हुए हृदयो के साथ तादात्म्य स्थापित करने के लिए बापूजी ने अपनी तपस्या और त्याग मे वृद्धि करने का निश्चय किया। वह तीन घटे से अधिक नही सोते थे। आहार मे अल्प-से-अल्प फलो पर निर्भर थे। इतना ही नही, पहनावे मे भी उन्होने बडा भारी परिवर्त्तन कर डाला। उन्होने मद्रासी गिरमिटियो के समान लुगी और कुरता धारण करने तथा नगे पैर और नगे सिर रहने का व्रत ले लिया।

बापूजी के मन मे अनेक शहीद बस रहे थे। पौन शताब्दी की आयु का बूढा हरबससिह कुछ दिन जेल मे बापूजी के साथ रहा था। बापूजी ने उससे जेल से लौट जाने का आग्रह किया था, लेकिन वह वीर सत्याग्रह से हटने को राजी नही हुआ और आखिर जेल मे ही उसने अतिम सास ली। बाहर एन्थोनी मुत्तु का बाप और अन्य हडताली वीर गोली के शिकार हुए थे। गोली से घायल एन्थोनी मुत्तु, उसका छोटा भाई और सिसकती हुई उसकी विधवा माता जब फीनिक्स आए तब उनका दुख देखा नहीं जा सकता था। सूर्झाई का किस्सा भी कम खेदकजनक नही था। इसके उपरात बापूजी के छूटने के तीसरे ही दिन जोहान्सबर्ग मे कुमारी वालीआमा की जेल से रिहा होते ही मृत्यु हो गई थी। इन सारी बातो का असर बापूजी के हृदय पर खजरो के घावो से भी अधिक हुआ। कुमारी वालीआमा का बलिदान स्वेच्छा से हुआ था। वह अठारह वर्ष की बालिका बीमार होते हुए भी जेल से रिहा होने को तैयार नही हुई थी और उसका चल बसना उसकी मा तथा उसकी सखियो के लिए असह्य होगया था।

खौलते हुए तेल के कडाहे मे कूद पडने वाले परम वैष्णव-भक्त सुधन्वा बापूजी के लिए नित्य ही एक ध्यानमूर्त्ति बने हुए थे। असहनीय कष्ट मे भी अन्तर मे शीतलता का आनन्द भोगने की अभिलाषा अक्षुण्ण रखी जाय, यह बापूजी ने सत्याग्रह-भावना की चरम सीमा निर्धारित की थी। इसलिए अपने या अपनो के दुख-कष्ट चाहे कितने ही असह्य क्यो न हो, बापूजी भूलकर भी शोक, खेद, विलाप आदि को टिकने नही देते थे। रोनेवालो के साथ यदि बापूजी खुद भी आसू गिराने लगे तो सत्याग्रह-सग्राम का और बलिदान का सारा तेज ही मारा जाय। दूसरी ओर

सेनापति की कठोरता को जल्लादी की छाया से अछूता रखने के लिए मर्माहत हृदयो के साथ समभाव स्थापित किये विना भी कैसे चल सकता था ?

इस सबध मे बापूजी के अतर मे जो उग्र विचारधारा बह रही थी उसकी कुछ झाकी उन बातो मे मिलती है जो रिहाई के बाद प्रथम बार फीनिक्स आने पर बापूजी ने आधी रात के समय मगनकाका से की थी।

"मेरे कहने पर भोले और निरक्षर हजारो आदमियो ने अपनी आहुति दी है। मेरे लिए उनकी जो श्रद्धा थी उसीके बल पर ये लोग सत्याग्रह-सग्राम के दावानल मे कूद पडे। देखा न जा सके, ऐसा भीषण कष्ट उन्होने भोगा है। इनसे अलग मै कैसे रह सकता हू ? अब मुझे इनमे से एक बनकर रहना चाहिए। चाहे गोरो के बीच जाना पडे, चाहे राजधानी मे, जबतक सत्याग्रह के इस युद्ध का अन्त नही होता, मै कोट-पतलून नही पहनूगा, न नेटकाई ही लगाऊगा। सफेदपोश समाज मे यह मर्यादाहीन माना जाय तो कोई चिन्ता नही। इनेगिने मनुष्यो मे मुझे विशेष रस नही है। मुझे तो इन हजारो दुखी गिरमिटियो के बीच एक बनकर रहना है। इस सत्याग्रह के कारण जो विधवाए हुई है, उनके आसू पोछने के लिए इतना तो मुझे करना ही चाहिए। कल सवेरे से लुगी और एक कुरता ही मेरा वेश रहेगा। चाकू, पेसिल, कागज, रूमाल आदि चीजे रखने के लिए कल डरबन जाकर एक बगल का थैला सिलवा लूगा। लुगी, कुरता अभी आज ही तैयार कर दो।"

मगनकाका ने दलील करते हुये कहा, "लुगी के बदले धोती पहने तो ठीक न होगा ? घूमने-फिरने मे वह अधिक अनुकूल रहेगी। फिर हमारा मूल पहनावा भी वही है।"

बापूजी ने समझाया, "बात सही है। मुझे धोती पसन्द भी है, परन्तु इस समय सवाल गिरमिटियो का है। उनमे से अधिकतर लोग मद्रासी है। मेरी लुगी फटी नही रहेगी, इतना अन्तर रहेगा। वे लोग अधिकतर कुछ-न-कुछ सिर पर बाधते है, किन्तु हम लोगो ने यह पहले से ही छोड दिया है, तो उसे दुबारा शुरू करने की जरूरत नही है। जो मरे है, उनकी याद मे शोक के चिन्ह-रूप मूछो का मुडन भी जरूरी है। पैरो मे चप्पले भी अब मै नही पहनूगा। असख्य गिरमिटियो को पैरो के लिए कहा कुछ मिलता है ?"

बापूजी ने अब चप्पलो को भी छोडने की बात की तो मगनकाका ने कहा, "लेकिन आपके पैर उन लोगो की तरह अभ्यस्त नही है। पैरो की एडियो मे यहा के तीखे ककड कदम-कदम पर चुभेगे। इससे आपको ज्यादा कष्ट होगा और चलना तो दिन भर रहेगा ही।"

"ठीक बात है, मेरे पैर के तलवे तुम सब लोगो से ज्यादा मुलायम है और बेवाई सदैव रहती है, किन्तु जब मै और लोगो को ऐसे दुख मे ढकेल दू तब कुछ कष्ट तो मुझे भी उठाना चाहिए न ? बहुत पीडा होगी तो थोडा धीमे चला जायगा, यही न ?

इस प्रकार फीनिक्स के एकान्त कोने मे मध्य रात्रि के समय मगन-काका तथा औरो की साक्षी मे बापूजी ने वह कदम उठाया। बाद मे वे लगोटीबाबा के रूप मे विख्यात हो गए। भारत मे आकर जब उन्होने कच्छ धारण किया तब तो उन्हे महात्मा की उपाधि मिली। त्याग की महिमा उस देश मे कितनी अधिक थी, इसकी कल्पना भारत मे बैठे करना असम्भव है। जहा सूटबूट के बिना नगर के मार्गो पर चलना अभद्र माना जाय वहा वस्त्र-त्याग एक प्रकार से दीर्घ अनशन से भी कठिन कसौटी की बात थी। रास्ता चलने मे किसी को उपवास का पता नही चल सकता, परन्तु जो व्यक्ति बरसो तक बैरिस्टरी का चोगा पहन कर डरबन और जोहान्सबर्ग-जैसे शहरो मे सुप्रसिद्ध हो चुका था, वह अपना नित्य का सूट उतारकर कफनी और लुगी पहने तो यह कम आलोचना की बात नही थी। वहा की आग्ल जाति के बीच रहकर ऐसा परिवर्त्तन करना बापूजी का ही साहस हो सकता था।

हमारे देश-भाइयो ने बापूजी के इस परिवर्त्तन का स्वागत उत्साह से नही किया। फिर भी लोगो पर इसका गहरा असर पडा ही। लोगो मे नम्रता बढी और भारत-माता की आन बनाये रखने के लिए सकल्प मे दृढता आई। तीन पौड के कर विरोधी-आदोलन की समाप्ति के बाद जब विलायत जाने के लिए फीनिक्स से बापूजी ने प्रस्थान किया तब भी लुगी-कफनी मे वहा से विदा हुए। जोहान्सबर्ग छोडने के दिन उन्होने कोट-पतलून पहना, ऐसा हमने सुना, परन्तु उसका तो फोटो देखकर ही सन्तोष करना पडा।

मध्यरात्रि के निश्चय के अनुसार प्रात काल मे ही नहा-धोकर बापूजी ने अपना नया वेश धारण किया और मूछे भी निकाल दी। उस समय बापूजी के मुख पर जो कान्ति चमक रही थी, उसे देखकर हम सहम गए। हसना या रोना कुछ भी नही हो सका। थोडी देर बाद जब बापूजी डरबन के लिए चले तब उनको नगे पैर चलते देख कर ऐसा दुख हुआ जैसा उनके नये वेश के कारण नही हुआ था।

घर से बाहर निकलते ही मिट्टी मे उभरे हुए ककड उनके तलवो मे चुभने लगे। तलवो की चमडी बहुत मुलायम होने के कारण दो-दो

तीन-तीन कदम चलने पर ही उनकी पीड़ा इतनी बढ जाती थी कि अपने शरीर का सन्तुलन बडी सावधानी से उन्हे सभालना पडता था। यह अच्छी बात थी कि उन्होने अपने हाथ मे पतली, लम्बी लकडी ले रखी थी। इसलिए एडियो मे दर्द बढने पर वह लाठी के सहारे अपने को सभाल सकते थे। उन्होने स्टेशन तक का लम्बा मार्ग ऐसे ही कष्ट के साथ पार किया, परन्तु इतना दुख सहते हुए भी उनका ध्यान अपने साथ चलने वालो से बातचीत करने मे ही लगा हुआ था। काम के चितन-मनन के आगे पैरो की तकलीफ को महसूस होने का उन्होने थोडा-सा भी मौका नही दिया।

बापूजी के दुबारा डरबन पहुचने के बाद हमे खबर मिली कि जनरल स्मट्स ने जिस कमीशन की नियुक्ति की है उससे न्याय पाने की भारतीयो को उम्मीद नही है। इस वजह से बापूजी ने और श्री पोलक ने मिलकर उस कमीशन के बारे मे अपनी बात स्मट्ससाहब को लिख भेजी है। उसमे उनसे साफ-साफ कहा गया है कि कमीशन की नियुक्ति करने मे जहा सब-के-सब अपने मन के ही आदमी रखे है, वहा एक ऐसा भी व्यक्ति नियुक्त किया जाय जिसके लिए हम लोग कहे। यदि आपका आग्रह ऐसा ही हो कि उस कमीशन मे आपकी अपनी गोरी जाति के आदमी के अलावा और किसी को रखा ही न जाय तो भारतीय ऐसा आग्रह नही रखेगे कि किसी भारतीय को लिया ही जाय। किन्तु जिस व्यक्ति पर भारतीयो का विश्वास हो ऐसे किसी अग्रेज को भी शामिल करना आप स्वीकार नही करेगे तो उस कमीशन के सामने गवाही न देने के लिए भारतीय लोग मजबूर हो जायगे।

साथ-साथ यह खबर भी आई कि इस प्रकार जेल से छूटना बापूजी को बिल्कुल पसन्द नही आया है। वह स्मट्ससाहब के उत्तर की प्रतीक्षा दिसम्बर मास की समाप्ति तक करेगे, बाद मे दुबारा जेल चले जायगे और जेल जाने के लिए वह अग्रेजो का नया वर्ष लगते ही दुबारा डरबन से पैदल यात्रा आरम्भ करेगे, जो चार्ल्सटाउन की पहली यात्रा से भी बडे पैमाने पर होगी।

बापूजी और श्री पोलक की बात हमारे देश-भाइयो मे से सभी प्रधान व्यक्तियो ने सोच-विचार कर स्वीकार कर ली और जबतक स्मट्ससाहब भारतीयो के बताये हुए किसी व्यक्ति को कमीशन मे लेना स्वीकार न करे तबतक कमीशन के सामने गवाही न देने की बाकायदा शपथ बहुत से भारतवासियो ने ले ली। उसका असर यह हुआ कि जिन लोगो ने शपथ नही ली, लोग उन्हे देशहित के विरोधी समझने लगे।

: ६७ :

हिंसक और अहिंसक हड़ताल

जोहान्सवर्ग की वहनो ने न्यूकेसल की कोयले की खान मे जाकर जव भारतीय गिरमिटियो से हडताल करवाई, तव सबसे पहले हमे पता चला कि सत्याग्रह-आदोलन का एक प्रखर प्रयोग हडताल भी है। फिर भी, जहा तक मुझे याद है, वापूजी ने फीनिक्स मे चलने के दिन तक हडताल के सबध मे मगनकाका से भी कोई विशेष चर्चा नही की। न यह सूचना ही दी कि हडताल के सहारे सत्याग्रह-सग्राम को विराट रूप देना है।

पिछले प्रकरणो मे हमने देखा कि सत्याग्रह-सग्राम के आवश्यक, अनिवार्य या उग्रतम रूप मे हडताल का आयोजन नही किया गया था। सत्याग्रह-सग्राम का नेतृत्व करनेवालो ने केवल कानून-भग करके सरकारी जेल भरने के हेतु हडताल की प्रवृत्ति चलाई थी। मजदूरो को वेतहाशा उकसाकर हडताल को वढाने की पैरवी नही की गई थी। हडताल चारो ओर फैली तो वह अपने आप ही फैली थी और उत्तरदायी सत्याग्रह-सचालको ने हडताल के दावानल को अत्यधिक वढने से रोकने पर अपनी शक्ति लगाई थी।

सत्याग्रह-सग्राम मे हडताल भी एक वहुत जोरदार प्रयोग है, यह वात अनपढ और अविकसित वुद्धिवालो की समझ मे भी वडे-वडे उपदेशो के विना ही आ जाती थी, परन्तु वास्तव मे वह कैसी कठिन और गभीर वात है, इसका पता हमे तव चला जव भारतीयो की हडताल के तीन महीने पूरे होते-होते दक्षिण अफ्रीका के रेलवेवालो ने भी समस्त रेलगाडियो मे हडताल कर दी। दक्षिण अफ्रीका की रेलवे मे काम करनेवाले छोटे-वडे सभी कर्मचारी गोरे तो थे ही, इसके अलावा शायद अग्रेज लोग ही उनमे ज्यादा थे। उन्होने स्मट्स-सरकार से झगडा करने का वही अवसर अच्छा समझा, जव तीन पौड कर-विरोधी-आदोलन मे गिरमिटिए मजदूरो ने विराट हडताल कर रखी थी।

दोनो हडतालो के वीच उत्तर-ध्रुव और दक्षिण-ध्रुव के समान जो परस्पर विरोधी भेद मैने उस समय अपनी छोटी आखो से देखा था वह जीवन भर के लिए मेरे अन्तर की गहराई मे समा गया। हम लोगो की हडताल थी अहिंसक सघर्ष की धीर-गभीर, ओजस्वी और पावन-कारी धारा और गोरे लोगो की हडताल थी हिसक दावानल की विकरालज्वाला।

वह सोमवार का दिन था। अनेक महीनो के बाद फीनिक्स के सभी बालकों को पर्याप्त अवकाश मिला था। बापूजी ने हमारा मन दिवाली के उल्लास और आनन्द से भर गया था। बापूजी छूट कर फिर से हमारे बीच आ गए थे और फीनिक्सवाली मडली भी जेल से रिहा होकर आनेवाली थी। उनके स्वागत के लिए फीनिक्स के सभी बच्चो को डरबन जाने की अनुमति मिल गई।

नहा-धोकर, अपने बढिया-से-बढिया कपडो और शानदार जूतो से सज कर हम चले। जब हमारी गाडी तीसरे स्टेशन पर पहुची तो वहा हमने एक अजीब तमाशा देखा।

फीनिक्स स्टेशन पर हमने चार-पाच सैनिको को रेलवे के अहाते में खास-खास जगहो पर पहरा देते हुए देखा था किन्तु यहा तो आठ-आठ, दस-दस कदम की दूरी पर रेल की पटरी के दोनो ओर बन्दूक पर सगीन चढाये हुए गोरे फौजी पहरा देते दिखलाई पडे। हर मील-दो-मील पर सैनिको की रावटिया लगी थी। उनमे न मालूम कितनी बन्दूके जमा थी और कारतूसो से भरे हुए पट्टो की तो मानो प्रदर्शनी-सी हो रही थी।

इस तमाशे को देखकर मुझे वह बात याद आ गई जो फीनिक्स स्टेशन पर गोरे सैनिक ने हमें बताई थी। उसका वह लाल-लाल मुख भी याद आ गया जो रेलवे-हडतालो का नाम लेते ही तमतमा उठता था। उसने बताया था कि "नेटाल प्रान्त मे तो रेलवे के इजन-ड्राइवर, फायरमैन, गार्ड और मजदूर कुछ ठीक है, परन्तु केपकालोनी और ट्रान्सवाल प्रान्त मे वे बहुत बेहूदेपन पर उतर आये है। केपटाउन से जोहान्सबर्ग जाने वाली डायमड एक्सप्रेस को उन्होने उलट दिया है जोहान्सबर्ग का सारा स्टेशन जला डाला है और वहा के रेलवे आफिसो को तोडने-फोडने के लिए हडतालियो की भीड-की-भीड धावा कर रही है। यही नही, जोहान्सबर्ग के बाजारो मे नागरिको को भी वे बुरी तरह सता रहे है। दूकानो पर तोड-फोड करते है। केपकालोनी और ट्रासवाल प्रान्त मे कई हफ्तो से फैली हुई यह बदअमनी अब यहा नेटाल प्रान्त मे भी जोर पकड रही है।" उस सारजट ने हमें यह भी बताया कि "आज कल ट्रेनो की सख्या आधी भी नही रह गई है। केवल उतनी ही गाडिया चलाई जाती है, जिनके लिए हरएक पटरी पर एक-एक फौजी को पहरे पर लगाया जा सके। इन हड-तालियो का उपद्रव रोकने के लिए हमको हरदम सतर्क रहना पडता है। गाडी चलाते-चलाते इजन के ड्राइवर बीच मे ही गाडी खडी कर देते है और उतर कर भाग जाते है। इसलिए इजनो में भी सैनिको को सगीन

तान कर उनकी छाती पर खडा रहना पडता है। रेलवे का जो नौकर बाकायदा काम करने को तैयार होता है उसे हडताली लोग काम छोड देने के लिए मजबूर करते है। अगर इजन-ड्राइवर और गार्ड का काम सैनिक करते है, तो हडताली रेल की पटरी ही हटा देते है। जहा जोड हो वहा उखाड देते है और पटरियो पर साबुन का पानी डाल कर गाडी उलट देने की साजिश करते है। ऐसी हालत मे सरकार के सामने फौजी कानून का ऐलान करने के अलावा कोई चारा ही नही है।"

इतनी बात करने के बाद वह डच लडका अग्रेज लोगो के अनुचित स्वभाव की आलोचना करने लगा। उसने कहा, "अग्रेज बडे लोभी और जिद्दी होते है, अपना जरा-सा वेतन बढाने के लिए इन्होने कितना भारी ऊधम मचा रखा है। क्या वे अच्छे तरीके से अपने वेतन मे बढती की माग नही कर सकते थे? बडी-बडी इमारतो को जला देने और मारकाट करने मे उन्हे जरा भी लज्जा नही आती। सरकार को परेशान करके वे लोग अपनी मनमानी कराना चाहते है परन्तु सरकार इस तरह क्यो झुकेगी? अगर सरकार को झुकना ही है तो वह तुम भारतीयो के सामने झुकेगी। तुम्हारे हडताली लोग किसी का कुछ नही बिगाडते। वे खुद भूखे रहते है, भारी कष्ट उठाते है, परन्तु सरकार को नही सताते है। सरकार को ऐसे भले आदमियो की माग को स्वीकार करना ही चाहिए। ये उपद्रवी रेलवे-वाले अगर यह समझते है कि वे अपनी मारकाट और धाँधली के बल पर अपना वेतन बढवा लेगे तो वे भूलते है। उनको तो हम अपनी सगीनो से सीधा कर देगे।"

अग्रेजो के खिलाफ जब वह लडका बहुत बोला तब देवदासकाका ने मुझे बताया कि यह पूरा 'बोर' है। दक्षिण अफ्रीका मे बसे हुए हालैड-निवासी बोर कहलाते थे। पूछने पर जब पता चला कि वह लडका मुश्किल से अठारह वर्ष का है, तब हम लोगो ने उससे कहा, "तुम तो बिलकुल लडके से हो, तुम्हारे बस मे ये बडे-बडे रेलवे हडताली कैसे आयँगे?" उसने अपना मुक्का उठा कर कहा, "बस मे क्यो न आयगे! देखो यह कलाई! हमारा हाथ जब चलेगा तो उनके छक्के छूट जायगे।"

मूसल के समान उसकी मोटी, मजबूत भुजा हम देखते ही रह गए। और समय होता तो उससे हम और भी बात करते, परन्तु उस समय तो उसकी बात छोडकर हमे अपने काम पर जाना पडा।

डरबन जाते हुए रेलगाडी मे हम लोगो को उस बोर सैनिक की बात याद आ गई। ज्यो-ज्यो डरबन नगर पास आता गया, रेलवे-

मार्ग पर गोरी पलटनो का और भी सतर्क पहरा नजर आया। उस दृश्य को जब याद करता हू तो महात्मा टाल्स्टाय की पुस्तक मे पढा हुआ यह वचन बिल्कुल सही मालूम देता है—"रेलगाडी जैसे भारी यत्र सचमुच सगीनो की नोक पर ही चल सकते है। बिना फौज के हमारे मजदूर-कारीगरो को वस मे नही रखा जा सकता और अत्यन्त भारी यत्र-व्यवस्था चल नही सकती।" कम-से-कम हम लोग तो एक प्रकार से बन्दूक की नोक पर सवार होकर ही उस दिन सकुशल डरबन पहुचे। जब हम डरबन के उपनगर अमगेनी स्टेशन पर पहुचे तो वहा बिल्कुल सूना था। वैसे वहा अनेक इजनो की दौड-धूप रहा करती थी, बहुत ऊचे ढेरो से इजनो मे कोयला भरते अनेक गोरे मजदूर दिखाई पडते थे, परन्तु उस दिन वहा मुश्किल से दो-एक मजदूर ही नजर आये और उनके सिर पर भी चमकती हुई सगीनो के साथ उससे दुगने सैनिक सवार थे।

डरबन स्टेशन पर उतरते ही हम डरबन की कुख्यात जेल की ओर चल पडे। हमे डर था कि कही हमारे फाटक पर पहुचने के पहले ही हमारी फीनिक्सवाली मडली रिहा न कर दी जाय और हम उसका बाकायदा स्वागत करने से वचित न रह जाय। जेल के फाटक पर जब पहुचे तो हमने देखा कि डरबन के नागरिक हजारो की सख्या मे अपने लोकप्रिय सेठ श्री रुस्तमजीकाका का स्वागत करने के लिए जमा हो गए है और शहर की ओर से और भी लोग चले आ रहे है।

: ६८ :

सत्याग्रहियों की प्रथम टोली की रिहाई

डरबन जेल के फाटक पर सवेरे से ही कडी धूप मे हजार-दो-हजार आदमी घटो तक तपते रहे। जरा-जरा देर मे फाटक खुलता था, सब आतुरता से उस ओर देखते थे, परन्तु जेलवालो ने सत्याग्रहियो की टोली के पुरुषो को ठीक मध्यान्ह मे रिहा किया।

उन लोगो के बाहर आने का क्रम व्यवस्थित था। सबसे पहले मेरे पिताजी, जो आयु मे सबसे बडे थे, बाहर आये। उनके पीछे श्री रावजीभाई पटेल से लेकर रामदासकाका तक सब सत्याग्रही बडे से छोटे के क्रम मे रिहा किये गए। अन्त मे ऊचे व भारी बदनवाले श्री रुस्तमजी सेठ के दर्शन हुए, जिनको डरबनवासी भारतीय अपने यहा के नगरपति के समान

मानते थे। अपने नगर के सेठ, सेवक और त्यागी श्री रुस्तमजी को देखकर डरवन के भारतीयो का हृदय कृतज्ञता मे भर गया और उनके दर्शन होते ही चारो दिशाए 'वन्देमातरम्' और 'हिप-हिप हुर्रे' के नारो से गूज उठी। भीड ने उनको घेर लिया। अपने पिताजी के चरण छूने के लिए मै बडी मुश्किल से उनके पास तक पहुच सका। पिताजी के मुख पर ऐसी प्रसन्नता मैने पहले शायद ही कभी देखी थी। पिताजी के बाद मैने अपने सहपाठियो से मिलने की कोशिश की, पर तबतक भीड का प्रवाह तेजी से स्टेशन की ओर चल पडा था। किसी तरह फीनिक्स से आये हुए हम सभी बच्चे अपनी कतार सभाल पाए और भीड से निकलकर रास्ते के किनारे आ गए। स्टेशन पहुचने की सबको बडी जल्दी थी। इसलिए लोग दौड-से रहे थे। मैरित्सबर्ग से ट्रेन आने का समय हो गया था। उसमे पूज्य कस्तूरबा आनेवाली थी। उनको लिवाने बापूजी स्वय मैरित्सबर्ग गये थे। कैलनबैक भी बापू के साथ थे।

हमारे स्टेशन पर पहुचने के पहले ही ट्रेन आ चुकी थी। बडी मुश्किल से भीड के पीछे, रास्ते के एक किनारे खडे-खडे हमारी मडली बा-बापू के दर्शन कर पाई। स्टेशन के ऊचे चबूतरे पर एक ओर बापूजी और श्री कैलनबैक खडे थे, उनके सामने कस्तूरबा, मेरी माता, मेरी चाची और जयाकुवर बहन खडी थी। श्रीमती पोलक और दूसरे दो-तीन अग्रेज सज्जन पूज्य बा का अभिवादन कर रहे थे। कैमरेवाले इस ऐतिहासिक दृश्य को स्थायी बनाने की कोशिश मे लगे थे।

स्टेशन के प्लेटफार्म के नीचे स्वागत के लिए आये हुए भारतीयो का मानो सागर उमड रहा था। परन्तु वह अपने हर्षावेग को मर्यादा के अन्दर रखे हुए था। इतनी भारी भीड होने पर भी कोई व्यक्ति निश्चित पक्ति से आगे बढकर बापूजी या बा के पास नही जा रहा था।

जेल से निकली हुई पूज्य कस्तूरबा की दुबली काया को देखकर सब लोग अवाक् रह गए थे। मानो सबके हृदय से एक साथ टीस उठ रही हो! कस्तूरबा इतनी बदल गई थी कि पहचान मे ही नही आ रही थी। उनकी वह परिचित साडी ही थी जिससे पता चलता था कि वह मूर्त्ति पूज्य बा की है। उनका गोल-सुडौल मुख लबा और पतला हो गया था, हाथ पैर-को देखकर जान पडता था कि केवल अस्थि-पजर ही खडा है। पूज्य बापू को जेल से रिहा होने के बाद जब हमने देखा था, तब उनकी सूखी काया को देखकर हम स्तभित रह गए थे परन्तु बापू की कृश देह फुर्ती और तेज से भरी हुई थी। लेकिन बा की देह तो सूखकर काटे-सी हो गई थी।

डरबन जेल के फाटक से सत्याग्रही लोग बाहर आये उस समय जो हर्ष वातावरण मे आ गया था वह डरबन स्टेशन पर नही रहा। बा-बापू के दर्शन से लोगो के चित्त पर गभीरता छा गई।

बा-बापू का स्वागत किस प्रकार किया जाय, जनता अपने हृदय की भावनाओ को कैसे प्रकट करे, इस बात का निर्णय नही हो रहा था। गोखले-जी महाराज के आगमन के समय जिस प्रकार उनकी बग्घी के घोडो को अलग करके उत्साही युवक खुद गाडी खीचकर ले जाना चाहते थे, उसी प्रकार बा-बापू को खुली गाडी मे विठाकर डरबन के नागरिक उनका जलूस निकालना चाहते थे। परन्तु बापूजी ने उनकी बात नही चलने दी। दस-पन्द्रह मिनट बाद बा-बापू की घोडा-गाडी धीरे-धीरे रुस्तमजी सेठ के घर की ओर चली। पीछे-पीछे हजारो मनुष्य 'हिप-हिप हुरें' और 'वन्दे-मातरम्' के नारे लगाते हुए चलने लगे।

सेठजी के मकान पर जलूस के पहुचने पर पहला काम तसवीर लेने का था। फीनिक्स से चले हुए सोलह सत्याग्रहियो के प्रथम जत्थे का और बापूजी तथा कैलनबैकसाहब का फोटो लिया गया। सध्या के समय सेठजी के मकान पर छोटी-सी स्वागत-सभा हुई।

दिनभर सेठजी के मकान पर लोग आते-जाते रहे। सब मित्र आपस मे मिलने-जुलने मे मग्न थे, परन्तु इस सारे आनन्द के पीछे मन पर बोझ का जो अभाव चाहिए, वह वहा नही था। छोटे-बडे सभी के चित्त मे इस बात का भार था कि यह मिला-भेटी दो-चार दिन की ही है। शीघ्र ही सबको पुन जेल जाना है। स्मट्स सरकार से अभी और भी भीषण मोरचा लेना है। व्याख्यानो मे और आपसी चर्चाओ मे यह बात दोहराई जा रही थी कि स्मट्स ने जो कमीशन बैठाया है वह हमारे लिए असम्मान-पूर्ण है, उसका जोरो से बहिष्कार करना चाहिए, एक भी भारतीय को इस माया-जाल मे नही फसना चाहिए।

सत्याग्रहियो में जो छोटे थे उनका मन सेठजी के यहा होनेवाली-बात चीत और सत्कार-समारम्भ मे जम नही रहा था। सध्या की ट्रेन से सबको फीनिक्स जाना था, इसलिए वे लोग डरबन नगर मे अपने मित्रो और सबधियो आदि से मिलने के लिए व्याकुल थे। मै भी अपने उन सह-पाठियो के साथ नई-नई जगह देखने के लिए उत्सुक था। जिनके भी घर हम जाते थे, बडे उत्साह से हमारे जेल-यात्री सहपाठियो का स्वागत होता था। मीठा मुह करने को भी कुछ-न-कुछ मिल जाता था और साथ-ही-साथ सभी जान-पहचानवाले अगली जेलयात्रा के लिए भी हमारे

सहपाठियो के प्रति शुभकामनाए प्रदर्शित करते थे।

डरबन शहर के घने और अन्दर के मोहल्लो को मैने उस दिन प्रथम बार देखा। शहर मे गोरे लोगो के रहने का जो विभाग था उसमे और भारतीय लोगो के रहने के विभाग मे जमीन-आसमान का अन्तर था। गोरी नगरी बहुत सुन्दर थी। हर जगह पक्की सडके, उन पर कूडे-कर्कट का नाम नही। सडक के दोनो ओर व्यवस्थित और उज्ज्वल मकानो की चित्ताकर्षक पक्तिया। गोरो का सारा मोहल्ला शात और शोरगुल से मुक्त रहता था। हमारे भारतीय भाई जहा बसते थे वहा की सडके अच्छी नही थी। कूडा हर जगह नजर आता था। जहा-तहा आदमी थूकते नजर आते थे। मकान अव्यवस्थित तो थे ही, गदे भी दीखते थे। परन्तु एक बात मैने और देखी। भारतीय मोहल्लो मे रौनक थी, चहल-पहल थी। लोग आपस मे खुलकर मिलते थे, बाते करते थे और अपनी दुकानदारी के काम मे व्यस्त होते हुए भी अपने भाई-बिरादरो का परस्पर सम्मान करते थे। वातावरण मे जीवन और उत्साह की झलक थी, जब कि उन श्वेत पथो पर से, जहा केवल गोरे लोगो के बसने की ही व्यवस्था थी, गुजरते हुए मन मे यह सवाल उठता था कि इन गोरो को इस तरह अकेलेपन मे जाने क्या आनन्द आता होगा! न इनके मोहल्लो मे कही चहल-पहल है, न कही आदमियो की मिला-भेटी नजर आती है, न कही उत्साह और उमग की बहार दीख पडती है।

श्वेत वर्ण प्रजा और अश्वेत वर्ण प्रजा के बीच स्वभाव का, जीवन के आनन्द का जो भेद है उसका सही विश्लेषण मै उस समय अपनी बाल-बुद्धि से नही कर पाया, परन्तु दोनो बस्तियो मे घूमने से मेरे चित्त पर जो प्रभाव पडा वह स्थायी हो गया। मुझे निश्चित रूप से याद है कि गोरी बस्ती अपनी हिन्दुस्तानी बस्ती के मुकाबले मे मुझे उदास मालूम दी थी। वहा पर सूना और स्वार्थपटु वातावरण अरुचिकर जान पडता था।

: ६९ :

बा की बीमारी और बापू द्वारा अनन्य सेवा

मैरित्सबर्ग जेल मे अपने शरीर की समस्त मास-मज्जा को दक्षिण अफ्रीकी सरकार के नाम बलि चढाकर जब पूज्य बा फीनिक्स लौटी तो उन्हे रोग-

शय्या पर पड जाना पडा। उनकी बीमारी लगातार गभीर होती गई और फीनिक्स में सर्वत्र चिन्ता छा गई। बा की इस समय की जेल की दुर्बलता के सबध मे बापूजी ने 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' मे निम्न पक्तिया लिखी है

"स्त्रियो की बहादुरी की क्या कहे। सबको नेटाल की राजधानी मैरित्सबर्ग मे रखा गया। यहा पर उनको काफी दुख दिया गया। खुराक मे उनकी कुछ भी सभाल नही रखी गई। मजदूरी के लिए उनको धोबी का काम दिया गया। करीब अन्त तक बाहर मे खुराक देने की सख्त मनाही रही। एक बहन को निश्चित आहार लेने का व्रत था। बडी मुसीबत से उसको वह खुराक देने का निश्चय किया गया। परन्तु वह इतना खराब था कि मुह मे नही दिया जा सकता था। जैतून के तेल की अनिवार्य आवश्यकता थी। प्रथम तो वह मिला ही नही। फिर मिला तो पुराना और कडुआ। अपने खर्च से मगाने की विनती की गई तो उत्तर दिया गया कि यह कोई होटल नही है। जो मिलेगा सो खाना होगा। यह बहन जब जेल से निकली तब केवल ककाल बन गई थी, महाप्रयास से वह बची।"

पहले बताया जा चुका है कि फीनिक्स मे कोई वैद्य-डाक्टर नही था, बाहर मे कभी किसी को बुलाया नही जाता था। किन्तु एक दिन बा की अवस्था बहुत ही चिन्ताजनक हो गई। तब मगनकाका और देवदास-काका मध्य-रात्रि को फीनिक्स स्टेशन गए और उन्होने डरबन को टेलीफोन करके डाक्टर से आने की विनती की।

डाक्टर तुरन्त आये, परन्तु उन्होने बा की क्या चिकित्सा की, बा ने डाक्टरी दवा ली या नही और डाक्टरी उपाय से उनको क्या लाभ हुआ, इसकी जानकारी न मुझे तब हुई, न आज है। कुछ ऐसा याद है कि उन दिनो बापूजी फीनिक्स मे अनुपस्थित थे और सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बध मे बातचीत करने के लिए ट्रासवाल गए हुए थे। आठ-दस दिन तक पूज्य बा की अन्तिम घडिया प्रतीत होती रही और फीनिक्स का वातावरण बहुत गभीर रहा। फिर मृत्यु का खतरा कुछ कम हुआ, परन्तु बीमारी महीनो तक बहुत नाजुक बनी रही। इस अवसर पर देश का, सत्याग्रह का, आश्रम का तथा सरकार के साथ समझौते की बातचीत का काम करते हुए भी बापूजी ने अहर्निश बा की सेवा किसी परिचारिका से भी बढकर की।

भारत मे आने के बाद, विशेषत नमक-सत्याग्रह के बाद, बापूजी के सैकडो हजारो चित्र लिये गए है। पिछले दिनो मे तो कैमरावाले उनके पीछे-पीछे हर समय रहा करते थे। उन सफल चित्रो मे से बापूजी का एक

ऐसा चित्र भी प्रकाशित हुआ है, जिसमें वा वापूजी की चरण-सेवा कर रही है और वापूजी स्टूल पर बैठे किसी विचार मे लीन है। पास मे ही सरदार श्री वल्लभभाई पटेल आते हुए दीख रहे है। जब यह चित्र वापूजी ने देखा तब तो वह खिलखिलाकर हँस पडे और चित्र लेनेवाले को उलहना देते हुए बोले, "वा मेरी सेवा करती है इसका तो प्रदर्शन तुमने चित्र के द्वारा कर दिया, परन्तु मैंने वा की सेवा की है उसका प्रसग तुमने कैमरे मे नही पकडा।"

वापूजी ने वा की सेवा करते समय बहुत ऊची भावना को अपनाया था।

मेरी माताजी अपना सारा समय वा की शुश्रूषा मे उनकी चारपाई के पास ही विताती थी और हरएक छोटा-मोटा काम करने का आग्रह रखती थी। परन्तु जब वापूजी वहा मौजूद रहते थे तब वह उनकी एक नही चलने देते थे। उनके हाथ मे काम ले लेते थे और कहते थे, "मुझे ही यह करने दो। वा को सतोष कैसे दिया जाय, इसका पता मुझे ज्यादा है। इस समय तो मैंने फुरसत निकाल ली है। जब मैं इस काम के लिए पहुच न सकू तब तुम करना।"

वापूजी दिनभर में अनेक वार थूकदानो और मलमूत्र के पात्र उठाकर वा के कमरे से बाहर आते थे और खेत मे बाकायदा मैला आदि दवाकर तथा मल-पात्र को धोकर वापस वा के पास ले जाते थे। उस सफाई के काम मे सहायता देने के लिए यदि मेरे पिताजी, मगनकाका, रावजीभाई या और कोई आगे बढता तो वापूजी उन्हे रोक देते थे और स्वय ही वह काम पूरा करते। इसी प्रकार रसोईघर मे भी वा के लिए पीने का पानी गरम करना हो या चूल्हे का और कोई काम हो तो वापूजी अपने हाथो से ही करते।

पानी मे जरा-सा कूडा दीख जाय, बरतनो पर कही कालोच या चिकनाई का अश हो या और कोई थोडी-सी भी गफलत हुई हो तो वापूजी दुबारा उसकी सफाई बडी सावधानी से स्वय करते थे और ऐसे छोटे प्रमाद के कारण वा का जी जरा भी न दुखे, इसका पूरा खयाल रखते थे।

वापूजी सारा समय वा की चारपाई के पास खडे रहते थे। कुर्सी या स्टूल डालकर बैठे हो, उनके मुख पर थकावट या उदासी दीख पडती हो, ऐसा प्रसग मुझे याद नही।

वा की बीमारी इतनी गभीर होने पर भी उनके लिए वापूजी के उस मकान मे अलग कमरा नही था। जिस बडे खड मे हम सब लोग

एक साथ बैठकर भोजन करते थे उसी कमरे के एक सिरे पर, उत्तर दिशा मे, पर्दा डालकर आड कर ली गई थी। चारपाई या तख्त भी वहा पर नही था। पढाई के समय बच्चो के बैठने के लिए जो दो-तीन बेचे थी उन्हें इकट्ठा रखकर तख्त बना लिया गया था और उनपर बा का बिस्तर था। जब हम लोग भोजन के लिए बैठते थे तब जरा भी बातचीत नही करते थे, ताकि बा के आराम मे बाधा न हो। किसी के हाथ से यदि कभी बर्तन टकरा जाते तो उनपर चारो ओर से नाराजगी बरसती थी, क्योकि बा की कमजोरी इतनी बढ गई थी कि इतनी जरा-सी आवाज भी सहन नही होती थी।

बालको को बा के पास जाने से रोका जाता था, परन्तु मै कभी-कभी देवदासकाका के साथ पर्दे के उस तरफ चला जाता था। देवदास-काका बा के सिरहाने जरा देर रुककर बहुत चिंतित और दुखी होकर लौटते थे।

बा की जीवन-नैया इस प्रकार जब जीवन और मरण के बीच डोलती रही और बापूजी बा की सेवा मे जुटे रहे, उन्ही महीनो मे बापूजी को राजनैतिक काम मे भी बहुत समय देना पडा, क्योकि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का सग्राम अब गाधी-स्मट्स समझौते का रूप ले रहा था।

बा की यह प्रथम बीमारी नही थी। सन् १९०८ के अन्तिम चरण में जबकि सत्याग्रह-सघर्ष का ट्रासवाल मे आरम्भ ही हुआ था और बापूजी दो महीने की जेल की सजा काट रहे थे, उन्होने जेल से बा को पत्र लिखा था

९ नवम्बर, १९०८

"तेरी तबियत के बारे मे श्री वेस्ट ने आज तार भेजा है। मेरा हृदय चूर-चूर हो रहा है। परन्तु तेरी चाकरी करने के लिए आ सकू ऐसी स्थिति नही है। सत्याग्रह की लडाई मे मैने सब-कुछ अर्पित कर दिया है। मै वहा आ ही नही सकता। जुर्माना भर दू, तभी आ सकता हू। जुर्माना तो हरगिज नही दिया जा सकता। तू साहस बनाए रखना। कायदे से खाना खाओगी तो ठीक हो जाओगी। फिर भी मेरे नसीब से तू जायगी ही, ऐसा होगा तो मै तुझको इतना ही लिखता हू कि तू वियोग मे, पर मेरे जीते-जी, चल बसेगी तो बुरी बात न होगी। मेरा स्नेह तुझ पर इतना है कि मरने पर भी तू मेरे मन मे जीवित ही रहेगी। यह मै तुझको निश्चय-पूर्वक कहता हू कि अगर तेरा जाना ही होगा तो तेरे पीछे मै दूसरी स्त्री करनेवाला नही हू। यह मैने तुझे दो-एक बार कहा भी है। तू ईश्वर पर

आस्था रखकर प्राण छोडना। तू मरेगी तो वह भी सत्याग्रह के अनुकूल है। मेरी लडाई केवल राजकीय नही है। यह लडाई धार्मिक है, अर्थात् अति स्वच्छ है। इसमे मर जाय तो भी क्या और जीवित रहे तो भी क्या ? तू भी ऐसा ही जानकर अपने मन मे जरा भी वुरा नही मानेगी, ऐसी मुझे उम्मीद है। तुझसे यह मेरी माग है।"

ईश्वर-कृपा से सन् १९०८ मे वा रोगमुक्त हो गईं।

वापू के लिए वा भी कितनी व्यथित थी, इसका पता नीचे की वात से चलता है

"सन् १९०८ मे वापू की प्रथम वार की गिरफ्तारी का समाचार जव फीनिक्स पहुचा तव वापू की सवसे वडी पुत्रवधू—श्री हरिलाल गाधी की पत्नी—के सीमतोन्नयन-सस्कार का घरेलू उत्सव मनाया जा रहा था। पुरुष-वर्ग का भोजन हो चुका था और महिलाओ की पक्ति वैठ रही थी। उसी समय वापूजी के पकडे जाने का तार आया। भोजन के लिए दूधपाक विशेष रूप से वना था, जो वा को अत्यन्त प्रिय था। भोजन चलता रहा परन्तु वा का जी उचट गया। भोजन समाप्त होने तक एक अगुली भी उन्होने उसमे नही लगाई। और उसी समय मन-ही-मन सकल्प करके दूध का सर्वथा त्याग कर दिया। चाय भी विना दूध के ही लेने लगी। वापूजी के रिहा होने तक उन्होने यह व्रत निभाया। जव स्वास्थ्य के लिए उनसे दूध लेने का आग्रह किया गया तो उन्होने कहा कि जेल जाने वाले को घी-दूध नही मिलता तो मै कैसे ले सकती हू ?

"यही नही, वा ने और आहार भी छोड दिया। दिनो तक केवल मक्का के नमकीन दलिये पर ही निर्वाह किया। वहुत कह-सुन कर थोडी डवलरोटी लेने पर उनको राजी किया जा सका, पर वह भी उन्होने रूखी ही ली। फलत उनका स्वास्थ्य एकदम गिर गया। जव वापू घर आये तव उन्होने वा के इन नियमो को छुडवाया।"

यह हुई वा की सन् १९०८ की वीमारी की वात। उस वीमारी के मुकावले सन् १९१४ की वीमारी कही अधिक कठिन और भयावह थी। मेरी माताजी के एक पत्र से उनकी इस वीमारी का कारण और पूरा स्वरूप समझ मे आ जायगा।

सेवाग्राम, ता १७-१२-४७

"चि प्रभु,

"तुम्हारे पत्र का उत्तर तुम्हारे पिताजी ने कल दिया है, पर मैंने उसे देखा नही, इसलिए अपने विचार इस पत्र मे लिख रही हू।

" पहले तो कानून (दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दू-मुस्लिम विवाह को गैर-कानूनी घोषित करने वाले) का जिक्र होता रहा और उसके कारण बारबार यह चर्चा की जाने लगी कि 'यदि साहस हो तो' बहनो को भी जेल जाना चाहिए। इसी प्रकार की चर्चा पू बापू ने जोहान्सबर्ग से लौटकर पहले पू० बा से और बाद में हम लोगो से की, ऐसा मुझे स्मरण है। पू० बा को जेल भेजने के लिए पू० बापू का विचार शिथिल था, क्योकि उस समय बा का स्वास्थ्य बिल्कुल कमजोर था। उनको अत्यार्तव का रोग था, इसलिए उनका शरीर क्षीण हो गया था। दूसरा कारण यह था कि पू० बापू के सात दिन के प्रथम उपवास के समय पू० बा ने भी साढे चार महीने के लिए दिन मे एक ही बार भोजन का व्रत कर रखा था। सार यह कि पू० बा के स्वास्थ्य और उनके आहार के नियम आदि को देखते हुए उनको जेल भेजने का दुस्साहस बापूजी कैसे कर सकते थे? इसलिए दलील दे दे कर पू०बापू ने बा को जेल जाने के लिए तैयार किया था, यह मेरी जानकारी से बाहर की बात है। मुझे जहा तक पता है बा स्वय ही अपनी इच्छा से जेल जाने के लिए तैयार हुई थी। जब बापूजी ने उनसे अपने शरीर की निर्बलता का विचार करने को कहा तब बा ने तीव्र होकर जवाब दिया था कि 'ये सब बहुएँ जा सकेगी और मै न जा सकूगी? काशी (लेखक की माता) तो मुझसे कमजोर है। जब वह जेल के कष्ट बर्दाश्त करेगी तो मै क्यो न करूगी?' बा के इस प्रकार आग्रह करने पर बापू उनको जेल भेजने के लिए सहमत हुए।

"जेल जाने से पहले अनेक बार जेल के सम्बन्ध में चर्चाएं होती ही रही थी, इसलिए निश्चय से बताना कि बा-बापू के बीच यही बात हुई, कठिन है। पर तथ्य की बात यह है कि पू० बा के स्वास्थ्य के कारण ही पू० बापू को उन्हें लडाई के लिए तैयार करने की हिम्मत नही हो रही थी। जब बा ने लडाई में जाने का निश्चय कर ही लिया तब पू० बापूजी ने उनको जेल के कष्टो को उठाने के लिए तैयार किया। एक बार बा ने पूछा कि जेल में अगर खाने के लिए फल न मिलें तो? पू० बापू ने कहा कि फलाहार न दिया जाय तबतक अनशन करना, किन्तु फलाहार के व्रत का आग्रह मत छोडना। ऐसा करने मे यदि मृत्यु हो जाय तो भले! और सचमुच बा

को जेल मे तीन-चार उपवास करने भी पडे थे। इसके बाद मैरित्सवर्ग की जेल मे जो फलाहार वा को दिया गया वह वहुत कम मात्रा मे और असतोष-प्रद था। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन महीने का कारावास कर जव पू० वा जेल से निकली तव सख्त बीमार पड गई और पू० वापूजी ने भी तव उनकी आश्चर्यजनक सेवा की। यह बात तो इनको याद होगी ही।

शुभेच्छुक मा के आशीर्वाद।"

मेरे पिताजी ने उसी पत्र में लिखा था
"वा का लिखा हुआ ठीक जान पडता है।

पिता के आशीर्वाद।"

मेरी माताजी ने ऊपर वाले पत्र मे जो लिखा है उसके अतिरिक्त मैरित्सवर्ग जेल के अनुभव सुनाते हुए उन्होंने मुझे वताया

"जव हम लोग मैरित्सवर्ग जेल मे थे और वापू को एक वर्ष की कैद की सजा होने की खबर आई तव वा को वहुत घवराहट होने लगी। उनकी आखो मे आसू वह चले। रोके रुके ही नही। उनके मन मे भय वैठ गया कि इतनी लम्बी सजा से वापू फिर लौट भी पायगे या नही? वापूजी उनसे पहले रिहा हो गए, इस बात का पता तो उन्हे तव चला जव जेल से बाहर आने पर उन्होंने वापू को फाटक पर देखा।

"एक तो वा का आधा उपवास रहता था, ऊपर से वापू की भारी चिन्ता। इस कारण वह सूखने लगी। नतीजा यह हुआ कि उनका शरीर हड्डी का ढाचा मात्र रह गया।

"अपनी ऐसी विपदा मे भी बा हम लोगो को नित्य ढाढस दिलाती रहती थी। जेल का खाना हमारे लिए एक बडी आफत-सा था। परन्तु जव हम भोजन कर चुकती थी तो वह हमे सन्तोप के शब्द सुनाती थी कि चलो, सकट के दिनो मे से एक दिन कम हुआ। हम लोगो को जेल के कपडे सीने का काम मिला था। हमारे काम मे भी वह हाथ बटाती थी और बाकायदा जेल का काम पूरा करवाती थी। फुरसत के समय मे सबको भजन-कीर्तन मे लगाये रखती थी।"

विद्वान न होने पर भी वा की महत्ता वापूजी के समान ही थी। वा की आत्मा उतनी ही ऊची थी। उन दोनो के वीच की आपस की श्रद्धा, परस्परसेवा करने की उमग और एक दूसरे के लिए त्याग करने की अगाध निष्ठा अद्‌भुत थी।

वा और वापू के वीच इतनी घनिष्टता होने पर भी देशसेवा

का काम आने पर बापूजी कैसी दृढता से अपने कर्त्तव्य और धर्म का पालन करते थे इसका एक रोमाचकारी प्रसग श्री रावजीभाई पटेल ने अपनी पुस्तक 'गाधीजीनी साधना' में दिया है। ट्रासवाल की राजधानी प्रिटोरिया में सरकार के साथ सत्याग्रह-सग्राम को समाप्त करने के सबध में प्राथमिक समझौता हो रहा था। दोनो ओर से मौखिक बातचीत में अपनी शर्ते बताई गई थी। कच्चा मसविदा भी बन गया। सिर्फ बाकायदा पत्र का आदान-प्रदान बाकी रह गया था। इस बीच फीनिक्स से तार पहुचा—"कस्तूरबा बहुत बीमार है और उनकी हालत बडी खतरनाक हो गई है। आप तुरन्त आवे।" बापूजी ने यह तार मि० एड्रयूज को बताया। एड्रयूज साहब ने पढते ही कहा, "हमें इसी समय यहा से फीनिक्स चल देना चाहिए।"

बापू ने उत्तर दिया, 'यह कैसे हो सकता है ? जहा कौम के लिए समझौते की बात चल रही है और चौबीस घटे के भीतर पत्रो का आदान-प्रदान हो जाने की उम्मीद है, वहा किसी भी कारणवश मुझे यहा से चले जाने का और सारी हिन्दी कौम के लिए होने वाले समझौते को खटाई में डाल देने का खतरा उठाने का क्या अधिकार है ? मैं अपना कर्त्तव्य छोड कर यदि एक दिन पहले पहुच जाऊगा तो वह बच जायगी, इसका भी क्या भरोसा ? जिस काम को हाथ में लिया है उसे पूरी तौर से निपटाकर ही यहा से हटा जाय, इसके सिवा और कुछ हो ही नही सकता ?"

बापूजी के इस निश्चय को देखकर मि० एड्रयूज बडी चिता में पड गए और उन्होने टेलीफोन पर जनरल स्मट्स से फीनिक्स से आये हुए तार का जिक्र किया। जनरल ने कहा, "मि० गाधी अवश्य जा सकते है। हमारा समझौता अब निश्चित है।"

मि० एड्रयूज ने बापू का सकल्प बताते हुए उनसे कहा, "काम तो होने पर है, फिर भी मैं गाधीजी का पत्र आपके पास ले आऊ और आप अपना पत्र तैयार करके तुरन्त मुझे दे दे तो अच्छा।"

कार्यभार में अत्यधिक व्यस्त होने पर भी जनरल स्मट्स ने इसे स्वीकार कर लिया और तुरन्त सरकार की ओर से पत्र लिख दिया। रात को ट्रेन से एड्रयूज साहब बापू को साथ लेकर फीनिक्स के लिए चल पडे।

बापूजी फीनिक्स पहुचे तब कस्तूरबा की अन्तिम घडिया मालूम हो रही थी। डाक्टर का सहारा लेने की बात बापूजी ने त्याग दी। अपने ढग से ही चिकित्सा आरम्भ कर दी और बा खतरे से पार हो गई।

स्मट्स-गाधी समझौते के बाद पार्लामेंट की बैठक के समय बापू को केपटाउन जाना पडा था। तबतक बा की बीमारी चल रही थी, इसलिए

वापू उन्हे अपने साथ ही लिवा ले गए। वहा पर वा की स्थिति फिर नाजुक हो गई। वा के साथ ही केपटाउन जाने के लिए देवदासकाका भी व्याकुल थ, परन्तु वापू ने उनको फीनिक्स मे ही रखा और आश्रम के कार्यक्रम में ढील न करने का आग्रह किया, वापू केपटाउन से पत्रो द्वारा उनको साहस दिलाते रहे। उनमे से एक पत्र निम्न प्रकार है

फागण सुद ९,१९७०, ई० स० १९१४

चि० देवदास,

तुम अपने अक्षर सुधारना। वा का स्वास्थ्य तो वहुत विगड गया है। वह और मै भी मानता हू कि डाक्टरी दवाई का वहुत अनिष्ट असर हुआ है। उसने ही इच्छा की थी कि डाक्टरी दवाई की जाय। दो या तीन गिलसिया पीने के वाद वीमारी सख्त हो गई। अव कुछ खाया नही जा सकता। अन्त मे मौत आ जाय तो भी हम सवने तो मौत से न डरने का निश्चय किया है। इसलिए चिन्ता करने की कोई वात नही है। शरीर तो गिरने वाला है ही और फिर अपने गिरने के दिन ही वह गिरता है। और उसी के अनुसार हमे उपाय सूझते है। फिर आत्मा तो अमर है। अव शरीर की ऐसी स्थिति जानकर हमें साधुता और उदासीनता को अपनाना चाहिए। साधुता का मतलव स्थूल वैराग्य अथवा जगत मे भटकने के लिए निकल पडना, यह नही है। यहा उसका शुद्ध अर्थ अपने चारित्र्य के सवध मे है। उदासीनता का मतलव रज-शोक नही, किन्तु विषयो के प्रति अरुचि और ससार के वारे मे निर्मोहीपन है। वा की वीमारी मे तुम सव यह सीखो, वही उनके प्रति तुम्हारा सच्चा भक्तिभाव माना जायगा।

—वापू के आशीर्वाद।

: ७० :

"प्रतिज्ञा नहीं टूट सकती"

चौमासे मे कभी पानी का, कभी खाली वादलो का, कभी तेज धूप का और कभी धूप और पानी दोनो का एकसाथ जोर वढता है, कभी घटता है। उस अवधि मे ऋतु का निश्चित रूप कोई वता ही नही सकता। वापूजी और फीनिक्सवासियो के छूट आने के वाद सत्याग्रह-आदोलन की भी यही हालत कई सप्ताह तक या यो कहिये, तीन-चार महीने तक, चलती रही। युद्ध-विराम होने से पहले वहुत दिन असमजस मे वीते।

बापूजी, श्री पोलक और श्री कैलनबैक की रिहाई के बाद सरकार न और किसी को मियाद से पहले रिहा नही किया। स्मट्ससाहब ने अपने कमीशन मे बापूजी की माग के अनुसार अपनी ही पार्लमेंट के सदस्य मि० श्राइनर को भी शामिल करने से इन्कार कर दिया। इस कारण से सत्याग्रहियो के दिल मे यही बात जोर पकड रही थी कि अभी दक्षिण अफ्रीका की सरकार और गोरो के हृदय मे परिवर्तन नही हुआ है और निश्चय ही सत्याग्रह की लडाई और भी जोरो से लडनी पडेगी।

इस बीच खबर फैल गई कि गोखलेजी महाराज ने नए साल के दिन डरबन से होने वाला विराट कूच स्थगित करके कमीशन का काम पूरा होने तक उसे भली भाति सहयोग देने का सन्देश बापूजी के पास भेजा है।

दो-तीन दिन बाद ही यह खबर आई कि उस समय के हिन्दुस्तान के वाइसराय लार्ड हार्डिंज ने अपने प्रतिनिधि के रूप मे मध्यप्रदेश के गवर्नर श्री बेंजामिन को भारत से अफ्रीका भेजा है और वह ऐसी युद्ध-नौका मे आ रहे है जो नौ दिन मे ही बम्बई से डरबन पहुच जायगी।

एक और भी बात सुनने मे आई कि हिन्दुस्तान के बडे-बडे लोग बापूजी पर नाराज हो रहे है और तार-पर-तार दे रहे है कि अब सत्याग्रह छोडकर लार्ड हार्डिंज की भलमनसाहत पर भरोसा किया जाय और कमीशन का बहिष्कार करके अपने हाथ अपने पैरो कुल्हाडी न मारी जाय, अन्यथा ऐसी नौबत आयगी कि हिन्दुस्तान के वाइसराय की सहायता मिलनी बन्द हो जायगी और हिन्दुस्तान से पैसे की मदद भेजने वालो को भी अपना हाथ रोक देना पडेगा। परन्तु बापूजी ने कुछ ऐसा मत्र पढा रखा था कि इन चेतावनियो का असर सत्याग्रहियो पर उलटा ही पडा। उनकी नसो मे खून और भी जोरो से दौडने लगा और उनका सकल्प मजबूत हो गया। फीनिक्स के जेलयात्री विद्यार्थी आपस मे तरह-तरह की चर्चा करते रहे।

गोखलेजी का तार इस प्रकार था "कमीशन को स्वीकार न करके नए वर्ष के दिन से दूसरा कूच आरम्भ करने के समाचार से मुझे भारी दुख हुआ है। तुम्हारे इस निश्चय से मेरी और वाइसराय लार्ड हार्डिंज की परिस्थिति बहुत ही विकट हो गई है। यूनियन सरकार तुम्हारे प्रश्नो का निबटारा करेगी ही, ऐसा पूरा विश्वास रखकर कमीशन को स्वीकार करो। उसके लिए आवश्यक गवाहियाँ दो और कूच बन्द रखो।"

गोखलेजी के इस तार से दक्षिण अफ्रीका के भारतीय असमजस में पड गए। सत्याग्रह मे बापूजी को योग देनेवाले बडे-बडे नागरिको और

समझदार पुरुषो ने बापूजी से कहा भी कि गोखलेजी के दिल को दुखाना ठीक नही है । जब पूरा विश्वास दिलाया जा रहा है कि कमीशन हमारे अनुकूल सिफारिश करेगा, बडो का कहना क्यो न मान लिया जाय ?

परन्तु बापूजी ने जरा भी विचलित हुए बिना अपने सगी-साथियो को उत्तर दिया,"यदि सम्राट महोदय खुद आकर भी भरोसा दिलाये कि इस कमीशन को स्वीकार करने पर तुमको मै हिन्दुस्तान का स्वराज्य दे दूगा तो भी मै कहूगा कि ऐसा निर्वीर्य और अपमानजनक स्वराज्य मुझे नही चाहिए। भारत को अपमानित करके और अपना सिर नीचा कर जिस स्वराज्य को मै प्राप्त करूगा वह कैसा होगा ? और वह कितने दिन टिकेगा ? भारत का स्वाभिमान प्रथम बात है । फिर स्वराज्य अपने-आप स्व-मान के पीछे-पीछे रेगता हुआ चला आयगा ।"

अपने साथियो को अपना दृढ सकल्प सुनाकर बापूजी ने गोखलेजी को निम्न तार भेजा

"आपका दुख समझ सकता हू । चाहे कितना भी छोडना पडे, छोडकर भी आपकी सलाह का सम्मान करने की मेरी इच्छा रहेगी ही । लार्ड हार्डिज ने जो सहायता दी है वह अमूल्य है। उनकी सहायता अन्त तक मिलती रहे, यह मै भी चाहता हू । परन्तु हमारी परिस्थिति को आप समझे यह मेरी आपसे विनती है । इसमे हजारो मनुष्यो की प्रतिज्ञा का प्रश्न समाया हुआ है । प्रतिज्ञा विशुद्ध है । इस सारी लडाई की रचना प्रतिज्ञा के ऊपर निर्मित हुई है । यदि प्रतिज्ञा का बधन न होता तो हम लोगो मे से कइयो का आज पतन हो गया होता । हजारो व्यक्तियो की प्रतिज्ञा पर यदि पानी फेर दिया जायगा तो फिर नीति-बधन जैसी कोई बात रहेगी ही नही । प्रतिज्ञा करते समय लोगो ने पूर्ण विचार किया था । उसमे कुछ भी अनीति तो है ही नही । बहिष्कार की प्रतिज्ञा लेने का कौम को अधिकार है ही । ऐसी प्रतिज्ञा किसी भी व्यक्ति के निमित्त नही टूटनी चाहिए और चाहे कितना ही खतरा उठाना पडे तो भी उसका पालन करना ही चाहिए, यह सलाह आप भी दे, ऐसा मै चाहता हू । यह तार लार्ड हार्डिज को बताइयेगा । आपकी स्थिति विकट न हो, यह मेरी इच्छा है । हम लोग ईश्वर को साक्षी रखकर, उसकी सहायता पर निर्भर रहकर लडाई शुरू कर रहे है । हम बुजुर्गो की सहायता चाहते है और उसकी याचना करते है । उसके मिलने पर हमे आनन्द होता है। परन्तु यह सहायता मिले या न मिले, प्रतिज्ञा का बन्धन टूटना नही चाहिए । मेरा यह नम्र अभिप्राय है। इसके पालन मे मै आपका सहारा और आशीर्वाद चाहता हू ।"

इस प्रकार भारत के स्वाभिमान को बनाये रखने और प्रतिज्ञा के पालन के लिए बापूजी अपनी बात पर डटे रहे। गोखलेजी और वाइसराय अप्रसन्न भी हुए, फिर भी उन दोनों से सहायता मिलती ही रही। उधर स्मट्स-साहब भी बापूजी की आन को भाप गए और कडककर बोलने के बदले विनय से बोलने लगे। फिर क्या था? जैसे ही बापूजी ने स्मट्स साहब आदि के हृदय मे थोडा-सा परिवर्तन देखा, वह समान भूमिका पर युद्ध-विराम के लिए तत्पर हो गए।

गोखलेजी के आदेश पर बापूजी ने जिस कूच को स्थगित करना स्वीकार नही किया, उसे बाद मे मनुष्यता और नीति की दृष्टि से स्थगित कर दिया।

बात यह हुई कि जिन रेलवे के हडतालियो ने उस समय देश भर में अपना ऊधम बेहद बढा दिया था उन्होने बार-बार बापूजी के पास सदेश भेजा कि दक्षिण अफ्रीका की सरकार को अब पूरी तरह मात देने का सुयोग आप न चूकें। हम लोगो की हडताल चल रही है, इसी समय आप भी अपनी योजना के अनुसार डरबन से बडी-से-बडी कूच शुरू कर दीजिये। आप लोगो का और हमारा सहयोग हो जायगा तो सरकार को तुरन्त झुकना पडेगा।

उक्त सन्देश रेलवे की हडताल के मजदूरो की ओर से किसने भेजा, किन शब्दो मे भेजा, इसका मुझे पता नही है। परन्तु यह ठीक याद है कि इस प्रकार की बातें जोरो से चल रही थी और सरकार के विरुद्ध भारतीय तथा गोरे हडतालियो का इकट्ठा बल लगाने की माग बढ रही थी। इस माग को सुनकर हम लोग, जो नवयुवक और बालक थे, अधीर हो उठे कि बापूजी ऐसा सुन्दर अवसर हाथ से क्यो जाने देते है। रेलवे हडतालियो के साथ मिलने से हमारा जोर बहुत बढ जायगा।

परन्तु अकस्मात एक दिन फीनिक्स मे खबर आई कि बापूजी ने नए साल के दिन डरबन मे कूच शुरू करने का सकल्प मुल्तवी कर दिया है और अब पहली तारीख के बदले जनवरी की दसवी तारीख को सत्याग्रह-सग्राम दुबारा छेडा जायगा। कारण यह है कि बापूजी रेलवे हडतालियो की अनुचित प्रवृत्ति को बल प्रदान करना ठीक नही समझते थे। उन्होने स्मट्ससाहब से कहलवा दिया कि आप जब सकट मे घिरे हुए है तब हम आपकी दिक्कत को बढाना नही चाहते। आपको रेलवे हडतालवालो से समाधान करने के लिए सहूलियत रहे, इसलिए हम दस दिन बाद अपनी पैदल यात्रा आरम्भ करेंगे।

वापूजी के मन में सत्याग्रह के मूलतत्व की यह वात थी कि उसपर हिंसा की छाया भूलकर भी न पडने दी जाय। रेलवे की हडताल के कारण जव चारो ओर घोर हिंसा फैल रही थी तव सत्याग्रह-आदोलन पर जोर देना हिंसा को वढावा देने के वरावर होता। वापूजी के आदर्श से वह विल्कुल उलटी वात थी। उनका आदर्श विरोधी को दवाने का नही, उसके सद्विचार को जगाने और उसका हृदय-परिवर्त्तन करने का था। इसीलिए उन्होंने स्मट्स जैसे घोर विरोधी को भी उसके निजी सकट मे सहारा देकर उसको तग न करने का धर्म अपनाया। आगे चलकर वापूजी की इस नीति ने दक्षिण अफ्रीका के गोरे लोगो का और स्मट्स सरकार का दिल जीत लेने मे वडा भारी काम किया।

दस दिन के लिए स्थगित किया गया यह कूच पन्द्रह दिन के लिए दुवारा स्थगित कर दिया गया। इसका कारण भी दक्षिण अफ्रीका की पार्लमेंट की एक भद्र महिला वनी।

उस महिला का नाम था कुमारी हाव हाउस। उसने दक्षिण अफ्रीका में अग्रेज-वोर युद्ध के समय युद्ध-पीडित वच्चो तथा वहनो की स्तुत्य सेवा की थी। उसकी सेवापरायणता की ख्याति वहुत थी। यद्यपि वापूजी उस महिला से परिचित नही थे फिर भी जव उसका तार मिला कि "कृपा करके मेरी जैसी एक महिला की विनती पर आप अपनी पैदल-यात्रा पन्द्रह दिन के लिए स्थगित कर दीजिए," तव वापूजी ने उस विनती को स्वीकार किया और अपनी भद्रता का परिचय देकर सावित कर दिया कि सत्याग्रह केवल हठ ही नही होता। उसमे पग-पग पर विवेक-वुद्धि से काम लेना पडता है।

: ७१ :

दो नये मित्र

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो की कसौटी जैसे-जैसे अधिक उग्र होती गई, वैसे-वैसे भारत मे वडे-वडे नेताओ की और जनता की चिन्ता भी वढती गई। गोखलेजी, श्री फीरोजशाह मेहता, श्री नटराजन, महात्मा मुन्शी रामजी (स्वामी श्रद्धानन्द) और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे कई गण्यमान्य महापुरुषो ने दक्षिण अफ्रीका के इस अपूर्व सत्याग्रह मे भरसक सहायता पहुचाने के लिए अहर्निश प्रयत्न किया। अनेक नगरो मे सभाए

हुई, चन्दे किये गए। विद्यार्थियो के अनेक सघो ने श्रमयज्ञ करके और खाना छोडकर बापूजी के सत्याग्रह के लिए पैसे भेजे ।

जगह-जगह होने वाली इन सभाओ मे एक सभा लाहौर में भी हुई। उसमे एक ऐसा सहृदय अग्रेज उजाले मे आया, जिसने अपनी कमाई की सारी बचत दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रहियो को अन्न आदि पहुचाने के लिए दे डाली। मनुष्य को परखने वाले और चतुर राजपुरुष गोखलेजी ने इस विशालहृदय अग्रेज को ध्यान मे रख लिया और जब बापूजी के साथियो मे पोलक, कैलनबैक और वेस्ट जैसे शक्तिशाली गोरो की भी गिरफ्तारी करने मे दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने सकोच नही किया तब वहा के गोरे लोगो को जगाने के लिए तथा बापूजी का काम सभालने के लिए गोखलेजी ने उस अग्रेज युवक को दक्षिण अफ्रीका भेजा। चलते समय उस अग्रेज ने अपने एक दूसरे अग्रेज मित्र श्री पियर्सन को भी अपना सहयात्री बना लिया।

उस समय कदाचित गोखलेजी को भी कल्पना न होगी कि यह अग्रेज युवक ससार भर के पीडित भारतवासियो के लिए अपना सारा जीवन ही प्रदान कर देगा और भविष्य मे 'दीनबन्धु' के नाम से याद किया जायगा। जिन दिनो मे अग्रेज को देखते ही भारत के अधिकतर लोगो के दिल में बेहद डर पैदा होता था अथवा उनके हृदय मे वैर की आग जोरो से धधक उठती थी तब एड्रयूज साहब के प्रति असख्य भारतीयो का हृदय आदर और भक्ति से झुक जाता था।

बम्बई से एड्रयूजसाहब जब चले थे तबतक के ही दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के समाचार उन्हे मालूम थे। समुद्र-यात्रा मे बीस-बाईस दिन जो बीत गए, उस अवधि मे सत्याग्रह-आदोलन ने कैसी करवट बदली इस बात का उन्हे जरा भी अनुभव नही था। डरबन मे जब एड्रयूजसाहब जहाज से उतरे, उन्होने स्वागत करने वाली मडली मे लुगी-कुर्ता पहने, हाथ मे पतली लकडी पकडे, मुडे हुए सिर वाले एक व्यक्ति को देखा, परन्तु उसे कोई मामूली हिन्दू वैरागी समझा। उन्होने सारी मडली में अपने पूर्व परिचित पोलक को देखा और बोले, "अच्छा, आप यहा मिलेग, ऐसी मुझे आशा ही नही थी। बडा अच्छा हुआ जो आप रिहा हो गए। अब बताइये गाधीजी किस जेल मे है? मै उनसे कैसे मिल पाऊगा?" यह सुनकर उपस्थित लोगो के मुख पर स्मित छा गई। श्री पोलक ने जब बताया कि लुगीवाले ही गाधीजी है, तब एड्रयूजसाहब गद्गद् हो गए और उन्होने झुककर गाधीजी को प्रणाम किया। पियर्सन साहब ने भी एड्रयूजसाहब की तरह ही बापूजी के चरणो पर सिर झुकाया और दोनो उसी क्षण से बापूजी

के अनुयायी के समान वन गए।

दक्षिण अफ्रीका मे काई गोरा व्यक्ति काले कुली कहे जानेवाले भारतीय को इस प्रकार प्रणाम करे, यह वहा के गोरो के लिए वडी भयकर वात थी। इसलिए एड्रयूजसाहव के ऐसे वर्ताव पर गोरे अखवार विगड गए। सपादकीय स्तभो मे एड्रयूजमाहव और श्री पियर्सन की कडी आलोचना की गई कि एक भारतवासी के पैरो पर इतना अधिक झुक कर प्रणाम करके उन्होने सारी गोरी जाति की प्रतिष्ठा पर वुरी तरह कुठाराघात किया है और इस वात का उन्हे प्रायश्चित्त करना चाहिए। परन्तु एड्रयूजसाहव ने अपनी विद्वत्तापूर्ण मीमासा और सरकारी भापा द्वारा गोरो को मानवता का पाठ पढाया और वापूजी जैसे महान व्यक्ति के सामने हाथ जोडकर प्रणाम करने की विधि का समर्थन किया।

एड्रयूजसाहव जव फीनिक्स पधारे तव फीनिक्स के सव लोग उनके स्वागत के लिए स्टेशन पहुचे। रेल से उतरते ही दोनो साहवो ने वडे लोगो को हाथ जोड-जोडकर प्रणाम किया और हम जैसे छोटे विद्यार्थियो के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया। हम लोग तो तवतक यही जानते थे कि जव कोई गोरा मिले तव हाथ मिलाना चाहिए, किन्तु उन्होने तो आते ही हमारी तरह अभिवादन किया, यह देखकर हमें ऐसा मालूम हुआ कि ये अजनवी अतिथि नही है, अपने घर के ही लोग है। उनसे सट कर चलने मे, उनका हाथ पकडने मे हमे कोई सकोच न रहा और स्टेशन से आश्रम पहुचने तक हम उन दोनो से वहुत ही घुल-मिल गए। सध्या के समय प्रार्थना हो जाने के वाद जव हम लोग वडी मेज के चारो ओर वैठे तो मेज के केन्द्र मे बैठकर एड्रयूजसाहव ने कहा

"मै गुरुदेव के पास से आ रहा हू। उनके शातिनिकेतन की वाते जितनी वताऊ, कम ही होगी। किन्तु इस समय तो मै गुरुदेव का सन्देश ही सुनाऊगा।"

यह कहकर एड्रयूजसाहव खडे हो गए और हाथ जोड कर तथा आखे अर्द्धोन्मीलित करके वहुत धीमे स्वर से मत्र का उद्घोप करने लगे "सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्मानदरूपम्। अमृत यद्विभाति शात शिवमद्वैतम्।"

(वही शात है, कल्याणकारी है और अपने जैसा एक ही है, जो सत्य-स्वरूप है, साक्षात ज्ञान है, अपरिमित है, ब्रह्म के आनन्द की मूर्ति के समान है और अमृतमय है।)

श्लोक का उच्चारण करते समय उन्हे अपने होठो को जवर्दस्ती

नीचे-ऊपर खीचना पडता था और वहुत कठिनाई मे वह उच्चारण कर पाते थे। इससे हम लोगो को हँसी आती थी, परन्तु उनकी गम्भीर और ध्यानयुक्त मुख-मुद्रा ने हमे भी गम्भीर बना दिया और हमारे अन्तर मे पवित्र भाव जगाया।

मन्त्रोच्चार के वाद उन्होने जो प्रवचन किया उसका सार यह था कि वापू के सैनिक वनकर तुम लोग जो सत्याग्रह कर रहे हो इससे गुरुदेव वहुत प्रभावित हुए है। उन्होंने यह मत्र दिया है कि जो करो वह सत्य के लिए, सबकी भलाई के लिए और ईश्वर को सदैव उपस्थित समझ कर करो। ऐसा करने से अन्त मे कल्याण ही होगा।

उस दिन का प्रवचन वहुत छोटा था, क्योकि उस दिन उनको वापूजी के साथ सत्याग्रह के कामकाज की बहुत-सी वाते करनी थी।

उन दिनो एड्रूजसाहव दाढी नही रखते थे। अपनी मूछ भी साफ कर देते थे। भारत मे उनके दर्शन करने का सयोग मुझे अनेक वार मिला है। उनके निकट पढने का अवसर भी मुझे मिला है। उनकी सुमधुर वाणी सुनने तथा उनके ऋषितुल्य मुख को देखने से चित्त की तृप्ति ही नही होती थी। परन्तु उनका जो दर्शन मैने फीनिक्स मे पाया वह अनोखा था। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह सग्राम को सफल करने मे वडा सहायक सिद्ध हुआ।

पियर्सनसाहव फीनिक्स में मुश्किल मे दो या तीन सप्ताह रहे होगे, परन्तु इतने थोडे समय मे ही हमारे वडे घनिष्ठ मित्र और स्वजन वन गए।

वह सत्याग्रह-सघर्ष का अनुभव लेने के लिए आये थे। फिर भी उन्होंने फीनिक्स मे आते ही अपनी चारो ओर वाल-मडली जमा कर ली। हमे लेकर वह वागीचे मे पहुचते थे और कही केले के तने और पत्तो की रचना का निरीक्षण कराते थे, कही फूलो की विविधता पर ध्यान दिलाते थे और फूलो को चुन-चुन कर ऐसे प्रश्न करते रहते थे कि हमे अपनी बुद्धि पर जोर देने के लिए विवश हो जाना पडता था। फूल-पत्तो और कीटपतग आदि के जीवन और गुण-कर्म के वारे में पियर्सनसाहव की वहुत जानकारी थी और अपने ज्ञान का लाभ सुवह-शाम वह हमे देते ही रहते थे।

इनाडा नामक जल-प्रपात की, जो हमारे यहा से पाच-छ मील की दूरी पर था, सुरम्यता और भव्यता का आनन्द लेने के लिए वर्ष में अनेक वार हम लोग वहा जाया करते थे। दिन भर जगल में घूमते थे, पानी में तैरते थे, परन्तु वहा जाकर जो हमने कभी नही देखा था वह पियर्सनसाहव के साथ जाने पर देखा। प्राय तीन सौ फुट की ऊचाई

मे गिरने वाले पानी को उन्होने अलग-अलग स्थान से देखा और हमे उस सौदर्य की विविधता बताई। वहा की वृक्ष-राजि मे घूमते समय नए-नए प्रकार के पौधो को इस तरह देखते थे, मानो किसी मित्र से दोस्ती कर रहे हो। उन्होने वहा के पत्थरो को उठा-उठा कर और घुमा-फिरा कर देखा और उनमे भी हमे नवीनता का दर्शन कराया। वहा की प्राकृतिक गुफा के सौदर्य से वह मुग्ध हो उठे। बारीक सुकोमल पत्तियो वाले फर्न नाम के पौधो की हरियाली, उसके पत्तो की लहरदार तथा कलामय लम्बी किनारी और बहुत नाजुक टहनियो की ओर उन्होने हमारी अभिरुचि जगाई।

एड्रयूजसाहब ने अपना समय अधिकतर बापूजी के साथ बिताया और राजनैतिक गुत्थियो को सुलझाने मे सहायता दी। पियर्सनसाहब ने अपना समय जनता के जीवन का अध्ययन करने मे लगाया। फीनिक्स के चारो ओर मीलो तक उन्होने पैदल-यात्राए की। भारत के गिरमिटिया मजदूरो के रहन-सहन को उन्होने देखा। वहा के आदिवासियो के निवास-स्थानो मे भी वह गये और सबसे सुख-दुख की बाते पूछ-पूछ कर लिख ली। यद्यपि वह पादरी नही थे, उनमे नम्रता बहुत थी। अप्रसिद्ध रहकर सेवामय जीवन बिताने मे उनको आनन्द मिलता था।

प्रिटोरिया मे जब एड्र्यूजसाहब के प्रयत्नो से बापूजी और जनरल स्मट्स के बीच सत्याग्रह के युद्ध-विराम के लिए लिखा-पढी हो गई तब आशा यह थी कि दीनबन्धु एण्ड्रयूज और पियर्सनसाहब कुछ समय फीनिक्स मे स्थिरता मे बिताएगे, परतु उन दोनो को दक्षिण अफ्रीका के अनेक नगरो मे परिभ्रमण के लिए जाना पडा। वहा एड्रयूजसाहब की अमृतमयी वाग्धारा ने कट्टर अग्रेजो के दिलो मे भी भारतीयो के प्रति सहानुभूति का भाव पैदा किया। यह प्रवास चल ही रहा था कि अकस्मात लदन से एड्रयूज-साहब की माताजी के स्वर्गवास का तार आया। इस समाचार से फीनिक्स-भर मे शोक छा गया।

एड्रयूजसाहब को तुरत इग्लैड जाने का निश्चय करना पडा। पियर्सन-साहब भी उनके साथ ही लौट गए। फीनिक्स से उन दोनो की विदा हमारे लिए अति दुखदायी थी। उनके प्रस्थान के समय विशेष रूप से प्रार्थना-सभा हुई और फिर से वह अनमोल मत्र अग्रेजी-मिश्रित सस्कृत-पाठ से वातावरण मे गूज उठा

सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्मानद-रूपम्।
अमृत यद्विभाति शान्त शिवमद्वैतम्॥

: ७२ :

कुछ और अंग्रेज अतिथि

एण्ड्रयूजसाहब और पियर्सनसाहब फीनिक्स के वातावरण को अधिक मधुमय और अधिक सुरभित करके विदा हुए उनके कुछ ही दिन बाद हमारे यहा दूसरे दो अंग्रेज अतिथि पधारे। एक थे सर बेंजामिन रॉबर्टसन और दूसरे थे उनके सेक्रेटरी मि० स्लाटर। एक भारतीय अतिथि भी उनके साथ थे, जिनका नाम था श्री रायसाहब चौधरी।

स्मट्स-सरकार द्वारा दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रही और हड़ताली लोग निर्दयता से कुचले जाने लगे तब ससार के समक्ष अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए भारत के वाइसराय ने अपने प्रतिनिधि के रूप मे मध्य-प्रात के तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर बेंजामिन को दक्षिण अफ्रीका भेजा और स्मट्स-सरकार से बातचीत करके भारतीयो को न्याय दिलाने का काम उनके जिम्मे किया। ट्रासवाल में जब बापूजी और जनरल स्मट्स के बीच कच्चा समझौता हुआ तब बेंजामिन साहब वहा पर थे।

बेंजामिन साहब दक्षिण अफ्रीका पधारे तो वहा भारतीयो का बल और हिन्दू-मुसलमान, पारसी और ख्रिस्तियो का अखड और सुदृढ भ्रातृत्व देख कर चकित रह गए।

ट्रान्सवाल से लौटकर सर बेंजामिन ने अपना समय नेटाल के भारतीयो से मिलने में बिताया। चूकि बापूजी की प्रेरणा से भारतीयो ने स्मट्ससाहब द्वारा नियुक्त सालोमन-कमीशन का बहिष्कार करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, सर बेंजामिन इस प्रतिज्ञा के बन्धन को हटाने में अपना सर खपा रहे थे। भारत की ओर से सरकारी प्रतिनिधि होने के नाते उनके दिल में इस बात की चिंता थी कि सालोमन-कमीशन के सामने कुछ तो ऐसी गवाहिया अवश्य दी जाय जो भारतीय गिरमिट-मजदूरो को न्याय दिलाने में सहायक हो। उनकी समझ में यह बात किसी तरह नही आ रही थी कि केवल एक गाधी के पीछे सब-के-सब भारतीय क्यो चल रहे है?

बेंजामिनसाहब बरसो तक भारत में ऊचे पद पर रहने के कारण भारतीयो की नस-नस को पहचानने मे कदाचित अपने को कुशल समझते होगे, परन्तु दक्षिण अफ्रीका में उनको कदम-कदम पर भारतीयो की शक्ति का नया ही अनुभव होने लगा। उनको बहुत जल्द महसूस होने लगा कि भारत में भले ही वह बड़े पदाधिकारी हो, दक्षिण अफ्रीका में भारतीयो के बीच उनका मूल्य कुछ विशेष नही है और गाधी जैसे साधारण व्यक्ति

का मूल्य अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा है। वह भारत में सत्याग्रहियों की सहायता देनेके लिए आये थे, परन्तु आकर असमंजस में पड़ गए कि सत्याग्रही भारतीयों पर कृपा करने के लिए अपने श्वेत-बन्धुओं से कैसे कहा जाय! ये सत्याग्रही याचक होते तो कहा जा सकता था, पर ये सब तो पक्के योद्धा थे! जहां दोनों ओर से ताकत की आजमाइश हो रही थी, वहां रहम करने के लिए कहे तो किससे!

जब बापूजी के बल का दक्षिण अफ्रीका के हर कोने में बेंजामिनसाहब ने अनुभव किया तो बापूजी की संस्था फीनिक्स को भी देखने की उत्सुकता उनके मन में पैदा हुई। श्री पोलक उन्हें फीनिक्स लिवा लाए।

फीनिक्स स्टेशन पर सर बेंजामिन के स्वागत के लिए बापूजी स्वयं नहीं गये। बापूजी को पता था कि हिन्दुस्तान में लाटसाहबों का स्वागत करने में किस प्रकार अतिरेक किया जाता है और भारत के अंग्रेज अफसर खुशामद के कैसे आदी हो गए हैं। इसलिए भी शायद फीनिक्स आश्रम में बेंजामिनसाहब के आगमन को अधिक विशेषता नहीं दी गई। फिर भी शिष्टता के नाते बापूजी ने फीनिक्स के दो-एक बड़े कार्यकर्त्ताओं को स्टेशन पर स्वागत के लिए भेजा। विद्यार्थियों में से चार-पांच लड़के उनका सामान उठा लाने के लिए स्टेशन तक गये, जिनमें मैं भी एक था। एड्रचूजसाहब और पियर्सनसाहब जब फीनिक्स आये तब सारा-का-सारा आश्रम उनके स्वागत के लिए गया था। परन्तु सर बेंजामिन के लिए आवश्यकता से अधिक कोई नहीं था। ज्योंही सर बेंजामिन स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतरे, इधर-उधर देखने लगे, मानो उनकी दृष्टि अपना स्वागत करनेवालों को खोज रही थी। किसी के हाथ में फूलमाला नहीं थी, न कोई जलूस था। बिना कोट-कालर वाले, अधनंगे-से हम ग्रामीण विद्यार्थियों को अपने सामने खड़ा हुआ देख कर वह चकित-से हुए। हमारे साथ के मगनभाई मास्टर और रावजीभाई पटेल से दो-चार शब्द पूछपाछ कर वह आश्रम के लिए चल पड़े। उनके सेक्रेटरी और उनके दल के तीसरे व्यक्ति रायसाहब चौधरी भी उनके पीछे-पीछे चले। तीनों को बिना सवारी के ढाई मील तक चलना भारी पड़ गया। रास्ते भर तीनों में से कोई कुछ बोल नहीं रहा था। रायसाहब सर बेंजामिन के पीछे-पीछे नौकर की तरह संभल कर चल रहे थे।

आश्रम में पहुंचने पर इन सरकारी मेहमानों का स्वागत फलों आदि से किया गया। तीन-चार घंटे फीनिक्स में घूमघाम कर रात की गाड़ी से वे लौट गए।

सर बेंजामिन के स्वागत और बापूजी से उनकी मुलाकात के बारे मे श्री रावजीभाई पटेल ने अपनी पुस्तक मे लिखा है

"श्री पोलक के साथ पैदल ही जब वह सस्था के मकानो तक पहुचे तब गाधीजी अपने निवास-स्थान के द्वार पर खडे हुए थे। उन्होने सर बेंजामिन का स्वागत किया। बीच वाले कमरे मे सब बैठे। नित्य की तरह मेज पर धुली हुई स्वच्छ चादर बिछी थी और आगन के बागीचे से कुछ फूल तोडकर फूलदान मे सजा दिये गए थे। दो-चार मिनट बातचीत करने के बाद गाधीजी ने जलपान के लिए फल आदि मगाए। केले, अनन्नास, सतरे, पपीते, आम आदि हमारे यहा के ताजे फल उनके सामने रखे गए और गाधीजी ने सर बेंजामिन से कहा, "मैंने और मेरे सहयोगियो ने अपने हाथ से जिन पौधो को लगाया और पाला-पोसा है उन्ही से प्राप्त ये फल है। इसलिए पूर्णतया स्वदेशी है। इन फलो को प्रेमपूर्वक आपको अर्पित करने से अधिक और हम आपको क्या दे सकते है ? यदि आप पसद करे तो चोकर वाले आटे की घर मे बनी हुई डबल रोटी और दे सकते है। इनमे से कुछ चीजे ग्रहण करके हमे कृतार्थ कीजिए।"

साहब और उनके दोनो साथियो ने फलो को आनन्द से खाया। बाद मे गाधीजी ने उनसे नम्रता के साथ कहा, "क्षमा कीजिए सर बेंजामिन, श्री पोलक आपको घूम-फिर कर सस्था दिखायगे। श्रीमती गाधी बीमार है, इसलिए मै आपके साथ नही चल सकूगा।"

सर बेंजामिन खडे हो गए और बोले "जी-जी, याद आ गया, श्रीमती गाधी बीमार है, यह तो मै भूल ही गया था। अब उनका स्वास्थ्य कैसा है ? क्या मै उनसे मिल सकता हू ?"

गाधीजी ने कहा, "अवश्य ! आइए, पास के कमरे मे ही है।"

सर बेंजामिन कस्तूरबा के पास गये तो देखा कि उनके लिए चारपाई तक नही है। दो बेंच इकट्ठी करके उनको लिटाया गया है। गाधीजी और कस्तूरबा के घर की यह सादगी देखकर वह कुछ बोले नही, पर सोचते रह गए। उन्होने गाधीजी से कहा, "आप श्रीमती गाधी की सेवा मे ही रहिए। हम लोग श्री पोलक के साथ सस्था देख लेंगे। आप हमारे साथ चलने का जरा भी कष्ट न करे।"

जिस प्रकार वह पैदल आये थे उसी प्रकार जरा देर बाद पैदल लौट गए। जाते समय एक बात फीनिक्स मे छोडते गए और एक अपने साथ लेते गए। छोड गये 'अपना तेज' और ले गये अपने हृदय मे यह अनुभूति कि "भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का यदि कोई भयकर शत्रु है तो वह गाधी है।"

अन्य अंग्रेज अतिथियों में एक बहुत वृद्ध और गण्यमान्य महिला केप-टाउन से उस समय फीनिक्स आई थीं। उनका नाम था मिस मोल्टीनो। उनके नाम के साथ फीनिक्स में मिस हाबहाउस को भी बहुत आदर के साथ याद किया जाने लगा, क्योंकि भारतीयों और स्मट्‌समाहब के बीच समझौता कराने में उन्होंने भी अपना काफी प्रभाव डाला था। उनके ही तार पर बापूजी ने डरबन में आरम्भ होने वाली दस हजार सत्याग्रहियों की पैदल यात्रा को तीन सप्ताह के लिए स्थगित कर रखा था। मिस मोल्टीनो मिस हाबहाउस की साथिन थीं। फीनिक्स में आकर उन्होंने बीमार कस्तूरबा के लिए अपनी विशेष सहानुभूति प्रकट की और हमारे भारतीय रहन-सहन को बार-बार बहुत उत्सुकता से देखा।

मिस मोल्टीनो बहुत वृद्ध थीं, पर बड़ी फुर्ती से चलती थीं। हाथ में छतरी लेकर छरहरे बदनवाली वह जब तन कर खड़ी होती थीं तो मेरे पिताजी और मगनकाका जैसे पूरे आदमियों से भी बाजी मार ले जाती थीं। यद्यपि उनके मुख पर झुर्रियां थीं तथापि होठों पर मूछ की रेख के कारण वह बलवान दीखती थीं। कई दिन तक वह फीनिक्स में बापूजी का सत्संग प्राप्त करने के लिए रहीं।

: ७३ :

बापूजी का अनुपम उपहार

सत्याग्रह-संघर्ष के लिए पुन जोरदार कदम उठाने की चर्चा कम हो गई और डरबन से विराट् पैदल यात्रा प्रारम्भ करने की बात और भी दूर खिसकती गई। फीनिक्स के वातावरण में युद्धकाल की-सी उत्तेजना अदृश्य हो गई और जेल-यात्रा से पूर्व जैसा कार्यक्रम था प्राय वैसा ही दैनिक कार्यक्रम फिर से चालू हो गया। फिर भी यह दुविधा सब के मन में बनी ही हुई थी कि न जाने कब फिर से जेल जाना पड़ेगा। इसलिए हम लोगों का ध्यान पढ़ने-लिखने में कम ही लगता था। बगीचे का और छापा-खाना का काम ऐसा था ही नहीं, जहां उचटे हुए मन से कुछ किया जा सके।

ऐसे रूखे वातावरण में एक दिन सवेरे मैंने देखा कि आश्रम के एक कोने में महीनों से बन्द पड़ी हुई मोची का काम करने की कोठरी में झाड़ू-बुहारू लग रही है। उसमें जो औजार थे उनको भी घिस कर पैना बनाया जा रहा था। मुझे मोची-काम सीखने का उत्साह कई दिनों से था। मैंने समझा

कि अब हमे एक नया उद्योग सिखाया जायगा। उत्साह से मैं उन चमकते औजारो को देखने लगा और पूछने लगा, "यह क्या है, किस काम का है?" परन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे रूखेपन के साथ मिला। एक सयाने लडके ने डाटते हुए कहा, "हाथ मत लगाओ किसी चीज को। तुम्हारे सीखने के लिए यह सब तैयार नही किया जा रहा है। अभी क्या मालूम कब जेल जाना पडे! कोई मोची-काम का वर्ग थोडा ही खुलने वाला है! इस समय तो जनरल स्मट्स के लिए एक जोडी 'सैंडल' बनाया जायगा। उन्होने बापूजी से सैंडल्स बनवा कर भेजने की माग की है। इसके बन जाने के बाद यह काम फिलहाल बद ही रहेगा।"

मोचीका काम सीखने का हौसला मुझे इतना ज्यादा था कि सैंडिलो की उस जोडी के बन जाने तक बीसियो बार उसे देखने के लिए मैंने चक्कर काटे, परन्तु किसी दिन मुझे उसे छूने तक नही दिया गया और मेरी यह इच्छा अधूरी ही रह गई। जोडी के बन जाने पर बापूजी ने बहुत सावधानी से उसकी जाच की। स्मट्ससाहब के पैरो के निशान का जो कागज अकित था उसके आकार से जोडी का मिलान किया और जहा कसर मालूम दी, वहा सुधारने का निर्देश किया। जोडी की पालिश, सिलाई के टाके आदि हरेक बात बहुत बारीकी से काफी समय लगाकर बापूजी ने देखी और जब उनको पूरा-पूरा सतोष हो गया तब उन्होने स्मट्ससाहब के पास वह प्रेमोपहार भेज दिया।

मित्र, माता-पिता, अध्यापक आदि के द्वारा छोटी-मोटी भेट बच्चो को और बडो को दी जाती है, लेकिन अपनी याद में एक भी भेट मैंने ऐसी नही देखी जैसी बापूजी ने स्मट्ससाहब के लिए इन सैन्डिलो की भेजी थी। अभी तो स्मट्ससाहब के साथ आखिरी समझौता तक नही हुआ था, कच्चे समझौते पर लोगो को पूरा भरोसा नही था। अपने वचनो मे मुकर जाने मे स्मट्स-सरकार को देर नही लगती, यह कटु सत्य दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो के अनुभव मे बार-बार आया था। फिर भी बापूजी जब प्रारभिक समझौते के सिलसिले मे स्मट्ससाहब से मिलने जोहान्सबर्ग गये थे तब उन्होने (शायद उनके सेक्रेटरी ने) कहा था, "गाधी, आपके आश्रम के सैन्डिल बहुत बढिया होते हैं। एक जोडी भेज देगे?" और बापूजी ने हृदय के प्रेम से तर करके वह उपहार स्मट्ससाहब के लिए भेज दिया।

वर्षा के पहले कुछ समय तक जिस प्रकार वातावरण स्थिर और शात हो जाता है उसी प्रकार सैन्डलो की जोडी भेजे जाने के बाद फीनिक्स के वातावरण मे दिनो तक चुप्पी-सी रही। दुविधा सबके दिल मे थी कि आगे क्या होगा, परतु चिंता या परेशानी नही थी। सोलोमन-कमीशन

अपना काम कर रहा था, परन्तु उसे भारतीयो का सहयोग प्राय कही भी प्राप्त नही था ।

ऐसे समय एक दिन दोपहरी मे फीनिक्स मे बापूजी के पास समाचार आया कि "अब जेल मे कोई नही रह गया है। दक्षिण अफ्रीका की सभी जेलो में से प्रत्येक सत्याग्रही कैदी को रिहा कर दिया गया है ।" इस समाचार ने हमारे मन मे उत्साह की लहर दौडा दी । हमे यह आशा हो गई कि अब दक्षिण अफ्रीका मे भारतवासियो की सकटमय स्थिति समाप्त हो जायगी। तीन पौड का कर हटाया जायगा, सत्याग्रहियो की मागे पूरी की जायगी, गिरमिटिया भाइयो के साथ किया जाने वाला पशु से भी बदतर दुर्व्यवहार बन्द होगा तथा 'कुली' 'सामी' जैसे अपमानजनक शब्द भी भारतीय भाइयो को नही सुनने पडेगे ।

अनेक सत्याग्रही वीर अपनी रिहाई के बाद बापूजी के दर्शन और भेट के लिए फीनिक्स आने लगे। प्राय पाच-सात व्यक्ति रोज आते, एक-दो दिन फीनिक्स मे रुकते और बापूजी के आशीर्वाद पाकर अपने-अपने काम पर लौट जाते। इन व्यक्तियो मे कई ऐसे थे, जो साग-फल की फेरी करके अपनी रोजी कमाते थे। अधिक पढे-लिखे तो थे ही नही, परतु बापूजी पर पूरी श्रद्धा रखकर लगातार जेल जाते रहते थे। राजनीति के दाव-पेच आदि से उन्हे कोई मतलब नही था। हारने-जीतने की बहस मे उलझना उन्हे पसद नही था। बापूजी जबतक अपनी अतिम विजय की घोषणा न करे तबतक वे लोग आज्ञाकारी सैनिक के नाते अपना काम-धधा छोड कर बार-बार जेल जाने के लिए तत्पर रहते थे। परतु अब की बार सचमुच जीत है कि कुछ देर के लिए युद्ध-विराम, यह प्रश्न उनके मन मे था ही। एक जेल-यात्री ने अपने मन का विश्वास पक्का करने के लिए बापूजी से कह भी दिया, "यदि सचमुच इस बार की हमारी जीत पक्की है तो आप अपने हाथ से मिठाई बाटे ।"

गुजरात के सीधे-सादे किसान की यह माग बापूजी ने बडे प्रेम से स्वीकार कर ली और उन्होने हँसते-हँसते विश्वास दिलाया कि अब, जबकि सभी सत्याग्रही कारावास से मुक्त किये जा चुके है, यह बात हमारे समझौते के टिकाऊपन की सूचक है और शीघ्र ही मिठाई बाटने का इन्तजाम वह खुद करेगे ।

यह बात नही थी कि फीनिक्स आश्रम मे मिष्टान्न और नमकीन का आनद कभी लिया ही नही जाता था, परतु बिल्कुल बचपन से बारह वर्ष की आयु तक मैने भूल कर भी हलवाई के यहा की मिठाई फीनिक्स मे देखी

तक नही थी, नूघने की तो बात ही क्या ।

प्रथम बार सत्याग्रह के विजयोत्सव के निमित्त डरबन शहर से फीनिक्स मे मिठाइया लाई गई। डरबन में गुजरात के अच्छे-अच्छे नामी हलवाई, कलाकद-बालूशाही आदि के जोड़ की गुजराती मिठाई बनाते थे और वहा उनकी दुकान काफी चलती थी। उन दुकानो से डालिया भरकर मिठाई फीनिक्स में आ पहुची ।

अपने मकान के पूर्व की ओर के खुले आगन मे एक किनारे पर छोटी-सी मेज लगा कर उसके सहारे बापूजी खडे हो गए और मेज पर रखी हुई मिठाई क्रमश एक-एक व्यक्ति को परोसने लगे । सत्याग्रही—अतिथि और विद्यार्थी इस अमूल्य प्रसाद को अपने पात्र मे बापूजी से लेकर आगन मे जहा स्थान मिले, बैठ जाते थे और बडी प्रसन्नता से उसका स्वाद लेते थे।

अपने हिस्से का प्रसाद पाकर मै बापूजी के पास ही कुछ दूर घास पर बैठ गया। खेलने जाने को मेरा जी नही करता था। बापूजी से कोई बात करे तो उसे सुनने की इच्छा थी। कुछ देर बाद अतिथियो मे से एक प्रौढ व्यक्ति ने चर्चा छेड दी, "आज मिठाइया बाटी गई, यह ठीक ही हुआ, परतु अब कुछ ऐसा टिकाऊ काम करना चाहिए कि हमारी जीत स्मरणीय बन जाय। विजय का दिन हमारा सुवर्ण दिन होगा। आप इस उपलक्ष में 'इडियन ओपीनियन' का अक सुवर्णाक्षरो मे प्रकाशित करे तो कैसा हो ?"

यह सुनकर बापूजी के मुख-मडल पर छाई हुई गभीरता कम हो गई। कुछ मुस्कराते हुए उन्होने उस प्रौढ अतिथि को देखा और बोले, "कबूल है। हम सुवर्ण अक अवश्य प्रकाशित करेगे । उसमें सत्याग्रह-सग्राम का पूरा सार और चिट्ठा दिया जायगा। परतु अभी सुवर्ण अक प्रकाशित करने योग्य समझौता नही हुआ है। तुम सब लोग जेल से छूट कर आ गए, यह आनद की बात है और इसी निमित्त मिठाई बाटने की बात तुम्हारे सतोष के लिए मैंने स्वीकार की, किंतु अभी यहा कानून वे ही पुराने मौजूद है। जब वे कानून बदले जायगे तब हमारी विजय मानी जायगी। उस जीत से पूर्व हम क्या खुशी मनाएँ ?"

'सुवर्ण अक' के नाम से मै अचम्भे मे पड गया। कैसा होगा वह सुवर्ण अक! क्या उसका प्रत्येक अक्षर सुवर्ण-रज से लिखा जायगा? उसके सभी पन्ने सुनहले होगे और उसकी जिल्द सोने की गिन्नी की तरह चमकती होगी! सुवर्ण-रज से हमारे छापाखाना मे साल भर मे दो-चार बार किसी चित्र या लिफाफे पर नाम छपता था। कभी, वह रज लगाने का काम मुझे भी मिलता था। इसलिए सुवर्ण-अक का पूर्ण काम देखने को मेरा मन बहुत

अधीर हो उठा। परतु जबतक हम लोग फीनिक्स रहे तबतक सुवर्ण अक निकलने की बारी आई ही नही। हमारे फीनिक्स मे भारत आने के बाद फीनिक्स से मेरे पिताजी और अन्य सपादको द्वारा 'इडियन ओपीनियन' का वह सुवर्ण अक प्रकाशित किया गया। उसमे दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का लगभग सम्पूर्ण इतिहास लिखा गया। दस वर्ष बाद बापूजी ने जब यरवडा जेल मे बैठ कर दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह का इतिहास केवल अपनी स्मृति के आधार पर लिखा तब घटनाओ का क्रम किस सावधानी से उसमे दिया, इस बात का प्रमाण 'सुवर्ण अक' देखने से मिलता है।

सुवर्ण अक चाहे कितना ही मूल्यवान क्यो न हो, वास्तव में वह एक जड वस्तु है। उसका विस्मृति के गर्भ मे पहुच जाना स्वाभाविक है। परतु दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह की जो विजय हुई वह बापूजी के यशस्वी जीवन का सचमुच पहला 'सुवर्ण अक' था।

७४ :

जनरल स्मट्स की चाणक्य-नीति

दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रहियो को जिनसे सतत मोरचा लेना पड रहा था वह जनरल स्मट्स चाणक्य-नीति मे अपने समय के प्रथम व्यक्ति के रूप मे विश्व भर मे सुप्रसिद्ध थे।

किन्तु बापूजी ने अपनी युद्ध-नीति मे धर्म-पक्ष को ही अगीकार करने का दृढ सकल्प कर रखा था। अपने व्यवहार मे मिथ्याचार और धोखादेही की परछाई तक बापूजी सहन नही कर सकते थे। सत्याग्रह-शास्त्र मे बापूजी ने इस सिद्धात पर अत्यधिक जोर दिया था कि सौ बार दगा देनेवाले के प्रति भी सच्चा सत्याग्रही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे कपट नही करेगा। इतना ही नही, मन मे भी धोखेबाज का अहित नही चाहेगा, न उससे बदला लेने की भावना ही रखेगा।

भद्रता के इस अतिरेक के कारण बापूजी के सगी-साथी बार-बार तग आ जाते थे और उनसे विनती करते थे, "कृपा करके आप अपना महात्मा-पन बेहद न बढाए। आप खुद धोखा न दे, दगा न दे, यहा तक तो ठीक है, परन्तु धूर्त-शिरोमणि को भी अपना दाव खेलने का मौका न दे।"

जनरल स्मट्स वास्तव मे धूर्त-विद्या मे बहुत ही प्रवीण थे। अग्रेजी

साम्राज्य उनकी चाणक्य नीति का आसरा लेने के लिए अनेक बार लालायित रहता था। जब बापूजी का स्मट्स के साथ कच्चा समझौता हो गया और अफ्रीका भर मे सत्याग्रहियो की आम रिहाई हो गई, तब बापूजी ने सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित कर दिया और लोगो की जेल जाने की महत्त्वाकाक्षा पर रोक लगा दी। उस समय दक्षिण अफ्रीका के कई समझदार सेवको ने बापूजी से कहा, "आप इस धूर्त-शिरोमणि की चिकनी-चुपडी बातो मे न आवे। वह इस समय सत्याग्रहियो का जोश ठडा कर देगा और बाद मे जब हम लोगो मे जेल जाने का उत्साह न रहेगा तब वह फौरन करवट बदल लेगा। आपके हाथ से बाजी निकल जायगी। उस समय यदि आप फिर से सत्याग्रह करेगे और लोगो को जेल जाने का न्योता देगे तो कोई आगे कदम नही बढायगा।"

"दूध का जला छाछ भी फूक कर पीता है" इस न्याय से दक्षिण अफ्रीका के भारतवासियो को जनरल स्मट्स से बहुत ही चौकन्ना रहने का विशेष कारण था। पहले भी स्मट्स की धूर्तता और धोखेबाजी कई बार प्रकाश मे आ चुकी थी। पहली बार सन् १९०८ के सत्याग्रह मे स्मट्स साहब ने सत्याग्रहियो को साफ-साफ धोखा दिया था। उस वर्ष १० जनवरी के दिन बापूजी को सर्वप्रथम जेल भेजा गया। उनकी सजा दो मास की थी, परन्तु बीस ही दिन मे स्मट्स सरकार सत्याग्रह के इस अजीब तरीके से तग आ गई और उन्हे छोड दिया गया। बापूजी के साथ सभी सत्याग्रहियो की आम रिहाई कर दी गई। समझौते के लिए स्मट्स ने नम्रतापूर्वक बाते की। जेल से छूट कर आने वाले सत्याग्रही स्मट्स के सामने अपनी ताकत ऊची रखना चाहते थे, परन्तु बापूजी का दृष्टिकोण भिन्न था। जेल के साथियो का विरोध सहन करके तथा पठान मीर आलम के हाथो बुरी तरह जख्मी होने पर भी बापूजी ने स्मट्स के साथ अपना समझौता निभाया। ट्रान्सवाल के सभी भारतीयो ने समझौते के अनुसार दसो अगुलियो के निशान देकर अपनी रजिस्ट्री करवाई। किन्तु इसके बाद स्मट्स ने वर्ण-भेद के कानून को रद्द कर देने का अपना वादा पूरा नही किया और बापूजी के लिए दुबारा सत्याग्रह-सग्राम करना अनिवार्य हो गया।

ऐसी ही धूर्तता उन्होने सन् १९११ मे भी बरती थी। उन्होने सत्याग्रहियो को वर्ष भर इस आशा मे लटकाए रखा कि अब की बार पार्लमेट मे वर्ण-भेद के कानून को हटा दिया जायगा, पर जब पार्लमेट का अधिवेशन हुआ तब उन्होने सभागृह के सामने स्वय ऐलान किया, "एशियावासियो को हम इस देश मे अपने समान नही मान सकते, उनके लिए

वर्ण-भेद के आधार पर अलग कानून अनिवार्य है ही ।" इसी प्रकार गोखले महाराज को दिये गए वादे से भी स्मट्स साहब यह कह कर बडी सफाई मे मुकर गए कि "तीन पौड का कर हटाने का वादा मैंने किया ही नही ।"

जबकि भारतवासियो के चित्त मे यह सारा इतिहास ताजा ही था तब यह विश्वास करना मुश्किल हो रहा था कि अब की बार स्मट्स साहब अपना वक्र-मार्ग छोड देंगे और दुबारा सत्याग्रह करने की परिस्थिति पैदा न होगी । परन्तु बापूजी जरा भी बेचैन नही थे । पूरे धैर्य और निर्भयता के साथ वह स्मट्स साहब को भरपूर मौका देते जा रहे थे । वह चाहते थे कि वातावरण को क्षुब्ध करने का दोष भारतीयो के सिर पर न मढा जाय । इसलिए उन्होंने सत्याग्रह और कानून-भग की हम लोगो की बातचीत पर भी रोकथाम लगा दी ।

जीत हमारे पक्ष मे थी । सत्याग्रह-युद्ध के दबाव से दक्षिण अफ्रीका की सरकार थकी-थकी-सी हो गई थी । फिर भी बापूजी चिंतित थे कि जीत के ताव मे आकर कोई सत्याग्रही स्मट्स सरकार को चुभनेवाली बाते कही न कह बठे ।

फीनिक्स के हम उत्साही नवयुवको को भी यह बात पसद न आई कि ऐन मौके पर सत्याग्रह-आदोलन को रोक दिया जाय । आपस मे हम यह चर्चा करते रहते थे, "लडने का यह कितना अच्छा मौका है । लेकिन स्मट्स ने समझौते का तूल खडा करके अपनी बात बना ली । इस समय हजारो की सख्या मे पैदल कूच किया जाता और ट्रासवाल-नेटाल की सीमा पार कर ली जाती तो गोरे लोगो का घमड चूर-चूर हो जाता और उनके यह अन्यायी कानून धरे-के-धरे रह जाते । बापूजी तो हमारे गिरमिटिया भाइयो का जोश ठडा कर रहे है । स्मट्स के वचनो का क्या भरोसा ! वह किसी भी समय दगा दे सकता है ।"

परन्तु साथ-ही-साथ हमारी यह अमिट श्रद्धा थी कि सत्याग्रहियो की शोभा किस बात मे है, यह बापूजी भलीभाति जानते है । बापूजी की आगामी आज्ञा की हम लोग प्रतीक्षा कर रहे थे ।

इधर सॉलोमन-कमीशन जगह-जगह जाकर अपना काम कर रहा था । वह जहा जाता, वहा भारतीय लोगो के चित्त खिचे-खिचे रहते । न तो कोई उमग से अपनी बात सुनाने कमीशन के सामने जाता और न कोई काली झडियो से उस कमीशन का विरोध करता । इक्का-दुक्का भारतीय अपनी ही गवाही देने यदि पहुच भी जाता तो लोग उसके बारे मे सोचने लगते थे कि इसने कौम के साथ दगा की है ।

सालोमन-कमीशन को सभी धोखे की टट्टी समझते थे। उसकी हलचले हमे खिलवाड-सी लगती थी। फीनिक्स मे हमे इस बात का पता लगता रहता था कि कमीशन को शहादत मिलने मे कैसी मुसीबत पड रही है। इसपर भी वह अपना स्वाग नही छोडता था। सालोमन साहब और उनके साथियो का यह तमाशा देखने के लिए हमारा जी ललचाता था, परन्तु फीनिक्स की पाठशाला के विद्यार्थी उस कमीशन की झाकी देखने कैसे जा सकते थे।

पर मुझे अकस्मात् यह मौका मिल गया। फीनिक्स पाठशाला के सबसे सौम्य और गम्भीर विद्यार्थी श्री रामदास गाधी ने उस कमीशन को देखने की उत्सुकता बडो के सामने प्रकट की। उनसे कहा गया कि कमीशन के सामने हम लोगो का, विशेषत फीनिक्स के चुने हुए सत्याग्रहियो का, जाना शोभा नही देता, भले ही हम गवाही न दे, फिर भी वे लोग समझेगे कि इन्हे हमारी गरज है। लेकिन रामदासकाका माने नही। आखिर अकेले उनको जाने की स्वीकृति दे दी गई, पर उनसे यह कह दिया गया कि फीनिक्स के विद्यार्थी अथवा बापूजी के पुत्र के नाते वहा अपने को प्रकट न करे। दूसरे किसी बडे विद्यार्थी को रामदासकाका के साथ जाने की स्वीकृति नही मिली, परन्तु मुझे मिल गई। हम लोगो ने श्री सुरेद्रनाथ मेढ को अपने साथ लिया, जो ट्रान्सवाल के एक मजे हुए और ख्यातनामा सत्याग्रही थे। हमारी तीन जनो की टोली कमीशन देखने के लिए फीनिक्स से पैदल चल पडी। मुझे यह याद नही आता कि हमने कमीशन कहा पर देखा, डरबन मे, अवोका मे या माउटेजकब मे। परन्तु कमीशन की वह झाकी मै आजतक नही भूल पाया हू।

एक बहुत बडे शानदार कमरे मे कमीशन विराजमान था। हम लोग कमीशन के कमरे के पास नही गए, रास्ते के उस पार मुख्य द्वार के सामने मे कुछ दाई ओर एक पेड के नीचे खडे रहे। दूसरे भी दस-बीस भारतीय खडे थे, जो गरीब गिरमिटिए मालूम पडते थे। ये लोग भी घूर-घूरकर कमीशन का तमाशा देख रहे थे। इन लोगो की ओट मे छिपकर हम लोग पाच-सात मिनट तक तीनो साहबो का काम-काज देखते रहे। तीन मोटे-ताजे गोरे अकड कर अपनी कुरसी पर बैठे हुए थे। क्या बोलते थे, इसका हमे पता नही चला, किन्तु उनकी मुख-मुद्रा बहुत रूखी थी और उनकी दृष्टि मे हमदर्दी के बदले तिरस्कार का भाव अधिक था। घटो बैठे रहने पर भी मुश्किल से उन्हे एकाध भूला-भटका आदमी पाच-दस मिनट मे मिल पाता था और कुल पाच-दस मिनट मे अपनी बात पूरी करके लौट आता था।

कमीशन का ऐसा करारा वहिष्कार देखकर हमे आनन्द हुआ और हम फीनिक्स लौट आए।

कमीशन का ऊट किस करवट बैठेगा, यह समस्या हमारे सामने बनी हुई थी। स्मट्स के वचन पर वापूजी ने यह भरोसा कर रखा था कि कमीशन भारतीयो के अनुकूल सिफारिश करेगा। वापूजी हम लोगो को धैर्य रखने की वात कह तो रहे थे,लेकिन वह स्वय निश्चिन्त नही थे। स्मट्स सरकार की छोटी-से-छोटी हरकत को वह वडी वारीकी से जाचते रहते थे। स्मट्स के जिन दोहरे अर्थवाले शब्दो से उन्हे यह आशका होती कि आगे चलकर वात वदल जायगी, उन्हे वह स्मट्स को वताकर वदलवा देते थे। इस विषय मे वह कितने जागरूक थे, इसका पता निम्नलिखित पत्र से लगता है, जो उन्होने प्रिटोरिया से फीनिक्स भेजा था

सवत् १९७०, पौष वदी १०,
वुधवार, प्रिटोरिया
ता० २१-१-१४

भाई श्री रावजीभाई,

मै आज ही मि० एण्ड्रचूज के साथ जे० वी० (जोहान्सवर्ग) जाने की उम्मीद मे था, परन्तु यह नही हो सका। जनरल स्मट्स ने मेरे पत्र का जो उत्तर दिया है वह सतोषप्रद नही है। उसमे सुधार करवा लेना है। इसके लिए कल यहा रुका रहूगा। सतोषजनक उत्तर मिलने पर मै कह सकूगा कि समझौता हो गया, पर वह उस दिशा मे एक महान कदम अवश्य होगा। इतना समय नही कि सवकुछ इस पत्र मे समझाऊ। अभी तुरत ही सर वेन्जामिन से मिलने जाना है।

मगनभाई का रोग हटता नही, आश्चर्य है। उनके रोग की चेष्टा देखने के लिए भी मै फीनिक्स मे निश्चिन्त हो कुछ समय विताना चाहता हू। आप लोगो मे जो हो सके वह करे। जनरल स्मट्स से सतोषप्रद उत्तर मिलेगा तो थोडा-वहुत अवकाश मिलने की सम्भावना है। लडके लोग फिर से नियमित हो जाय, इस वात का भी ध्यान रखे।

—मोहनदास के आशीर्वाद

स्मट्स साहव की शब्दावली सदैव खतरनाक मानी जाती थी। २० दिसम्वर, १९१३ से लेकर ३० जून, १९१४ तक वापूजी उनके वक्तव्यो के लिखित स्पष्टीकरण मागते रहे और जव ३० जून को समझौते पर दस्तखत हो चुके, उसके वाद भी करीव महीने भर तक वह भारतवासियो के अधिकारो

के बारे मे लिखित खुलासा लेने मे व्यस्त रहे। सार यह कि सत्याग्रही योद्धाओ के जोश को ठडा करके छ -सात महीने तक बापूजी अपने बल पर ही स्मट्स सरकार के साथ जूझते रहे। केवल यह कहना ठीक नही होगा कि हजारो गिरमिटियो के हडताल करने के कारण अथवा सत्याग्रही भाई-बहनो के जेल मे भर जाने के कारण ही तीन पौंड-कर-विरोधी सत्याग्रह मे विजय प्राप्त हुई। अधिक तथ्य तो यह है कि अपनी शुद्ध और तेजस्वी बुद्धि तथा अपार उदारता के कारण ही बापूजी ने स्मट्स साहब के हृदय को द्रवित किया और उन्हे नेकनीयत बनाया। यही वजह है कि वह समझौता सफल रहा।

स्मट्स के विषय मे बापूजी की निम्नलिखित पक्तिया उद्धृत करने योग्य हैं

"जनरल स्मट्स का अपना नाम 'जेन' है, परन्तु दक्षिण अफ्रीका मे लोग उसे 'स्लिम जेनी' कहते है। 'स्लिम' का अर्थ होगा 'हाथ से सरक जाने वाला', 'मुट्ठी मे किसी तरह न रहने वाला', जिसे हम अपने यहा 'चलता-पुर्जा' या 'चालाक' कहते है। मुझसे कई अग्रेज मित्रो ने भी कहा था कि जनरल स्मट्स से सचेत रहना, वह बहुत ही चतुर आदमी है। बात बदलने मे देर नही लगती। अपना कहा आप ही समझ सकता है। कई बार इस तरह बोलता है कि दोनो पक्षवाले अपना मनपसन्द अर्थ निकाल सके और जब मौका आय तब दोनो अर्थ अलग रखकर वह अपने मतलब का तीसरा ही अर्थ साबित कर दे, जिससे लोगो के दिल मे यह बात बैठ जाय कि हमने गलत अर्थ लगाया था और जनरल स्मट्स का अर्थ ही सही था। सन् १३-१४ मे जनरल स्मट्स का मुझे जो अनुभव मिला वह मैने ऐसा कड़वा नही माना था और आज नौ वर्ष बाद और भी तटस्थता से कह सकता हू कि वह इतना कडुवा नही था। सम्भव है कि १९०८ का उसका विश्वास तपूर्ण बर्ताव भी जानबूझकर किया हुआ विश्वास-भग न हो। मैने 'इडियन ओपीनियन' मे जनरल स्मट्स के विश्वासघात की सुर्खी देकर लेख लिखे थे, किन्तु उनका असर उसपर कुछ नही पडा था, तत्ववेत्ता अथवा निष्ठुर आदमी के लिए चाहे कैसे ही कटु विशेषण प्रयुक्त किये जाय उसपर कोई असर नही होता। वह अपना मनचाहा ही करता रहता है। मै नही जानता कि जनरल स्मट्स के लिए कौन-सा विशेषण काम मे लाया जाय। यह स्वीकार करना पडेगा ही कि उसकी मनोवृत्ति मे एक प्रकार की दार्शनिकता अवश्य है।"

: ७५ :

मृत्यु से शोक क्यों

न जाडा था, न गरमी। वडा सुहावना दिन था। फीनिक्स भर के पेड-पत्तो से अपनी दोस्ती बढाने की अपनी आदत के कारण सुवह की पढाई समाप्त होने पर थोडा अवकाश मिलते ही मै जामुन, सन्तरे, नीवू के पेडो के रग-विरगे पत्तो की शोभा निहारता हुआ वापूजी के घर की ओर जा रहा था कि अचानक मगनकाका को खेत की मेड के पास वैठे हुए देखकर मुझे वडा आश्चर्य हुआ। अपने दो-एक सहपाठियो को भी देखा। मामला क्या है? वहा जाकर देखा। एक अजनवी आदमी को दो लडको ने पकड रखा था। तीसरे ने उसका पैर दवा रखा था। उसके पैर की पिंडली पर के घाव को दवाकर मगनकाका काला-काला रक्त उसमे से वाहर निकाल रहे थे। थोडा रक्त निकल जाने पर अपने पास के औजार से उस घाव को और भी गहरा वनाकर अधिक रक्त निकालते थे। यह क्रिया तवतक चली जवतक काला रक्त समाप्त होकर शुद्ध लाल रक्त वाहर नही आया। तव जाकर मगनकाका के माथे की सलवट दूर हुई और मधुर मुस्कान के साथ उन्होने कहा—जहर खत्म हुआ। अव परमैंगनेट भरकर पट्टी वाध दे। यह कह कर उन्होने घुटने के पास वधा हुआ कपडा खोल दिया और घाव मे परमैंगनेट भरना शुरू किया। लडको मे से एक ने पूछा, "हरा साप तो पूरा ज़हरी होता है न? उसका सारा जहर साफ हो सकता है क्या?"

मगनकाका ने कहा, "हरे साप का जहर पूरा खतरनाक होता है, परन्तु अव इसके पैर मे जहर नही रह गया है। अच्छा हुआ जो दात वहुत गहरा नही वैठा है। भगवान चाहेगा तो अव इसे कुछ न होगा।" पट्टी वध जाने पर मगनकाका ने उस आदमी को खडा कर दिया। उसने अपनी पगडी ठीक तरह वाध ली और मगनकाका पर अपनी कृतज्ञता वरसाता हुआ धीरे-धीरे लौट गया।

मेरे पूछने पर मालूम हुआ कि यह गिरमिटमुक्त किसान सामने वाली टेकरी पर रहता है। हरे पतले साप ने उसे काट खाया। साप तो भाग गया, परन्तु इसने वडी वुद्धिमानी की और घुटने के पास अपने पैर को कस कर वाध दिया। वह उसी दम यहा न आता तो उसका वचना मुश्किल था।

उक्त प्रसग के वाद फीनिक्स मे हम लोगो को साप का डर अधिक

लगने लगा। उसके उपाय के लिए वापूजी की सूचना के अनुसार छोटे-वडे प्रत्येक विद्यार्थी और शिक्षक अपनी जेव में सदैव 'लेनमेट' (छोटा औजार जिसमे मगनकाका ने काट कर जहर निकाला था) रखे, यह नियम वन गया ।

इसके कुछ दिन वाद ही एक भीषण घटना हो गई । गुरुवार का दिन था। कुछ लोग भोजन करके उठ चुके थे, कुछ अव भी कर रहे थे। इसी वीच हमने देखा कि सामने की टेकरी पर एक झोपडी धू-धू करके जल रही है और उसके पास खडी हुई एक स्त्री चीख रही है। पलक मारते ही आठ-दस लडके रावजीभाई और मगनकाका उस ओर दौड पडे ।

उस स्त्री की आवाज पहचानने मे हमे देर न लगी। वह नेपाल की वहू थी। नेपाल वेचारा हरदम वीमार रहता था। रोज सुवह-शाम कुछ-न-कुछ झगडा उठा कर वह औरत घटो तक अपने पति को कोसती रहता थी। उसकी आवाज इतनी तीव्र थी कि पश्चिम और पूर्व की टेकरिया उसको ध्वनि मे गूज उठती थी। आज उसके गले से जो चिल्लाहट निकल रही थी, वह और दिन मे चौगुनी थी और उसमे कोसने के साथ-साथ 'हाय, तोवा' भी भरी हुई थी। उसके शव्द तो मुझे ठीक याद नही है, परन्तु वात का सार यह था "इस पाजी को कैसी कुमत सूझी ? अपने हाथ मे आग दे दी। मै तो लुट गई ।" आश्चर्य की वात यह कि वह आग वुझाने के लिए कुछ भी कोशिश नही कर रही थी। जलती हुई झोपडी से दूर खडी-खडी जीभ का ही जोर दिखा रही थी। उसकी चीख मे सहायता के लिए पुकार नही थी। केवल नेपाल को कोसने मे ही अपनी सारी ताकत खर्च कर रही थी।

जवतक आश्रम के लोग दौड कर पहुचे तवतक उस झोपडी की घास और कडिया जलकर जमीन पर ढेर हो गई थी, क्योकि वह हमारे यहा से आध मील से भी ज्यादा दूर थी। वहा पर पहुचते ही हमारे भाइयो ने सवसे पहला प्रयत्न उस आग से नेपाल को वचा लेने का किया, किन्तु वह विलकुल घिर गया था। उसको जीवित नही निकाला जा सका। इतना ही नही, उसका शव भी जलती हुई कडियो के वीच से निकालना कठिन हो गया। दूसरे दिन उस स्थान की सफाई के लिए हमारे यहा से जो टोली भेजी गई, उसमे मुझे भी जाने का मौका मिला। तव मैने देखा कि वहा कोयले और राख के ढेर के अलावा दो-चार वर्तन और थोडे से कपडे-लत्ते पडे थे। वहुत वोलने वाली नेपाल की वहू अव विलकुल गुम-सुम वैठी थी, न जाने मन-ही-मन क्या सोच रही थी ।

किस प्रकार आग लगी ? इस प्रश्न का वह एक ही उत्तर देती थी कि उस नालायक ने चारपाई मे पडे-पडे अपने-आप आग लगा ली। किन्तु हम मे से वहुतो का अनुमान था कि उस स्त्री ने खुद वह झोपडा जलाया था और अपने पति को जान-बूझ कर जला देने का वह उसका षड्यन्त्र था।

कई दिनो वाद मुझे पता चला कि जिसे हम नेपाल की वहू कहते थे, वह उसकी विधिवत पत्नी नही थी। दक्षिण अफ्रीका के गन्नो के खेतो पर काम करने के लिए १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जिन मजदूरो को फुसला कर भारत से ले जाया गया था, उनपर जो विपत्तिया पडी थी, उनमे भारी-से-भारी विपत्ति स्त्रियो पर आई थी। गिरमिट प्रथा के इतिहास मे स्त्रियो पर होने वाले अत्याचार का प्रकरण काले-से-काला है। आकडो से वताया जाता है कि औसतन १०० मजदूरो के पीछे मुश्किल से १५-२० औरते भेजी जाती थी। भारत के गरीव गावो मे और घरो मे पुरुष मजदूर जिस तरह लुक-छिप कर तथा भाग कर दक्षिण अफ्रीकी गोरो के दलालो के हाथ मे फस जाते थे, उसी तरह जवान स्त्रिया भी फस जाती थी। जव ये लोग दक्षिण अफ्रीका के गन्नो के खेतो पर पहुचते थे तव वैरको के अन्दर मालिक की मर्जी के मुताविक पुरुषो और स्त्रियो को रख दिया जाता था और इस प्रकार पाच-दस पुरुषो मे एक-दो स्त्रिया हुआ करती थी। इन लोगो मे आपस मे गाव, जिले, विरादरी आदि का कोई सम्वन्ध नही होता था। ऐसी हालत मे नई जवानी मे भले ही नेपाल और उसकी वहू का मन आपस मे मिल गया हो, परन्तु वे लोग सच्चे दम्पति नही वन पाए थे।

इस सारी घटना का विवरण वापूजी के पास लिखकर भेजा गया। तव केपटाउन से तत्त्वचिन्तन से भरा हुआ उनका एक पत्र आया, जो इस प्रकार है

केपटाउन,
फाल्गुन सुदी ४, स० १९७०
(२८-२-१४)

भाईश्री,

तुम्हारा खत मिला। नेपाल छूट ही गया। उसकी वहू कठोर हृदय की पाई गई है। मरण से हमे अपने कर्त्तव्य का विचार करना है और शरीर पर प्राय तिरस्कार उत्पन्न करना है। किंतु मरण से भयभीत होने की आवश्यकता नही है। आदमी जल कर मरता है तव भी वह अतिशय दुख नही भोगता, ऐसा प्रतीत होता है। वहुत दुख पडने पर वह मूर्छित हो जाता है। देह से अविक चिपकने वाले लोग अधिक पीडा पाते है। आत्मतत्त्व जानने वाला

मनुष्य मौत से घबरायगा नही। नेपाल की तरह हजारो आदमी, हजारो जन्तु इस समय प्रत्येक पल मे जलकर मर रहे है। ब्रह्माण्ड में नेपाल एक चीटी से भी सूक्ष्म जन्तु है। हम लोग जान मे या अनजान मे आग जलाते समय, रात को बत्ती का उपयोग करते समय, तुलना मे नेपाल से कितने ही बडे जन्तुओ को जला देते होगे।

ब्रह्मा के समान किसी महाजीव की कल्पना करो। उसके हिसाब से हम लोग चीटी मे भी सूक्ष्म जान पडते होगे। उसकी आखो की परिधि ही इतनी बडी होगी कि उसके सामने हम पिस्सू के बराबर दिखाई देगे। ऐसे महाजीव ने नेपाल को जलाया होगा तो क्या आश्चर्य है और उसका खयाल यह होगा कि उसके अपने महाजीव के सुख के निमित्त नेपाल जैसे जतु को जिंदा जला देना आवश्यक है। हमारे मन मे नेपाल हमारे बराबर का जन्तु है। इसलिए हमारी भी ऐसी दुर्दशा हो तो हमारा क्या होगा, इस भय से हमारे दिल मे दया फूट पडती है। किन्तु चीटी, खटमल, पिस्सू आदि असख्य जन्तु तथा जिन्हे हम अपनी आखो से देख नही पाते, ऐसे जीवो का घात करने मे जो दलील अपनी बुद्धि के [illegible] पर हम पेश करते है, वही दलील अधिक बुद्धिवाला ब्रह्मा हमारे बारे मे लागू करता होगा। यह बात अगर हम समझे तो नेपाल जैसे के किस्से से हमे नीचे की नसीहत मिलेगी।

१ अपने खुद के ऊपर करुणा लाकर सब जीवो को समान समझे और उनके ऊपर करुणा करे। अपने निज के किसी भी सुख के लिए प्राण-हानि करने से सहम जाय, चौकन्ने रहे।

२ देह के प्रति मूर्छा (मोह का अतिरेक) न पालते हुए मृत्यु का जरा-सा भी भय न माने।

३ देह दगाबाज है, ऐसा समझकर इसी क्षणसे मोक्षकी सामग्री बटोरे।

इन तीन सूत्रो का उच्चार कर देना आसान है, परन्तु उसका विचार करना कठिन है और विचारने के बाद उसके अनुसार आचरण करना तो तलवार की धार के ऊपर चलने के बराबर है।

यह प्रात काल का समय है। विचार का प्रवाह इस दिशा मे बह रहा है, क्योकि बा फिर से पीडित हो रही है और उसको मरण के भय से मुक्त करने का प्रयत्न कर रहा हू।

—मोहनदास के आशीर्वाद

इस पत्र से पता चलता है कि केपटाउन मे बैठे-बैठे भी फीनिक्स-वासियो को उच्च भूमिका पर ले जाने के लिए बापूजी कितना भारी प्रयत्न कर रहे थे।

नेपाल की मृत्यु को सप्ताह भर भी नही बीता होगा कि पोरबन्दर से एक अनपेक्षित तार आया। उसमें बापूजी के बडे भाई कालिदास गाधी उर्फ लक्ष्मीदास गाधीजी के स्वर्गवास की खबर थी। पाच-छ महीने पहले करसनदास गाधी—बिचले भाई—की खबर जब आई तब बापूजी फीनिक्स मे उपस्थित थे। इस खबर के समय वह केपटाउन थे। देवदासकाका के मन को इस समाचार से बडा दुख हुआ। इधर जल्दी ही भारत पहुचने की आशा लगी हुई थी। उधर दो काकाओ में से एक भी न रहे। परिवार की इस क्षति के कारण उस दिन देवदासकाका अत्यन्त उदास रहे और काफी देर तक उनकी अश्रुधारा बहती रही।

पोरबदर से आये हुए तार की बात जब केपटाउन बापूजी के पास पहुचाई गई तब बापूजी ने देवदासकाका को एक पत्र भेजा, जिसका सार नीचे दे रहा हू

"काका की मृत्यु के समाचार से खेद होगा ही। स्वदेश लौट कर उनसे मिलने का दिन करीब आया तब वह चल बसे। इस बात से विशेष दुख होता है, परन्तु हमे ऐसे दुखो को मन मे लाना ही नही चाहिए। ईश्वर की इच्छा ऐसी ही होगी। काका गये, उसी प्रकार बा भी इस बीमारी मे यदि नही उठती, मुझे बा के बिना ही फीनिक्स लौटना पडे, तब भी तुम दुख न मानो और जरा भी आसू न गिराओ, यह मै चाहता हू। इतनी भारी बीमारी में भी डाक्टर की चिकित्सा या और कोई औषध न लेने पर हम तुले हुए है। बीमारी दूर हो या न हो, बा को दवाई आदि न देने की बात पर तुमने भी सोच-समझ कर हा कही है। इसलिए तुम को बहादुर और दृढ बनना है। किसी की भी मृत्यु के कारण हमे रोना ही नही चाहिए।"

७ व्यइटेन सिगल ,(केपटाउन)
१०-३-१९१४

प्रिय कैलनबैक,

मुझ पर भारी-से-भारी आपत्ति आ पडी है। मेरा खयाल है कि अन्तिम क्षण तक मेरे बारे में ही सोच-विचार करते हुए कल मेरे भाई मर गए। मुझसे मिलने की उन्हे कितनी उत्कट इच्छा थी! और मै भी जितनी जल्दी हो सके भारत लौटू, उनके चरणो पर सिर रखू और उनकी तीमारदारी करू, इस विचार से अपना काम शीघ्रता से समेट रहा था। परन्तु नियति कुछ और ही थी। अब तो मेरे लिए विधवाओ के कुटुम्ब मे लौटना बदा है और वह कुटुम्ब भी मेरा ही आसरा ताकने वाला! भारत की कौटुम्बिक व्यवस्था को तुम समझते नही हो, इसलिए इस प्रसग को नही समझ

पाओगे। चाहे जिस तरह हो, हिन्द जाने की मेरी इच्छा दिनो-दिन प्रबल होती जाती है और अब भी निश्चित रूप से कौन बता सकता है। मेरी यह इच्छा फलीभूत होगी या नही इसके बारे मे मुझे अब भी सदेह है। फिर भी मुझे उस यात्रा के लिए तैयारी करनी चाहिए और परिणाम के लिए शात चित्त से सर्वशक्तिमान प्रभु पर विश्वास रखना चाहिए।

ऐसे-ऐसे आघातो से मनुष्य में मृत्यु के विषय मे अधिक निर्भयता बढती जाती है। इस घटना से मेरे हृदय मे खलबली क्यो मचनी चाहिए ? घबराहट क्यो होनी चाहिए ? इस प्रकार के शोक के मूल मे स्वार्थ की परछाई होती है। अगर मै मृत्यु के लिए कटिबद्ध होता हू और मृत्यु को स्वागत के योग्य प्रसग मानता हू तो मेरा भाई मर गया यह कोई आपत्ति की बात नही है। हमको मृत्यु का डर लगता है इसलिए दूसरो की मृत्यु पर हम रुदन करते है। शरीर नाशवान है और आत्मा अमर है, यह जानते हुए भी शरीर और आत्मा के अलग हो जाने पर मै किस तरह शोक कर सकता हू ? परन्तु ऐसे सुन्दर और आश्वासनपूर्ण सिद्धान्त में सच्चा विश्वास हो तब ही वह स्थिति प्राप्त होती है। जिसे इस बात मे श्रद्धा होती है, उसे शरीर की पुचकार और परवरिश करना उचित नही, बल्कि उसे नियता बनना उचित है। अपने शरीर की आवश्यकताओ को उसे इस प्रकार रखना चाहिए कि देही पर स्वामित्व भोगना छोडकर उसकी अधीनता मे रहे। दूसरो की मृत्यु पर शोक करने का अर्थ प्राय शाश्वत शोक की स्थिति को अपना लेना है, क्योकि शरीर और आत्मा का यह सम्बन्ध स्वय ही शोकप्रद है।

इस समय मेरे चित्त पर यह विचार प्राधान्य भोग रहे है। फिलहाल ऐसा दूसरा पत्र मुझसे नही लिखा जा सकेगा। यह तो अपने-आप लिखा गया है। इसलिए श्री पोलक को यह पत्र पहुचाना और मणिलाल को भी यह पत्र पढने के लिए देना और बाद में श्री वेस्ट आदि के पढने के लिए छगनलाल के पास भेज देना।

—बापू

जमनादासकाका जब केपटाउन से फीनिक्स आए तब उन्होने हमें बताया कि कालिदास बापूजी के चल बसने का समाचार मिलने पर उस समय या उसके बाद भी बापूजी ने अपनी आखो से आसू की एक भी बूद नही गिराई थी। अपने मन को बहुत ही दृढ बनाकर उन्होने बडे भाई की मृत्यु का यह भारी-से-भारी आघात सहन कर लिया था। यह विवरण सुनकर मै सोचता रह गया कि बापूजी कितने बलवान है। अभी चन्द माह पहले अपने बिचले भाई की मृत्यु पर जब वह अपने आसुओ को गिरने से नही रोक सके थे तब आज इस अधिक गहरी चोट पर उन्होने एक भी आसू नही गिरने

दिया । मृत्यु से डरने की व शोक करने की कमजोरी को छोड देने का जो उपदेश उन्होने उस रोज दिया उसे इतने थोडे समय मे उन्होने प्रत्यक्ष करके दिखा दिया ।

: ७६ :

बापू का कठोर अनुशासन

केपटाउन मे बापूजी के साथ दो विद्यार्थी उनकी सहायता तथा बा की सेवा-शुश्रूषा के लिए रहते थे । एक थे उनके द्वितीय पुत्र श्री मणिलाल गाधी और दूसरे उनके छोटे भतीजे श्री जमनादास गाधी । दोनो की आयु अठारह से बीस वर्ष के बीच थी ।

दोनो सुशील, सस्कारी, मेधावी और श्रेष्ठ कर्तृत्वशक्ति वाले थे । सत्याग्रह-सग्राम मे बडी वीरता से दोनो ने जेल काटी थी । कई दिनो तक कारावास मे पूरा अनशन करके सत्याग्रहियो का और भारतमाता का अपमान दूर करने पर दोनो ने बडी प्रशसा पाई थी। केपटाउन मे भी प्रात - काल से सध्याकाल तक बापूजी का काम करने मे दोनो व्यस्त रहते थे ।

ऐसे उत्तम विद्यार्थी और अपने ही बालको पर बापूजी ने अनुशासन का सूक्ष्म हटर चलाया और उन्हे तुरन्त ही केपटाउन से लौटा दिया । इस सबध मे बापूजी के लिखे हुए पत्र पढने पर पूरा प्रकाश मिलता है

केपटाउन
ता २१-२-१४

भाई श्री रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र मिला । चि० मणिलाल को वहा (फीनिक्स) नही भेजना है । उसको यहा के वैभव से हटाया है । ऐसे ही सबब से चि० जमनादास को वहा (फीनिक्स) भेजा है। जिसे ब्रह्मचर्य का पालन करना है उसे वैभव वाली परिस्थिति में नही बसना चाहिए, ऐसा मै मानता हू । बा का स्वास्थ्य ठीक मालूम दे रहा है । वहा पर (फीनिक्स मे) लडके उद्यमशील बन जाय और तडके उठने मे जरा भी पिछडे नही इस बात की सावधानी रखना । मगनभाई पटेल का स्वास्थ्य कैसा रहता है ? मुझे ब्यौरे से लिखना । इमाम-साहब को वह परेशानी महसूस न करे, ऐसा इन्तजाम करना । उसके लिए कुछ विशेष भोजन की आवश्यकता हो तो विशेष रूप से वह बना देना, या उनको खुद को बना लेने देना, यह उचित समझता हू ।

श्री एण्ड्रूज ने बडा भव्य काम किया है, इसमे कोई शक नही है ।

—मोहनदास के आशीर्वाद

फाल्गुण सुदी २, १९७०
ता० २६-२-१४

चि० जमनादास,

तुमने और मणिलाल ने इस बार मुझे समझने मे गलती की है, ऐसा मै पाता हू । तुमको रखने से तुम्हारा श्रेय नजर आता तो अपने स्वार्थ के कारण ही मै तुमको यहा से अलग न करता । यहा के वातावरण के सामने मै भिड ही नही सकता । वातावरण का सूक्ष्म असर कैसा होता है, उसका तुमने विचार नही किया ।

डाक्टर गुल का जौहर तुम सबने देखा, उससे पहले मैने देख लिया है । किन्तु जिस प्रकार तुम्हारा जौहर देखने पर भी मै तुमको निर्बल और बालक समझता हू तथा तुम्हारे अधीन किसी और को रखने मे मुझे सकोच हो, उसी प्रकार डा० गुल के असर के नीचे तुम जैसे निर्मल जवान को रखने मे सकोच करता हू । डाक्टर गुल बालक है, यह बात खुद भी जानते है । अपने दोषो को भी जानते है और इसी वजह से अपने सगे भाई को उन्होने अपने से अलग कर रखा है । साहसिक (अविचारी) और रागी (अति आसक्त) है । तुम लोगो मे मै उनका साहस और राग देखना नही चाहता । तुममे हसमति नही आई है । अगर आई होती तो मेरे लिए कठोर टीका करने का कारण ही न रहता । मेरा अतिप्रेम तुम लोगो को इस बार दाहक प्रतीत हुआ है । ऐसा हो जाता है, परन्तु तुम पुन शात हो जाना । मैने अविचारी कदम नही उठाया है । तुम मुझ पर वकीलपने का जो आरोप रख रहे हो वह उचित नही है । पहले भी तुमने ऐसा ही कहा था । मुझमे पृथक्करण करने की और भला-बुरा परखने की शक्ति विशेष है, ऐसा मुझे अनुभव होता जा रहा है । इस कारण मेरी सूक्ष्म दलीलें सुनने वाले व्यक्ति को वकालत-सी महसूस होती है ।

चाहे कुछ हो, लेकिन तुम अपने बचाव में या मेरी गलती सुधारने के लिए जो कुछ कहना चाहो बेखटके कहना । तुम्हारा यह कर्त्तव्य है । मुझे हमेशा पत्र लिखते रहो । बा का स्वास्थ्य काफी ठीक है । खतरा टला नहीं है ।

(केपटाउन) —बापू के आशीर्वाद

ता २७-२-१४

चि० जमनादास,

तुम्हारा न तार है न चिट्ठी, एकके सिवा। मानो तुम रोष से भरे हो। किवरली वाला तुम्हारा पत्र उचित नही है। किन्तु जहा तुम्हारा वर्ताव ही मैने उलट देखा वहा चिट्ठी के लिए क्या शिकायत करू। तुम दोनो के ही पत्र सूचित करते है कि तुम लोगो को केपटाउन अनुकूल नही आया।

फीनिक्स मे क्यो मै किसी के वर्ताव से तग नही आया? एक अपवाद है सही। वह है मिस स्लेशिन। परन्तु वह तो अन्त मे अपना दोष देख सकी। शुरू मे तो उसने मुझे तग ही कर डाला। तुम दोनो तो मेरा दोष देखने लग गए। खूब विचार करके तुम शात बनो, ऐसा मै चाहता हू। आज मै मणि-लाल को पत्र नही लिख रहा हू, इसलिए यही उसके पास भेज देना।

(केपटाउन) —बापू के आशीर्वाद

एक अन्य पत्र मे मणिलालकाका को लिखा है

तुमने मुझ पर निर्दयता का आरोप रखकर अनजान मे पाप किया है। पन्द्रह दिन के भीतर मै निर्दयी बन गया? ऐसा असर औरो पर तो नही पडा। फीनिक्स मे वह नही हुआ। बा के प्रति मै अति कोमल बना हू, ऐसा बा देखती है। अगर तुम्हारे प्रति मै निर्दय बनता हू तो मेरी साधुता, जो कुछ हो, वह दभ ही कही जायगी और अपना जीवन मै व्यर्थ समझूगा।

परन्तु इसमे कोई शक नही है, फिलहाल मै तुम को निर्दय जान पडूगा। जिस मोह के कारण मै तुम्हारे भीतर मोह नही देखता था वह मोह नष्ट हो गया है और केवल निर्मल प्रीति रह गई है। वह प्रीति इस समय तुमको निर्दयता रूप जान पडती है, क्योकि मुझे वैद्य के मानिन्द कडुए प्याले पिलाने है। तुम्हारे बारे मे सपूर्णता प्राप्त करने के लिए मै अधीर हो बैठा हू। अधीरता यह मेरा दोष है। इस अश मे मै राग वाला (आसक्ति वाला) प्रेमी हू। तुम मेरे बेटे हो, यह मोह अब भी रहा है। उसके नष्ट होने पर जो निर्दयता तुम मुझमे देख रहे हो वह भी कदाचित नही देखोगे। तबतक मुझे निभा लेना।

अब तुम्हारे पत्र वाले विरोधो की बात। तीन दिन मे तुमने केपटाउन नही देखा, क्योकि मेरे वचन कटु थे, फिर भी चलते समय मेरा उग्र ताप होने पर भी, केपटाउन देखने की इच्छा तुमने बताई। कटु वचन तो रविवार को भी थे। तुमने जब मुझको निर्दय मान लिया तब मेरे साथ रह कर तुम किस तरह कुछ सीख सकते थे? तुमने टेबल माउटन घूम आने की बडी

मांगी इच्छा बताई। तब मैंने तुमसे कहा कि तुम और भी विशेष (कई विशेष स्थान) देखोगे, तो उसमें तुमने मेरा क्या अपराध पाया ?

किन्तु हुआ सो हुआ। मेरा दोष न देखना, यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। बेटे में इतनी भक्ति होनी चाहिए कि वह बाप का दोष न देखे, पर उसके गुणों का ही विचार करे। मैं तुमको फकीर नहीं बनाना चाहता। मैं तुम्हारा शुद्ध आचरण देखना चाहता हू। तुममें सत्य, शील, सरलता, कोमलता, प्रभुता, नम्रता, साधुता देखना चाहता हू। ससार के साधारण रागों से तुममें विरक्तता देखना चाहता हू। परन्तु वह सब इस समय है, ऐसा नहीं लगता। मैं करता हू वैसा तुम कर डालो, यह मैं नहीं कहता। परन्तु तुम मेरे गहरे उद्‌गारों को समझ कर अपने जीवन को सफल करो, ऐसा मैं चाहता हू।

यह पत्र चि० जमनादास को भेजना।

(केपटाउन) —बापू के आशीर्वाद

इस प्रसग के बारे में जमनादासकाका ने जो वर्णन मुझे सुनाया था वह उनके शब्दों में यहा दे देना उचित होगा

"जेल से छूटकर जब मैं बापूजी के पास पहुचा तब वह अपने लुगी-कुर्त्ते वाले नए वेश में थे। उस पोशाक में जब केपटाउन के राजमार्ग पर बापूजी पैदल चलते हुए निकलते थे तब गोरे लडके उनके पीछे पड जाते थे, खिल्ली उडाते थे, तरह-तरह की आवाजे कसते थे और आपस में मजाक करते थे। लेकिन बापूजी तो मानो कुछ हुआ ही न हो इस प्रकार शान्ति-पूर्वक आगे बढते चले जाते थे।

"बा का स्वास्थ्य कमजोर था ही। स्वय बापूजी उनकी सेवा का काम करते थे। बा को प्रत्येक काम बहुत ही स्वच्छ और सागोपाग सपूर्ण चाहिए, इसलिए बापूजी किसी को भी बा के काम में हाथ नहीं लगाने देते थे। मुझे वह काम करने की उन्होंने स्वीकृति दी और सुबह से शाम तक बा की सेवा में ही रहने का अवसर मुझे मिला। परन्तु थोडे ही दिनों में हमको बापूजी ने केपटाउन छोड जाने की आज्ञा दी।

"वह दिन बुधवार का था। अकस्मात् बापूजी ने सूचना दी कि हम दोनों को शनिवार की दोपहर की ट्रेन से केपटाउन से जाना है। हम दोनों का मतलब मणिलाल भाई और मैं। मणिलाल को बापूजी ने अपने साथ एड्र्यूज साहब की सेवा के लिए ही लिया था। जिस शनिवार के दिन केपटाउन छोड देने के लिए बापूजी ने हमको सूचित किया था उसी

शनिवार को सवेरे ग्यारह बजे की स्टीमर से श्री एड्र्यूज इग्लैड के लिए रवाना होने वाले थे और उसके घटे भर बाद हम लोगो को केपटाउन से चलना था।

"बापूजी की बात सुनकर मणिलालभाई ने कहा कि हम सोमवार को यहा से जाय तो ? रविवार के दिन डाक्टर गुल के साथ हमने यहा के प्रसिद्ध शिखर टेबल माउटन को देखने जाने की व्यवस्था की है। वह देखकर सोमवार के दिन हम जायगे। लेकिन बापूजी ने वह बात नही मानी। शनिवार के दिन ही हम चले जाय, ऐसा आग्रह उन्होंने किया और कहा, "टेबल माउटन मे देखने की बात है ही क्या ? देखना हो तो हिन्दुस्तान जाकर हिमालय देखना। हिमालय मे तो कोई हजार टेबल माउटन समा जायगे।"

"डा० गुल और उनकी माताजी ने जोरो से हमारी सिफारिश की और बापूजी को समझाने की कोशिश की, परन्तु बापूजी ने एक न मानी। हमे शनिवार को ही वहा से चलना पडा और टेबल माउटन देखना रह गया।

"इस प्रकार बापूजी ने जो सख्त आग्रह किया उसकी जड मे बापूजी का सदेह था कि हम लोग मौज-शौक मे फँस गए है। डाक्टर गुल का कमरा आलीशान था। सारा ठाठ अग्रेज साहब का-सा था। हम लोग भी उन्ही के साथ उनके ही 'डाइनिंग टेबल' पर भोजन के लिए बैठते थे। वे लोग अडे-गोश्त आदि लेते थे। लेकिन हम लोग मेज के दूसरे सिरे पर अपना निरामिष भोजन ही लेते थे। हमारा सबसे अलग-अलग रहना अच्छा नही मालूम देगा, ऐसा हमारा खयाल था। परन्तु बापूजी को ऐसा प्रतीत होता था कि डाक्टर गुल के साथ हम भी शौकीनी की ओर लुढक रहे है। हम दोनो मे से किसी को भी बापूजी ने अपने पास नही टिकने दिया, इसका कारण यह था कि एक को रहने देते तो वह पक्षपात माना जाता।"

बापूजी के कठोर अनुशासन का यह प्रसग अविस्मरणीय है। इस पर से पता चलता है कि यद्यपि बापूजी ने अपना निवास किसी अरण्य के एकात कोने मे रखने का आग्रह नही रक्खा था, फिर भी उनके चित्त मे नागरिको के रग-राग से दूर तपोवन का आश्रम ही रम रहा था और अपने विद्यार्थियो को वैसे ही वातावरण मे सुशिक्षित करने का उनका मनोरथ था। साथ-ही-साथ जबतक अपने विद्यार्थी की बुद्धि को बापूजी जगा नही देते थे तब तक उसकी बात को बार-बार सुनते थे और अपनी आज्ञा की यथार्थता समझाने का बार-बार प्रयत्न करते थे। चाहे अपना पुत्र भी क्यो न हो।

केवल आज्ञा पालन करने के लिए पुत्र या शिष्य को आज्ञापालन करना चाहिये, ऐसा आग्रह वापूजी ने विल्कुल नही रखा था। यह वात नीचे के पत्र मे और भी स्पष्ट हो जाती है

केपटाउन
शनिवार, ई स १९१४

चि० मणिलाल और जमनादास,

तुम सव मेरे साथ दौडो, यह इच्छित है, पर मै ऐसी आशा पालता नही हू। जो मै करता हू वह सव तुम लोग भी करो, ऐसी माग मैने कभी की नही है, लेकिन जो करने को अपने सिर पर लो वह तो करना ही पडता है। वलात्कार की तो वात ही नही है, लेकिन जब तुम अपने-आप समझ-बूझ कर ही अमुक व्यसन छोडने के वाद मुझे धोखा देने लगो तो वह दोप तुम्हारा ही कहा जायगा। वडे भी और लडके भी सीमित हद तक पहुच पाए है, ऐसा हम माने। अमुक वस्तुओ का त्याग फीनिक्स मे वे लोग करते है और उन वस्तुओ को वहा पर वे त्याज्य समझते है, फिर वहा से वाहर जाने पर उन्ही वस्तुओ को क्यो अपनाया जाय ? अलोना आहार करने के लिए कोई भी वाध्य नही है। तेज मसाले, छोटे-मोटे व्यसन, महा-स्वादिष्ट भोजन, चाय, काफी आदि वस्तुए सवके लिए त्याज्य है। विपय, चोरी, देर से उठना, सबके लिए त्याज्य है। यह मर्यादा जिसे असह्य जान पडे, उससे किस बूते पर सस्था मे रहा जा सकता है ? प्रत्येक सस्था के निश्चित नियम होते है। उन नियमो का सस्था के अन्दर और वाहर सव जगह पालन करना ही चाहिए। जो न पाले, उसका सस्था मे रहना मिथ्या है।

तुम्हारे कहने का मतलव यह निकलता है कि मेरे लिहाज के कारण लडके और दूसरे भी कई वाते करते है, अपनी स्वतत्र वृत्ति से नही करते। और फिर वे धोखा देते है। यह मेरा दोप हो सकता है, परन्तु उससे एक ही प्रकार से मुक्त हो सकता हू, अर्थात् किसी के साथ मै न रहू। यह इस समय मेरा कर्त्तव्य प्रतीत नही होता। मेरे लिहाज मे आकर अगर कोई मेरे कहे विना ही अलोना करने का दिखावा करता है और मुझे धोखा देता है तो मै दोपी क्यो ठहरूगा ? तुम अलोना नही करते हो, इसलिए मै तुम पर कम प्यार रखता हू और जमनादास केवल फलाहार ही करता है इसलिए उसको विशेप चाहता हू, ऐसी कोई वात नही है। लोने-अलोने मे कुछ भी पाप-पुण्य नही है। उसके पीछे जो रहस्य है उसमें पाप-पुण्य है। इमामसाहव कभी भी अलोना नही करेगे, इसलिए वह मुझे अप्रिय नही है। मिस स्लेशिन हर वात मे मुझसे विरोधी वर्ताव करती है, फिर भी कुछ

अश मे तुम सब लोगो के मुकाबले मे उसका चरित्र बहुत ऊचा मानता हू।

सभी परिवर्त्तनो के पीछे हमारा उद्देश्य सयम पालन करने का और उसमे वृद्धि करने का है। यह जिसको मजूर न हो उसे मेरा त्याग कर जाना चाहिये, यही उस रात्रि को मेरा कथन था और वह उचित ही दीखता है।

सयम का मतलब यह मत समझो कि अलोना करना। दो दिन की सूखी रोटी और कण भर नमक से गुजर करके तुम जीवन विताओ या मै अनेक प्रकार के फल-मेवे का स्वाद लू—उससे बहुत ऊची बात हो सकती है। तुम किस हेतु से सूखी रोटी ले रहे हो और मै किस हेतु से फल-मेवे लेता हू, इसके आधार पर उस कार्य की शुद्धता का निर्णय किया जा सकता है।

पवित्रता दूसरो के द्वारा किये गए दोषारोपण से फीकी नही पडती, किन्तु और भी प्रबल बनती है।

तुम से यदि कुछ भी अनुचित बात बन गई है तो तुम उसे मेरे सामने मजूर कर लो। ऐसा किये बिना तुम्हारा उपवास या सैकडो प्रायश्चित्त फलने वाले नही है।

वहा आने के लिए मै तरस रहा हू, पर अपना कर्त्तव्य नही छोड सकता।

की हुई प्रतिज्ञा मै लौटा लू, यह पश्चिम मे सूर्य उगे तब भी नही हो सकता। मनुष्य अपने प्रण को आसानी से निभा नही सकता।

तुम दोनो को इस पत्र से रोष आयगा, लेकिन जो मेरे मन मे है मै न लिखू तो मुझमे जो कुछ सत्य है उसको दाग लग सकता है और इस तरह मै तुम्हारा बुरा करनेवाला बन जाता हू। तुम्हारे लिए दुख उत्पन्न करना, यह इस समय मेरा धर्म हो पडा है।

—बापू के आशीर्वाद

: ७७ :

कर्त्तव्य और संयम

उपनिषदो के सबध मे एक ऋषि ने कहा है, "यदि यह वाणी किसी सूखे ठूठ को सुनाई जायगी तो वह भी नवपल्लवित हो उठेगा।" केपटाउन से लिखे हुए बापूजी के कई पत्रो मे भी ऐसी ही अमृतमयी वाणी भरी हुई है,

जिसपर मनन करनेवाला चाहे कितना ही दुर्बल-चित्त क्यो न हो, शक्तिशाली बनने का सकल्प करने लगेगा।

कब सत्याग्रह किया जाय, कब न किया जाय, इसकी विधि समझाते हुए बापूजी के लिखे एक पत्र की कुछ पक्तिया इस प्रकार है —

केपटाउन
मगलवार, ज्येष्ठ बदी १ (८।६।१४)

जो सत्याग्रही होता है आमतौर से तटस्थ रहता है। हमे हमेशा बोलना ही चाहिए, ऐसा नियम नही है। सत्याग्रह कब किया जाय, इस प्रश्न का उत्तर सहज मे नही दिया जा सकता। सत्याग्रही जब सत्याग्रह शुरू करता है तब वह पहले कुछ विचार कर नही रखता। उसकी आत्मा के उद्गार के विरुद्ध काम हुआ है ऐसा जब उसे प्रतीत होता है तब उसके प्रतिरोध मे वह आत्मबल का प्रयोग करता है। मैने सत्याग्रह शुरू किया तब भी मैने उसे धर्म का अग ही समझा था। अनुभव से मालूम हुआ कि वही धर्म है और वही चिन्तामणि है, इस कारण मेरे अन्दर वह धर्म के रूप मे विशेषत विकसित हुआ।

सत्य के अलावा और कुछ कभी करना ही नही है यह बात जिसने पक्की कर ली वह सत्याग्रही है और ऐसे आदमी को प्रत्येक मौके पर उपाय सूझ ही जाता है। जीवन-मात्र सत्यमय होना चाहिए। यम-नियम आदि का पालन करने से धीरे-धीरे वह बात आ जाती है। जिस प्रकार स्थूल विषयो को सीखने मे बरसो तक प्रयत्न करना पड़ता है, उसी प्रकार सत्याग्रह का स्वरूप समझने के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा पर छाये हुए तुम्हारे और मेरे आवरण दूर होते चलेगे त्यो-त्यो आत्मा प्रकाशित होगी और उसी अनुपात से वह बलवान सत्याग्रही के रूप में जूझेगा

बापूजी जब केपटाउन थे तब विद्यार्थियो की दिनचर्या पर ध्यान रखने का काम श्री रावजी पटेल विशेष रूप से करते थे। उस समय वह एक प्रकार से नये फीनिक्सवासी ही थे। फीनिक्स मे आये हुए उन्हें दो वर्ष भी नही बीते थे। वहीं पर दूसरे कार्यकर्त्ता प्राय अपने-अपने परिवार के साथ थे और रावजीभाई के घरवाले भारत मे थे। उनकी माता का स्वास्थ्य कमजोर होने की खबर मिलने से घर लौट जाने का उन्होने इरादा किया, परन्तु बापूजी ने आश्रम-कार्य में एकाग्रता से लगे रहने का और मातृ-सेवा को गौण समझने का उनको परामर्श दिया। वह पत्र इस प्रकार है

केपटाउन
शनिवार

भाई श्री रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र आज इतनी देर से मिला कि न मै तुमको आज की डाक से पत्र भेज सकू, न तार ही पहुचा सकू। अब सोमवार को ही तार करूगा। जहा पर माता के प्रेम का प्रश्न है, जहा पर पुत्र-वात्सल्य का सवाल सामने आता है वहा किसी अन्य व्यक्ति के लिए परामर्श देना एक धर्म-सकट है। फिर भी यह अनिवार्य है कि मै परामर्श दू। अपने पिताजी के पत्र पर से तुम जिस निर्णय पर आये थे उस समय तुम्हारी माताजी के विचारो का अनुमान हम लोग लगा पाए थे। उनका पत्र आने से कोई नई बात पैदा नही होती, लेकिन नई भावना उत्पन्न हुई है और प्रेमभाव ने स्वभावत ही तुम्हारे हृदय मे प्रधानता प्राप्त कर ली है। अब अगर तुम निर्मोही बनकर निर्णय कर सको तो तुम्हारा प्रेम निर्मल और दिव्य स्वरूप प्राप्त कर सकेगा। तुम सारे जगत को अपना प्रेम दे सकते हो, अर्थात् ऐसा करने का प्रयत्न कर सकते हो। मातृ-भक्ति का यही उद्देश्य है। और जो भक्ति है वह स्थूल लौकिक और केवल देह के प्रति है। इसमे से मुक्त होने के भजन अक्सर तुम गाते हो। "आ ससार असार विचारी"—(एक गुजराती भजन की टेक) वाला भजन गाकर उसकी गूढ ध्वनियो पर विचार करना, "जीव ने श्वास तणी सगाई" के पद की क्या ध्वनि है ? फीनिक्स के और दूसरे रहन-सहन मे यह अन्तर है कि जिस बात को हम पढते है उसे अपने मे दृढीभूत करने का प्रयत्न करते है।

तुम्हारे हिन्दुस्तान जाने का परिणाम क्षणिक होगा। पन्द्रह या पाच दिन के बाद तो रोना ही पडेगा। फिर तो वियोग है ही।

पुन हम ऐसी जिन्दगी बिताना चाहते है कि हमारे पास एक पाई भी न रहे। ऐसा गरीब आदमी इस प्रकार के अवसर पर क्या करेगा, यह विचार करना।

अपने माता-पिता के दर्शन करने की भावना नित्य बनी रहे, यह उत्तम बात है। इस उत्कठा को फिलहाल दबाकर अपने जीवन को और भी वीतरागी बनाना, यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। अपने चरित्र को सुदृढ करने के लिए ही तुम परदेश भुगत रहे हो। तुम्हारे लिए यह स्थिति बनवास की है। ऐसा करने मे ही तुम अपने माता-पिता को सुशोभित करोगे। तुम स्वेच्छाचार नही कर सकते, किन्तु दिनोदिन आत्मोन्नति करो, सयमी बनो तो इस समय स्वदेश लौटने के कर्त्तव्य से मुक्त हो जाते हो।

यह विचार करने मे प्रेस की (फीनिक्स के काम के लिए तुम्हारी आवश्यकता की) बात का जरा भी विचार नही किया है। किस बात मे तुम्हारी आत्मोन्नति है, यह सोच कर ही मैंने परामर्श दिया है।

इतने पर भी अगर लौकिक मातृभक्ति तुमको स्वदेश की ओर ही आर्कषित करती है और यहा रहने से तुम्हारे चित्त को शान्ति नही मिलती तो तुम सुख से जाना। मेरा लिखना परामर्श रूप समझकर तुम स्वतत्रता-पूर्वक निर्णय करना और उसके अनुसार चलना।

—मोहनदास के आशीर्वाद

केपटाउन
जेठ वदी ८
(ता०१६-६-१४)

चि० मणिलाल,

तुम जो कुछ करो वह विचारपूर्वक, निडरता से, स्वतत्र रहकर करना। बापू को क्या पसद आयगा यह विचार बाद मे करने का है। तुम अपने कल्याण के लिए क्या करना चाहते हो यह पहले समझ लेना है और उसके अनुसार चलना है। किसी की देखादेखी न समझी हुई दिशा मे किया हुआ कार्य निष्फल है, ऐसा जानो।

—बापू के आशीर्वाद

इस क्रम मे कुछ अन्य पत्र भी उल्लेखनीय है

केपटाउन
फाल्गुण वदी २
(ता० १४-३-१४)

भाई श्री रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र पढा और दुबारा पढा। शकराचार्य ने एक श्लोक कहा है। उसमे बताया है कि समुद्र किनारे बैठकर घास के तिनके की नोक से एक बिन्दु पानी उठाकर समुद्र उलीचने के लिए जितने धैर्य की आवश्यकता रहेगी और जितना समय बीतेगा उसकी तुलना मे मन को मारने मे अर्थात् मोक्ष को साधने मे अधिक धैर्य और अधिक समय की आवश्यकता होगी। तुम तो बहुत उतावले हो गए हो, ऐसा लगता है।

मरण का भय, मैंने बहुत सोचा-विचारा है, तब भी मुझ तक से नही गया है। फिर भी मै अधीर नही होता, प्रयत्नवान रहता हू। इसलिए किसी दिन उससे मुक्त हो ही जाऊगा। तुम भी प्रयत्न करने का एक भी मौका

हाथ से न जाने देना। यह हमारा कर्त्तव्य है। परिणाम प्राप्त करना या उसकी इच्छा करना प्रभु के अधीन है। फिर झझट किस वात की ? माता वच्चे को दूध पिलाते समय परिणाम का विचार नही करती। उसका परिणाम तो आता ही है। मरण भय टालने के लिए—मनोविकारो को भगाने के लिए प्रयत्न करने के बाद प्रफुल्ल चित्त बने रहो तव वह जायगा, नही तो फिर वही मिसाल साबित होगी कि बन्दर की याद न करने का नुस्खा अमल मे लाते समय बन्दर का विचार अवश्य आयगा।

हम पाप-योनि मे से जन्मे है, पाप-कर्म से देह के अधीन हुए है। उस सब मल को तुम एक पल मे कैसे धो सकोगे ? हमारे यहा के अखा भगत ने वोध दिया है कि 'सुतर आवे तेम तु रहे, जेम तेम करीने हरि ने लहे' (जैसा अनुकूल पडे वैसे तुम रहो, पर जिस प्रकार बने हरि को जान लो)। तुलसीदासजी कहते है कि सकट हो या न हो, रामनाम जपते रहो तो सपूर्णत सिद्धि है ही। हमे तो वही अर्थ सिद्ध करना है, जो गुसाईजी ने बताया है। इसलिए वही जप जपते रहना।

राम कौनसे, यह निश्चय अपने मन मे कर लेना। वह राम निरजन है, निराकार है। राक्षसी वृत्तियो के समूहरूपी रावण का दैवी वृत्तिरूपी अनेक प्रकार के शस्त्रो से सहार करने वाला वह है। उस विपुल बल की प्राप्ति के लिए १२ वर्ष तक तपस्या करने वाला वह है।

अन्त मे, शरीर को या मन को एक क्षण भर के लिए भी खाली मत रहने देना। दोनो को उत्साहपूर्वक काम मे लगाए रखना। तब तुम्हारी सब झझटे अवश्य टल जायगी। इसके विना तो प्रभु के ऊपर भरोसा करना ओर मेरे भरोसे रहना, यह सब वृथा है। ऊपरवाले कर्त्तव्य कर चुकने के वाद ही वे सब भरोसे काम देगे।

याद रखना कि हम जैसे देव मागते है वैसे ही देव मिलते है। तुलसीदासजी ने जब रामचन्द्रजी को मागा तब कृष्ण श्रीराम बने और लक्ष्मीजी सीता बनी।

केपटाउन

फाल्गुन सुदी १०, रविवार
(ता० ८-३-१४)

भाई श्री रावजीभाई,

हृदय पवित्र हो तो विकारेन्द्रियो को विकार पाने की बात नही रहती। लेकिन हृदय क्या चीज है ? वह कब पवित्र माना जाय ? हृदय ही आत्मा है अथवा आत्मा का स्थान है। उसमे पवित्रता का अर्थ होगा शुद्ध

आत्मज्ञान का होना, और उसकी उपस्थिति में इद्रिय-विकार सभव हो ही नही सकता। किन्तु साधारणतया जब हम हृदय को पवित्र बनाने की उधेडबुन करने लगते है तब अक्सर मान बैठते है कि हमारा हृदय पवित्र हो गया। तुम पर मेरी प्रेमवृत्ति है, इसका अर्थ इतना ही है कि वसी वृत्ति रखने के लिए मैं प्रयत्नवान हू। अगर अखड प्रेमवृत्ति हो तो मैं ज्ञानी बन गया। वह तो मैं नही हू। जिसके प्रति मेरा सच्चा प्रेम होगा, वह मेरे मतव्य का या मेरे बोलने का अनर्थ नही करेगा। वह मुझपर तिरस्कार भी नही करेगा, अर्थात् इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि जब हमको कोई मनुष्य शत्रु मानता है तब दोष प्रथम तो हमारा होता है। यह बात गोरे लोग और हमारे बीच मे भी लागू होती है। इस कारण सर्व अश मे पवित्रता यही चोटी की स्थिति है। इस बीच हम पवित्रता मे जितना आगे बढेगे, हमारे विकारो का शमन होगा। विकार इद्रियो मे रहा हुआ है ही नही। 'मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयो।' इद्रिया मनोविकारो के प्रदर्शित होने का स्थान है। उनके द्वारा हम मनोविकारो का परिचय पाते है।

अर्थात् इद्रियो का नाश करने से मनोविकार जाते नही है। पण्ड लोग विकार से भरपूर देखे जाते है। जन्म से नपुसक पुरुष मे इतने अधिक विकार होते है कि वे बहुत से अकार्य करते देखे जाते है। मेरी घ्राण-शक्ति मन्द है, फिर भी सुवास लेने को मन करता है और जब कोई गुलाब आदि की सुगध की बात करता है तब उस ओर अबाध मन चला जाता है और उस पर बडे बलात्कार से, बल-प्रयोग करने के बाद, काबू पाया जा सकता है। जब मन पर काबू नही रहता और विचार-धारा उग्र बनी हुई होती है तब मनुष्य को इद्रिय-छेदन करते सुना गया है। सभव है कि ऐसे समय वह कर्त्तव्य हो।

मान लो कि मेरा मन चलित हुआ और मैंने अपनी बहन पर कुदृष्टि की। मुझे काम जला रहा है, लेकिन मैं बिल्कुल मढ नही बन गया हू। ऐसे मौके पर अगर और कोई उपाय नही सूझता तो इद्रिय-छेदन कर डालना यह पवित्र कार्य है, ऐसा लगता है। ऐसा प्रसग धीरे-धीरे उठनेवाले पुरुष पर नही आता। जिसको तीव्र वैराग्य आया है और जिसका भूतकाल का वर्तन ठीक नही है, उसके लिए ऐसा होने की सभावना है सही। विकार उत्पन्न न हो और इद्रिय चलित न हो, इसके लिए तात्कालिक उपाय मागना—नुस्खा ढूढना—वन्ध्या पुत्र को पाने की इच्छा के बराबर है। वह काम (अविकारी बनने का काम) बहुत ही धीरज से होगा। जादू का आम जैसे देखने भर को होता है, वैसे तात्कालिक रूप से होनेवाली मन-शुद्धि

के बारे मे भी समझना ।

हा, ऐसा होता है कि मन पवित्र होने के लिए तैयार हो जाता है और केवल सत-समागमरूपी पारसमणि की खोज मे रहता है। वह मिल जाने पर अपनी पवित्रता का वह सहसा दर्शन करता है और उसके लिए अपवित्रता स्वप्न की-सी जान पडती है। ऐसा हो तो वह तात्कालिक हुआ कहा नही जा सकता ।

परन्तु आम नुस्खा, जो छोटे-से-छोटा होने के कारण तात्कालिक भी है, इस प्रकार है

एकात-सेवन, सत्सग, शोधन, सत्कीर्तन, सत्वचन, लगातार शरीर को कसना, अल्पाहार, फलाहार, अल्प-निद्रा, भोग-विलास का त्याग। इतना जो कर सके, उसके लिए मनोजय हस्तामलकवत् प्राप्त होता है। इतना करना और आगे के लिए चिन्तन करना। जब-जब मनोविकार हो तब-तब उपवास आदि व्रतो का पालन करना।

× × ×

वहा पर खेत का काम बराबर न चलता हो और उस में वास्तव में तुम्हारा अपना ही दोष दिखाई देता हो तो उस दोष को उत्साहपूर्वक भगा दो। तुम जो बडे लोग हो, उनके रहन-सहन के ऊपर लडको के रहन-सहन का आधार है।

केपटाउन
ता० १०-६-१४

भाईश्री,

स्नेहियो के प्रति वीतराग उत्पन्न हो तभी हृदय वास्तव में दयावान होता है और स्नेहियो की सेवा करता है। बा के प्रति जिस अनुपात में मै वीतरागी बना हू, उस अनुपात मे उसकी सेवा अधिक कर सकता हू। बुद्ध ने अपने माता-पिता को छोडकर उनका भी उद्धार किया। गोपीचन्द ने वैराग्य लेकर अपनी माता पर अतिशय शुद्ध प्रेम बताया। इसी प्रकार तुम अपने चरित्र को गढकर (ठोस बनाकर) और अत्यन्त निर्मल नीति को अपने मे दृढ बनाकर अपने माता-पिता की सेवा कर सकोगे। जब तुम्हारा आत्मा विशुद्धि को प्राप्त करेगा तब तुम्हारे सभी स्नेहियो पर उसका प्रतिघोष पडे बिना रहेगा ही नही।

—मोहनदास के आशीर्वाद

: ७८ :

फीनिक्स का प्राणवान विद्यालय

मनसि वचसि काये पुण्य-पीयूष-पूर्णा
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्त.।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यम्
निज हृदि विकसन्त सन्ति सत कियन्त ॥

—इस जगत मे ऐसे सत कितने होगे जो मन-वचन-काया मे पुण्य के अमृत से भरे-पूरे हो, उपकारो की श्रृखलाओ से समस्त ससार को प्रसन्न करने मे जुटे हुए हो तथा नन्हे-से परमाणु के वरावर दूसरे के छोटे-से-छोटे गुणो को पर्वत के समान वडा समझ कर उन्हे अपने हृदय मे पनपाते रहते हो ।

× × ×

फीनिक्स के विद्यालय का पहला प्रयोजन अव प्राय समाप्त हो चुका था । दक्षिण अफ्रीका मे सत्याग्रह करके जेल जाने के लिए आदर्श स्वय-सेवको को तैयार करने की अव आवश्यकता नही रही थी । अव कच्चे समझौते के अनुसार पक्का समझौता हो जाने की देर थी और वह सपन्न होने पर भारत के लिए प्रस्थान करने की प्रतीक्षा थी ।

इस वीच के समय मे विद्यालय मे क्या पढाया जाय और कौन पढावे, यह समस्या सरल नही थी । परीक्षा, अभ्यासक्रम तथा अभ्यास-क्रम की मान्यता देने वाली युनिवर्सिटी के अभाव मे जो पढाई होती है वह अधिकतर वार्तालाप, गपशप और मनोरजन का रूप ले लेती है । जेल से लौटने के वाद फीनिक्स में हमारा विद्यालय जव दुवारा शुरु हुआ तव उसका करीव यही हाल रहा । जिस समय जो कोई पढा-लिखा व्यक्ति विद्यार्थियो के वीच पहुच गया उसने अपनी रुचि के अनुसार पढाने का उपक्रम किया । एक पढाने वाले के चले जाने पर जव दूसरा व्यक्ति आया तव चाहे विपय न वदला हो, पढाई का तरीका और पाठ्यक्रम वहुत करके वदल ही गया ।

इस स्थिति मे वापूजी का व्यक्तित्व और वापूजी का एक निश्चित आग्रह हमारे विद्यालय को सजीव और सुगठित वनाये रखने मे सफल रहा । फीनिक्स मे वापूजी स्वय एक साथ महीना भर भी नही रह पाए थे । वार-वार प्रिटोरिया—केपटाउन की यात्रा उन्हे करनी पडती थी तथा पाच-दस सप्ताह तक फीनिक्स से लगातार अनुपस्थित रहना पडता था । फिर भी

उनके उग्रतम उपदेशो की जो अखड धारा उनके पत्रो मे फीनिक्स पहुचती रही थी, वीच-वीच मे आकर वह स्वय जो प्रार्थना-प्रवचन करते थे तथा फीनिक्स के विद्यार्थियो के चारित्र्य की शिथिलता धो डालने के लिए उनके जो उपवास, अल्पाहार और कष्ट-सहन चल रहे थे, उनके कारण छोटे-वडे सभी विद्यार्थी वापूजी के व्यक्तित्व के प्रभाव मे दवे रहते थे।

दीवार पर वडे अक्षर से लिखकर अथवा सुन्दर सूत्रो मे विद्यार्थियो को रटा कर नही, परन्तु वारवार अच्छाई के ग्रहण करने तथा अवगुणो को छोड देने के लिए प्रेरणा देकर वापूजी ने सभी विद्यार्थियो के सामने यह लक्ष्य स्थापित कर दिया था कि प्रत्येक को अपने जीवन मे विनम्र वनना है, प्रत्येक पल सेवा-परायण रहना है और जिससे भी सीखने का अवसर मिले उससे जो कला-विद्या-सुसस्कार प्राप्त हो सके वह ग्रहण करने के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को तत्पर रहना है। सक्षेप मे, वापूजी हम लोगो से यही वात चाहते थे जो राजर्षि भर्तृहरि ने 'मनसि-वचसि' वाले श्लोक मे वताई है। हमारे कानो पर यह उद्घोष सदैव गूजता रहता था, "विद्वान तुम चाहे वन सको या न वन सको, परन्तु सुपात्र अवश्य वनो।"

जेल-यात्रा की समाप्ति के वाद वापूजी के पास रहे हुए विद्यार्थी के लिए यही शिक्षण और यही दिनचर्या थी, ऐसा कहा जा सकता है।

फीनिक्स का हमारा विद्यालय वहुत छोटा था। पढने-पढानेवालो की सख्या के हिसाव से यदि विद्यालय की सफलता अथवा महत्व देखा जाय तो वह विद्यालय अल्प से भी स्वल्प था। सात-आठ विद्यार्थी और तीन-चार शिक्षको के जेल चले जाने पर जिम विद्यालय की नव्वे प्रतिशत से भी अधिक शक्ति युद्ध-मोर्चेपर फमी हुई वताई जाय उसे आधुनिक अर्थ मे विद्यालय कहना हास्यास्पद होगा। सख्या की दृष्टि से न सही, पढाई की दृष्टि से भी उसे पाठशाला वताना मुश्किल था।

स्वय हम लोग भी, जो फीनिक्स मे उस समय पढने-पढाने वाले थे, अपनी सस्था को विद्या-सस्था या पाठशाला कहने से झिझकते थे। हम इस असमजस मे घिरे हुए थे कि जहा पर पढाई का सिलसिला तीन-चार महीने भी एक-सा नही टिकता उसको किस मुह से विद्यालय कहा जाय!

सही पढाई तो भारत मे पहुचने पर ही होगी, ऐसा हमारा विश्वास था। परतु हममे मे, जिन्होने अपना जीवन वापूजी के हाथ मे सौप रखा था, उनके लिए भारत मे भी पढने का प्रश्न वडा वेढव था। भारत मे चलने वाली अग्रेजी पाठशालाओ, कालिजो और विश्व-विद्यालयो मे पढने की हम आशा नही रख सकते थे। वापूजी के विचार के अनुसार हमारे लिए मैट्रिक आदि की

सारी पढाई सोलहो आना वर्जित थी। साथ-साथ लडके और वडे भी यह नही चाहते थे कि भारत मे पहुच कर फीनिक्स के लडके अनपढ, बुद्धिहीन या असस्कारी सावित हो।

जेल जाने मे जिन लडको के कई महीने वरवाद हो गए थे उनको अव पढने के लिए अधिक समय मिले,इस हेतु से ही शायद इस वार छापाखाना के काम मे वडे लडको को अधिक समय नही रोका जाता था। पहले की तरह अव वडे लोग ही साप्ताहिक अखवार छापने-प्रकाशित करने का काम कर रहे थे। परिणाम-स्वरूप, मेरे पिताजी, मगनलालकाका आदि शिक्षक हमे पढाने के लिए कम समय दे पाते थे और हम लोगो को आपस में मिलकर स्वाध्याय करने का समय अधिक मिलता था।

उन दिनो दोपहर के भोजन के वाद सध्या के चार-साढे-चार वजे तक हम सव विद्यार्थी पुस्तकालयवाली कुटिया के आगन मे वैठकर पढते थे। परतु उस स्वाध्याय मे नियमन नही-सा था। कुछ लडके अग्रेजी कितावो से कठिन-कठिन शब्दो को एकत्र करके अग्रेजी शब्दकोप से उनके अर्थ और हिज्जे याद करते रहते थे, कुछ अपने सुलेख को सुधारने की कोशिश मे रहते थे और करीव आधे लडके वातचीत और मटरगश्ती मे रहते थे। भरपेट खाना खाकर मुश्किल से दो घटे भी न वीतते कि फल खाने की उत्कठा कुछ लडको मे पैदा हो जाती थी। दो-तीन नौजवान सतरो के वागीचे मे चले जाते थे और सैकडो सतरो को तोडकर अगोछो मे गठरी वाध लाते थे। फिर चार-छ लडके वैठकर सारे सतरो को एक साथ छीलकर हमारे पढने की जगह पर उनका ढेर लगा देते थे और पढने मे एकाग्र वने हुए लडको को भी छिले-छिलाये सतरो की दावत मे शामिल होने का आग्रह करते थे। इस प्रकार स्वाध्याय के प्राय आधे समय वेखटके आमोद-प्रमोद चलता रहता था और दोहरा नुकसान होता था। एक नुकसान अपनी पढाई का और दूसरा नुकसान फलवृक्षो की वरवादी का। इस एक प्रसग से ही अनुमान किया जा सकता है है कि हमारे वीच वापूजी की प्रत्यक्ष उपस्थिति और अनुपस्थिति मे कितना अतर पड जाता था। उनके उच्चतम उपदेशो को सुनकर-समझकर भी हम कितनी शिथिलता को अपनाते थे। स्वभावत पढाई मे भी वह गहराई और ज्ञानवृद्धि नही हो रही थी जो वापूजी के स्वय पढाने के समय प्रतिदिन होती थी।

परतु वापूजी की सूचना के आधार पर एक ऐसा कडा नियम फीनिक्स मे शुरू हुआ जिससे प्राय सभी विद्यार्थी तग आ गए। वह नियम था सवेरे अधेरे मे उठने का।

छात्रावास के गृहपति के नाते श्री रावजीभाई पटेल हम लोगो को बिस्तरे मे तब उठा देते थे जब आकाशमे तारे चमकते हो। जेल-यात्रा से पूर्व सब विद्यार्थियो को बापूजी अरुणोदय के बाद उठाते थे और कोई तो सूरज निकल आने के बाद बिस्तर छोडता था। परतु अब छोटे बच्चो को भी ऐसी सुस्ती नही करने दी जाती थी। पाच बजे से बहुत पहले पाठशाला के स्थान पर सब विद्यार्थियो को श्री रावजीभाई इकट्ठा कर देते थे और करीब पौन-घटे तक भक्त-कवि नरसिंह मेहता के तथा गुजरात के अन्य पौराणिक कवियो के काव्य पढकर सुनाते थे। उस समय मुझे तो क्या, और किसी को भी यह अनुमान नही होगा कि भविष्य मे बापूजी के आश्रम मे सदैव अनिवार्य बनने वाली ब्राह्ममुहूर्त की प्रार्थना का यह प्राथमिक स्वरूप है। किसी-किसी दिन बार-बार उठाये जाने पर भी मेरी नीद नही खुलती थी और देर से पहुचने के कारण मुझे सबके बीच शर्मिन्दा होना पडता था। मन मे गुस्सा भी आ जाता था। लेकिन तडके उठने की थोडी-सी आदत पड जाने पर प्रात काल उन धार्मिक काव्यो और आख्यानो को सुनने मे मुझे आनद आने लगा और भजन के समय ऊघना छोडकर मै उन सरल काव्यो का अर्थ समझने की कोशिश करने लगा।

यहा पर यह बता देना आवश्यक है कि भारत आने की तैयारी के रूप में बापूजी ने फीनिक्स के विद्यार्थियो को ब्राह्ममुहूर्त मे उठा देने का नियम बनाया। दक्षिण अफ्रीका के जलवायु मे बहुत अबेरे उठने की आवश्यकता नही थी। परतु भारत मे, विशेषकर देहातो मे, यदि बहुत अबेरे न उठा जाय तो दिन की तेज धूप और गर्मी मे किसान अपना खेती-बाडी का और जुलाहा अपनी बुनाई आदि का काम पूरा नही कर सकता। जो दरिद्र रहना न चाहे उसे भारत मे ब्राह्ममुहूर्त मे उठना ही चाहिए, यह बापूजी का अटल विश्वास था और वह फीनिक्स से ही हमारी पाठशाला मे भी अनिवार्य नियम बना दिया गया।

कुछ दिन बीतने के बाद दो नये शिक्षक फीनिक्स आये। उनके आने पर विद्यालय की दिनचर्या कुछ व्यवस्थित हो गई और पढाई मे भी थोडा ठोसपन आया। वैसे आयु में दोनो ही नौजवान, बीस वर्ष से भी कम के, थे। परतु उनका पढाने का तरीका अच्छा था और पढाई मे वे दोनो पूरा समय दे रहे थे। इसलिए लडको पर उनका प्रभाव अच्छा पडा। दो मे एक थे श्री जमनादास गाधी और दूसरी थी मिस स्लेशिन। वैसे फीनिक्स के लिए दोनो परिचित व्यक्ति थे परतु फीनिक्स मे रह कर पढाने का काम अबकी बार ही दोनो ने शुरू किया था। जमनादासकाका बापू के विचारो को समझने

की भरसक कोशिश करते थे। केपटाउन से जब बापूजी ने उनको फीनिक्स भेज दिया तब उन्होंने हम लोगों को पढ़ाने में अपना समय लगाया। जिन तीन विषयों को जमनादासकाका ने पढ़ाना शुरू किया वे तीनों विषय बापूजी की दृष्टि में बहुत आवश्यक थे—सुलेखन, संस्कृत और 'हिन्दस्वराज'। बापूजी के अपने अक्षर विद्यार्थी अवस्था से ही सुन्दर नहीं रहे थे। इसलिए उनका आग्रह था कि विद्यार्थियों को प्रारंभ से ही सुंदर और स्वच्छ अक्षर लिखने की आदत डाली जाय। जमनादासकाका के अक्षर बहुत सुंदर थे। वह सीधी पंक्तियों में प्रत्येक अक्षर सुवाच्य, व्यवस्थित और छपा हुआ-सा लिखते थे।

सुलेख लिखने का जो अभ्यास जमनादासकाका ने हमसे करवाया उसमें सब से आगे निकलनेवाले देवदासकाका थे, ऐसा मुझे स्मरण है। हमारे बीच टाहुयाभाई मोची के अक्षर पहले से ही अच्छे थे, परंतु प्रयत्नपूर्वक अपनी कापी में सुन्दरता के साथ पाठ लिख लाने में देवदासकाका कमाल करते थे।

दूसरा विषय था संस्कृत। जमनादासकाका संस्कृत के पंडित नहीं थे, राजकोट के हाई स्कूल में दो किताब पढ़े थे। पर बापूजी की इच्छा थी कि हम लोग संस्कृत का परिचय प्राप्त कर लें। इसलिए हमें बहुत छोटे-छोटे शब्द सिखाये जाने लगे। अश्व, कन्दुक, वदति, गच्छति आदि शब्द हमारे लिए सर्वथा नये थे और व्याकरण के अनुसार उनके विविध रूपों को सुनकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता था। कुछ विद्यार्थी हममें ऐसे थे जो बारबार याद करने पर भी 'अश्व' शब्द भूल जाते थे और जमनादासकाका पूछते थे तो सहज भाव से 'घोड़ा दौड़ति', 'अहं बोलामि' जैसे उत्तर देकर वर्ग भर को हँसा देते थे। इस संस्कृत-वर्ग का विशेष लाभ लिया तो देवदासकाका ने और मैंने।

जमनादासकाका का सबसे महत्व का वर्ग था 'हिन्दस्वराज' का। बापूजी की लिखी हुई 'हिन्दस्वराज' पुस्तक पढ़ाने में वह अपना सारा कौशल खर्च कर रहे थे। 'हिन्दस्वराज' पढ़ते समय हमें ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् बापूजी ही हमें पढ़ा रहे हैं। बड़ी सावधानी से हमारा सारा वर्ग इसे पढ़ता था। बापूजी के द्वारा स्थापित प्रत्येक सिद्धान्त को समझने और याद करने की पूरी कोशिश छोटे-बड़े सभी विद्यार्थी करते थे। हमारे मन में यह बात बैठ गई थी कि हिन्दुस्तान जाने पर बापू के सत्याग्रह के सैनिक के नाते हम पर प्रश्नों की झड़ी लगेगी और तब बापू की बात समझाने की बुद्धि-मत्ता हम नहीं दिखा पायगे तो हम हँसी के पात्र बनेंगे। आपस की बातचीत में भी हम लोग 'हिन्दस्वराज' के वाक्यों का और भाषा का प्रयोग करते थे,

यहा तक कि प्राय तीन महीने की अवधि मे 'हिन्दस्वराज' के इक्कीस प्रकरण हम लोगो को लगभग कठस्थ हो गए थे।

जमनादासकाका से भी अधिक प्रभाव हम लोगो पर मिस स्लेशिन का पडा। मिस स्लेशिन आमतौर से बहुत बोलने वाली, विनोद करने वाली और चचल स्वभाव की जान पडती थी, परतु पढाते समय इतनी गभीर और एकाग्र बन जाती थी कि छोटी उम्र की होने पर भी बडे आदमी-सी मालूम देती थी।

वह अग्रेजी, निबधलेखन और कविता तीनो विषय अग्रेजी के द्वारा पढाती थी। बडे और पढने मे चतुर लडको को वह जरा देर मे स्वाध्याय के लिए सूचनाए दे देती थी, छोटे तथा कमजोर विद्यार्थियो को सिखाने में अपना बहुत समय खर्च करती थी। नन्ही-सी मुन्नी रुखीबहन मे लेकर बड़े-विद्यार्थियो तक सभी मिस स्लेशिन के कहने मे रहते थे। उनके बुलाने पर बालक उनके पास दौड कर जाता था और बडा विद्यार्थी उनकी सूचना का पालन खुशी-खुशी करता था। फीनिक्स मे रहने वाले प्रौढ पुरुष भी मिस स्लेशिन के आग्रह को टाल नही सकते थे।

बापूजी के पथ पर सीधा न चलकर उनकी छोटी-छोटी बातो का विरोध करने मे मिस स्लेशिन को झिझक या क्षोभ नही होता था, शायद थोडा आनद ही आता था। मनमौजी तो वह थी ही, इसलिए लडको को पढाने और विद्यालय का सचालन करने मे वह अपने स्वतत्र विचार से चलती थी। बापूजी की बताई हुई मर्यादाओ का बधन वह सदैव नही मानती थी। बापूजी किसी विद्यार्थी को ऊचा नबर और किसी को नीचा नबर देने के पक्ष मे नही थे। जब कभी बापूजी कापी जाच कर नबर देते थे तब भी विद्यार्थियो को परस्पर के नम्बरो की तुलना करने से रोकते थे। केवल अपनी ही प्रगति की तुलना उन नम्बरो मे करने को कहते थे। मिस स्लेशिन ने नम्बर ही क्या, आगे निकलने वाले लडको को इनाम देने की भी व्यवस्था की।

उन्होने छोटे मे लेकर बडे तक तीन विभाग मे निबध लिखने की स्पर्धा का आयोजन किया। फीनिक्स के बडे कार्यकर्त्ताओ से भी निबन्ध लिखने का आग्रह किया गया।

एक दिन मध्याह्न मे प्रार्थना के स्थल पर सब लोग इकट्ठे हुए और सारी सभा के सामने चुने हुए निबध पढे गए। औरो के निबध का कैसा स्वागत हुआ यह तो मुझे याद नही, परन्तु इतना याद है कि बडो मे मगनकाका का निबध अव्वल माना गया और छोटो मे मै इनाम का पात्र ठहरा था।

गदगी और आलस्य के अवगुणो पर एक अग्रेजी कविता मिस स्लेशिन ने

मुझे सिखाई थी और उसी विषय को लेकर मैंने वह निबंध अंग्रेजी में ही लिखा था। मजे की बात यह थी कि अंग्रेजी पढाई में मैं सबसे पिछडा हुआ विद्यार्थी था। हिज्जो मे मेरी पूरी अनबन थी, इसलिए जब कभी डिक्टेशन लिखवाया जाता, मेरी बेहद भूले निकलती। परन्तु मिस श्लेशिन ने मेरी इस कमजोरी पर मुझे शर्मिन्दा करना बद कर दिया था। भूलकर भी वह मुझसे हिज्जे नही पूछती थी। न मुझसे रटने को कहती थी। सरल और सुदर अंग्रेजी पुस्तक मेरे हाथ मे देकर वह उसमे से अच्छी-अच्छी कविताए सुनाती थी और बार-बार मुझसे पढवाती थी। फिर उस पर मुझसे प्रश्नोत्तर करती थी। कभी-कभी उसका अर्थ लिख लाने को भी कहती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि मुझसे आगे पढने वाले विद्यार्थियो के निबंधो से मेरा अंग्रेजी निबंध अच्छा माना गया। मिस श्लेशिन के हाथ से मैंने इनाम में अरबिस्तान के दानवीर हातिमताई की जीवनी भेट में पाई। वह मोटे अंग्रेजी टाइप में छपी हुई थी और उस पर मिस श्लेशिन के हस्ताक्षर थे। करीब पच्चीस वर्ष तक मेरे सग्रह में वह पुस्तक सुरक्षित रही। बाद में कहा गुम हो गई, पता नही चला। पर इस एक निबंध और इनाम की एक पुस्तक ने मेरे जीवन की प्रगति पर काफी असर डाला।

बडो मे मगनकाका का निबंध जो अव्वल आया था उसका इनाम क्या दिया गया मुझे याद नही, परतु वह निबंध फीनिक्स भर मे सबके लिए प्रेरणादायी माना गया। बडो के निबंध गुजराती मे थे और वहा पर मगन-काका की गुजराती भाषा सबने बहुत पसद की। उस निबंध का कथानक था भारत के छोटे-से देहात में परिश्रम करने वाले एक किसान भाई-बहन का और उनके पसीने से लहराने वाली सुदर खेती का।

पाठशाला की पढाई के अतिरिक्त दूर-दूर तक भ्रमण के लिए विद्यार्थियो को ले जाने का सिलसिला भी मिस श्लेशिन ने चलाया। अबोका का समुद्र किनारा हमारे यहा से छ मील दूर था, माउन्टेजकम्ब का सात-आठ मील। अबोका जाने मे मीलो तक बालू और गोखरू का रास्ता पार करना पडता था और वहा का तट निर्जन होनेसे दिन भर धूप आदि का कष्ट उठाना पडता था। माउन्टेजकम्ब मे बस्ती थी, पर चट्टाने ऐसी खतरनाक थी कि वहा समुद्र-स्नान करने का साहस कम होता था। दोनो स्थलो पर नहाने के बाद जब लौटते थे तब हम मन मे सोचते थे कि दुबारा इस यात्रा मे नही आयगे, लेकिन मिस श्लेशिन और रावजीभाई जब टोली लेकर समुद्र-स्नान के लिए निकल पडते थे तब घर पर एक-दो विद्यार्थी भी मुश्किल से रुकते थे।

जब मिस श्लेशिन हम लोगो को पैदल डरबन की यात्रा कराती थी तब हमें लगातार तीस-बत्तीस मील चलना पडता था। तगडे युवको से भी

वह आगे चलती थी। थकती तो थी ही नही। जब रास्ते मे हम लोग केवल गोरी बस्ती मे गुजरते थे तब अनेक गोरे लोग मिस स्लेशिन की ओर क्रोधभरी दृष्टि से घूरते थे। हिन्दुस्तान के काले लडको के यूथ को लेकर पढी-लिखी गोरी कुमारिका इस तरह से जाती थी, यह उनके दिल को चुभता था, परन्तु वे जानते थे कि यह मंडली गाधी के फीनिक्स आश्रम की है और उस समय गाधी स्मट्ससाहब से समझौते की बात कर रहे थे, इसलिए गोरे लोग गम खा जाते थे।

इस प्रकार फीनिक्स का हमारा आतरिक विद्यालय चार-पाच महीने ही चला, परतु वह था प्राणवान विद्यालय।

सत्याग्रह-आदोलनकी समाप्ति होनेपर बापूजीके सामने यह प्रश्न विशेप रूप से उपस्थित हो गया कि अब हिन्दुस्तान लौटने पर किस प्रकार जीवन विताया जाय? भारत के जलवायु मे—वहा के विविधतापूर्ण वातावरण मे—फीनिक्स के साधक-जीवन को किस प्रकार और भी उज्ज्वल बनाया जाय? दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-सग्राम की समाप्ति उनके लिए विश्रान्ति का अवसर नही था, अपितु विशेप कठिन जीवन के लिए सामने आया हुआ गम्भीर पर्व था। जिस सत्याग्रह की दक्षिण अफ्रीका मे सफलता प्रतीत हो रही थी उसका हिन्दुस्तान मे और भी जितना बन सके अधिक विकास साधने की मनोकामना बापूजी के मन मे वेग पकड रही थी। सत्याग्रह का अगाध और अमोघ बल विश्व को दिखा देने के अदम्य सकल्प को वह अपने हृदय मे दृढ कर रहे थे। इस उद्देश्य से वह अपना एव अपने सगी-साथियो का जीवन पूरा तथा श्रेष्ठ और सत्याग्रह को सुशोभित करने योग्य बनाने के लिए जी-जान से प्रयास कर रहे थे। इन प्रयासो म बापूजी के विचार से स्वाद-जय एक अनिवार्य साधन था।

फीनिक्सवासियो की अधिक सख्या का जब बापूजी के साथ भारत आना निश्चित-सा हो गया तब फीनिक्स की सामूहिक रसोई मे दूध-घी का सर्वथा त्याग करना बापूजी का सब से अधिक महत्त्व का प्रयोग था। बापूजी के दिल मे यह आग्रह बना हुआ था कि हिन्दुस्तान मे, जहा पर सैकडो व्यक्ति भूखे मरते है, अथवा निरे सत्तू, ज्वार-मक्का के पतले दलिए या उससे भी अधिक हीन आहार से उदर-पोपण करते है, वहा हम लोगो को ऐसे ही आहार की आदत डालनी चाहिए, जो गरीबो के बीच अनुचित मालूम न दे।

दूधके परित्यागके बारेमे बापूजी की एक तीव्र भावना यह भी थी कि यदि बालक युवावस्था मे प्रवेश करने से पूर्व ही दूध और दूध के बने हुए पदार्थो का सेवन छोड दे तो उसके लिए अन्य प्रकार के सयम आसान हो जायगे और उसे

ब्रह्मचर्य का पालन सहज प्रतीत होगा। मास, मच्छी, अडे आदि के समान दूध भी जानवर के रक्त-मास मे प्राप्त वस्तु होने के कारण मन-इन्द्रियो को चचल बनाने और शरीर की रक्त आदि धातुओ मे विकृति पैदा करने का बडा बलवान निमित्त बन सकता है। सच्चे सत्याग्रही के लिए विवाह आदि के पचडे से अलग रहकर और इस प्रकार निर्द्वंद्व ब्रह्मचारी बनने के लिए दूध का परित्याग बहुत ही सहायक है। इस प्रकार का विश्वास बापूजी के दिल मे इतना सुदृढ बना हुआ था कि इसके विपरीत किसी भी प्रकार का तर्क उनपर असर नही करता था।

नौजवानो में से औरो के मुकाबले जमनादासकाका दूध-घी का त्याग करने के बहुत ज्यादा खिलाफ थे। बापूजी के सामने उन्होंने अपना विरोध खुलकर प्रकट कर दिया था। इसलिए बापूजी ने जब जमनादासकाका को केपटाउन से फीनिक्स भेजा तब पत्र के द्वारा उन्होंने पहले से ही फीनिक्स में सूचना भेज दी थी कि "जमनादास के लिए घी खरीद कर रखना।" परन्तु फीनिक्स भर मे इस तरह एक ही व्यक्ति के लिए अपवाद किया जाय यह जमनादासकाका ने अपने लिए उचित नही समझा। इसलिए उन्होंने स्वेच्छा से फीनिक्स के अनुशासन मे रहना पसद किया। घी के बदले मे वहा पर जैतून का तेल मिलता था। उसे वह खा नही पाते थे, इसलिए रूखा आहार लेकर ही उन्होंने सतोष किया। परन्तु बापूजी से उन्होंने इस विषय पर बहुत पत्र-व्यवहार किया। जमनादासकाका की मुख्य दलील यह थी कि हमारे आर्यावर्त मे प्राचीन ऋषि-मुनियो ने दूध-घी का त्याग करने का आदेश नही दिया, बल्कि मदिरो मे तो एकादशी के फलाहार मे घी-दूध का ही प्रयोग किया जाता है। वह अधिक पवित्र समझा जाता है और तेल वर्जित माना जाता है। इन पत्रो के उत्तर मे बापूजी ने जमनादासकाका को निम्न पत्र भेजे थे :

आषाढ वदी १, १९६९

चि जमनादास,

दूध के विषय में किसी ने कुछ विचारणा की ही नहीं होगी, ऐसा मानने का कोई कारण नही है। मै समझता हू कि दूध के बिना काम चलाने वाले बहुत-से मनुष्य होगे। किन्तु मै कह चुका हू कि किसी महापुरुष ने हिन्दुस्तान मे मास का जो परित्याग करवाया वह इतना महत्वपूर्ण परिवर्तन था कि दूध के बारे में लिखने या कहने वाले नजर नही आते। किन्तु यह हमारे अज्ञान के कारण है। हमने सबकुछ पढा नही है। सबको देखा नही है। एक ही कसौटी उत्तम है—भूतकाल मे विचारणा की गई हो या न की गई हो, पर बुद्धि को वह बात जचती है या नही ?

फिर दूध को त्यागने मे किसी ने न पाप बताया है, न माना है।

—बापू के आशीर्वाद

एक अन्य पत्र मे बापूजी ने लिखा

चि० जमनादास,

पवित्र माने जाने वाले तीर्थ-स्थानो मे तेल को त्याज्य और घी को पवित्र माना जाता है, इसका कारण वही मालूम होता है जिसका मैने अनुमान किया है। हिंदुस्तान जब मासाहारी ही था और किसी ने बहुत-से लोगो को निर्मासाहारी बनाया तब घी को अति पवित्रता दी। इसलिए हम लोग अपने आहार मे बेहद घी बरतते है यहा तक कि रसोई मे जितना अधिक घी हो उतनी ही वह श्रेष्ठ मानी जाय। इससे बढकर और क्या अधेर हो सकता है ? लेकिन मान्यता ऐसी ही चली आ रही है। इस कारण पवित्र स्थानो मे भी घी को उच्च-पद दिया गया। परिवर्त्तन करने वाले ने मान लिया कि लोग घी खूब लेगे तो उनको मास की ज्यादा आवश्यकता महसूस नही होगी। इस प्रकार के उद्देश्य से इग्लैड के शाकाहारी (वेजिटेरियन) लोग भी अडो का इस्तेमाल करते है। अडो को उन लोगो ने प्राय पवित्रता का स्थान दे दिया है।

स्वाद को जीतने के बारे मे तुमने जो श्लोक उद्धृत किया है वह तो मैने देखा है। फिर भी मेरी टीका सही बैठती है। एक श्लोक का कुछ असर नही होता। उन लोगो ने इस बात पर जोर नही दिया है। अगर दिया होता तो ठाकुरद्वारोमे हरएक बहाने से मिष्टान्न न रहते। प्रत्येक उत्सव और पर्वके दिन घी-गुड के सीधे देने की बात न रहती। ब्रह्मभोज भी नही होते। और इन दिनो तो ऋषि लोग और साधुगण भी स्वादेन्द्रिय को जीतते नही है, परन्तु उससे जीते गए देखे जाते है। यह बात बहुत लम्बी-चौडी है। किसी के ऐब बताने के लिए ऐसा कहे तो पाप के भागी बने। परन्तु अपने और परायो के उपकार की ही जहाँ मुख्य बात है वहा चाहे कैसे भी गण्यमान्य पुरुष क्यो न हो उनके बारे मे भी जो अपूर्णता हम देखे उसपर विचार करने का हमारा कर्त्तव्य है।

—बापू के आशीर्वाद

और भी एक पत्र बापूजी ने लिखा

जेठ वदी १४, १९६९

चि० जमनादास,

दुग्धोपचार की पुस्तक मै देख गया हू। मुझे ठीक नही लगी। किन्तु मेरी मन स्थिति ही ऐसी है। यदि कोई मास के सम्बन्ध मे शरीर को श्रेष्ठ बनाने वाले भारी गुणो को साबित कर दे तो भी वह त्याज्य है। मेरे लिए दूध के विषय मे भी यही किस्सा है। वह मास का ही रूप है और मनुष्य को उसे

खाने का अधिकार नही है। बच्चा माता का दूध पीता है, इसलिए मनुष्य को गाय का दूध पीना चाहिए, यह बात तो अज्ञान की सीमा है।

—बापू के आशीर्वाद

फाल्गुन सुदी ६, १९६९

चि० जमनादास,

तुम दूध-दही को त्यागोगे नही, यह ठीक है, पर उसको प्रधान पद मत देना।

—बापू के आशीर्वाद

फीनिक्स मे बागीचा था, विशाल भूमि पर ऊची घास छाई रहती थी, परतु वहा गोशाला नही थी। वहा एक गाय भी किसी ने नही पाली थी। डरबन शहर के दुग्धालय से रोजाना बडे-बडे दूध-पात्र ट्रेन द्वारा आते थे। कभी सामने वाली टेकरियो से कोई हिन्दुस्तानी किसान अपनी गाय का थोडा-सा ताजा दूध पहुचा देता था। फीनिक्स मे साग-सब्जी का स्वावलबन था, दूध का नही था। सस्था की इस कमी पर कभी बापूजी को असतोष पैदा होते हुए मैने नही देखा। बाहर से दूध मगाने की कुछ भी परेशानी किसी को महसूस नही हो रही थी। परतु ज्योही हिन्दुस्तान आने की तैयारी होने लगी, महीनो पहले से फीनिक्स में दूध मगाना बिल्कुल बद कर दिया गया।

दूध को वर्जित करने पर उसके स्थान मे कौन-सी वस्तु ली जाय, इसका निश्चय करना आसान नही था। बापूजी की सूचना मे एक के बाद एक कई प्रयोग किये गए, क्योकि भारत मे फल तो छूटने वाले थे ही, दूध भी छोडने पर क्या लिया जाय, यह समस्या थी।

इस प्रकार का पहला प्रयोग, जो मुझे याद है, बादाम का था। फीनिक्स के भोजन मे सुबह-शाम गेहू की बनी जो कॉफी मिलती थी, उसमे आधा से ज्यादा दूध रहता था। दूध के बद होने के साथ गेहू की कॉफी का बद हो जाना मानो पूरी सामूहिक रसोई का सतोष समाप्त हो जाना था।

कॉफी मे दूध के बदले शुरू-शुरू में बादाम घोटकर उसका दूध-सा मिलाया जाने लगा। गेहू की कॉफी मे इस नए दूध का मिश्रण मुझ जैसे बालको को बहुत पसद आया। दूध न मिलने का रज मन में नही रहा।

परन्तु बादाम का प्रयोग कुछ ही दिन चल पाया। भारत की गरीबी को देखते हुए यह प्रयोग आहार की दृष्टि से सफल हो तो भी चल नही सकता था। इसलिए अमीरो के बादाम को छोडकर गरीबो के बादाम का प्रयोग शुरू हुआ, अर्थात मूगफली भिगोकर तथा घोटकर उसका दूध बनने लगा

और हमारा कॉफी के पेय का आनन्द चालू रहा।

परतु पेय की तुष्टि मिल जाने पर दूध की गरज हर प्रकार से पूरी नही हो सकती थी। दूध मे जो पोषक तत्व होता है उसकी हमारे नित्य के भोजन मे ही कमी रह जाती थी। इस हेतु से मूगफली का प्रयोग दुबारा नए ढग मे शुरू किया गया। पोषक तत्वो की दृष्टि से मूगफली की पोषक शक्ति भरपूर होती है, लेकिन दूध की तरह वह सुपाच्य वस्तु नही है। मूगफली को पचाने मे आसान बनाने के लिए उसे दाल की तरह पानी मे पकाने का प्रयोग किया गया। किंतु दो-ढाई घटे तक खौलने पर भी मूगफली पकने वाली चीज साबित नही हुई। तब रात-रात भर उसे डबल रोटी वाली भट्टी पर रखा जाने लगा। दस-बारह घटो तक पकने के बाद वह कुछ मुलायम होती थी फिर भी पूरी तरह पकती तो थी ही नही। इस तरह घटो तक पानी मे पकने के बाद मूगफली कुछ ऐसी बदस्वाद हो जाती थी कि भात-रोटी के साथ उसे खाना कठिन हो जाता था।

नित्य के भोजन मे मूगफली का यह प्रयोग कई सप्ताह तक चलता रहा। फिर दो नई चीजो का प्रवेश फीनिक्स के भोजन मे हुआ और उबली मूगफली के प्रयोग की इतिश्री कर दी गई। ये दोनो चीजे दक्षिण अफ्रीका की विशेष पैदावार थी। एक का नाम था 'सावर फिग्स' और दूसरी का नाम था 'काफिर नटस'।

'सावर फिग्स' केपटाउन मे बापूजी के हाथ लगे थे, ऐसा कुछ मुझे याद है। अग्रेजी 'सावर फिग्स' का शब्दानुवाद होता है, 'खट्टे अजीर', परन्तु इन्हे 'खट्टे अजीर' क्यो कहा जाता था, यह मेरी समझ मे नही आया। खाने मे वह बहुत खारे होते थे। अलोना व्रत रखनेवालो के लिए वह नमक का काम देते थे। केपटाउन के पास समुद्र-तट पर इनकी पैदावार होने की बात मैंने सुनी थी। 'काफिर नट्स' फीनिक्स से कुछ दूर के जगल मे रहने वाले हब्शी लोग अपने खेत मे पैदा करते थे। हम लोगो को इतने वर्षो तक इस आहार का पता क्यो नही चला, यह मेरे मन मे एक आश्चर्य ही रहा। 'काफिर नट्स' का स्वाद अच्छा था। उन्हे उबालकर ही खाया जाता था। उबालने पर उन्हें पकने मे देर नही लगती थी और पकने पर वे शकर-कद जैसे मुलायम पड जाते थे। इस खाद्य को प्राप्त करने के बाद हमारे यहा मूगफली को पकाने का सिलसिला बद हो गया था। खाद्य तथा पोषण की दृष्टि से अब दूध के बदले दूसरी वस्तु ढूढने की आवश्यकता नही रहेगी, ऐसा कुछ विश्वास हम लोगो में बढ चला था। फिर भी यह चिन्ता मन में थी कि भारत पहुचने पर यह प्रयोग चलेगा या नहीं। वहा यह चीज मिलेगी कैसे ? परतु फीनिक्स से दलबल

सहित हम लोग चले तबतक हमारे नित्य के भोजन मे ये मीगिया महत्व का आहार बनी हुई थी।

केपटाउन मे लौटने के बाद बापूजी ने फीनिक्स के विद्यार्थियो और नौजवानो के शरीर पर दूध-घी छोडने से होने वाले परिणाम पर बारीकी से विचार किया। पौष्टिकता के हिसाब से दुग्धाहार की क्षतिपूर्ति करना उन्हे आवश्यक जान पडा। अन्यो के मुकाबले देवदासकाका का शरीर बहुत पतला-छरहरा था। उनके शरीर मे स्फूर्ति बहुत थी और बल भी था, परतु देखने में दुर्बल नजर आते थे। उनके शरीर को घी-दूध के अभाव मे और भी दुर्बल होने से बचाना आवश्यक था। दुग्धाहार को बन्द करने के समय यदि पूज्य बा बीमार न होती और फीनिक्स मे उपस्थित होती तो मेरा खयाल है कि इन प्रयोगो की रफ्तार इस प्रकार से न चल पाती जिस प्रकार वह चलाई गई थी। बापूजी के आदेश पर भोजन मे जो प्रयोग और परिवर्त्तन शीघ्रता से हो रहे थे उनपर थोडा-बहुत अकुश रखने वाला बा के सिवा और कोई न था। फीनिक्स का सामूहिक भोजनालय बापूजी के रसोईघर मे ही चलता था और सब विद्यार्थियो के लिए जो कुछ पकता था वही बापूजी के अपने बेटो को भी मिलता था। रामदासकाका और देवदासकाका को तो बापूजी के पुत्र होने के नाते और भी कडाई से इसका पालना करना पडता था।

बापूजी ने यह निश्चय किया कि शरीर की पुष्टि के लिए देवदासकाका को कुछ विशेष खुराक देने की आवश्यकता है। तब उन्होने दोपहर के भोजन के बाद प्रतिदिन दस-दस बादाम देवदासकाका को देना प्रारम्भ किया। देवदासकाका के बाद मेरी बारी आई, क्योकि मेरी गिनती भी कमजोर शरीर वाले लडको मे थी।

भोजन-समाप्ति के बाद चोका-बरतन के अपने काम मे छुट्टी पाकर हम दोनो बापूजी के पास जाते थे। बापूजी उस समय या तो अपना भोजन कर रहे होते, या रसोईघर के किसी-न-किसी काम मे लगे होते थे। एक खास बोतल से वह हमारे हाथ मे गिनकर दस-दस बादाम दे देते थे। बापूजी की इस कृपा से मेरे दिल का उत्साह बहुत बढ जाता था। बादाम का प्रयोग शुरू कराते समय बापूजी ने मुझसे कहा, "देख, इसे तुरन्त मत खा जाना, चलते-फिरते धीरे-धीरे खूब चबाकर खाना। एक-एक बादाम को मुह मे तबतक चबाते रहना जबतक कि वह बिल्कुल दूध न बन जाय। उसके दूध जैसा बन जाने के बाद ही उसे गले मे नीचे उतारना।"

बापूजी ने हमारे भोजन के ढग मे भी कुछ परिवर्त्तन कर दिया। मेज-

कुर्सी पर बैठ कर खाने का तरीका बन्द कर दिया गया और बाहर के बरामदे मे हिन्दुस्तानी ढग मे फर्श पर पालथी मार कर पक्ति मे बैठने का तरीका शुरू किया गया। हममे से बहुत से नौजवान ऐसे थे जो फर्श पर पालथी मारकर बैठने का ढग जानते ही न थे और कई सप्ताह तक उन्हे अपने पैरो को इस तरह मोड़ने मे तकलीफ उठानी पड़ी। नीचे बैठने मे घुटने और टखने ऐसे दुखते थे कि कुर्सी की बारबार याद आजाती थी, परन्तु हम भारतवासी थे, इसलिए बैठने की भारतीय आदत हमें डालनी थी। इसी प्रकार भोजन में चम्मच का उपयोग छोडकर हाथ से खाने की विधि भी हमें सीखनी पडी।

फीनिक्स में चीनी मिट्टी के या तामचीनी के बरतन काम मे लाये जाते थे। इन दोनो ही विलायती चीजो को छोडकर लकडी के बरतनो के प्रयोग पर बापूजी ने जोर दिया। वह स्वय तो पहले से ही छोटी-सी कठौती और लकडी का चम्मच अपने इस्तेमाल में लाते थे। औरो के लिए भी वह लकडी के बरतन प्राप्त करने की कोशिश करते रहे, परन्तु अधिक नही मिले, केवल छ कठौतिया मिली। ये कठौतिया सुन्दर थी और किसको दी जाय, यह तय करना कठिन हो गया। दो दिन तक कोई निर्णय न हो पाया। तब बापूजी ने चिट्ठी डालकर इन छ कठौतियो का बटवारा करने का निश्चय किया।

उस दिन शाम की प्रार्थना के बाद इन कठौतियो के लिए चिट्ठी डालने का कार्यक्रम बहुत मनोरजक रहा। छ अदद के लिए बारह-पन्द्रह उम्मीदवार थे। चिट्ठी मे अपना नाम दर्ज करने वालो को बापूजी मीठी चुटकिया लेते जाते थे, "बोलो, अलोना करना मजूर है? भोजन मे कौनसा नया प्रयोग करोगे?" इत्यादि। नवीन प्रयोग का साहस करने के लिए जो तैयार थे उन्ही का नाम बापूजी ने चिट्ठी में लिखा। फिर प्रत्येक चिट्ठी को अपने हाथ से गोलिया बनाकर उन्हे चौसर खेलनेकी कौडियोकी तरह मेज़ पर बिखेरा।

अब प्रश्न यह उठा कि कौन चिट्ठी उठाये? थोडी-सी बहस के बाद बापूजी ने निश्चय किया कि कोई वयस्क व्यक्ति चिट्ठिया न उठाये। छोटा, निर्दोष और चतुर बालक ही उठाये। यह मान मेरे छोटे भाई कृष्णदास को मिला। बापूजी ने उसे तरीका समझाया और वह एक-एक गोली उठाकर बापूजी के हाथ में देता गया। हर नाम के निकलते पर बडी हसी मचती रही। दूसरा नाम मगनलालकाका का था। मेरे दिल मे विचार उठा कि नसीब भी न्याय को देखता है। सबसे अधिक सुयोग्य का नाम चुनने मे नसीब ने गलती नही की। छ मे पाचवा नाम मेरा निकल आया तब मुझे बडी खुशी हुई। बापूजी बोले, "लो, यह परभूदास का नाम भी आ गया।" फिर मुझसे पूछा, "बोल, तू इसे सम्भालेगा या तोड-फोड डालेगा? गदी तो नही

रखेगा ?" मैं झेप गया, पर साहस से वादा किया—"सम्भालूगा ।"

मैं सबसे छोटा था इसलिए सबसे पहले मुझे अपनी मन-पसन्द कठौती उठा लेने को कहा गया । मैंने मजाक से नाजुक और सुन्दर कठौती उठा ली ।

इस कमाई का प्रभाव मेरे मन पर बरसो तक रहा । फीनिक्स मे ही नही, भारत मे आने पर भी चार-पाच वर्ष तक मैं उसी मे भोजन करता रहा । इस काष्ठपात्र मे भोजन करते समय सदैव अपने मन मे सकल्प दृढ करता रहा कि अस्वाद-व्रत के प्रयोग मे मुझे बापूजी के सामने हारना नही है । वह चाहे कितना ही अलोना करा ले और अच्छी चीज न दे, मैं सभी नियमो का पालन करूगा । इस सकल्प मे मुझे प्राय सफलता भी मिली ।

उपसंहार

'आजु धन्य मैं धन्य अति'

आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब विधि हीन ।
निज जन जानि राम मोहि, सन्त समागम दीन्ह ॥

नाथ, जथामति भाषेऊ, राखेऊ नहिं कछु गोइ ।
चरित सिंधु रघुनायक, थाह कि पावइ कोइ ॥

रामचरितमानस

सत-महात्माओ के चरित-सागर मे जितना अधिक गहरा उतरा जाय, उसकी विशालता तथा उसका प्रभाव चित्त को अधिकाधिक उत्साह, विनय और आश्चर्य से भरते जाते है। फिर बापूजी के जीवन मे जो उन्नत ज्वाला प्रज्वलित होती रही है उसका प्रकाश तो चित्त को और भी आश्चर्य-मुग्ध बना देता है। उसकी थाह पाना मुझ-जैसे अल्प बालक के लिए असभव ही है। किन्तु ईश्वर ने मुझे ऐसा अवसर दिया कि मै बापूजी के जीवन-सिंधु मे अपने बचपन से ही, जान मे या अनजान मे, गोता लगाता रहा। वास्तव मे बापूजी की जीवनी को सागर के समान अगाध स्वरूप धीरे-धीरे प्राप्त हुआ है। बापूजी के सुचरित का सागर अपने-आप प्रकट हो गया है, अथवा दैवयोग से ससार के सामने विस्तीर्ण क्षितिज पर लहराने लगा है, ऐसी बात नही है। उनके चरित-सिंधु का आरम्भ पहले छोटी और बाद मे वेगवती सरिता के रूप मे हुआ है। पृथ्वीतल पर बहनेवाली सहस्रो सरिताओ के बीच गगा की धारा ने जिस प्रकार लोक-हृदय मे अपना अनोखा स्थान जमा लिया है उसी प्रकार बापूजी की जीवन-सरिता ने मानव-जीवन के अनेकानेक प्रवाहो के बीच अपना अनोखा स्थान प्राप्त कर लिया है।

बापूजी के जीवन की यह त्रिभुवनपावनी सुरसरि सुदीर्घ क्षेत्रमे प्रवाहित हुई है। उस सुरसरि के प्रारम्भिक पथ का जो सौदर्य और जो महिमा अपने चर्म-चक्षुओ से मै देख पाया था तथा उस अद्भुत वाता-वरण की जो सुरभि अपनी अल्प शक्ति से मै ग्रहण कर पाया था, उसको इन पक्तियो मे शब्दाकित करने का मैने थोडा-बहुत दुस्साहस किया है।

न जाने क्यो, अपने अन्तर की गहराई मे दबी हुई बातो को जब मनुष्य बताने लगता है तब चाहने पर भी वह अपनी वाणी पर रोक नही लगा पाता। अपने कडवे-मीठे अनुभवो को सुनाते-सुनाते वह अघाता ही

नही । कुछ ऐसा उत्साह उसके अन्तर मे फूट पडता है कि सुननेवाला चाहे पसन्द करे या न करे, वह अपनी राम-कहानी कहता ही चला जाता है। जब छोटे-मोटे अनुभवो की स्मृतिया मनुष्य को इस प्रकार बहा देती है तब बापूजी के पुण्यस्मरण मे उठनेवाली हृदय की भावुकता रोकी न रुके तो आश्चर्य ही क्या ?

बापूजी का पुण्यस्मरण ऐसे महापुरुष का पुण्यस्मरण है जिनके साथ रहकर भी हम उन्हे पहचान नही पाये, उनके वचनामृत की धारा मे बहने पर भी उस अमृतवाणी का यथावत आचमन नही कर पाये, अपनी निजी आखो से उनकी महानता को देखकर भी तथा उनकी कृपा से हर्ष-गदगद होकर भी उन्हे समझ नही पाये। ऐसे महामानव के चरणामृत का आचमन करते-करते परितृप्ति हो भी कैसे !

परन्तु अब आवश्यक है कि मै यहा पर रुक जाऊ। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-सग्राम की कहानी यहा पूरी नही होती। गाधी-स्मट्स समझौते पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद भी सत्याग्रह के मौलिक अध्वर्यु के नाते दक्षिण अफ्रीका से प्रयाण करने की घडी तक, उस सत्याग्रह को सफल बनाने के लिए बापूजी आगे कदम बढाते ही जा रहे थे, किन्तु इस पुस्तक का उद्देश्य दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का राजकीय इतिहास चित्रित करने का नही है। यहा पर मैने यह दिखाने का यत्किंचित प्रयत्न किया है कि बापूजी ने स्वय अपने-आपको किस प्रकार बनाया, अपने को अपना यथार्थ शिष्य बनाने में उन्होने किस प्रकार सफलता पाई, सत्याग्रह का प्रादुर्भाव किन परिस्थितियो के बीच हुआ, सत्याग्रही जीवन की गहरी नीव फीनिक्स की अनोखी सस्था मे किस प्रकार डाली गई, और छोटे-छोटे बालको को तथा अल्हड नवयुवको को निराले ढग की शिक्षा-दीक्षा देने का अपना नया प्रयोग किस उत्साह से उन्होने किया ।

यह सब जब मैने देखा तब मुझे यह सुध नही थी कि मुझे जन्म-जन्म का यह दुर्लभ लाभ मिल रहा है। जब मेरे ध्यान मे यह आया कि बापू-जी की छत्र-छाया मे मेरा जो बाल्य-काल बीता वह मेरे जीवन की बहुत बडी निधि है तब मै अपने हृदय पर सतत बोझा-सा अनुभव करने लगा। मुझे चिन्ता होने लगी कि इतने अमूल्य सुयोग का कुछ भी सद्व्यय मै नही कर पाऊगा तो अपयश का भागी बनूगा। बापूजी से प्राप्त सस्कार-निधि को अपने जीवन मे चरितार्थ करना तो अलग रहा, उसपर अपनी अविचल निष्ठा बनाए रखना भी जीवन की बडी कसौटी है। तब मैने सोचा कि और कुछ मुझसे बने या न बने, बापूजी से प्राप्त इस अनुपम सस्कार-निधि

का वखान तो करू—अपने सगी-साथियो को यह भव्य खजाना दिखा तो दू ।

इसी भावना से प्रेरित होकर सहृदय पाठको के सामने उपस्थित होने का कठिन साहस मैने किया और मै इस ग्रथ का ततु यहा तक ले आया। अब आगे बढना और भी कठिन जान पडता है। बापूजी का जीवन यहा से आगे एक नया ही मोड लेता है। जैसे कलकल-निनादिनी भागीरथी हिमालय की अनेकानेक घाटियो मे से बहती हुई हरिद्वार के पास आकर एकदम चौडे मैदान मे फैल जाती है और इस किनारे पर से पार के किनारे तक विस्तीर्ण गगा-पट मे बहनेवाली सभी धाराओ को एक साथ, एक नजर मे, देखना मुश्किल हो जाता है, वैसे ही बापूजी की जीवन-सरिता को यहा से आगे चित्रांकित करना दुष्कर हो जाता है। अबतक, अर्थात् केपटाउन से बापूजी के फीनिक्स लौटने तक, उनकी साधना अधिकतर अपनी निजी साधना थी और बाद मे उसने आगे बढकर समष्टिगत साधना का विशाल रूप ले लिया। अबतक बापूजी अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत करने मे और उसे सफलता से सचालित करने मे अपनी अदम्य प्राण-शक्ति को लगाए हुए थे, अब के बाद वह अपने-अपने चुने हुए अन्य व्यक्तियो को अपने अगप्रत्यग के रूप मे साथ कर निज के व्यक्तित्व को विराट रूप देने के लिए आगे बढे। यहा से आगे चलकर बापूजी के व्यक्तित्व के विकास का इतिहास सत्याग्रह-आश्रम के विकास का इतिहास बन जाता है।

सत्याग्रह के राजकीय इतिहास की दृष्टि से कहा जा सकता है कि तीन पौड कर विरोधी सत्याग्रह मे बापूजी ने जब विजय पाई तब उनके व्यक्तित्व का प्रकाश दक्षिण अफ्रीका की सीमा पार करके ससार भर मे दूर-दूर तक फैल गया। भारत-भर मे उनके इस शौर्य और पराक्रम के प्रति बडी श्रद्धा पैदा हो गई। फीनिक्स टाल्स्टाय-बाडी से बाहर भी उनके अनेक प्रशसक तथा अनुगामी तैयार होने लगे, जिनकी बापूजी से एक बार भी मुलाकात नही हुई थी। अखबारो मे और पुस्तको मे उनका उल्लेख बढने लगा।

केपटाउन के कार्य से लौटने के बाद बापूजी हमारे प्रत्यक्ष अध्यापक या आचार्य नही बन सके। हमे पढाना-लिखाना, हमारी कापियाँ जाचना, हमारे सिर के बाल काट देना, हमारे साथ कधे पर कुदाल लेकर कडी धूप मे खेत खोदने जाना इत्यादि कार्यक्रम को वह फिर कायम नही कर सके, यद्यपि विद्यार्थियो के बापूजी वह सदैव बने रहे।

बापूजी की शक्ति ने अब जो करवट ली उसमे उनकी महानता छिपी हुई थी। दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार से भिडने के लिए बापूजी

की जो उग्र शक्ति केन्द्रित हुई थी वह अब अपने छोटे-मोटे सगी-साथियो की शारीरिक और मानसिक कमजोरियो को मार भगाने में केन्द्रित हो गई। अपने निजी सहयोगियो मे, चाहे वे नवयुवक हो या प्रौढ पुरुष हो, जहा कही मनोदौर्बल्य देखा, उसके मिटा देने के लिए बापूजी तुल गए। ऐसा करके वह भारत मे 'सत्याग्रही' जीवन की हरी-भरी पौध पहुचाने को उत्सुक थे।

मेरे मन मे यह विश्वास पक्का हो गया है कि दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के अन्तिम दौर मे तथा विशेष रूप मे केपटाउन मे मानव-सुलभ छोटी-मोटी दुर्बलताओ को बापूजी सदा के लिए पार कर गए। मान-अपमान, बडप्पन-अभिमान, क्रोध-मोह आदि के सागर को बापूजी अगस्त्य की तरह पी गए, उन्होने मृत्यु-भय को जड-मूल से उखाड फेका। उन्होने विचार और कर्म को समकक्ष बना लिया और इन्ही शुभ घडियो में वह मानव से महा-मानव बन गए।

ऐसी विराट मूर्ति के साधनामय जीवन का यथाशक्य समग्र स्मृति-चित्र शब्दांकित करने का मैंने इस पुस्तक मे प्रयत्न किया है। पता नही मै अपने मन मे समाई हुई उस भव्य मूर्त्ति को कहा तक कागजो पर चित्रित कर पाया हू।

बहुत वर्ष पहले के और वह भी बिल्कुल बचपन के स्मरणो को जुटा-जुटाकर जब मै इन प्रकरणो की रचना करने लगा तब मन मे यह डर बना रहा कि मै इसमे तथ्य के बदले काव्य की ओर तो अधिक नही बह रहा हू? स्मरणो की शृखला को तैयार करते समय पहले वाली कडी पीछे और पीछे वाली कडी आगे साथ लेने की भूल तो नही करता हू? अथवा, बात का रग जो था उससे गहरा तो नही बैठ रहा है?

गुजराती मे जब ये प्रकरण प्रकाशित हो रहे थे तब पूज्य महादेवभाई ने मुझसे एक बार प्रश्न किया था कि "जब तेरे पास उस समय की डायरी नही है, तब भी तू फीनिक्स-पुराण लिखता जा रहा है। ऐसी बात तो नही है कि जैसे मकडी अपने पेट मे से ही अपना जाला बनाती रहती है वैसे तू भी अपने उदर से ही मनमानी बाते गढ रहा है?" फिर विनोद के साथ पीठ ठोकते हुए खुद ही बोले, "घबराओ मत। मैंने यो ही तुम्हे सावधान किया। इतने विस्तार से जो बाते दे रहे हो, ठीक कर रहे हो। पर कही लिखने के प्रवाह मे कपोल-कल्पित किस्से न आ जाय, यह ध्यान रखना। मै सब पूरे गौर से पढता हू। अच्छा आ रहा है।"

मैंने महादेवभाई को विश्वास दिलाया कि जो बाते मेरी स्मृति में

बहुत धुंधली है तथा जिनके तथ्य के विषय मे मुझे शका पैदा हो सकती है, उनका उल्लेख करने से मै बचता हू और तथ्य को तोडने-मरोडने का अपराध भूल मे भी न कर बैठू, इसके लिए भरसक सावधानी रखता हू।

महादेवभाई ने तो मेरा निवेदन स्वीकार कर लिया, परन्तु मेरे दिल मे इस आलोचना का भय कायम रहा और बार-बार मैने अपनी स्मृति को कसा। इन प्रकरणो को जाचने के लिए मैने अपने पिताजी से विनती की। जहा कही उनको सन्देह हुआ या कोई बात खटकी उसे उन्होने ठीक करवा दिया या निकलवा दिया। फिर भी अपनी स्मृति की यथार्थता परखने के लिए जहा सम्भव हुआ, बापूजी के पत्रो का सहारा लिया। बापूजी के लेखो से कई उद्धरण मेरे पिताजी ने ढूढ दिये। इस प्रकार इस पुस्तक की सामग्री को तथ्य से भिन्न न होने देने के लिए मै अपनी शक्ति भर जागरूक रहा हू।

बापूजी की विविध प्रवृत्तियो तथा उनकी विविध साधना का मैने अपनी बुद्धि के अनुसार विवेचन भी किया है। मेरे एक-दो विद्वान मित्रो ने, जो बापूजी के निष्ठावान उपासक है, मुझसे आग्रह किया कि "केवल बापूजी की प्रवृत्ति और जीवनप्रसग मे विशेष कुछ मत लिखो। बापूजी की छत्र-छाया मे रहकर जो अनुभव तुमने पाया वह अनुभव ही लिख दो। उस अनुभव के साथ जो भावनाए तुम्हारे मन मे उठी उन्हे मिलाकर बात का बतगड क्यो करते हो?" लेकिन उन मित्रो की राय मै अपना नही सका। यह नही कि मुझे उपदेशक बनने का मोह है, परन्तु बापूजी के जीवन का और उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रतिबिम्ब पग-पग पर मेरे अन्तर मे और मेरी बुद्धि मे किस प्रकार पडा, इसका उल्लेख करना आवश्यक समझता हू। सूर्य को, जल को, वायु को मनुष्य हर समय देखते है और उनका भरपूर अनुभव पाते है, लेकिन उनके आरोग्यवर्धक लाभ की बात जब प्राकृतिक चिकित्सा पाया हुआ कोई रोगी हमारे सामने रखता है तभी उनकी वह महत्ता हमारी समझ मे आती है। बापूजी के तेजस्वी जीवन के लिए भी ऐसी ही बात है। उनके जीवन-प्रसगो का और उपदेशो का अपना महत्त्व अपार है, परन्तु मुझ-जैसा तन-मन का दुर्बल बालक जिस प्रकार उसे ग्रहण कर पाया अथवा नही ग्रहण कर पाया, इस विषय मे जब अपना अनुभव बतायगा तो उसकी उपयोगिता अनेक जिज्ञासुओ के लिए बहुत बढ जायगी, ऐसा मुझे विश्वास है। इसी हेतु से मैने बापूजी का सुवर्ण-सा देदीप्यमान जीवन अपने से हीन काठ पर मढकर यहाँ उपस्थित किया है।

अन्त मे बापूजी के महान् व्यक्तित्व तथा उनके जीवन के चमकते

हुए अनेकविध पहलुओं को एकत्र करने पर जो एक विशिष्ट प्रकाश दिखाई देता है उसका उल्लेख करके अपनी बात मैं समाप्त करूंगा।

बापूजी ने पुन बताया है कि मेरे लिए "जीवन के शब्द-कोष का काम सदैव श्रीमद्भगवद्गीता ने दिया है।" अर्थात् उनके जीवन की मार्गदर्शिका गीता थी। गीता में भी तीसरे अध्याय के आदेशों पर बापूजी की अत्यधिक श्रद्धा थी। मुझ जैसे विद्यार्थी को गीता सिखाते समय तीसरे अध्याय का मर्म समझाने पर वह अधिक जोर देते थे। जब मैं बापूजी के व्यक्तित्व का स्मरण करता हू तब गीता के तीसरे अध्याय का तीसवां श्लोक मेरे सामने आ जाता है और उस श्लोक में मैं बापूजी का पूरा वर्णन पाता हू। वह श्लोक है

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वर ॥

इस श्लोक के द्वारा कृष्ण भगवान बडी आत्मीयता से अर्जुन से कह रहे हैं, "भाई, अपनी अध्यात्मवृत्ति को सजग रखकर अपने सारे कर्मों के बोझ को मुझ पर डाल दो, मन में जितनी भी ममताए और आशाए भटक रही हैं उन्हें बिल्कुल अलग करदो, और राग-द्वेषादि के आवेगों से मन मे पैदा होनेवाले बुखार को हटाकर लडाई के मैदान मे डट जाओ। लडना, और लडना ही, तुम्हारा काम है।"

निर्देशिका